

औरंगाबाद का अतीत

[आत्मकथा भाग २]

४ दिसम्बर १९६८ से फरवरी २००४

राजमल बोरा

औरंगाबाद का अतीत (आत्मकथा भाग - २) © राजमल बोरा / **प्रकाशक** श्रीमती आशा बोरा, ५, मनीषा नगर, केसरसिंहपुरा, औरंगाबाद - ४३१ ००५ / **प्रथम संस्करण** : २००४ ई / **मुद्रक** साकार मुद्रणालय, २३, जयहिन्द कालोनी, औरंगाबाद - ४३१ ००१ / मूल्य ३५०/-

---

Aurangabad ka Atita (Autobiography, Part II) by Rajmal Bora, Rs 350/-

दिशा, दिव्या, आकाश
तथा
चिराग और मिहिका को

अपनी बात

यह आत्मकथा का दूसरा भाग है । **औरंगाबाद का अतीत** नाम रखा है । ४ दिसम्बर १९६८ ई. के बाद मे औरंगाबाद का निवासी हो गया और अब यहीं पर रहता हूँ । आधी जिंदगी यही पर गुजरी है । शेष काल भी यही पर रहूँगा।

श्री विष्णु प्रभाकर को इस पुस्तक के लिखते समय पत्र लिखा था और चाहा था कि वे कुछ बतलाएँ । उन्होने उत्तर दिया और भीष्म साहनी की आत्मकथा पढने कहा। मैने तुरन्त पुस्तक मगवाई और पढ गया । पुस्तक अच्छी लगी । नाम था **'आज का अतीत'** मैने उक्त नामकरण को आधार मानकर **'औरंगाबाद का अतीत'** नामकरण किया। कारण यह है कि इन वर्षो मे औरंगाबाद मे रहा हूँ । इसमे मात्र औरंगाबाद का अतीत है ।

जिन लोगों के साहचर्य मे रहकर काम करता रहा हूँ, उनमे विभाग के व्यक्ति है, पडोसी है, विश्वविद्यालय आने-जानेवाले अतिथि है, दूसरे विभागो के प्राध्यापक है, प्रोफेसर है और अनेक है । उनमे जो प्रधान व्यक्ति है और जिनके घर पर जाना-आना रहा है, ऐसे व्यक्ति इस पुस्तक मे प्रसगो के संदर्भ मे मिलेगे । उन पर लिखते समय मैने अपना ध्यान सद्पक्ष पर ही रखा है । उनके उन गुणो को उजागर किया, जिनके कारण वे जाने जाते हैं । मेरा उनसे सम्बन्ध उनके सद्पक्ष के कारण रहा है । मै यह मानता हूँ कि व्यक्ति मे सद्पक्ष भी रहता है, वही उसकी शक्ति का स्रोत है, उस पक्ष के कारण ही समाज मे उनकी पहचान बनती है । उस पक्ष को सम्बल बनाकर हम सम्पर्क करे तो हमारा काम सफल हो जाता है । हम दूसरो को बदल नही सकते । हम अपने घर के सदस्यों को बदल नही सकते तो दूसरों को बदलने की बात बहुत दूर की है । जिनका परिचय अधिक होता है, उनसे झगडे भी अधिक होते है । हमे झगडो से मुक्त रहकर सद्पक्ष को ध्यान मे रखते हुए तथा औरो के स्वभाव को पहचानकर ही सम्बन्धो का निर्वाह करना पडता है । सम्बन्ध बिगाडनेवाले बहुत लोग होते है । मैने ऐसे लोगो की

आग ध्यान नहीं दिया । मैंने दूसरे लोगों को जैसे समझा है वैसे ही लिखा है । मन म किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखी । किसी के आत्मसम्मान को चोट नहीं पहुँचाई। आत्मा से बचता रहा हूँ । मन को समझाता रहा हूँ । श्री विष्णु प्रभाकर ने पत्र मे लिखा कि आत्मकथा म न किसीकी स्तुति करो और न किसीकी निन्दा करो । जो सत्य है, वही लिखो ।

श्री विष्णु प्रभाकर से मिलो तो आत्मबल मिलता है । उन पर मैंने शोध-प्रबन्ध लिखवाया और छपा भी है । वे मेरे घर पर आकर गए है और दिल्ली गया तो अवसर निकाल कर अजमेरी गेट पहुँच कर उनके घर पहुँच कर मिलता रहा हूँ । उनकी सद्भावनाओ ने उन्हे गांधी बना दिया है । जैनेन्द्रकुमार के बाद मे दिल्ली मे आज भी वे दिल्ली की प्रतिष्ठा को बनाए हुए है । वे किसी साहित्यिक दल मे नहीं है । विवादो से परे अजातशत्रु है । मनुष्य की पहचान उनकी गहरी है । आवारा मनुष्य मे — मसीहा की पहचान करानेवाले है । वह पहचान हममे नहीं है । उनसे सम्पर्क करने से हमारी यह पहचान बढती है, यह मै मानता हूँ। उनके कारण मैंने अपने साहचर्य के मनुष्यो को पहचानने का प्रयत्न किया है । वह पहचान इस पुस्तक मे है ।

मेरा परिवार भी इस पुस्तक मे है । मेरी सारी शक्ति परिवार के सदस्यों के कारण है । परिवार के सदस्यो के कारण मैंने सब काम किया है । विश्वविद्यालय में काम करने के वर्षों मे — सेवानिवृत्त होने तक — सदैव कर्ज मे रहा हूँ । सेवानिवृत्त होने के बाद भी डेढ़-दो वर्ष तक कर्ज की किश्तें देता रहा हूँ । कर्ज लेकर ही मैंने अपनी योजनाएँ पूर्ण कीं । अब मुझे किसी का कुछ देना नहीं है । मेरे दोनो ही पुत्र सुनिल और अनिल दोनो का मुझे पूरा सहयोग प्राप्त है । मै दोनो को अपने से दूर नहीं रखना चाहता । वे मेरे पास रहते है । परिवार है । स्वतंत्र रहते हैं और पास में हैं । प्रसन्न है । उनको चिंतित देखता हूँ तो परेशान हो जाता हूँ । उनके स्नेह-सम्बल के कारण १९९२ ई मे बाय-पास सर्जरी हुई । तब से अब तक जी रहा हूँ । १९९२ ई के बाद के जीवन को मै बोनस लाइफ कहता हूँ । मै तो तभी चला गया था । लौट आया और जी रहा हूँ ।

मेरे जीवन को बल देनेवाले मेरे गुरुजन है । ऋणमुक्त होने का प्रयत्न करता हूँ । मैंने किससे क्या पाया ? क्या सीखा ? और क्या करता रहा हूँ ? — यह सब मैंने विस्तार से लिखा है । सबके आशीर्वाद मुझे प्राप्त हुए है । ऐसे लोगो मे अब प काशीराम शर्मा, श्री विष्णु प्रभाकर, डॉ एन नागप्पा, श्री विष्णुकान्त शास्त्री आदि रह गए है । यथासमय इनको पत्र लिखता रहता हूँ ।

गुरुजनो से, पाठको से, मित्रो से तथा स्नेहीजनो से पत्र मिलते रहे हैं । ऐसे पत्रो को अलग से तीसरे भाग मे छापने की योजना है । शीघ्र ही तीसरा भाग भी प्रकाशित होगा ।

'औरगाबाद का अतीत' मे — सब कुछ लिखा नहीं जा सका । बहुत कुछ छूट गया है । औरो की बात क्या कहूँ ? स्वय पत्नी छूट गई है, जो कि सम्बल के रूप

मे सदैव मेरे पीछे खड़ा रहा है। मित्र और शुभचिन्तक भी छूट गए है। बहुत से अपरिचित छात्र है, हिन्दी विभाग के है और दूसरे विभागो के है। वे कभी मिलते है तो सम्मान करते है। उनके स्नेह का ऋणी हूं। मै यह मानता हू कि स्नेह के सम्बल मे हमारा जीवन यात्रा चलती रहती है।

औरंगाबाद नगर तो अब मेरा नगर है। नगर के प्रति काफी सामग्री जोड़कर रखी है। इतिहास-भूगोल दोनो विषयों का अपना आकर्षण है। समय ने साथ दिया तो औरंगाबाद पर स्वतन्त्र पुस्तक प्रकाशित करूँगा। औरंगाबाद को मैं दक्षिण की दिल्ली मानता हूँ। दोनो नगरो मे बहुत साम्य है। शाहजहाँबाद पुरानी दिल्ली और लाल किला शाहजहाँ के समय के हैं। इसी तरह औरंगाबाद और किले-आर्क औरंगजेब के समय के हैं। शाहजहाँबाद को बनाकर भी शाहजहाँ दिल्ली मे अपने बनाए लाल किले मे रह नही सका। इस तुलना मे औरंगजेब औरंगाबाद मे बादशाह बनने के पूर्व रहा है और जिन्दगी के अन्तिम वर्ष भी उसने इसी नगर मे गुजारे हैं। उसकी मृत्यु इसी क्षेत्र में हुई। उसकी कब्र खुलताबाद मे — यही पर है। पुरानी दिल्ली का स्वरूप शहर की प्राचीर और दरवाजो के भीतर जैसे आज है, वैसे ही पुराना औरंगाबाद आज भी वैसे ही है। नई दिल्ली की तरह अब तो नया औरंगाबाद बन गया है और यह नया औरंगाबाद नगर के परकोटे और दरवाजों से बाहर है। पुरानी दिल्ली के दरवाजो से औरंगाबाद के दरवाजे अधिक सुरक्षित है। अस्तु।

आत्मकथा के प्रथम भाग की प्रतिक्रिया मे पत्र मिले है। फोन से भी प्रतिक्रियाएँ मिलीं। इससे मेरा उत्साह बढ़ा है। प्रतिक्रिया में लिखे गए कुछ पत्र अन्त मे दे रहा हूं। दूसरा भाग इसीलिए लिखा भी गया है। स्थानीय मुद्रक श्री रामकृष्ण जोशी का इसके प्रकाशन मे पूरा सहयोग है। यह पुस्तक भी जैसे जैसे लिखी जाती रही, वैसे वैसे छपती रही है। मुद्रक महोदय का अतएव आभारी हूँ। मुझे न चाहने पर भी पुन. प्रकाशक बनना पड़ा। आरभ में जब प्रकाशक बना उस समय कुछ बुजुर्ग प्रकाशको से सम्पर्क रहा। उनके कारण आगे बढा और फिर ऐसे प्रकाशको मे से कुछ ने मेरी पुस्तके छापी भी हैं। श्री अशोक महेश्वरी के पिता श्री प्रेमचद महेश्वरी ने वाणी प्रकाशन का आरम्भ १९६९ ई मे किया। १९७० या १९७१ ई मे दक्षिण की यात्रा पर निकले। औरंगाबाद घर पर आए। कमला नगर मे एफ-६१ में उनके आवास पर भी गया। उन्होने अपना शोध-प्रबन्ध भी मुझे दिखलाया। उनके निधन (१९७९ ई) के बाद मे वह छपा भी है। उनके सहयोग के कारण मुझे उनके पुत्रो का सहयोग मिला है। आज तो दोनो भाई अपने चरम उत्कर्ष पर है। श्री मलिक साहब, (नेशनल पब्लिशिंग हाउस), श्री विश्वनाथजी और उनके सहयोगी श्री ईश्वरचद्रजी खण्डेलवाल (राजपाल एण्ड सन्ज) तथा श्री कृष्णचन्द्र बेरी (वाराणसी) — जैसे प्रकाशको से सम्पर्क हुआ। उन्होंने कुछ पुस्तके छापी है। उन सब का आभारी हूं। किन्तु आज तो मेरे पास इतना समय नही कि पुस्तक लिखने के बाद प्रकाशक को दूं और फिर लम्बी प्रतीक्षा करूँ? इसीलिए स्वय छपवाने का निर्णय किया है। पुन. प्रकाशक बनना मजबूरी है।

आत्मकथा लिखने मे अभिव्यक्ति का सुख है । इसमें स्वयं अपने को कसौटी पर कसना है । मन को मैला नही करना है अपितु सब कुछ कहकर मन को निर्मल करना है । अपने को छिपाना नही, उजागर करना है । आत्मकथा मे भाषा कुछ आत्मीय हो ही जाती है । और मै मानता हूँ कि आत्मकथा मे आत्मीयता होनी चाहिए । मै कितना आत्मीय हो पाया हूँ, यह तो पाठक बतलाएँगे । तटस्थता के कुछ पृष्ठ तो उन्हे मिल ही जाएगे । प्रतीक्षा करूँगा ।

इस आत्मकथा लिखने से पूर्व मैंने जैन मुनि मिश्रीलालजी की आत्मकथा लिखी। मैंने शर्त रखी थी — आप अपनी कथा बतलाएगे तो मैं लिखूँगा । वे कहते गए, मै लिखते गया । पूरी कथा पाँच वर्षो मे लिखी गई । सब कुछ उनका कहा हुआ था । भाषा उन्हींकी थी । मैंने कोई परिवर्तन नही किया । केवल भाषा की अशुद्धियो को ठीक किया । शब्द ही नही, वाक्य गठन भी वैसे ही, उनकी प्रथम पुरुष की भाषा मे रखा और पुस्तक अशोक महेश्वरी ने छापी । मुनिजी के देवलोक गमन से पूर्व वह पुस्तक छप कर आ गई थी । वह पुस्तक उन्होंने पढी तो उन्हें लगा कि मै ही बोल रहा हूँ और सब कुछ सत्य और ठीक है, उनकी अपनी अभिव्यक्ति उस पुस्तक मे है । उनके मुख पर मैंने संतोष और सुख की दीप्ति देखी । मै बीमार था तो मुझे देखने घर पर पधारे । मगलीक दी अर्थात् मगल वचन सुनाए और देखिए जब बीमार हो गए तो अस्पताल मे थे । उस समय सिकदराबाद से मेरे बडे साढू और फूफा आए । उनको साथ लेकर मुनिजी के पास पहुँचा । बहुत प्रसन्न हुए । मुनिजी ने मेहमान को रोक लिया । नाम था घीसूलालजी डफरिया । डफरियाजी जब दूसरे दिन अकेले ही मुनिजी के पास गए तो उन्होंने कहा कि जब कल आओ तो राजमल को लेकर आना । दूसरे दिन जब मै गया तो उन्होंने सब को मंगलीक दी । वही मुनिजी की अन्तिम मंगलीक और अन्तिम भेट है । उसके बाद तो पूना गए और मुबई के बाम्बे अस्पताल मे रहे । बाद मे देवलोक हो गए । मैं यह सब इसीलिए लिख रहा हूँ कि अपनी बात कहने में, लिखने मे और पढने मे भी सुख है । अतीत में खोए रहने मे, अभिव्यक्ति सुख का स्रोत बन जाती है । हम जिन्दगी को आज के नजरिए से देखने लगते है । आत्मकथा के प्रूफ्स् को पढते समय मैंने उसे अनुभव किया है । इसे पढ़कर दूसरे लोग — पाठक वृद क्या अनुभव करते है, यह जानने की इच्छा है । मै औरगाबाद के १९६८ से २००४ ई तक के मेरे अपने अतीत के जीवन से जुडा हुआ हूँ । इसी अभिव्यक्ति के बल पर आत्मविश्वास के साथ शेष कार्य पूरा करने की योजना है । इति शुभम् ।

२ फरवरी २००४

५, मनीषा नगर, केसरसिहपुरा,

औरगाबाद (महाराष्ट्र) ४३१ ००५

– राजमल बोरा

1

मराठवाडा विश्वविद्यालय (पहाड़सिंहपुरा)

आज जहाँ पर मराठवाडा विश्वविद्यालय स्थित है, उस क्षेत्र का नाम पहले पहाडसिंहपुरा था। पहाडसिंह ओरछा का राजा था। शाहजहाँ के समय में पहाडसिह को दक्षिण की जागीर मिली। गोंडवाने में गायें जोती जाती है, यह पहाडसिह को अच्छा न लगा। भाट के मुख से उसने ऐसा समाचार सुना तो वह गोंडवाने की ओर बढ़ गया। उसने गायों को इससे मुक्ति दिलाई। कहा है—

वीरसिह जू के वंश प्रबल पहाडसिंह,
तेरी बाट हेरती हैं, गौएँ गोंडवाने की।

पहाडसिह को शाहजहाँ ने १६४१ ई. में ओरछे की गद्दी दे दी थी। उसी के समय मे पहाड़सिह दक्षिण मे दौलताबाद तक चले आए। दौलताबाद से आगे बढकर औरंगाबाद के निकट सह्याद्रि की माला की तलहटी मे पहाड़सिंहपुरा बसाया। इनकी रानी का नाम हीरादेवी था। पहाडसिह के बडे भाई जुझारसिह ने अपनी

रानी से कहकर अपने छोटे भाई हरदौल को विष देने के लिए विवश किया । रानी अपने देवर को बहुत चाहती थी । उसने हरदौल को सब बतला दिया था। फिर भी उसने विष मिश्रित भोजन कर लिया । इससे हरदौल की तत्काल मृत्यु हो गई । बुन्देलखण्ड मे हरदौल का यह कथानक बहुत प्रसिद्ध है । हरदौल के चबूतरे बाद में बहुत जगह बने है । पहाडसिहपुरा मे भी स्वर्ण-महल के प्रवेश द्वार से लगी सडक की दूसरी ओर यह चबूतरा आज भी खण्डहर के रूप मे है ।

पहाडसिंहपुरा मे बुन्देलखण्ड की सस्कृति दर्शानेवाले अवशेष आज भी बिखरे हुए है । इनमें सबसे प्रसिद्ध 'स्वर्ण-महल' है । मराठी मे इसे ही सोनेरी महल कहते है । सोनेरी महल के प्रवेश द्वार के ठीक सामने विश्वविद्यालय का शासकीय भवन है । पहाडसिहपुरा का क्षेत्र आज विश्वविद्यालय का क्षेत्र है । इस क्षेत्र मे कई भवन बने हुए हैं । एक ओर यह क्षेत्र बेगमपुरा से लगा हुआ है तो दूसरी ओर इसकी सीमाएँ उत्तर-पूर्व की पर्वतमाला तक पहुँचती है । इसके दक्षिण-पश्चिम मे भावसिंहपुरा है और दक्षिण मे जयसिहपुरा है । जयसिहपुरा के निकट ही विश्वविद्यालय का प्रवेश द्वार है । यह द्वार १९७४ ई मे बना । रेणिगुंटावार पढरीनाथ (छोटा नाम — नाथ साहब) के समय मे बना । उस समय वे विश्वविद्यालय के कुलपति थे ।

मराठवाडा विश्वविद्यालय की स्थापना १९५८ ई. में २३ अगस्त को हुई । उसका विधिवत् उद्‌घाटन पं जवाहरलाल नेहरू ने किया । इस विश्वविद्यालय को शासन की ओर मे ६९ ७६९ स्केअर किलोमीटर भूमि सोनेरी महल के समीप की — पहाडसिंहपुरा की भूमि — मिली । इस क्षेत्र मे ही विश्वविद्यालय के सभी भवन बने हुए है । प्राकृतिक रूप मे यह क्षेत्र वैसे ही सुन्दर है ।

हरदौल को बुन्देलखण्ड मे लोकदेवता के रूप मे मान्यता प्राप्त हो गई है। उसके चबूतरे गॉव गॉव में बने हैं । हरदौल के प्रेत के चमत्कारपूर्ण प्रसगो को नर्मदाप्रसाद गुप्त ने विस्तार से लिखा है । वे लिखते हैं —

> "कहा जाता है कि हरदौल की मृत्यु पर एक मेहतर और कुत्ता ने अवशिष्ट भोजन खाकर प्राण दे दिये थे । मेहतर की चौंतरिया (चबूतरे का छोटा रूप) तो पहिचान बन गई है, सभवत इसी कारण उच्च और निम्न वर्ग — दोनों एक-सी श्रद्धा रखते है ओर सभी हरदौल की पूजा करते है । एक घटना यह भी प्रसिद्ध है कि हरदौल के सात सौ साथियो ने प्राण-त्याग कर उनका अनुसरण किया था । बहुत गहराई

से देखने पर यह राजा के प्रति मौन विरोध का सूचक प्रतीत होता है । सामूहिक प्राण-त्याग उस युग की ऐसी मिसाल है, जो इतिहास मे नया अध्याय जोड़ती है । दूसरी घटना राजा के प्रति प्रजा का असतोष है । एक जनश्रुति के अनुसार प्रजाजनो ने राजा से हरदौल की हत्या का स्पष्टीकरण मांगा था । कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इडिया भाग ४, पृ १८५ में लिखा है कि जुझारसिह को अपने लोगो के विरोध का भी सामना करना पडा । क्योकि उसने अपनी पत्नी का अपने भाई हरदौलसिह से गुप्त प्रेम के सदेह पर भाई को विष दिलवा दिया था, जिसके अनुयायी बहुत अधिक थे । ओरछा की जनता का आक्रोश जहाँ हरदौल की लोकप्रियता प्रकट करता है, वहाँ उस जनपद की जागरूक चेतना का उदाहरण भी प्रस्तुत करता है ।

प्रेत के चमत्कार - शेष दो घटनाएं हरदौल के प्रेत से जुडी हुई हैं । लोकप्रचलित है कि हरदौल की बहिन कुंजकुँवरि अपनी पुत्री के विवाह का निमत्रण देने या भात माँगने ओरछा आई थीं । उन्होने राजा जुझारसिह को हत्यारा मानकर न्योता नहीं दिया अथवा जुझारसिह ने किसी कारणवश लेने से इनकार कर दिया, दोनो प्रकार के विवरण मिलते है । लेकिन यह सभी मानते है कि कुंजा हरदौल को उसी जगह पर न्यौता रख आई, जहाँ उनकी दाह-क्रिया की गई थी । समय पर मोहरो, सोने-चांदी के आभूषणो और अन्य कीमती सामग्री से लदे घोडों या गाडियो के साथ हरदौल की सवारी दतिया पहुँची । हरदौल की अवाई पर सलामी मे तोपे दागी गई, मार्ग में मगल कलश लिये खडी नारियो के अचल अपने-आप मोहरों से भर गए और कुंजा का घर चौकट से जगमगा गया । बहिन और भाई की प्रेमभरी भेट और वर के आग्रह से हरदौल का दर्शना देना, दोनों प्रसंग चमत्कारपूर्ण है। इन्हीका प्रभाव जन जन पर छाया हुआ है । इनके अलावा हरदौल की विदाई के समय कुंजा का सभी के विवाहों मे इसी प्रकार की सहायता का वचन लेना, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है । इस दृष्टि से हरदौल सामाजिक हित से बँध जाते है और उनके देवत्व का प्रमुख आधार यही लोकमंगल की भावना है ।''

- बुन्देलखण्ड की लोक सस्कृति का इतिहास, नर्मदाप्रसाद गुप्त, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - २. प्रथम सस्करण १९९५ ई पृ ३१८-३१९

नर्मदाप्रसाद गुप्त ने बतलाया है कि हरदौल का प्रेत, हरदौल से अधिक प्रभावशाली रहा है । उस प्रेत ने मुगलो को परेशान कर दिया था । कहते है कि मुगलो के प्रतिनिधि हिदायत खॉ, ओरछे में इतने भयभीत हो गए कि वो ओरछा छोडकर बादशाह के पास पहुँच गये । यह भी कहा जाता है, उक्त प्रेत ने बादशाह को भी प्रभावित किया । जुझारसिह को गद्दी से हटाने के लिए विवश किया । यह सब कुछ कल्पित होने पर भी इनमे लोकविश्वास है । हरदौल लोक के आदर्श के प्रतीक हो गए थे । जनता की भावना उनके साथ जुड गई थी। हरदौल की उपेक्षा मुगल बादशाह नही कर सके ।

हरदौल का चबूतरा दिखलाने डा भालचन्द्र तेलग मेरे साथ आए थे । उन्होने बतलाया कि चबूतरे पर नागरी लिपि तथा फारसी लिपि (उर्दू) मे — 'हरदौल' नाम चबूतरे पर लिखा हुआ है । चबूतरा ठीक से खडा नही था । कुछ लुढक गया था । आसपास की झाडी में छिप गया था । झाड़ी पार कर निकट पहुँचो तो साफ-साफ देखा जा सकता है । चबूतरे के पास मे बावली (कुँए के) अवशेष है । कुछ दूरी पर बडा पेड रहा है । एक छोटे मदिर के अवशेष भी वहॉ पर है । स्वर्ण-महल के ठीक सामने वह चबूतरा है ! Zoology विभाग के छात्र प्रशासकीय भवन जाते आते समय इस चबूतरे के पास से गुजरते रहते है ।

स्वर्ण-महल के प्रवेशद्वार से बाहर निकलो तो मुख्य सडक की दाहिनी ओर का विभाग झूलोजी Zoology विभाग की ओर जाता है । इसी मार्ग पर दूसरी ओर मन्दिर बना हुआ है । मन्दिर के पीछे कुछ दूरी पर हरदौल का चबूतरा है। इस सडक से सीधे ही सीधे प्रशासकीय भवन की ओर जाने के लिए पगडण्डी है । आस पास बहुत झाडी है । इस झाडी मे ही दाहिनी ओर चबूतरा है । झाडी के बीच से गुजरते हुए एक नाला आता है । नाला पार करने पर विश्वविद्यालय की मुख्य सडक पर पहुँचा जा सकता है । सामने प्रशासकीय भवन है और उक्त सडक वही पर बस अड्डे से मिल जाती है । प्रशासकीय भवन की कम्पाउण्ड की फेसिग से लगकर पुराने खण्डहर है । लगता है, वहॉ पर बडी बावली रही है। बडे-बडे पेड भी रहे है । उन पेड़ो के अवशेष है । बावली के अवशेष है । पानी की नहरो के अवशेष है । सभवत यहॉ से पानी स्वर्ण-महल में नहरो से पहुँचता हो । स्वर्ण-महल के चबूतरे पर पानी का हौज है । उस हौज़ मे पानी पहले पहुँचता हो । उस चबूतरे से नीचे उतरने के लिए सीढियॉ है । उसकी दोनो ओर पानी के नीचे बहने की व्यवस्था है । नीचे बहुत बडा प्रागण है । प्रांगण के चारो ओर ऊची ऊंची दीवारे हैं । एकदम सामने प्रवेशद्वार है, जिसमे तीन द्वार

है । ये द्वार पत्थरो से बने है । किले के द्वार की तरह है और विशाल है। स्वर्ण-महल पूरी तरह सुरक्षित है । इसीलिए उसे बाधा नही पहुँचाई जा सकी। किन्तु प्रशासकीय भवन के चारो ओर भी कुछ होगा । क्योकि उक्त भवन के सामने के भाग मे तो अवशेष दिखलाई देते है । भवन की नई इमारत बनते समय सब कुछ नष्ट हो गया है । ग्रथालय के पीछे नाला है । नाले तक ही विश्वविद्यालय की सीमाएँ हैं । नाला पार कर ऊपर पहुँचो तो हम निपटनिरजन के आश्रम मे (अब वह मन्दिर है) पहुँच जाते है । मै स्वय कई बार ग्रथालय के पीछे की तार की फेसिग के छोटे द्वार से निकल कर नाला पार कर निपट बाबा के आश्रम मे गया हूँ । उक्त आश्रम से सीधे ही सीधे पूर्व की ओर चले तो विश्वविद्यालय की मुख्य सडक के समानान्तर से बनी हुई दूसरी मुख्य सडक पर पहुँच जाते है। नाला वहाँ से आगे बढ जाता है । दूसरी मुख्य सडक पर पहुँचने के लिए नाले पर बने हुए पुल से गुजरना पडता है । मुख्य सडक पर सामने जनार्दनस्वामी का आश्रम दिखलाई देता है । सडक से दक्षिण की ओर सीधे चले तो गुरु गणेश नगर का प्रवेश द्वार मिलेगा । गुरु गणेश नगर के सामने नई कालोनी बन गई है। सडक सीधी ही सीधी आगे बढती है । उसकी बाई ओर बीबी का मकबरा है और दाहिनी ओर बेगमपुरा है ।

निपट बाबा मूल रूप मे बुन्देलखण्ड के निवासी हैं। औरगजेब के समकालीन है । उनको आवास के लिए स्थान ओरछे की गद्दी की ओर से मिला है । पहाडसिहपुरा मे वे बस गये । औरगजेब के समय मे बाबा सिद्ध हो गए थे । उनकी ख्याति हो गई थी । निपट के ज्ञान को जानने के बाद औरंगजेब को कहना पडा — 'ऐसा जलाली फकीर मैने नही देखा ।' निपट बाबा के शिष्य का नाम निरजन था । निरजन ने निपट बाबा की बहुत सेवा की । इससे निपट के साथ निरजन नाम जुडा हुआ है । निपट बाबा मौलवियों की बानी मे बोलते थे । उनकी फकीरी पर औरगजेब मुग्ध था । निपट बाबा सूफियो की सगत में वैसे ही रहे, जैसे वे नाथ सम्प्रदाय से जुडे रहे । इसी तरह वे दत्त सम्प्रदाय के जनार्दन स्वामी से भी जुडे रहे । जनार्दन स्वामी का आश्रम निपट बाबा के आश्रम के सामने ही है ।

यों हम अनुभव करते हैं कि बुन्देलखण्ड की सस्कृति के अवशेष पहाडसिहपुरा मे बिखरे हुए है । उनमे स्वर्ण-महल और निपट बाबा की समाधि आज भी नगर मे ख्यात है । निपट बाबा की भूमि पहाडसिह के समय मे ही आश्रम के लिए दे दी गई थी । औरगजेब के समय में ही नही, अपितु निजाम के शासनकाल

तक ओरछा की ओर से इस आश्रम को सुविधाएं मिलती रही है। निपट निरंजन के आश्रम में रहनेवाले लछमनगीर के पास में ओरछा नरेश का आज्ञा-पत्र १९३४ ई का है। निजाम के शासनकाल का है। 'निपट-निरंजन की बानी' पुस्तक की प्रस्तावना में मैंने इस सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है।

स्वर्ण-महल पर आज शासन का अधिकार है। पुरातत्त्व विभाग का कार्यालय वहाँ रहा है और आज तो वहाँ प्रदर्शनी भी (म्युजियम) है। भवन को ठीक किया गया है। किन्तु हरदौल का चबूतरा आज भी बहुतों को मालूम नहीं है। पुरातत्त्व विभाग इस ओर ध्यान दें तो झाडी हटाकर चबूतरे को ठीक किया जा सकता है। हमें आशा करनी चाहिए कि ओरछा के नरेश का ध्यान इस चबूतरे की ओर जाएगा और अवशेष को नया जीवन स्मृति-चिह्न के रूप में मिलेगा।

□ □

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में जाइन हुआ

४ दिसम्बर १९६८ ई. को सबेरे सबेरे यूनिवर्सिटी पहुँचा। जाइन हो गया। व्यंकट अम्बेकर से साइकिल ले ली थी। उस समय एम ए. की कक्षाएँ यूनिवर्सिटी में चल रही थीं। डॉ. भालचन्द्र तेलंग भाषा विज्ञान पढ़ा रहे थे। विभाग में राजूरकर साहब और मैं दोनों ही थे। अष्टेकर साहब मिले किन्तु विभाग में जाइन नहीं हुए थे। उन्हें अम्बेडकर कामर्स कालेज से छुटकारा नहीं मिल रहा था। वहाँ पर तीन महीने की नोटीस देनी आवश्यक थी। इसलिए तीन महीने बाद वे जाइन हुए। छात्रों की सुविधाओं को देखते हुए कक्षाएँ सबेरे होती थीं। उस समय एम ए. फाइनल के छात्रों में छगनलाल गौड, मनोरमा शर्मा आदि थे। एम ए. प्रथम वर्ष में नंदकिशोर शागा और उनके साथी थे। फाइनल की बैच को मैंने चिन्तामणि, भाग-१, पुस्तक पढाई। एम.ए. प्रीवियस को पढाने के लिए उपन्यास और आधुनिक कविता विषय मिले। जैनेन्द्रकुमार का मुक्तिबोध उपन्यास पाठ्यक्रम में था। इसी तरह हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' भी पाठ्यक्रम में था। दोनों ही उपन्यास मैंने पढ़ाए है। आधुनिक कविता में कामायनी पढ़ाई। यों कार्य आरम्भ हो गया था।

सबेरे-सबेरे जब व्यंकट के घर से निकलता तो ठिठुर जाता था। साइकिल को स्पर्श करने की इच्छा नहीं होती। दस्तों से हाथ ढककर वैसे ही साइकिल चलाते हुए यूनिवर्सिटी पहुँच जाता था। भवन के बाहर के प्रांगण में धूप में मैंने कक्षाएँ ली हैं। बाहर बैठने में छात्र भी प्रसन्न थे। जो पढाने के लिए पढता,

उन पर लिखना भी आरंभ किया । चिन्तामणि भाग - १, पढाते समय मैंने विशेष अभिरुचि ली और धीरे धीरे टिप्पणियाँ तैयार की । पुस्तक बाद मे लिखी । इसी तरह उपन्यासो पर भी टिप्पणियाँ तैयार की और पुस्तक बाद मे लिखीं । पहले लेख लिखे और वे लेख छपे भी है ।

औरंगाबाद शहर उस समय छोटा था । यूनिवर्सिटी की स्थापना हुए दस वर्ष ही हुए थे । १९५८ ई. मे यूनिवर्सिटी की स्थापना हुई थी । दिसम्बर १९६८ ई. मे ही यूनिवर्सिटी का दशाब्दी समारोह हुआ । हमारे हिन्दी विभाग के साथ-साथ कामर्स विभाग और समाजशास्त्र विभाग की भी स्थापना हुई । कामर्स विभाग मे बापट साहब तथा उनके दो सहयोगी गोगटे और चिश्ती साहब की नियुक्तियाँ हुई। इसी तरह समाजशास्त्र-विभाग मे कुलकर्णी साहब और उनके दो सहयोगी सुधा कालदाते और बिलावर की नियुक्तियाँ हुई । यो तीनों विभाग उस समय नये-नये थे ।

□ □

सुस्कर भवन, मिल कार्नर, कोतवालपुरा

व्यंकट अम्बेकर के घर पर अधिक दिन रहना सभव नही था । घर की खोज शुरू हो गई । एक सप्ताह के भीतर मैंने घर खोज लिया । मिल कार्नर के समीप कोतवालपुरा मे सुस्कर साहब का नया बगला बना था । उसमें तीन कमरे मिल गए । उसमे और भी दो पड़ोसी थे । एक पड़ोसी का नाम स्मरण नही है । दूसरे पडोसी पुराणिक थे । मैने व्यंकट का घर छोड दिया और दिसम्बर के दूसरे सप्ताह मे मिल कार्नरवाले मकान में आ गया । एक दिन सुस्कर साहब ने पूछा — 'मकान का क्या नाम रखूं ?' मैंने कहा 'साकेत' रखो ।' सुस्कर साहब ने मकान का नाम 'साकेत' रखा ।

पत्नी और बच्चे अभी आए नही थे । जनवरी में वे आए । फरवरी-मार्च वर्ष के अन्तिम महीने थे । परीक्षाएँ सिर पर सवार थी । बच्चो को स्कूल मे भेजना था । तिरुपति मे अनिल प्रथम कक्षा मे तथा सुनिल तीसरी कक्षा मे पढ रहे थे। वहाँ की प्रोग्रेस रिपोर्ट मेरे पास थी । स्कूल छोडने के प्रमाण-पत्र भी थे । उनके साथ बच्चों को लेकर होली क्रास स्कूल पहुँचा । सिस्टर यूजिन मुख्य अध्यापिका थीं । उसने बच्चों को देखा । प्रमाण-पत्र देखे । प्रोग्रेस रिपोर्ट देखी । प्रवेश हो गया । अनिल को प्रथम कक्षा मे और सुनिल को तीसरी कक्षा में प्रवेश मिल गया । नियमानुसार दोनो स्कूल जाने लगे । मिल कार्नर से छावनी तक बस जाती

थी बस म बठा दत बच्च स्कूल पहुँच जाते थे। अनिल उस समय पाँच वर्ष का था। छठे का आरम्भ हुआ था। सुनिल को आठवाँ वर्ष चल रहा था। अनिल बीमार हो गया। फरवरी मे स्कूल नही जा सका। स्कूल की टीचर घर के समीप रहती थी। उसके घर पढने के लिए भेजा। जैसे तैसे बदले हुए पाठ्यक्रम के अनुसार परीक्षाओ की तैयारी दोनो ने की और दोनों ही यथासमय उत्तीर्ण हुए और अगली कक्षाओ मे नियमित हो गए।

□ □

डा. भालचन्द्र तेलंग

डॉ तेलग साहब से १९६६ ई मे, उनके निवास स्थान पर पहली बार मिला था। बाद मे हैदराबाद अधिवेशन मे १९६७ ई मे मिले थे। अब तो वे आरम्भ मे ही नियमित मिलने लगे थे। उस समय उनके पास पुराने माडल की कार थी। उनके ड्राइवर का नाम उस्मान था। बेगमपुरा मे विश्वविद्यालय के खेल के मैदान के सामने उनका बगला था। कार मे आते और जाते थे। गवर्नमेंट कालेज से सेवानिवृत्त हो गए थे। हिन्दी विभाग के अध्यापको में वे वयोवृद्ध थे। मै जब पहली बार, जाइन होने के बाद, विभाग के सदस्यो साथ उनके बंगले पर गया तो बोले — 'मैं अब साठ वर्ष का हो गया हूँ।' सेवानिवृत्त होकर उन्हे दो वर्ष हो गए थे। १९६६ ई मे ५८ वर्ष की आयु मे ही सेवानिवृत्त हो गए थे। विभाग की स्थापना से पहले ही विभाग चल रहा था और वे **भाषा विज्ञान तथा काव्यशास्त्र** पढाते थे। पद्माकर कवि के वशज थे। बुन्देलखण्ड के निवासी थे। रीतिकाल के प्रेमी थे। पद्माकर कवि पाठ्यक्रम मे था।

यूनिवर्सिटी मे हिन्दी विभाग के निकट ही उन्हे अलग कक्ष मिला था। वे हिन्दी विभाग में नही थे। उन्हे इम्प्लायमेंट एक्सचेंज ब्यूरो का विभाग सौपा गया था। उसी के वे अधिकारी थे। इस नाते उन्हे स्वतंत्र कक्ष मिला था। फिर भी वे हिन्दी की कक्षाएँ कुछ समय तक लेते रहे। १९६८-१९६९ ई. में यही स्थिति थी।

तेलग साहब वाराणसी मे आचार्य रामचद्र शुक्ल को जानते थे। वे लिखते है — "मै सन १९२५ ई से १९२९ ई तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का छात्र रहा हूँ। उन दिनो में मेरे सहपाठी श्री कृष्णानदजी थे। हम दोनों हिन्दी विभाग की ऊपरी छत पर आचार्य शुक्लजी के जायसी, सूर तथा तुलसी के समीक्षात्मक लेखो की भावुकता पर चर्चा किया करते थे।"

मेरी पुस्तक 'भाव, उद्वेग और संवेदना' के दो शब्द से —

तेलंग साहब की बातचीत में 'आचार्य शुक्ल' का नाम रहता। गवर्नमेंट कालेज में रहने के कारण अपनी पुस्तकों का प्रकाशन नहीं कर सके। सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने 'पद्माकर अनुसंधान शाला' — नामकरण से अपने ही आवास पर नई संस्था का आरंभ किया और उसी दृष्टिकोण से काम भी करने लगे।

विभाग में उस समय तीन सदस्य थे। डॉ. भ. ह. राजूरकर, मैं और डॉ. गणेश अष्टेकर। हम तीनों से ही हिन्दी विभाग उस समय नया-नया बना था।

□ □

डॉ. भ. ह. राजूरकर

पूरा नाम भगतसिंह राजूरकर है। उस्मानिया विश्वविद्यालय में वे इसी नाम से जाने जाते थे। हाजिर जवाब, बोलने में चतुर और साहसी। मैं एम.ए. फाइनल में था और भगतसिंह उस समय प्रीवियस में थे। हमारी कक्षा में वसंत चक्रवर्ती था और प्रीवियस की कक्षा में भगतसिंह थे। दोनों ही पण्डित वंशीधर विद्यालंकार के साथ साहस से बात करते। चक्रवर्ती को महाप्राण कहा जाता था। और चक्रवर्ती ने भगतसिंह को लघुप्राण कहना शुरू कर दिया। भगतसिंह चक्रवर्ती से नाटे थे, इसीलिए। प्रीवियस में उस समय भूदेव पाटील, राजेन्द्र भारती, भारत भूषण आदि छात्र थे। भगतसिंह दिल्ली से संस्कृत में एम.ए. करके आए थे। गुरुकुल के छात्र थे। गुरुकुल में रहने के कारण और फिर दिल्ली में रहने के कारण, उनकी हिन्दी का उच्चारण साफ था। वे मराठी से अच्छी हिन्दी जानते हैं। एम.ए. होने के साथ वे औरंगाबाद आ गए और देवगिरि कालेज में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हो गए।

तिरुपति में डॉक्टर साहब ट्यूटर के रूप में किसी को नियुक्त करना चाहते थे। उस समय मैंने भगतसिंह राजूरकर का नाम लिया था। उनसे सम्पर्क संभव नहीं हुआ। बाद में उन्हींके सहपाठी भारत भूषण से सम्पर्क हुआ। वह तिरुपति आ गया।

भगतसिंह राजूरकर से पुन: भेंट औरंगाबाद में १९६८ ई. में हुई। उस समय उनकी नियुक्ति रीडर एवं अध्यक्ष के रूप में हुई। देवगिरि कालेज से सीधे वे यूनिवर्सिटी में चले आए। उन्हें यहाँ पर सब लोग 'दादा' कहते रहे हैं और आज भी कहते हैं। केवल विभाग में ही नहीं, अपितु विश्वविद्यालय के अन्य विभागों

के लोग भी, उन्हे दादा के नाम से ही सम्बोधित करते थे । यो वे आरम्भ से लोकप्रिय रहे हैं ।

हमारा हिन्दी विभाग, दादा के विभाग के रूप में भी पहचाना जाता था। दादा का कक्ष कभी खाली नही रहता । महफिल लगी रहती थी । और दादा स्वय किसी भी विभाग मे सहज रूप में चले जाते । उनके जाने से महफिल जहाँ, वे जाते, वहाँ जमती । यूनिवर्सिटी के किसी भी अधिकारी के पास चले जाते या फोन कर के बुलवा लेते । जो काम, जिससे चाहते, उससे वह काम करवा लेते। टेबल पर बैठे-बैठे सारा काम हो जाता था ।

राजूरकर साहब प्राय प्रथम पुरुष मे बात करते । छात्रों के साथ में बात करते समय सम्बोधन मे 'तू', 'तेरा' का प्रयोग करते । बोलने मे निश्चयात्मक स्वर अधिक रहता । वाणी में दृढता और निश्चयात्मकता का गुण रहता । इससे उन्हें नेतृत्व मिल जाता । औरो से काम लेने की क्षमता उनमें है । उसे प्रशासकीय गुण कहना चाहिए । विश्वविद्यालय के अधिकारियो से सीधा सम्पर्क बनाए रखने के कारण उनका काम जल्दी हो जाता था । दूसरों का काम भी कर देते थे । इसलिए दूसरे विभागों के सदस्य उनसे सहयोग प्राप्त करने के लिए आते रहते थे। यो राजूरकर साहब सामान्य छात्र से लेकर कुलपति तक सम्पर्क बनाए रखते थे।

पुष्प नगरी मे आठ नम्बरवाला बगला, उन्होंने विश्वविद्यालय में जाइन होने से पहले बना लिया था । मै १९६६ ई. मे पहली बार औरंगाबाद आया था। उस समय उनका बंगला बना हुआ था । संभवत उसी वर्ष उनका विवाह हुआ हो । आरम्भ मे स्कूटर चलाते थे । गाडियाँ बदलते रहे । बाद में प्रोफेसर हो जाने के बाद उन्होंने कार खरीद ली । कुछ दिन पुरानी गाडी रखी । बाद में नई फीएट गाडी ले ली । स्वयं ड्राइव करते ।

पुणे में माध्यमिक बोर्ड में वे हिन्दी पाठ्यक्रम समिति के अध्यक्ष हो गए। इस नाते बोर्ड की बैठकों मे उन्हे नियमित जाना पडता था । कार मे जाते और उसीसे लौटते । १९७८ ई में मै ग्यारहवी कक्षा की पाठ्य-पुस्तक का, सम्पादक मण्डल का सदस्य था । पुणे बोर्ड में मुख्य काम करनेवाला, जिनसे हमारा सम्पर्क रहता, वह दाभोलकर था । उसीसे सारी सामग्री मिलती और उसीको सामग्री सौंपनी पडती थी । मेरे साथ काम करनेवालो मे रमेश मेहरा थे । उस समय उन बैठकों मे राजूरकर साहब के साथ कार मे बहुत बार गया हूँ । कार्यवश वहाँ ठहरना

पडता और उनसे काम करना आवश्यक था। हमारे साथ काम करनेवालों मे हनुमंत नायडू भी थे। बहुत बोलनेवाले और बहस करनेवाले। उन्हे चुप करना कठिन रहता। मुझे याद है, उस वर्ष अनन्त चतुर्दशी से कुछ दिन पूर्व मै बोर्ड के कार्य से पुणे मे था। दिनभर काम करने के बाद शाम मे गणपति देखने लक्ष्मी रोड गए। उस रात को जगह-जगह गणपति देखते रहे। हनुमंत नायडू साथ मे थे। पूरी लक्ष्मी रोड घूम गए। लक्ष्मी रोड पर लक्ष्मी चमक रही थी। रात्रि मे ऐसी चहल-पहल अन्यत्र नही देखी। सब पैदल घूम रहे थे। पुणे तो पुणे है। और किसी नगर को पैदल घूम कर देखना ही अच्छा रहता है। बहुत जगह हम गणपति के दर्शन के लिए पंक्ति मे खड़ा रहना पड़ा है। दगडू हलवाई के गणपति से लेकर लक्ष्मी रोड के दूसरे सिरे तक (नाम भूल रहा हूँ) प्राय रुक रुक कर आना पड़ा है। यह सब बोर्ड के कार्य के कारण देखना हुआ है।

राजूरकर साहब कभी अकेले नही जाते। किसी-न-किसी को अपने साथ में रखते। पहले से बतला देते और समय पर पहुँचते थे। विभाग मे भी वे सबके आने से पहले पहुँचते। विभाग में बैठकर भगवद्गीता पढ़ते। गीता उनकी प्रिय पुस्तक है। जब भी बहस होती, राजूरकर साहब गीता का उल्लेख करते। जैसे सबेरे वे समय से कुछ पहले उपस्थित रहते, ठीक वैसे ही सायंकाल में पाँच बजे से पहले आ जाते और फिर दिन भर का रहा-सहा काम देखते। अपना टेबल साफ रखते। जो कागज जिसको सौंपना होता, उसे वे सौंप देते।

विभाग का अकादमिक काम मै आरम्भ से ही करता रहा हूँ। अकादमिक पत्रव्यवहार का काम भी करता रहता हूँ। मै जो भी नाम देता, वे नाम प्राय स्वीकृत हो जाते। विभाग में सेमिनार होते। गोष्ठियो मे बाहर से विद्वान् आते। उनके कार्यक्रम होते। इन आयोजनों में सम्मिलित होना पडता। विभाग मे आनेवालों मे कुछ नाम — डॉ प्रभात (मुबई) / डॉ. आनदप्रकाश दीक्षित (पुणे) / डॉ नगेन्द्र (दिल्ली) / डॉ इन्द्रनाथ चौधुरी (दिल्ली) / डॉ विजयपालसिंह (वाराणसी) / डॉ हरबशलाल शर्मा (अलीगढ) / डॉ. नरसिंहाचारी (तिरुपति) / डॉ जगदीश गुप्त (इलाहाबाद) / डॉ. नामवरसिंह (दिल्ली) / प्रो कल्याणमलजी लोढा (कलकत्ता) / आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री (कलकत्ता) / डॉ श्रीधरसिंह (गुवाहाटी) / डॉ. चन्द्रभान रावत (हैदराबाद) / डॉ. चन्दूलाल दुबे (धारवाड) / नागार्जुन (दिल्ली से आए थे) / राजेन्द्र यादव (दिल्ली) / नरेन्द्र मोहन (दिल्ली) / बलदेव वशी (दिल्ली) / डॉ महीपसिंह

(दिल्ली) / श्री रघुवीर सहाय (दिल्ली) / धर्मवीर भारती (मुबई) / मन्नू भण्डारी (दिल्ली) और अनेक है। विभाग मे कोई-न-कोई किसी कारण से विद्वान् और कवि आते ही रहे है। जो भी आते, उनका स्वागत करना, समारोहो का आयोजन करना। उनके आवास तथा उनकी यात्रा के कार्य मे सहयोग देना — यह सारा काम डॉ राजूरकर साहब स्वय देखते। विभाग के सदस्यो से काम लेते और सारे आयोजन सफल होते।

□ □

मराठवाडा साहित्य परिषद

भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद सदृश, मराठवाडा क्षेत्र मे भी परिषद होनी चाहिए। इस दृष्टि से डॉ राजूरकर साहब ने 'मराठवाडा साहित्य परिषद' की स्थापना की। उसका प्रथम वार्षिक सम्मेलन औरगाबाद मे १४ तथा १५ सितम्बर १९७४ को हुआ। इसके अध्यक्ष कमलेश्वर थे। उसका उद्घाटन भाषण उस समय के कुलपति रे प नाथ साहब ने दिया था। उस समय तक राजूरकर साहब प्रोफेसर हो गए थे। दूसरा अधिवेशन सितम्बर १९७५ ई मे लातूर मे हुआ। इसी क्रम मे तृतीय अधिवेशन नान्देड मे २५ तथा २६ सितम्बर १९७६ ई को हुआ। चतुर्थ अधिवेशन बीड में नवम्बर १९७७ ई मे हुआ। पचम अधिवेशन परभणी में १९७९ ई मे और षष्ठ अधिवेशन उदगीर मे १९८६ ई मे हुआ। यो १९७४ ई मे १९८६ ई के बीच बारह वर्षो के अन्तराल मे ६ अधिवेशन हुए। इन अधिवेशनो मे आनेवाले साहित्यकारो मे डॉ धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, चन्द्रकान्त देवताले, डॉ. महीपसिह, बलदेव वशी आदि है। यहॉ, यह स्पष्ट लिख दूॅ कि इस क्षेत्र मे रीतिकाल तक के साहित्य मे अभिरुचि नगण्य रही है। विशेष रूप से आधुनिक कविता (उसमे भी छायावादोत्तर कविता), नई कहानी, नयी कविता आदि से सम्बन्धित साहित्य को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। पहले, निबन्ध का स्वतत्र प्रश्न-पत्र था। डॉ. राजूरकर साहब भी उक्त प्रश्न-पत्र को पाठ्यक्रम मे रखना उचित मानते थे। किन्तु अन्य सदस्यो के आग्रह के कारण उन्होने स्वीकृति दे दी। यो वे सब सदस्यो के विचारों का ध्यान रखते थे। आधुनिक साहित्य और उसमे भी कथा-साहित्य को पाठ्यक्रम मे अपेक्षाकृत अधिक स्थान मिला है। मुक्तिबोध, धूमिल आदि कवियो को पाठ्यक्रम मे अधिक स्थान दिया जाता रहा है।

राजूरकर साहब ठीक अर्थो मे प वशीधर विद्यालकार के उत्तराधिकारी रहे है। इसे यो भी कह सकते है कि पडितजी हैदराबाद नगर मे ख्यात थे। वही

ख्याति औरंगाबाद में राजूरकर साहब को प्राप्त हो गई । उन्हें बोलने के लिए सदैव मंच मिलता रहा है । पंडितजी हैदराबाद के नवाब थे । हाजिर जवाब थे । कवि थे । महफिल में बैठते थे । हँसते-हँसाते थे । पहनावे में शौकीन तबियत के थे। अच्छे से अच्छा फाउंटन-पेन रखते थे । उनकी बैग भी वैसी ही रहती थी । बंगला तबियत से बनवाया — गगन महल कालोनी में और कम्पाउण्ड में फूलों का बगीचा लगवाया । चाय पीने के शौकीन । स्वयं पीते और औरों को पिलाते । फ्रीज का पानी पीते थे । खाने-पीने में शौकीन । उनकी आवभगत करना कठिन काम रहा है । मेरा अनुभव बतला रहा हूँ । १९६१ ई. में पंडितजी तिरुपति आए । गर्मी बहुत थी और फिर वह तिरुपति की गर्मी । घर पर दोनों पति-पत्नी आए। बोले — 'ठण्डा पानी पीएंगे । फ्रीज का पानी लाओ ।' उस समय मेरे पास फ्रीज नहीं थी । दौड़ा-दौड़ा गया और होटल से फ्रीज का पानी ले आया । इतना होने पर भी पंडितजी गुरुकुल के व्यक्ति थे। प्राचीन वाङ्मय के ज्ञाता, अजंता के सम्पादक सब कुछ । हैदराबाद में हिन्दी की शोभा बढ़ानेवाले थे । पंडितजी के कुछ गुण तो राजूरकर साहब में मिल ही जाते हैं । राजूरकर साहब भी शौकीन तबियत के हैं। महफिल की शोभा बढ़ाते हैं । अपनी अभिरुचि के वस्त्र पहनते हैं । फाउंटन पेन बदलते रहते हैं । अच्छी ब्रिफ केस रखते हैं । सफारी पहनते हैं । तबियत से कार ड्राइव करते हैं । गीत गाते हैं । फिल्मी संगीत में अभिरुचि रखते हैं । यों जिन्दादिल हैं । हँसते-हँसाते हैं । इस तरह मैं यों कह सकता हूँ कि वे औरंगाबाद के पंडित वंशीधर विद्यालंकार हैं । पंडितजी वाइस चांसलर नहीं हो सके किन्तु राजूरकर साहब वाइस चांसलर हो गए । उन्हें यूनिवर्सिटी में आज भी सब 'दादा' कहते हैं । दादा — मराठी में बड़े भाईसाहब को कहते हैं । मैं राजूरकर साहब को भाईसाहब कहता रहा हूँ । वही अर्थ है ।

□ □

कोतवालपुरा

३ दिसम्बर १९६८ ई. को रात्रि में बारह बजे के आसपास औरंगाबाद पहुँचा। उस समय से अब तक औरंगाबाद में रहता हूँ । इस समय ३६ वर्ष यहाँ रहते हुए हो गए हैं । आरम्भ के ३६ वर्ष अम्बाजोगाई, सिकंदराबाद और तिरुपति में गुजरे हैं । मैं यहाँ आया तब ३६ वर्ष का हो गया था और ३७ वाँ वर्ष चल रहा था । आज मैं ७२ वें वर्ष में हूँ । औरंगाबाद का स्थायी निवासी हो गया हूँ । यह नगर, अब मेरा नगर हो गया है । इस नगर के साहचर्य में मैंने जो अनुभव किया है, उसकी झलक प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

औरंगाबाद देखने की जिज्ञासा मे १९६६ ई. के ग्रीष्मावकाश मै पहली बार औरंगाबाद आया था। उस समय तीन चार दिन ठहर कर, यहाँ का विश्वविद्यालय देखकर चला गया था। उसके बाद १९६८ ई मे जब आया उस समय नगर लगभग वैसा ही था। उस समय के औरंगाबाद मे और आज के औरंगाबाद मे लगभग ४ दशको का अन्तर है। बहुत परिवर्तन हो गया है। मै जब यहाँ आया था तो औरंगाबाद परकोटे की सीमाओ से घिरा हुआ था। रेलवे स्टेशन से मिल तक का भाग सूना था। स्टेशन पर टागे मिलते थे। ऑटो इक्का दुक्का होगा। सिटी बस चलने लगी थी। मिल के पास कोतवाली थी। उसे कोतवालपुरा कहा जाता है। मै पहले कोतवालपुरा, मिल कार्नर पर रहता था। १९६९ ई का वर्ष कोतवालपुरा मे गुजरा है। सुस्कर के बगले मे तीन कमरे मिल गए थे। मिल कार्नर यों पहले औरंगाबाद का प्रवेश स्थान था। आज जहाँ, मिल के पास बडा बस स्टैण्ड बना हुआ है, वह उस समय नही था। बस स्टैण्ड — शाहगज मे था। बाहर से आनेवाली सभी बसे शाहगज तक जाती थी।

□ □

गणेश अष्टेकर

उस समय सरस्वती कालोनी, औरंगाबाद की नई कालोनी मानी जाती थी। सरस्वती भुवन कालेज के निकट की कालोनी थी। उस कालोनी मे ग. तु अष्टेकर साहब रहते थे। उनके पडोस मे उन्हींकी बगल मे द मा. मिरासदार (मराठी के प्रसिद्ध कहानी लेखक) रहते थे। ग. तु अष्टेकर साहब की नियुक्ति भी हमारे साथ हिन्दी विभाग मे हुई थी। किन्तु वे उस समय जाइन नही हुए थे। अम्बेडकर कामर्स कालेज में प्राध्यापक थे। द. मा मिरासदार देवगिरि कालेज मे मराठी के प्राध्यापक थे। अष्टेकर साहब विभाग में आते रहते थे। बाद मे वे भी विभाग के सदस्य हो गए। उनके साथ स्कूटर पर बैठकर उनके घर उन्हीं दिनो जाता रहता था। स्कूटर चलाने मे वे निपुण थे। बहुत बार उन्होंने मुझे घर पर छोडा था। मिल कार्नर, औरंगपुरा के रास्ते पर है। औरंगपुरा जाने के लिए उन दिनो मिल कार्नर से पॉच पैसे देना पड़ता था। बस का यही टिकट था। विभाग मे उन दिनो में रत्नाकर गोगटे जाइन हो गए थे। हम तीनो मिलकर कैम्पस मे घूमते रहते थे। विश्वविद्यालय नगर से बाहर था।

औरंगाबाद के परकोटे से बाहर बेगमपुरा है और बेगमपुरा से बाद मे जयसिहपुरा है। जयसिहपुरा से आगे जाने पर युनिवर्सिटी का मुख्य प्रवेश द्वार है। यह द्वार

नाथ साहब (पढगीनाथ) जब कुलपति बने थे उस समय बना है। प्रवेश द्वार से केम्पस शुरू होता है। मुख्य सडक यूनिवर्सिटी के क्वार्टर्स को पार करते हुए प्रशासकीय भवन तक जाती है। उसी के सामने बस अड्डा है। आर्टस् बिल्डिंग अलग है और विज्ञान के भवन भी अलग अलग है। प्रशासकीय भवन के ठीक सामने स्वर्ण-महल (मराठी म उसे सोनेरी महल कहते है) है। यह भवन बुन्देला शासको का रहा है। शाहजहाँ के समय मे पहाडसिंह यहाँ आया था। उसीका वह भवन रहा है। इस पूरे क्षेत्र को पहाडसिहपुरा कहा जाता था। विश्वविद्यालय का पूरा कैम्पस पहाडसिहपुरा का भाग है।

सोनेरी महल या सुनहरा महल कहने का एक कारण यह है कि महल के भीतर की छत और आसपास की दीवारो का वह भाग जो छत से सटा हुआ है, उन सब जगहो पर रंगीन डिझाईन नक्काशी है और उन रंगो पर सुनहरी आभा है। इससे उसे सुनहरा महल कहते है। महल से बाहर का खुला भाग बहुत ऊचाई पर है और उसमे पानी का हौज है। हौज के दोनो ओर नीचे उतरने के लिए सीढियाँ है। नीचे का प्रागण विशाल है और प्रागण के चारो ओर परकोटा है। अब वह महल पुरातत्त्व विभाग मे है। उसका कार्यालय वहाँ पर है। कार्यालय ऊपर की मजिल पर है और नीचे प्रदर्शनी की व्यवस्था है। उस महल के ठीक पीछे सह्याद्रि की पर्वतमाला है। इस पर्वत श्रृखला के एक सिरे पर जो सुनहरे महल के ठीक पीछे है, ऊची चोटी है। इस चोटी पर गोगा पीर विराजमान है। राजस्थान में इस गोगा पीर की बडी मान्यता है। किसी ने इस पीर की सफेदी की है और यह चोटी गोगापीर सहित दूर-दूर तक दिखलाई देती है। अष्टेकर साहब और मैं आते-जाते इस गोगा पीर को देखते रहते थे। हम दोनो ने चोटी तक पहुँचकर गोगा-पीर के दर्शन करने की ठानी। हमारे साथ रत्नाकर गोगटे भी हो गए। रविवार की छुट्टी के दिन हमने कुछ नाश्ते की सामग्री ले ली और पीने के लिए पानी रख लिया। पहाड पर चढने लगे। हमारे लिए वही एवरेस्ट था। मार्ग बना हुआ नही था। रास्ते की खोज हमे ही करनी थी। यह सोचते सोचते चढते गए। यह देखते गए कि ऊपर पहुँचनेवाले किस रास्ते से गए होगे। बाते करते हुए और प्रकृति का सौदर्य देखते हुए अतत हम एक दूसरे का हाथ पकडते हुए ऊपर पहुँच गए। गोगा पीर के पास की जगह बहुत सकडी थी। मुश्किल से भीतर एक ही व्यक्ति प्रवेश कर सकता था। बारी-बारी से हम देख आए। बाते करते-करते गोगटे साहब उत्साहित हो गए। उनकी इच्छा हुई कि

गोगा पीर के दर्शनार्थ पुन आना चाहिए । उन दिनो समर्थनगर मे उनका बगला बन रहा था । बात सभवत १९७५ ई की होगी । आरम्भ के (जनवरी-फरवरी) महीने हो । बगला बनते ही हम लोग पुन यहॉ आकर मीठाई खाएँगे । बगला बन गया । हम लोग पुन गये । वास्तुशान्ति की मीठाई का सेवन किया । गोगा पीर की चोटी से औरंगाबाद के विस्तृत क्षेत्र दिखलाई देता है । विश्वविद्यालय के भवन दिखलाई देते है । और उन भवनों के पीछे बीबी का मकबरा भी दिखलाई देता है । गोगा पीर के द्वार के ठीक सामने पहाड की तलहटी पर एक छत्री बनी हुई है । उस छत्री के पीछे का क्षेत्र भावसिहपुरा है । सभवत वह छत्री भावसिह की हो । ऐतिहासिक स्थलो की जिज्ञासा करते हुए और उन पर चर्चा करते हुए लोग लौट आए ।

कोतवालपुरा में रहते समय तिरुपति से सारा सामान आ गया था । उनमे मेरी साइकिल भी थी । इस साइकिल का उपयोग सिकंदराबाद तथा तिरुपति मे नियमित करता रहा हूँ । १९५२ ई से १९६८ ई. तक लगभग सतरह वर्ष तक मैंने साइकिल का उपयोग किया है । औरंगाबाद आने पर मैंने कुछ दिन साइकिल का उपयोग व्यकट के घर पर रहा, तब तक (एक सप्ताह) किया है । बाद मे कोतवालपुरा में मैं बस से विश्वविद्यालय जाने लगा । तिरुपति से इस बीच साइकिल आ गई थी । वह वैसे ही पडी हुई थी । बहुत दिनो तक पडी रही। कोतवालपुरा से मै टाउन हॉल के निकट की कालोनी आनन्द नगर में पहुँच गया। वहाँ भी साइकिल वैसे ही पडी हुई थी । अष्टेकर साहब आते तो उस पडी हुई साइकिल को देखते । उनके कारण मैंने उक्त साइकिल को ठीक किया । साइकिल चलने लगी । किन्तु उसका उपयोग मैंने नहीं मेरे लडके सुनिल ने किया । होली क्रास स्कूल, साइकिल पर जाने लगा । स्कूल मे वह साइकिल खो गई । फिर नही मिली ।

अष्टेकर साहब लातूर के पास के अष्टा गाँव के थे । चौधरी थे । उनके गॉव में उनका बडा सम्मान था । अपनी बुजुर्ग पीढी का बहुत ध्यान रखते थे। माता-पिता का सम्मान करते और उनकी सेवा करते । अपने छोटे भाई नारायण का भी ध्यान रखते । दूसरी ओर अपने बच्चों को पढाते । उन्हे दो पुत्र थे । बाळू और संघर्ष और दो पुत्रियॉ - बडी का नाम भूल गया हूँ । छोटी का नाम क्रान्ति था । बडा पुत्र अमरीका गया और वही का हो गया । उसका विवाह किया।

बडी बेटी का ब्याह भी किया । सेवानिवृत्त होने के बाद वेदान्त नगर के निकट एक फ्लैट उनके पुत्र ने खरीद लिया । उसी मे उनका परिवार रहता है ।

दौलताबाद तथा खुलताबाद आदि स्थानों पर पैदल घूमते समय वे मेरे साथ थे । उनके साथ जो स्थान मैने घूमकर देखे है, उसका विवरण मैंने अपनी पुस्तक **'देवगिरि के यादव राजा'** मे दिया है । ऐतिहासिक स्थलो को घूम फिर देखने की और उन्हें जानने की मेरी इच्छा रही है । महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिंह से मिलने के बाद तो इच्छा और बलवती हो गई । मै किसी स्थल पर जाना चाहता तो अष्टेकर साहब से कहता । वे समय निश्चित कर लेते और हमारी यात्रा हो जाती थी । न जाने क्यो वे महाराष्ट्र से बाहर अवसर मिलने पर भी नही गए । मुझे स्मरण नही कि वे कभी उत्तर या दक्षिण की यात्रा पर गए । मुंबइ, पुणे चल जाते थे । मै पुणे के रूबी अस्पताल मे (सितम्बर १९९२ ई.) बीमार पड़ा हुआ था । आपरेशन हुआ था । मुझे देखने के लिए विभाग के अन्य सदस्यो के साथ अष्टेकर भी आए थे । पटना मे उन्हे पुरस्कार लेने जाना था । नहीं गए । हम दोनो का साहचर्य अधिक होने पर भी घर पर, भोजन करने कभी नहीं आए । यों सब के साथ चाय पी लेते थे । बाहर से विद्वान् बन्धु आते ही रहते थे । उनकी सेवा मे उपस्थित रहते ।

हम दोनो ने मिलकर एक पुस्तक लिखी । उसका नाम है - **'मराठी भाषा और साहित्य'** । उसमे भाषावाला खण्ड मेरा लिखा हुआ हे और साहित्य वाला खण्ड अष्टेकर साहब का लिखा हुआ है । उसका प्रकाशन १९८६ ई. में 'नेशनल पब्लिसिंग हाऊस' नई दिल्ली से हुआ है ।

सेवानिवृत्त होने के बाद के दिवस थे । हमारा मिलना कम हो गया । एक दिन अचानक अष्टेकर साहब का फोन आया । बोले 'गोगटे साहब बीमार है । हेगडेवार दवाखाने मे है । मैं दवाखाना गया । गोगटे साहब से मिलकर आया । लेटे हुए थे । पहचाना । डॉक्टर ने बात करने से रोका था । थोडी देर बैठकर लौट आया । उस समय बापट साहब भी वहाँ पर मिले । कुछ मास बीत गये । पुन. अष्टेकर साहब का फोन आया । बोले 'गोगटे साहब, घर पर है, और गभीर रूप से बीमार हैं । मैं समर्थनगर गया । टाउन हॉल के मकान मालिक पाटील साहब से मिला । उन्हे साथ लेकर गोगटे साहब के घर पर गया । लेटे हुए थे । शरीर क्षीण हो गया था । उनके तीन पुत्र है । बडा अमरीका में । अन्य दोनों मे से एक बम्बई और एक यही पर था । मै जब गया तो पुत्र आए हुए थे ।

कुछ वाक्य बोले । लगा कि अब उठकर बैठनेवाले नहीं है । कुछ देर बैठकर हम दोनों चले आए । अष्टेकर साहब के फोन तो आए किन्तु वे स्वय नहीं मिले । कुछ दिन बीत गए । सबेरे-सबेरे फोन आया — 'गोगटे साहब नही रहे । नौ बजे शव-यात्रा है ।' मै जाने के लिए तैयार होकर गेट से निकला । हमारी कालोनी के रमेश देशपाण्डे द्वार पर खडे हो गए । उन्होंने स्कूटर रोक लिया था । कहने लगे — 'गोगटे साहब के घर चलना है ?' मैने — 'हॉ, कहा । उनके साथ तुरन्त पहुँच गया । वहाँ पर अष्टेकर साहब मिले । उनका पुत्र सघर्ष स्कूटर पर उन्हे छोड गया था । उनसे उसी समय बात हुई । स्मशान मे हम साथ-साथ थे । सघर्ष लौट आया और उन्हे लेकर चला गया । मैं भी अपने घर लौट गया । उनको सघर्ष के साथ आते और जाते देखकर एक झटका लगा । वे स्वय स्कूटर पर नही आए । मैंने १९८९ ई के दिसम्बर के बाद स्कूटर चलाना बद कर दिया था । मैने स्वय अधिक ध्यान नही दिया ।

एक दिन अचानक डॉ. पारसमल बोरा का फोन आया — 'अष्टेकर साहब की लडकी कान्ति का निधन हो गया है । कैसे हुआ ? मुझे कुछ मालूम नही । अनिल उन दिनो वेदान्त नगर में रहता था । अनिल से कहा कि हमे अष्टेकर साहब के घर जाना है । वह हमे घर पर ले गया । अष्टेकर साहब बैठे हुए थे । विवाह कुछ दिन पूर्व हुआ था । दामाद बैठा हुआ था । कोई कुछ बोलने-बतलाने की स्थिति मे नहीं था । विवाह कैसे हुआ और असमय मृत्यु कैसे हुई । गूढ था । मैने पूछा भी नही । ठीक नही लगा । गूढ रखने मे ही भलाई थी । इतना जान गया कि प्यारी बिटिया के चले जाने से अष्टेकर साहब को सदमा पहुँचा है । वे क्या कहे ? इस सदमे से वे बाहर निकलने और मिलने-जुलने की स्थिति मे नही रहे । स्वास्थ्य गिर गया ।

डॉ पारसमल बोरा का क्वार्टर, डॉ. अष्टेकर साहब के क्वार्टर के निकट था। पडोसी थे । आना-जाना घर की तरह था । उनको सब जानकारी रहती थी । डॉ पारसमल बोरा विश्वविद्यालय मे पोलिटिकल साइंस के प्रोफेसर एव अध्यक्ष हो गए थे । कुछ दिनों के लिए वे रजिस्ट्रार भी हुए थे । मेरे घर पर भी उनका आना-जाना अधिक था । अष्टेकर साहब के समाचार उनसे मिल जाते थे ।

अष्टेकर साहब ने जीवन मे सघर्ष किया । धूमिल उनका प्रिय कवि था । उस पर उन्होंने पुस्तक भी लिखी । वह जयपुर से छपी है । उनका शोध-प्रबन्ध **'भारतेन्दु हरिश्चंद्र और विष्णुशास्त्री चिपळूणकर'** — पर था । वह भी जयपुर

से छप गया था। उनको व्यग्य लिखने का शौक था। पुस्तक लिखी किन्तु छपी नही। क्रान्ति चाहते थे। इसीलिए उन्होने अपने बच्चो के नाम क्रान्ति और सघर्ष रखा।

भारतीय हिन्दी परिषद का जून १९८४ ई मे औरगाबाद में अधिवेशन हुआ। उस समय उन्होंने स्मारिका के लिए लेख लिखा और अपने मित्र कुटुरकर से भी लेख लिखवाया।

एक दिन अचानक सायकाल में पॉच बजे डॉ पारसमल बोरा का फोन आया कि अष्टेकर साहब नही रहे। उनका देहात हो गया। उनके घर गया था। उनका शव उनके गॉव अष्टा ले गए हैं। शव के बिदा होने पर घर लौटा हूॅ। पहले आपको फोन कर रहा हूॅ। सुनकर कुछ समझ मे नही आया। अन्तिम समय मे मै उन्हे देख भी नहीं सका।

पूरा वृत्त मुझे बाद में मालूम हुआ। उस दिन वे अपनी बडी बेटी की बेटी को पहुॅचाने के लिए रेलवे स्टेशन गए थे। बेटी नान्देड जानेवाली थी। गाडी अभी आई नहीं थी। अष्टेकर साहब फर्स्ट प्लैटफार्म के वेटिग रूम मे बैठे हुए थे। लडकी बाहर ट्रेन की प्रतीक्षा मे थी। मालूम हुआ कि गाड़ी तीन नम्बर के प्लेटफॉर्म पर आएगी। गाडी के आने का सकेत मिलते ही लडकी नाना के पास पहुॅची। बिदाई लेकर जाना चाहती थी। वेटिग रूम मे बैठे-बैठे ही अचेत हो गए। लडकी कुछ समझ नहीं पाई। उसने यात्रा स्थगित कर दी। फोन किया और स्वय नानाजी को लेकर अस्पताल पहुॅची। नानाजी नही रहे, यह वह पहचान नही सकी। घर पर शव पहुॅचा। पत्नी भी नहीं थी। वह गॉव गई हुई थी। बाळू अमरीका मे था। अकेला संघर्ष था। वह पहुॅचा और शव को अष्टा ले जाने का निर्णय हुआ। सब जगह समाचार दौडाए गए।

सच तो यह है क्रान्ति के निधन का सदमा जबरदस्त था। सह नहीं पाए। बाहर निकलते नहीं थे और उसी में चल बसे।

मै उनकी पत्नी के लौट आने की प्रतीक्षा मे था। दाभोलकर का फोन आया कि घर पर आकर मिलना चाहता हूॅ। उसीने फोन पर बतलाया कि अष्टेकर साहब के घर जाकर आया हूॅ। बाळू आया हुआ है और तीन बजे आज पुन अमरीका चला जाएगा। तुरन्त हम दोनों अनिल के साथ अष्टेकर साहब के घर

गए । बाळू मिल गया । और लोग भी मिले । उसी दिन मुझे पूर्ववृत्त विस्तार से मालूम हुआ। यह भी मालूम हुआ कि उन्हे अकेला घर से बाहर नही जाने देते थे ।

□ □

अध्यापन

डॉ रमेशचन्द्र शाह ने आत्मकथा के प्रथम भाग को पढकर ७ जुलै २००३ को पत्र लिखा । पत्र इस प्रकार है —

M-4, निराला नगर, भदभदा रोड
भोपाल - ४६२ ००३
दिनाक ७-७-२००३

प्रिय डॉ बोरा,

जीवन यात्रा के पडाव - १, मुझे यथासमय मिल गई थी और प्रवास के दौरान मे उसे पढ भी गया था । अच्छी रुचिकर लगी थी । वह वही अलमोडा मे रह गई है । वहाँ भी मेरा एक पुस्तक-संचय है । पुस्तक अच्छी हे — दो टूक अनुभवो का समावेश उसमे है । आशा है दूसरे खण्ड मे अध्ययन अर्थात् साहित्य के अध्ययन से एकात-निबिड रूप से सम्बन्धित प्रसंग भी होंगे । जिससे दूसरे अपने समानधर्मा भी प्रेरणा ग्रहण कर सके । जीवन सघर्ष अपनी जगह है पर एक अध्यापक — नैष्ठिक अध्यापक के अपने - Classroom Teaching - कक्षा के अपने अतरग अनुभव शोध करने-करवाने के सिलसिले मे भी हुए अनुभवो का आलोचनात्मक आकलन भी अपना महत्त्व रखते हैं । हिन्दी के इस अध्ययन जगत् एकेडेमिक सुविधा की यह स्थिति विडंबना भी होगी । है ही । उसके और समकालीन साहित्य-रचना की . .. बीच जो असामंजस्य भी क्रिया-प्रतिक्रिया का चक्र चलता रहा है, उस बारे मे भी कुछ चिंतन मनन चाहिए। हो सके तो । . ...

शुभकामनाओ सहित
रमेशचन्द्र शाह

शाह साहब अपनी जगह ठीक है । इस सम्बन्ध मे मैं अपनी बात कह रहा हूँ । सब के अनुभव अलग-अलग हो सकते है । मेरे भी अपने अनुभव है । कुछ प्रसग लिख रहा हूँ ।

एम ए की कक्षाएँ आरम्भ में ही मुझे (१९५९ ई) मिल गई । आरम्भ में दो ही छात्र थे । राघवन और रानी सयुक्ता । मुझे प्राचीन तथा मध्यकालीन कवियो को पढाना पडा । तदर्थ मै तैयारी करता था । और पुस्तक के साथ कक्षा में जाता था । एक घण्टा पढाने के लिए तीन-तीन घण्टे पढता था । आरम्भ में मेरा ध्यान पाठ्यक्रम के पाठ पर ही केन्द्रित रहता था । पाठ ही समझ मे न आए तो समीक्षा कहाँ ? पढाते-पढाते मै स्वय सीख रहा था । सभी पाठ्य पुस्तके खरीदता था और छात्रो के खरीदने के लिए कहता । छात्रो के हाथ मे पुस्तक देखता तो मुझे प्रसन्नता होती । एक घण्टे मे पॉच-छ छद पढाता था । उनका भावार्थ समझाता । सूरदास के पद, तुलसीदास की विनयपत्रिका, बिहारी के दोहे, केशवदास की रामचंद्रिका, . आदि आदि पुस्तके मैने पढी और पढाई । प्राय जब भी विषयो का बॅटवारा होता तो मुझे वे विषय दिए जाते जो दूसरे अध्यापक पढाना नही चाहते । मुझे चयन करने और अपनी अभिरुचि व्यक्त करने का अवसर मिला ही नहीं । मैने इसे कभी बुरा नही माना। स्वीकार कर लेता और तैयारी मे लग जाता । तिरुपति मे प्राय. सभी छात्र तेलुगु-भाषी और कुछ तमिल-भाषी रहते । वहाँ के मुस्लिम छात्र भी तेलुगु-तमिल का व्यवहार करते। उन्हे ब्रजभाषा और अवधी के काव्य मैने पढाए है । पाठ का वाचन करना आए और भावार्थ समझ मे आए तो बडी बात मानना चाहिए । ऐसे छात्रो से मुझे जूझना पडा है । पाठ्यक्रम के पाठ को प्रेषणीय बनाना ठीक से समझाना — मेरा प्राथमिक कार्य था । उस कार्य को मैने अपनी क्षमता से पूर्ण किया ।

इस कार्य के साथ-साथ मै शोध-कार्य भी कर रहा था । दूसरे वर्ष रावतजी आ गए थे । वे भाषा विज्ञान पढाने लगे । उनका वह कार्य था । उक्त विषय का प्राथमिक परिचय मुझे रावतजी से मिला । ध्वनि-विज्ञान का अध्ययन, मैने उन्ही से सीखा । आरम्भ मे मैने — **'भूषण के काव्य में प्रयुक्त ध्वनियों का विश्लेषण'** रावतजी के निर्देशानुसार लिखा । उक्त लेख मैने नागरी प्रचारिणी पत्रिका को भेजा । वह वर्ष ६८, अंक १-२, सवत् २०२० मे प्रकाशित हुआ । इससे पूर्व भी एक लेख — **'पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान और शिवभूषण'** रावतजी के निर्देशानुसार लिखा। उक्त लेख मैने नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष

६ . अक ४. सवत् २०१७ मे प्रकाशित हुआ । बाद मे तो और लेख भी तिरुपति मे रहते हुए छप है । इनके छप जाने से कार्य के प्रति मेरा विश्वास बढा है ।

भूषण के शोध कार्य मे सबसे पहले मैंने **'भूषण की भाषा'** वाला अध्याय लिखा है । भाषा से सम्बन्धित एक आलेख **'भूषण के काव्य में प्रयुक्त सज्ञाओ का अध्ययन'** सम्मेलन पत्रिका, (इलाहाबाद के) भाग ५३, सख्या १-२, पौष-ज्येष्ठ १८८९ शक सवत् मे प्रकाशित हुआ है । इस शोध कार्य का उपयोग मैंने कक्षाओ में विषय के अनुसार किया है । रावतजी जब तिरुपति से राजस्थान के वनस्थली विद्यापीठ मे चले गए तो विभाग मे भाषा विज्ञान पढ़ाने के लिए कोई तैयार नही हुआ । इस समय डॉक्टर साहब ने निर्णय दिया कि — 'बोराजी भाषा विज्ञान पढाएगे ।' फिर मेरी ओर देखते हुए कहा — 'क्यो बोराजी, भाषा विज्ञान पढ़ाएगे ना ?' मैंने अपनी स्वीकृति दे दी । भाषा विज्ञान पहली बार पढा रहा था । पाठ्य-पुस्तके खरीद ली और पढाने लगा । स्वय पढना और पढाने का अन्तर तब मेरी समझ मे आया । समय-समय पर मुझे कार्यवश विषय बदलने पडे हैं । उस समय उत्साह था । मै घबराया नही । नया विषय पढने लगा ।

घर पर सस्कृत-व्याकरण (लघुसिद्धात कौमुदी) पढता था । तदर्थ सस्कृत का अध्यापक नियमित पढाने आता था । सस्कृत-व्याकरण के कारण भी भाषा विज्ञान समझाने मे सहायता मिली है । मैंने विभाग मे भाषा विज्ञान पढ़ाते समय अपना ध्यान ध्वनि-विज्ञान पर अधिक केन्द्रित किया । छात्रो को पढाते-पढाते मुझे विषय और भी समझ में आता गया । उनसे लिखवाता भी था । उन दिनो आचार्यजी विद्यापति पढा रहे थे । मैंने छात्रों से कहा कि विद्यापति के काव्य मे प्रयुक्त ध्वनियों का विश्लेषण करो । संयुक्त स्वर, स्वरसमूह, सयुक्त व्यजन को पहचानो और उनके उदाहरण क्रमश लिख कर लाओ । एक छात्रा — सब समझ रही थी । वह सब लिखकर ले आई । दिखलाया । मैंने देखा, वह ठीक लिख रही थी । मैंने उससे क्रमश. लिखने के लिए शीर्षक दिए और सामग्री को क्रम से प्रस्तुत करने कहा । दूसरी बार उसने पूरा लिखा और दिखलाया । मुझे प्रसन्नता हुई । मैंने पूरा पढ़ा और किञ्चित ठीक करके सामग्री को नये सिरे से क्रमश लिखने कहा । अब तो पूरा शोध लेख बन गया था । मैंने उक्त लेख उसे अपनी ओर से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' को भेजने के लिए कहा । उसने लेख दिए हुए पते पर भेज दिया । मेरा भी एक लेख **'राधामाधवविलासचम्पू : एक बहुभाषी रचना'** नागरी प्रचारिणी पत्रिका को प्रकाशनार्थ भेजा हुआ था । छपकर आया नहीं था । उसकी स्वीकृति

मि[illegible] । इस बीच मे आ[illegible] आ गया । यहाँ पर नागरी प्रचारिणी पत्रिका का वर्ष ७३ अक १ से ४ सवत् २०२५ वाला अक मिला । वह सम्पूर्णानन्द स्मृति अक था । उसमे मेरे लेख के साथ-साथ तिरुपति की छात्रा सी. कृष्णम्मा का विद्यापति की ध्वनियो पर लिखा लेख भी छपा था । मुझे उक्त लेख के छप जाने से अधिक प्रसन्नता हुई । वह छात्रा बाद मे मिली नही । उसे वह लेख देखने मिला या नही ? मै नही जानता । तीन-चार वर्ष पुरानी बात थी । उसने अपना पता ठीक दिया होता तो उसे अक मिल जाता । उसी अक मे यहाँ के सरस्वती भुवन कालेज के इतिहास के प्राध्यापक का — श्री ब्रह्मानंद देशपाण्डे का — लेख छपा था । वे जब मुझसे मिलने घर पर आए तो मैने उन्हे लेख दिखलाया । उन्हे वह अक मिला नही था । अस्तु ।

मै जो भी पढाता था, उसकी टिप्पणियाँ तैयार कर लेता था । पढाने के बाद मुझे वह सब याद हो जाता था । कक्षा मे दोहराता था । प्रश्न-पूछता था। छात्रो से सवाद करता । कोई बात मेरी ही समझ मे न आती तो उसके उत्तर की खोज करता । धीरे धीरे क्रमश सब स्पष्ट हो जाता था । मूल पाठ को समझना और समझाकर कहने का मेरा प्रयत्न अधिक रहता । बाद मे मै उसी विषय पर लेख लिखता और पत्रिकाओ मे छपने भेजता । लेख छप जाते थे। उपन्यास पढाने मिले तो उन्ही पर लिखा । कहानी पर भी लिखा । औरंगाबाद मे आरम्भ के वर्षो मे (उन दिनो भाषा विज्ञान तेलग साहब पढाते थे) मैने उपन्यास पढाए — कहानियाँ पढाई । जैनेन्द्रकुमार का '**मुक्तिबोध**' तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास '**बाणभट्ट की आत्मकथा**' पढाया । दोनों पर अध्यापन के आधार पर क्रमश लेख लिखे है । वे लेख मराठवाडा यूनिवर्सिटी के जर्नल मे छपे हैं । '**मुक्तिबोध . खण्डित व्यक्तित्व का चिंतन**' — जुलाई १९६९ के अक में छपा और '**बाणभट्ट की आत्मकथा . ललित भावोच्छवासों की कथा**' जुलाई १९७० के अक में छपा। बाद में ये लेख मेरी पुस्तक '**हिन्दी उपन्यास : प्रयोग के चरण**' (१९७२ ई) में भी अन्य प्रकाशित लेखों के साथ छपे है ।

निर्मल वर्मा की कहानी '**परिन्दे**' पढ़ाई तो उस पर भी लेख लिखा । बाद मे वह लेख '**परिन्दे : मौन संवेदना का स्वर**' शीर्षक से सचेतना के वर्ष ४, अक २ पूर्णांक १४, ग्रीष्माक १९७० मे छपा ।

मेरे लेखन मे अध्यापकीय प्रभाव है । तकिये कलाम के रूप मे कुछ शब्दों को श्री विष्णुकांत शास्त्री ने पहचाना और पत्र भी लिखा । '**बाणभट्ट की आत्मकथा**'

उपन्याम पर मैंने जो कुछ लिखा उसकी अनुमुद्रित प्रति मैने उन्हे भेजी थी । उनका पत्र इस मम्बन्ध मे मिला था । लिखा —

२८०, चित्तरंजन एवेन्यू
कलकत्ता
दिनाक ८-४-१९७१

प्रिय बोराजी

सस्नेह नमस्कार,

'बाणभट्ट की आत्मकथा ललित भावोच्छ्वासो की कथा।' पढ गया । आपने परिश्रमपूर्वक उसके लालित्य को विविध कोणो मे देखा और दिखाया हैं । लालित्य को देखने के लिए परिश्रम करना पडे तो बात गडबडाती है । कहने का मतलब यह है कि आपका **सावधान प्राध्यापक** रूप ही उसमे अधिक मुखरित हुआ है, सहृदय रस भोक्ता कम । शायद हम लोगो का पेशा ही ऐसा है कि हम लोग विश्लेषक अधिक होते है, सश्लेषक कम । जो हो, आपका निबन्ध समादरणीय है । मुझे आपने स्नेहपूर्वक स्मरण किया इसके लिए आभारी हूँ । भगवान की कृपा से आप सानन्द रहे ।

शुभैषी
विष्णुकात शास्त्री

मेरा उक्त लेख — बाद मे **'हिन्दी उपन्यास : प्रयोग के चरण'** पुस्तक मे (१९७२ ई) प्रकाशित हुआ । उसे डॉ इन्द्रनाथ मदान ने पढा और अपनी सम्पादित पुस्तक **'हिन्दी उपन्यास पहचान और परख'** (१९७३ ई) मे सम्मिलित किया । उसका प्रकाशन, लिपि प्रकाशन, ई. १०/४ कृष्णनगर, दिल्ली - ११००५१ से हुआ है । डॉ मदान मुझे अपने लेखो की अनुमुद्रित प्रतियाँ भेजते रहते थे। उनके लेखो को चाव से पढता और उन्हे अपनी प्रतिक्रियाओ से अवगत करते रहता। यद्यपि उनसे मिलना हुआ नहीं किन्तु उनके लेखन से परिचित था । वे मेरे प्रिय लेखको मे थे ।

मै जो पढ़ता था । उसको प्रसगानुसार छात्रो को बतलाता था । मुझे कक्षा मे जाने मे कभी भय नहीं हुआ । कक्षा मे सौ के आसपास छात्र रहे है और दो-तीन (कभी-कभी एक) छात्र भी रहे है । एक छात्र भी उपस्थित रहता, तो उसे पढाता रहा हूँ । मैंने छात्रो के आत्मसम्मान को कभी चोट नहीं पहुँचाई ।

यदि वे पढते नहीं, लिखते नहीं या कक्षा में उपस्थित नहीं रहते तो उन सब के कारण पहचानने के प्रयत्न किए। छात्रों से अकेले में बात करने का प्रयत्न करता। उनकी समस्याएँ के स्वरूप को पहचानता और तदनुरूप उनसे व्यवहार करता। पढ़ाते समय पाठ्य-पुस्तक सदैव साथ में रखता। कुछ भूल जाता तो पुस्तक खोलकर कक्षा में भी देख लेता। यद्यपि सब कुछ याद रखता था। तथापि पुस्तक साथ में रखने से कहने-बतलाने में बल अधिक रहता। पुस्तक वही, जो बार-बार पढ़ी जाए और बार बार पढ़ने से ही पुस्तक के अंतरग से परिचय होता जाता है। कवि या लेखक कभी पुराना नहीं होता।

आरभ मे कुछ पुस्तके कक्षाओ मे पढाने के आधार पर लिखी गई। पढाते-पढाते कभी-कभी बहाव में विषय के अतरग तक पहुँच जाते है और ऐसा जब-जब हुआ, उस समय सहज बोध की अनुभूति होती है। उस समय जो कुछ कह जाते है, वह लिखा हुआ नही रहता। अचेतन मे पूर्व सचित ज्ञान, चेतना मे अपने-आप मुखरित होता है। मैंने कक्षाओ मे ऐसा बहुत बार अनुभव किया है। इससे मुझे आत्मिक तोष भी मिला है। अवसर चूकना नहीं चाहिए। मत चूके चौहाण। चूकने से हानि होती है। कक्षाओ मे ही अध्यापक ज्ञान की आग मे तपता है। उसकी अपनी परीक्षा वहीं पर होती है। भाषा की लय उसे कक्षा मे ही मिलती है। विषय को आत्मसात करते जाने का स्थान (अवसर कह लो) कक्षा ही है। छात्रो के चेहरो पर हमे विषय बोध की प्रतिक्रिया दिखलाई देती है। और वही उसकी सफलता का द्योतक है। ऐसा जब-जब भी हुआ, मैंने उक्त विषयो पर सहज गति से लिखता भी रहा हूँ। यह ठीक है कि टेबल पर शोध-सामग्री रखी रहती और उस पर लिखना भी उतना ही आवश्यक रहता। ऐसा होने पर भी, जो कुछ पढाता, उनमे से कुछ-न-कुछ लिखता रहा हूँ। मुझे यह मालूम हो गया कि समय पर लिख न लूँ या अवसर चूक जाऊँ तो उस सामग्री को खो दूँगा। पुन याद करके लिखना कठिन है। तदर्थ समय निकालना और अपना काम कर लेना आवश्यक है। किसी दिन यदि ठीक से पढा नही पाया तो मानसिक असतोष रहता था। पढाते-पढाते नई नई समस्याओ मे भी जूझना पडा है। ऐसा जब-जब भी हुआ, उन समस्याओ से जूझने का प्रयत्न करता था। छात्र तो प्रश्न छोडकर चले जाते हैं। उत्तर देने की प्रक्रिया अध्यापक को करनी पडती है। ऐसे कई प्रश्न मेरे सामने आए हैं। इन प्रश्नो मे ज्ञान के अन्य विषय रहे हैं — गणित, इतिहास, काव्यशास्त्र, मनोविज्ञान आदि

आदि । मैंने अन्य-अन्य विषयो की पुस्तकें इसी हेतु खरीदी और पढ़ता गया हूँ । दूसरे वर्ष उसी विषय को पुन पढाते समय छूट हुए या रह गए प्रश्नो का उत्तर मैंने दिया है । छात्र तो नये रहते किन्तु मैं तो अपने लिए पुराना रहा हूँ । और जब उसी आत्मतोष के साथ पढाता तो मेरा असतोष दूर हो जाता । अपनी कमजोरी को पहचानने का स्थान कक्षा है । अध्यापक की कसोटी क्लास रूम है ।

जो पुस्तक मैंने पढी नही उस पर कुछ नही कहता था । छात्रो को साफ बतला देता की यह पुस्तक मैंने नहीं पढी है । जयपुर मे आपातकालीन सगोष्ठी मे (अक्तूबर १९७६ ई) डॉ नगेन्द्र आए हुए थे । उनका व्याख्यान चल रहा था। जब वे बैठ गए तो विद्वान् बन्धुओं ने उनसे प्रश्न किये । प्रश्न नागेश्वरलाल ने पूछा था । जिस पुस्तक पर नागेश्वरलाल ने प्रश्न किया, वह पाश्चात्य काव्यशास्त्र से सम्बन्धित था । डॉ नगेन्द्र ने प्रश्न पहचान लिया था । अत उसी प्रकार की दुसरी जो पुस्तक उन्होने पढी थी । उस पुस्तक को आधार बनाकर उन्होंने उत्तर दे दिया । उन्होंने साफ कह दिया कि वह पुस्तक उन्होने नही पढी ।

☐ ☐

भाषा विज्ञान के प्रश्न

तिरुपति मे मैंने एक वर्ष ही भाषा विज्ञान पढाया था । औरंगाबाद १९६८ ई मे आया । उस समय डॉ. भालचन्द्र तेलग भाषा विज्ञान पढा रहे थे । १९७० ई के बाद में वे इन सेवाओ से मुक्त हो गए । उस समय मुझे भाषा विज्ञान विषय मिला । उस समय से सेवानिवृत्त होने तक फरवरी १९९३ ई तक लगभग बाईस-तेईस वर्ष मुझे भाषा विज्ञान ही पढाना पडा है । प्रधान रूप मे दो पुस्तके पाठ्यक्रम में थी - **भाषा विज्ञान — भोलानाथ तिवारी और हिन्दी भाषा का इतिहास — धीरेन्द्र वर्मा** । इन दोनों पुस्तको के साथ साथ एक तीसरी पुस्तक **हिन्दी व्याकरण-कामता प्रसाद गुरु** भी पाठ्यक्रम की पुस्तक मानकर सब को खरीदने और पढने के लिए कहता था । इन पुस्तको को पढने तथा पढ़ाने मे, मै 'हिन्दी भाषा के इतिहास' से अधिक जूझता रहा हूँ और आज भी, उक्त जूझना बन्द नहीं हुआ है । तदर्थ ऐतिहासिक भाषा विज्ञान पर ध्यान देना आवश्यक है । डॉ. धीरेन्द्र वर्मा पूरी तरह से विदेशी विद्वानो को मान्यताओं (भाषा परिवार की अवधारणाओं को) को मानकर चले है । उनके लेखन में बौद्धिक ईमानदारी है। उनका लेखन वैज्ञानिक पद्धति से ठीक है । मै यह भी मानता हूँ कि उनकी

उस पुस्तक के समान आज भी दूसरी कोई पुस्तक नही है । धीरेन्द्र वर्मा सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की मान्यताओं को मानकर चले है ।

सम्प्रति मै केवल दो-तीन मुख्य प्रश्न लिख रहा हूँ । उनके भी विस्तार मे न जाकर प्रश्नो की व्यावहारिकता पर विचार कर रहा हूँ । प्रश्नो का सम्बन्ध भारतीय इतिहास और भूगोल मे हे । भाषाओं की दृष्टि से भारतीय इतिहास पर और भारतीय भूगोल पर विचार करनेवाली अच्छी पुस्तके आज भी हिन्दी मे नही है ।

यह मान लिया गया है कि आर्य लोग बाहर से आए । पश्चिमोत्तर भारत से आए । आर्य ही नही अपितु द्रविड लोग भी बाहर से आए । दानो परिवार अलग-अलग हैं । भाषा की दृष्टि से दो परिवार बतलाकर दोनो परिवारों के मेल-मिलाप को काटकर अलग करने का प्रयत्न विदेशी विद्वानो का रहा है । डॉ रामविलास शर्मा ने विदेशी मान्यताओ का खण्डन किया है । इसे आज भी मान्यता मिली नही है ।

प्रश्न है — भाषा मे बोली का जन्म होता है या बोली से भाषा का विकास होता है । पढाया तो यह जाता है कि बोली पहले है और भाषा बाद मे । ठीक है तो भाषा का इतिहास पढाते समय भाषा को आधार मानकर (सस्कृत को जननी भाषा मानकर) इतिहास क्यो लिखा जाता है ? धीरेन्द्र वर्मा की पुस्तक मे लौकिक सस्कृत को आधार मानकर मूल भाषा मानकर — हिन्दी भाषा का इतिहास लिखा गया है । क्या किसी साहित्यिक और समृद्ध भाषा से बोली का जन्म होता है ? और फिर सीधे बोली का उल्लेख न करते हुए हिन्दी के मानक रूप (खडी बोली का — हिन्दी मे परिणत रूप) से उदाहरण देकर हिन्दी भाषा का इतिहास लिखा गया है । और फिर इस इतिहास मे भी तत्सम (सस्कृत के मूल शब्द) शब्दो को छोड दिया गया है । तत्सम शब्दो का इतिहास लिखने की आवश्यकता नही समझी गई । केवल तद्भव शब्दो का इतिहास लिखा गया है । इस इतिहास लेखन मे भी **हिन्दी व्याकरण** — कामताप्रसाद गुरु को धीरेन्द्र वर्मा ने आधार माना है। गुरु का व्याकरण १९२० ई. का है । आज वह पुराना है किन्तु उसके समान दूसरी कोई पुस्तक आज भी अपने-आप मे विषय पर पूर्ण पुस्तक दूसरी नही मिलती । सस्कृत के विद्वान् गुरु के व्याकरण को स्वीकार नहीं करते । वे तो उसे **ग्रामर** कहते है । प. काशीराम शर्मा पाणिनि के व्याकरण को व्याकरण कहते है और गुरु के व्याकरण को **ग्रामर** कहते है ।

संस्कृत की पद्धति (उसकी चाल) अलग है और हिन्दी की पद्धति (चाल) अलग है । दोनो का मेल कहाँ ? दोनों का सम्बन्ध अलग है । प. किशोरीदास वाजपेयी ने प्रथमत धीरेन्द्र वर्मा का खुलकर विरोध किया । उन्होने अपनी पुस्तक को व्याकरण नही कहा । वे उसे **शब्दानुशासन** कहते है । उनका मानना ठीक है कि संस्कृत का शब्दानुशासन अलग पद्धति का है और हिन्दी का शब्दानुशासन अलग पद्धति का है । वे सीधे संस्कृत को — धीरेन्द्र वर्मा की तरह — मूल भाषा मानकर हिन्दी भाषा का इतिहास-लेखन लिखने के पक्ष मे नही है । विश्वविद्यालयो मे आज भी प. किशोरीदास वाजपेयी को पढाया नही जाता ।

धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत के व्याकरण और गुरु के व्याकरण के रूपों को लेकर (वह भी तद्भव रूपो को) भाषा का इतिहास लिखते है । आप मेरी कठिनाई को समझते होगे या समझने का प्रयत्न कर सकते है कि **संस्कृत का व्याकरण** तथा हिन्दी का व्याकरण न जाननेवाले छात्रों को उनके रूप लिखकर उनका ऐतिहासिक सम्बन्ध बतलाना रहा है । इस प्रकार की कठिनाइयो का सामना करते-करते मैंने हिन्दी भाषा का इतिहास पुस्तक पढाई है ।

यह मै मानता हूँ, कि बार-बार धीरेन्द्र वर्मा की पुस्तक पढी है । उपजे हुए प्रश्नो को निदान खोजने के लिए मैने विषय से सम्बन्धित दूसरी पुस्तके भी पढी है । प्रत्येक बार धीरेन्द्र वर्मा पढाते हुए मुझे लगता कि वे अपनी जगह ठीक है । किन्तु उनकी मूल मान्यता ही गलत लगती । उनके इतिहास मे रिक्त स्थान बहुत है । इतिहास की बीच की कडियॉ गायब है । मूल-संस्कृत (लौकिक संस्कृत) शब्द और बाद मे हिन्दी का मानक रूप । प्राकृत के जो उदाहरण मिले, वे दिए — अन्यथा स्थान रिक्त है । कठिनाई व्याकरणिक प्रत्ययो की अधिक है । शब्द समूह ही नही, अपितु व्याकरणिक प्रत्ययो की व्युत्पत्ति संस्कृत से बतलाने का प्रयत्न करते है । संगति बैठती नही तो साफ नकार जाते हैं । लेखन में ईमानदारी है। संस्कृत मे जोडने की पूरी कोशिश करते है और ऐतिहासिक क्रम को बतलाने के लिए कल्पित रूप (इतिहास मे जो मिलते ही नहीं) बतलाते और समाधान प्रस्तुत करते है । उन कल्पित रूपो पर वे पूरी तरह विश्वास नही करते और अन्त मे प्रश्न-चिह्न छोड जाते है । उनका लेखन वैज्ञानिक है — विशुद्ध वैज्ञानिक है। इतिहास तथा भूगोल की पूरी उपेक्षा है । उनकी पुस्तक को प्रथम वाचन मे समझा नही जा सकता जब कि उनकी पुस्तक अन्य पुस्तको की तुलना मे अधिक सरल और स्पष्ट है ।

बाद के वर्षो मे धीरेन्द्र वर्मा की पुस्तक पढाते समय आरम्भ मे ही उनकी मान्यताओ को स्पष्ट कर देता रहा हूँ । उस पुस्तक को आधार मानकर और परीक्षाओं के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखकर छात्रो को वस्तुस्थिति बतलाने लगा। अपनी मान्यता अलग मे बतलाकर पुस्तक की मान्यताओ का विवेचन करता रहा हूँ । छात्रो को वही लिखना है, जो पुस्तक मे है । पुस्तक को पार करने के बाद मान्यताओ के विवेचन की बात आती है । मैने पहले से ही छात्रो को भ्रम मे नहीं रखा। जो मै अनुभव करता वह साफ-साफ बतला देता था । सक्षेप मे **भाषा विज्ञान** पर जो पुस्तके लिखी है, वे कक्षाओ में भाषा विज्ञान पढाने के कारण है ।



प्राकृत भाषा

प्राकृत भाषा को ऐतिहासिक क्रम मे सस्कृत के बाद मे रखा जाता है । उसे सस्कृत से व्युत्पन्न भाषा कहा गया है । प. किशोरीदास वाजपेयी ने प्राकृत को महत्त्व दिया । वे प्राकृत का सम्बन्ध हिन्दी से बतला नही सके है किन्तु उनकी दूरदृष्टि में प्राकृत भाषा है । उन्होंने सस्कृत को पूरी तरह से नकारा है । अपनी तालिका मे उन्होने प्राकृत के तीन रूप बतलाए है । - प्रथम प्राकृत (वैदिक काल की जनभाषा)/ द्वितीय प्राकृत (जिसका पालि रूप प्राकृत)/तृतीय प्राकृत (जिसे अपभ्रश कहा गया है) और बाद मे हिन्दी कहा है । सस्कृत को नकारते हुए ही, सस्कृत का सहारा लेते हुए उन्होने हिन्दी शब्दानुशासन लिखा है । सच देखा जाए तो हिन्दी भाषा के इतिहास की प्राथमिक खोज प किशोरीदास वाजपेयी ने की है । उन्होने दूसरे संस्करण के आरभ मे संवत् २०२३ मे (अर्थात् १९६६ ई मे) लिखा — 'प्राकृतवाले आगे आएँ' उनके वाक्य इस प्रकार है —

> ''हमने हिन्दी का रूप विवेचन करते समय संस्कृत का सहारा लिया है, सो कोई अपराध नहीं है । जो लोग प्राकृत से हिन्दी का सम्बन्ध मानते है, इसी णाऊ णाऊ प्राकृत से, उन्हें सामने आना चाहिए और हिन्दी का एक ऐसा व्याकरण तैयार करके दिखाना चाहिए, जिसकी पटरी (सस्कृत से नहीं) इस तथोक्त प्राकृत से बैठे । देश मे प्राकृत के विद्वानो की कमी नहीं है । हम उनकी वैसी कृति की प्रतीक्षा में है और - 'तस्याहमुज्ज्वलमतेश्चरणौ वहामि'

मै उस उज्ज्वलमति महान् अध्यवसायी विद्वान् के चरणो को अपने सिर पर लेकर कृत्यकृत्य होऊँगा, जो प्राकृत के आधार पर हिन्दी का व्याकरण प्रस्तुत कर देगा ।''

(हिन्दी शब्दानुशासन, सवत् २०२३, पृ सात और आठ)

संस्कृत का सहारा लेते हुए प किशोरीदास वाजपेयी व्याकरण अवश्य लिखते है किन्तु उनके लेखन मे संस्कृत को मूल भाषा नही माना गया है । संस्कृत और हिन्दी भाषा की प्रकृति मे जो भेद है, उसे स्पष्ट करते हुए उनका लेखन आगे बढ़ता है । स्थापित मान्यता से उनका विरोध है । मान्यता को नकारते हुए प्रमाण और उदाहरण देते हुए लिखना अपेक्षाकृत कठिन है । इस कठिनाई को विषय का विद्वान् ही समझ सकता है ।

डॉ रामविलास शर्मा ने प्राकृत की पूरी उपेक्षा की है । प. किशोरीदास वाजपेयी का समर्थन तो उन्होने किया किन्तु प्राकृत के सम्बन्ध मे वे मौन रह गए । इसी तरह वे अपभ्रंश भाषा पर भी वे स्वतंत्र रूप से कुछ नही लिखते । कामताप्रसाद गुरु के व्याकरण को भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण नहीं माना । चलते ढंग से भी गुरु के व्याकरण के सम्बन्ध मे कुछ नहीं कहते । इतनी बात सच है कि डॉ रामविलास शर्मा ने ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की महत्ता को पहचाना और उसी को उन्होंने अपने अध्ययन का आधार बनाया ।

□ □

ऐतिहासिक भाषा विज्ञान

मैंने जो पुस्तकें भाषा विज्ञान पर लिखी है — वे **'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान'** की है । मेरी योजना मे इन्हे लिखना नही था । पत्रिकाओ के सम्पादको ने मुझसे लिखवा लिया । प. विद्यासागर विद्यालकार ने मुझसे दो पुस्तके लिखवाई । **भारत की भाषाएँ** पूरी पुस्तक धारावाहिक 'प्रकर' मे छपी है । पुस्तक बाद मे छपी । उसके बाद उन्होंने **'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी भाषा'** पुस्तक के तीनो खण्डो की समीक्षा लिखने कहा । पहले उन्होंने प. काशीराम शर्मा को लिखा। उनके पास तीनो खण्ड नही थे । मैंने उन्हे अपनी ओर से तीनों खण्ड भेजे । दो-तीन महीने बाद उन्होंने पुस्तके वापिस भेज दी । कहा — 'नहीं' लिखेगे। उसके बाद पं. विद्यासागर विद्यालंकार ने लिखा — 'अब आप ही लिखो ।' एक लेख मे लिखना संभव नहीं था । अत धारावाहिक रूप में लिखता गया । लेख छपते रहे । उक्त लेखों की अनुमुद्रित प्रतियाँ मैने डॉ. रामविलास शर्मा तथा

डॉ. रामशरमसिंह को क्रमश भेजता रहा हूँ। दोनो की ओर से प्राप्ति सूचनाएँ मिलती रही है। बाद मे मैने आर्य परिवार पर अपने विचार प्रकट करते हुए लेख लिखा। उक्त लेख समकालीन भारतीय साहित्य के सम्पादक 'गिरधर राठी' ने प्रकाशित किया और क्रमश लिखने कहा। बाद म वे धारावाहिक लेख 'भारत की प्राचीन भाषाएँ — पुस्तक' मे प्रकाशित हुए। दोनो ही पुस्तकें **'ऐतिहासिक भाषा विज्ञान' और 'भारत की प्राचीन भाषाएँ'** — दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली मे प्रकाशित हुई। यो ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की ओर मेरा ध्यान गया है। आज भी यह विषय उपेक्षित है। प्राकृत भाषा का आधुनिक भाषाओ से जो सम्बन्ध रहा है, उसको बतलाने के प्रयत्न नहीं हुए है। मै उक्त विषय पर काम को आगे बढाना चाहता हूँ। प. काशीराम शर्मा ने इस विषय पर जो काम किया है, उसे अभी पहचाना नहीं गया है।

☐ ☐

अनुसंधान और शोध-छात्र

भाषा विज्ञान के साथ-साथ मुझे नये शोध-छात्रो को अनुसधान से सम्बन्धित एक प्रश्न-पत्र का पाठ्यक्रम पढाना पडा। यह पाठ्यक्रम एम फिल. का था। एम ए. मे **भाषा विज्ञान** और एम फिल मे **'साहित्य और समवर्गी विद्याशाखाएँ'** — दो पेपर मुझे पढाने पडे। शोध का दूसरा सामान्य प्रश्न-पत्र - डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे पढाते थे। एम ए. में वे काव्यशास्त्र पढाते थे। यो भाषा-विज्ञान के साथ-साथ अनुसंधान से सम्बन्धित एक पेपर मुझे मिला था। यह तो एम फिल. की बात हुई। एम फिल. के अन्य दो प्रश्न-पत्रो के पाठ्यक्रम बदलते रहते थे। उनमे पाठ्य-पुस्तके काव्य, नाटक, कथा साहित्य आदि की पुस्तके रहती थी। लघु प्रबन्ध भी लिखना आवश्यक था। उसका सम्बन्ध तीसरे पेपर की पाठ्य-पुस्तको से रहता था। हम लोग जितने प्राध्यापक थे, उस हिसाब से छात्रो का वितरण लघु-प्रबन्ध के लिए होता था। प्रत्येक प्राध्यापक को एम फिल. का एक छात्र मिलता था। उस छात्र का वह निर्देशक होता था। अनुसधान का कार्य यो देखे तो अधिक था। एम.फिल. के छात्र का निर्देशन करना, उससे सीमित समय में प्रबन्ध लिखवा लेना आवश्यक था। इनके साथ-साथ पीएच डी. के शोध-छात्र अलग रहते।

एम फिल. मे छात्रो की संख्या सीमित रही है। अधिकतम सख्या प्राय प्राध्यापकों की सख्या को ध्यान मे रखकर निर्धारित की जाती थी। सब को एक-एक शोध — छात्र प्रबन्ध लिखवाने मिलता था। आठ-नौ छात्र रहते थे।

उनमे से कक्षा मे मुश्किल से चार-पॉच उपस्थित रहते थे। प्राय पाठ्यक्रम मे आधुनिक कवि (समकालीन कवि कहना चाहिए) और कथाकार अधिक (कहना चाहिए) रहा करते थे। प्रबन्ध कवियो तथा कथाकारो पर अधिक लिखवाए गए है। केन्द्र मे कथा-साहित्य अधिक रहा है और उसके बाद समकालीन कवियो को अधिक जगह मिली है। भारतेन्दु युग से पहले का साहित्य प्राय उपेक्षित रहा है।

अनुसधान के क्षेत्र मे या काम करवाने मे छात्र से सीधा सम्पर्क रहता है। अनुसधान का काम कक्षा मे कम और कक्षा से बाहर — ग्रथालय में अधिक रहता है। उससे व्यक्तिगत रूप से मिलना आवश्यक होता है। नये शोध-छात्र घबराए हुए रहते है। उनमे आत्मविश्वास हो तो कार्य आगे बढता है। सब मे अधिक कमी पुस्तको की रहती है। सामग्री की खोज मे आधा समय निकल जाता है। उन्हे समझाना और बतलाना और भी कठिन होता है।

कुल ग्यारह छात्रो की पीएच.डी उपाधि १९७३ ई से १९९५ ई तक मिली है। अन्तिम दो छात्रो को मेरे सेवानिवृत्त होने के बाद मे मिली। ग्यारह शोध-छात्रों मे छ छात्रो के शोध-प्रबन्ध प्रकाशित भी हुए है।

□ □

□ **शकुन्तला पांचाल - मै** शोध-छात्र हो या शोध-छात्रा हो — शोध-यात्रा पर भेजता रहा हूॅ। विषय के जानकार नामी विद्वानो से मिलने कहता रहा हूॅ। पुस्तके खरीदने लगाता। शोध-यात्रा मे क्या-क्या मिला ? सब पूछता था। तदनुसार कार्य आगे बढ़ता था। **शकुन्तला पांचाल** पहली शोध-छात्रा है। उसका विषय **'बिहारी की भाषा'** है। उसे १९७३ ई मे उपाधि मिली। बाद मे उसे यही पर विवेकानद कालेज में नौकरी भी मिल गई है। आज वह स्नातकोतर हिन्दी विभाग की अध्यक्ष है। उसी कालेज मे है। परिश्रम से उसने सब कुछ पाया है। उसे मैंने अपने गुरु डॉ. चन्द्रभान रावत के पास भेजा। वह तिरुपति गई और बाद मे मथुरा (लोहबन) भी गई। इसी तरह उसे डॉ हरदेव बाहरी के पास इलाहाबाद भी जाने के लिए कहा। कोश का काम करना था। इसलिए कोश विज्ञान के अधिकारी विद्वान् से मिलना आवश्यक समझकर उसे वहॉ भेजा। इस नाते मेरा भी डॉ हरदेव बाहरी से परिचय हुआ। बाद मे जब मैं इलाहाबाद गया तो डॉ हरदेव बाहरी से मिलकर आया था। मैने अनुभव किया कि मथुरा और इलाहाबाद की यात्राओ के बाद में शोध-छात्रा का आत्मविश्वास बढा है। उसे यह मालूम हो गया कि क्या करना है। चार वर्षो के भीतर उसे उपाधि मिल गई। डॉ आनन्द प्रकाश दीक्षित उसकी मौखिकी के लिए आए थे।

बदरीनारायण श्रोत्रिय दूसरे शोध-छात्र थे । विषय था —

☐ **'भक्तिकालीन भक्त कवियो की सौंदर्य भावना'** - पहले इसी नाम पर रजिस्ट्रेशन हुआ । इसमें प्रधान चार कवि — सूर, तुलसी, कबीर और जायसी पर काम करना था । मै आरम्भ मे ही विषय को सीमित करना चाहता था । किन्तु माने नही । कहा - 'मै सब कर लूँगा' । काम आरम्भ करने के बाद उन्हे कबीर और जायसी पढना ठीक नही लगा । वे केवल सूरदास और तुलसीदास पर ही काम करना चाहते थे । मेरी दृष्टि मे वह भी अधिक था । मैने विषय वही रखते हुए विषय की सीमाओ का ध्यान रखते हुए कोष्टक मे लिखवा दिया । 'सूर तथा तुलसी के संदर्भ में' । सूर और तुलसी भी अधिक होंगे, यह जानकर मैने उन दोनों कवियो की भी सीमाएँ बना दी । तुलसी में केवल 'रामचरितमानस' और सूरदास मे केवल सूरसागर के पदो की संख्याएँ बतला दी । अब तो श्रोत्रियजी को वह भी अधिक लगा । बाद मे वे सूरदास को भी छोडना चाहते थे और केवल 'रामचरितमानस' पर काम करना चाहते थे । किन्तु बार-बार विषय बदलना संभव नहीं था । सौंदर्य बोध का अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए **कवि समयों** के चयन का काम करने कहा । उपमानो की तालिकाएँ बनवाई । कार्डो पर अलग-अलग लिखने कहा । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की **'हिन्दी साहित्य की भूमिका'** पढने कहा । इसी तरह राजशेखर की पुस्तक भी पढने कहा । विष्णुस्वरूप ने कवि समयो पर स्वतंत्र कार्य किया है । वह पुस्तक BHU से छप गई थी । वह मँगवाई गई । श्रोत्रियजी ने श्रम किया । तालिकाएँ बनवाई । सब कुछ किया । बीच-बीच मे घबरा जाते थे। उन्होने औरंगाबाद मे रहकर काम किया । उन्हे धर्माबाद से आना पडता था । उनका काम पूरा हुआ । १९७८ ई मे उन्हे उपाधि मिली । डॉ. श्रीधरसिंह मौखिकी के लिए कालिकट से आए थे । प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है ।

☐ **कमलाकर गंगावणे ने कथाकार रांगेय राघव** विषय पर काम किया । रांगेय राघव की पत्नी जयपुर मे रहती है । उनसे मिलने गंगावणे जयपुर गए थे। श्रीमती सुलोचना राघव ने उनकी सहायता की । सामग्री उपलब्ध हुई । रांगेय राघव की मित्र-मण्डली से मिलने आगरा भी गये । १९७९ ई मे उपाधि मिली । प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है । सुलोचना राघव के भाई यहाँ पर पुलिस विभाग में D.I.G थे । वह अपने भाई से मिलने आई थी । घर पर मिलने आई । गंगावणे का प्रकाशित प्रबन्ध मुझ से लेकर गई । बाद मे गंगावणे की नियुक्ति हिन्दी विभाग मे हुई । अब सेवानिवृत्त हो गए है । मौखिकी के लिए डॉ. प्रेमशंकर सागर से आए थे ।

☐ **दर्शनसिंग सिलगार** का विषय 'महाराष्ट्र की हिन्दी पत्रिकाओं का इतिहास' था। प्रबन्ध मे १९७५ ई तक की पत्रिकाओ का इतिहास है। दर्शनसिंग ने महाराष्ट्र के प्रमुख नगरो का भ्रमण किया। पत्रिकाओ के कार्यालयो मे गये और प्रोफार्मा के अनुसार सामग्री और आंकडे लिखकर लाए। नमूने के तीन-चार अक भी एकत्रित किए। सामग्री बहुत हो गई। सब की तालिकाएँ बनवाई। एक अध्याय भारत की हिन्दी पत्रिकाओ पर भी लिखा। प्रबन्ध मे सर्वेक्षण की सामग्री व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया है। १९७९ ई मे उपाधि मिली। मौखिकी के लिए डॉ रमेशकुन्तल मेघ अमृतसर से आए थे। उक्त प्रबन्ध प्रकाशित नही हुआ। दर्शनसिंग के निधन का समाचार मिला। होनहार युवक असमय मे चला गया। प्रबन्ध छपने से रह गया। विश्वविद्यालय मे प्रबन्ध की प्रति है।

☐ **राजलक्ष्मी नायडू** ने 'विष्णु प्रभाकर व्यक्तित्व और कृतित्व' — पर काम किया। राजलक्ष्मी नायडू श्री विष्णु प्रभाकर से मिलने दिल्ली गई थी। उसको सारी सामग्री मिल गई थी। काम पूरा हो रहा था किन्तु परेशान रहती। सामग्री को व्यवस्थित आकार देने में समय लगा। वह १९८४ ई में. पीएच.डी हो गई। उसका प्रबन्ध छप गया है। वह अब स्थानीय अम्बेडकर कामर्स कालेज मे हिन्दी की प्राध्यापिका है।

☐ **रंगादेवी शुक्ला** के शोध-प्रबन्ध का विषय **'मिश्रबन्धु और उनका साहित्य'** था। मिश्र बन्धु लखनऊ मे रहते थे। अत रगादेवी शुक्ला को लनखऊ भेजा। इलाहाबाद और वाराणसी भी जाने के लिए कहा। वह गई। साहित्य-सम्मेलन, इलाहाबाद मे स्वय प्रभात मिश्र ने अभिरुचि ली उसे वहाँ उपलब्ध सामग्री से अवगत किया। इसी तरह वाराणसी मे नागरी प्रचारिणी सभा मे भी उसे विपुल सामग्री मिली। लखनऊ मे मिश्रबन्धुओ के घर पर गई। घर पर वृद्ध प्रतापनारायण मिश्र मिले। उन्होंने रगादेवी शुक्ला को सामग्री दिखलाई। उसने मिश्रबन्धुओ की आत्मकथा की पाण्डुलिपि भी देखी। वह अप्रकाशित थी। सब कुछ देखने के बाद वह लौट गई। उस यात्रा में उसका काफी काम हो गया था। मेरी इच्छा रही कि आत्मकथा की फोटो कापी ले आती तो उसको प्रबन्ध के साथ जोडा जा सकता है। उसे पुन लखनऊ भेजा। वह गई और आत्मकथा की फोटो कापी ले आई। प्रबन्ध के साथ आत्मकथा को अलग से जोडा गया। १९८४ ई. में उसे उपाधि मिली। उसके बाद वह मिली नही। प्रबन्ध छपा नही। आत्मकथा भी छपी नही। प्रबन्ध और आत्मकथा दोनों ही विश्वविद्यालय मे है।

☐ **प्रतिभा घारे** का विषय **'हिन्दी तथा मराठी के सर्वनाम'** था। उसने निर्देशानुसार दोनो भाषाओं के विकास को स्पष्ट करने के लिए संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश ही नही अपितु प्राचीन काव्यों के सर्वनामो के विविध रूपो की तालिकाएँ प्रामाणिक पुस्तको के आधार पर एकत्रित की। प्रत्येक रूप का अलग-अलग विवरण दिया। सारी तालिकाएँ भी प्रस्तुत की। प्रबन्ध पर १९८७ ई मे उपाधि मिली।

☐ हैदराबाद से **श्रीमती सी वसन्ता** आई। उस्मानिया विश्वविद्यालय से उसने एम ए किया था। उसके पति **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया** मे शाखा मे अधिकारी थे। इससे वसन्ता को यहाँ रहना था। भीमसेनजी निर्मल से परिचित थी। उसने **'नीरज'** पर काम करने की इच्छा व्यक्त की। उसके पति भी नीरज को चाहनेवालो मे थे। इच्छा न होते हुए छात्रा की अभिव्यक्ति को ध्यान मे रखते हुए मैंने विषय स्वीकार कर लिया। उसने श्रम किया और काम किया। नीरज से मिलने अलीगढ गई। वह तेलुगु की पत्रिकाओ मे लिखती रही है। उसके तेलुगु के उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए है। १९८७ ई मे वह पीएच.डी हो गई। उसका प्रबन्ध 'गीतकार नीरज' वाणी प्रकाशन ने प्रकाशित किया है। डॉ रमेशकुंतल मेघ और डॉ श्रीधरसिह उसके परीक्षक थे। ठाकुर साहब उस समय गुवाहाटी से मौखिकी के लिए आए थे। वसन्ता को किसी कालेज मे नौकरी नहीं मिली। वह अनुवाद का कार्य करती रही। उसने मराठी सीख ली। लातूर में रहते समय उसने 'उचल्या' उपन्यास का मराठी से तेलुगु मे अनुवाद किया। वह साहित्य अकादमी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। बाद मे उसने प्रख्यात उपन्यासकार विष्णु प्रभाकर के उपन्यास **'आर्द्धनारीश्वर'** का तेलुगु में अनुवाद किया। वह भी साहित्य अकादमी दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। तापी धर्माराव की तेलुगु पुस्तको का अनुवाद हिन्दी मे किया। उनका प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन से हुआ है। उसका कार्य जारी है। सम्प्रति वह औरगाबाद मे रहती है।

☐ मराठी के प्रोफेसर एव अध्यक्ष डॉ. युसूफ पठाण की पत्नी **एन. बी. पीरजादे** ने **'महाराष्ट्र का हिन्दी सन्त साहित्य'** विषय पर काम किया। १९८८ ई मे उन्हे उपाधि मिली।

पी-एच डी. के लिए यो तो बहुत से छात्र मिलते रहे है। कुछ छात्र रजिस्ट्रेशन के बाद मे बीच मे ही काम छोडकर चले गये। व्यक्तिगत कारण रहे है। नौकरी मिल गई तो काम छोड दिया। छात्राओ का विवाह हो गया तो काम छोड दिया। और भी कुछ कारण हो सकते है। टिककर धैर्य के साथ काम करनेवाले ही अन्त मे सफल हुए। इन छात्रो के कारण मैंने सम्बन्धित

विद्वानो और लेखको मे पत्र-व्यवहार किया है । तदनुसार छात्रो को यात्रा पर जाने के लिए कहा है । अवसर मिलने पर मै भी जब उस गॉव या शहर मे गया तो विद्वानो और लेखको मे मिलने गया हूँ । गगादेवी शुक्ला मिश्रबन्धुओ के घर गई थी । मैं भी बाद मे जब लखनऊ गया तो उस समय मिश्र बन्धुओ के घर पर गया था । प्रतापनारायण मिश्र से मिलकर आया हूँ । मैं इससे पूर्व १९७९ ई मे भी लखनऊ गया था । लखनऊ मे उस्मानिया विश्वविद्यालय के मेरे गुरु डॉ रामकुमार खण्डेलवाल रहते है । ग्रीष्मावकाश मे लखनऊ मे थे । उनसे मिलने गया । घर पर मिल गये । मैंने कहा — श्री नारायण चतुर्वेदी से मिलना चाहता हूँ । उनको साथ लेकर श्री नारायण चतुर्वेदी से मिलने गया । कोठी के बाहरी आगन मे खटिया पर लेटे हुए थे । उठकर बैठ गए । बहुत वृद्ध हो गए थे । सरस्वती की फाइले उनके पास मे थी । उन्होने दिखलाई । बैठकर बाते की । बहुत प्रसन्न हुए । उन्होने मेरे लेख 'सरस्वती' मे प्रकाशित किये है। लौटते समय उन्होंने हम दोनो को अपनी सम्पादित पुस्तक **'अस अद्‌भुत बानी'** की एक-एक प्रति दी । ५ जून १९७९ ई को यह भेट हुई थी । भूषण कवि का एक बृहत् चित्र भी दिया । वह चित्र 'भूषण और उनका साहित्य' — पुस्तक के दूसरे सस्करण में छपा है ।

पी-एच डी के छात्रो से एम फिल के छात्रो की सख्या अधिक रही है । प्रबन्ध लिखवाने के लिए प्रति वर्ष एक छात्र रहता ही था । बहुत हुआ तो वैकल्पिक रूप मे आधुनिक कवि रहते । मैंने जैसे पीएच डी के छात्रो को सामग्री एकत्रित करने बाहर भेजा है, वैसा भेजना कठिन हो जाता । तदर्थ पत्र-व्यवहार करता । अज्ञेय की कहानियों पर कु. भपीदर कौर टुटेजा को प्रबन्ध लिखवाना था । तदर्थ मैंने अज्ञेय को पत्र लिखा था । उत्तर मे अज्ञेय का पत्र मिला था । पत्र का उत्तर इस प्रकार है —

सच्चिदानन्द वात्स्यायन

कैवेंटर्स ईस्ट, कैवेंटर लेन,
सरदार पटेल मार्ग
नई दिल्ली - २१
जुलाई ३, १९८१ ई.

प्रियवर,

आपका १० जून का पत्र मिला है । आपकी शोध-छात्रा आवश्यक समझे तो पत्रव्यवहार कर सकती हैं। मेरी सम्पूर्ण कहानियॉ

दो जिल्दो मे राजपाल के यहाँ से प्रकाशित हुई है - पुस्तक मगाने के लिए अलग-अलग नाम देना आवश्यक नहीं है, लेकिन एक भाग का नाम है '**छोडा हुआ रस्ता**' और दूसरे का '**लौटती पगडंडियाँ**'। उनके साथ कहानी तथा विशेष रूप मे अपनी कहानी के विषय मे भूमिकाएँ भी हैं जो शोध-छात्रा के लिए उपयोगी हो सकती है।

हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य नाम के निबन्ध संग्रह मे भी कहानी विषयक दो-एक लेख है जो कदाचित् उपयोगी हो। इसी प्रकार **आत्मनेपद** तथा **लिखि कागद कोरे** मे कुछ प्रश्नोत्तर है जो काम आ सकते है। ये दोनो पुस्तके भी राजपाल की है। **अपरोक्ष** नाम से भेट वार्ताओ की एक पुस्तक छपी है जिसमे भी कुछ उपयोगी सामग्री हो सकती है। यह पुस्तक सरस्वती विहार, दरियागज दिल्ली की है। आशा है आप प्रसन्न है। यह तो आपके पत्र से ज्ञात हुआ कि आप औरगाबाद मे है।

सस्नेह

आपका

सच्चिदानन्द वात्स्यायन

डॉ राजमल बोरा
६, आनन्द नगर,
टाउन हॉल, औरगाबाद - ४३१ ००१

कु भूपीदरकौर टुटेजा को १९८२ ई. मे एम फिल की उपाधि मिली। उसके बाद उसने अपना नाम पीएच डी के लिए भी रजिस्टर्ड किया था। किन्तु विवाह हो गया। उसके बाद छोड दिया। टुटेजा से पूर्व सुरेश खाण्डवे ने '**यशपाल कि कहानियों का शिल्पविधान**' विषय पर काम किया। वह १९८१ ई मे एम फिल हुआ। इसी तरह रमाकान्त अपरे ने '**नागार्जुन की कविता**' पर काम किया। उसे १९८४ ई मे उपाधि मिली। एम ए के लिए भी प्रबन्ध लिखवाये गये। कुमुदिनी तळेले ने '**धूमिल की कविता**' पर काम किया। यह काम १९७९ ई मे पूरा हुआ।

सेवानिवृत्त होने से पूर्व के वर्षो मे मैने निर्णय कर लिया था कि **भाषा विज्ञान** से सम्बन्धित विषय पर काम करवाऊँगा। छात्र-गण कथा-साहित्य पर ही काम करना चाहते थे। ऐसे जो भी छात्र आते मै अन्य सदस्यो के पास भेज देता

था । अन्तत दो छात्रों ने काम करना स्वीकार किया । उनका रजिस्ट्रेशन पीएच डी के लिए हुआ । व है —

श्री भालेराव **नान्देड जिला · भाषा सर्वेक्षण**

दीनानाथ फुलवाडकर **परभणी जिला . भाषा सर्वेक्षण**

इन दोनो मे भालेराव लातूर के महाविद्यालय मे प्राध्यापक थे और दीनानाथ फुलवाड़कर गगाखेड मे थे । मैंने दोनो से ही कह दिया था कि उन भाषाओ पर काम करना है जिन्हें जनजातियाँ बोलती है । ऐसी कितनी भाषाएँ है और उनको बोलनेवाले समुदाय क्या करते है । मेरी इच्छा तो मराठवाडा की सभी जनजातीय भाषाओ का सर्वेक्षण करवाना था । सब जिलों के लिए तो छात्र मिले नही तो जो मिले उन पर सतोष करना पडा । भालेराव को १९९४ ई मे तथा दीनानाथ फुलवाडकर को १९९५ ई मे उपाधियॉं मिली । दोनो ही डॉक्टर हो गए । यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि दीनानाथ फुलवाडकर तो शान्त चित्त से काम करता रहा किन्तु भालेराव को विषय अटपटा लगा । समझने और काम पूरा करने मे समय लगा । उसे अपने काम पर विश्वास ही नही था । उसको देखने और विश्वास दिलाने हेतु लातूर मे उसके घर पर भी गया हूँ । मै पी-एच डी. के छात्रो के घर पर जाता रहा हूँ । उनकी पुस्तकें देखता था । लिखित सामग्री देखता था। जो घबराए रहते या स्वय मे आत्मविश्वास की कमी रहती तो उनके घर जाने मे उनमे आत्मविश्वास बढता था । छात्र के घर पर तो अकेले चला जाता था । किन्तु छात्रा के घर पर अकेले नही गया । राजलक्ष्मी नायडू के घर पर अष्टेकर साहब को साथ लेकर जाता रहा हूँ । कमलाकर गगावणे भी बहुत घबराए रहते । उसके घर पर भी गया हूँ । अतत गगावणे के लिए अपने कमरे में जगह दी और पास मे बैठाकर काम करवाया । जो छात्र आत्मविश्वास से काम करते, उनके घर पर नहीं गया। छात्रो के माता-पिता से भी आवश्यकतानुसार मिलता रहा हूँ। विशेष रूप से छात्राओं के पिता से मिलता था और अपनी लडकी की कठिनाइयो से अवगत करता । इच्छा रही कि उनका काम ढग से पूरा हो जाए । जो कोई लिखकर लाता । उन्हे पढवाता और ध्यान से सुनता था । उनकी सामग्री को उसी समय देखता, जब वे सामने बैठे हुए रहते क्योंकि उन्हें उनकी भूलो से उसी समय अवगत कर देता था । जो पढता या लिखता नही था, उनसे बात क्या करे ? पढते समय — मूल पुस्तकें साथ मे लाने के लिए कहता था । मुझे सन्देह होता तो मूल पुस्तक देख लेता था । ऐसा होने के कारण काम मे विलम्ब भी

हुआ है । नीरज में काम करनेवाला का काम पूरा हुआ है । भालेराव का प्रबन्ध — 'जनजातियों की बोली, समाज और संस्कृति' नाम से छप गया है । २००० ई. में, इसका प्रकाशन हुआ । इस प्रकाशन से उसका आत्मविश्वास बढ़ा है । औरंगाबाद आया। घर पर मिला । प्रबन्ध की प्रति दी । उसकी प्रसन्नता मुझे अच्छी लगी । पढ़नेवाला छात्र मुस्कुराकर और प्रसन्न चित्त लौटकर आए तो अच्छा लगता है । अध्यापक की उपलब्धि यही है । २९ जून २००३ को लातूर से फोन आया। भालेराव बोल रहा था । 'सर, मेरी नियुक्ति पुणे विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर के रूप में हो गई है । कल ३० जून को पुणे जा रहा हूँ । १ जुलाई २००३ को ज्वाइन होना है । मेरी और पुस्तकें भी छपी हैं। मिलने आऊँगा ।' सुनकर मुझे अच्छा लगा । मैंने बधाई दी ।

दीनानाथ फुलवाडकर की अपने ही कालेज में तरक्की हो गई और अधिक व्यस्त रहने लगा है । प्रबन्ध के प्रकाशन की ओर ध्यान नहीं दिया । यू.जी.सी. के प्राजेक्ट पर काम कर रहा है । बीदर जिले की भाषाओं — पर उसका कार्य जारी है । बीदर जिले पर काम करने के लिए मैंने ही उसे कहा है । इसका कारण यह है कि इस जिले में मराठी, तेलुगु और कन्नड — तीनों भाषाओं का संगम है । भाषाओं की त्रिवेणी संगम इस जिले में है । बीदर जिला आज तो कर्नाटक में है और उसके भी कारण है । कल्याणी के चालुक्य राजाओं ने इसी क्षेत्र को अपनी (कल्याणी को) राजधानी का स्वरूप दिया । कल्याणी बीदर जिले में है। उससे पहले राष्ट्रकूटों की राजधानी भी इसी जिले में थी । राष्ट्रकूटों तथा चालुक्यों के समय में मराठी, तेलुगु तथा कन्नड भाषाओं को स्वतंत्र रूप मिल नहीं सका था । वस्तुतः राष्ट्रकूटों तथा चालुक्य के समय में इन भाषाओं का उद्गम काल मानना चाहिए । इस दृष्टि से इन भाषाओं से पहले इस क्षेत्र में प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ रही हैं । काल्डवेल के कारण दक्षिण की भाषाओं को उत्तर की भाषाओं से अलग कर दिया है । इस दृष्टि से बीदर जिले की भाषाओं का अध्ययन उत्तर-दक्षिण की भाषाओं का संगम बतलानेवाला क्षेत्र हैं । इस दृष्टि से इस जिले की भाषाओं का अध्ययन आवश्यक समझता रहा हूँ । दीनानाथ फुलवाडकर का काम जारी है । उसे देखने के बाद में कुछ विस्तार से कह सकूँगा ।

□ □

2

शोध-परियोजना

तिरुपति मे मैंने मध्यकालीन वीरकाव्यो पर यू जी सी के प्रोजेक्ट पर कार्य किया था। मै उसी कार्य को आगे बढाना चाहता था। तदर्थ मैंने पत्र-व्यवहार किया। अब तक मैंने उत्तर भारत की कोई यात्रा शोध कार्य के प्रयोजन से नही की थी। मैं विद्वानो को मिलना और उनसे चर्चा करना चाहता था। तदर्थ यात्रा करना चाहता था। तिरुपति से जो यात्राएँ होती, वे प्रायः (पूना को छोडकर) पारिवारिक स्वरूप की थी। अब तो मै अपने क्षेत्र मे आ गया था। जब चाहे, तब परली, लातूर जा सकता था और परिवार के लोग भी आने-जाने लगे थे। और फिर तिरुपति से लम्बी यात्रा पर निकलना अपेक्षाकृत कठिन था। औरगाबाद से तिरुपति जाने मे जितना समय लगता, उतने समय मे दिल्ली पहुँचा जा सकता था। यों औरगाबाद उत्तर भारत और दक्षिण भारत के मध्य में है। मिल कार्नर पर रहते हुए ही मैंने डॉ रामविलास शर्मा को पत्र लिखा। कुछ प्रश्न पूछे थे।

उनका उत्तर मिला । मैंने ग्रीष्मावकाश मे यात्रा की योजना बनाई । वीरकाव्यो के अध्ययन के लिए उदयपुर, जयपुर आदि की यात्रा पर जाने की योजना थी ।

☐ ☐

अप्रैल १९६९ ई. : प्रथम शोध-यात्रा

अप्रैल १९६९ ई के द्वितीय सप्ताह मे ग्रीष्मावकाश का आरभ हुआ । छुट्टियाँ होते ही यात्रा पर निकला । सबसे पहले सीधे आगरा गया । आगरा मे राजा की मण्डी स्टेशन के निकट धर्मशालाएँ है । वही ठहर गया । १९६३ ई म अलीगढ अधिवेशन के समय आगरा पहुँचा था किन्तु आगरा मे ठहरा नही था । उस समय मक्खनलाल शर्मा आगरा मे रहते थे । उनसे मिला था । वे साहित्य-सन्देश का सम्पादकीय कार्य करते थे । उन्होने मेरे कुछ लेख साहित्य-सन्देश मे प्रकाशित किये थे । इसी तरह उस समय डॉ सत्येन्द्र से भी, उनके बगले पर मिला था । इस बार मै विनोद पुस्तक मन्दिर के मालिक भोलानाथजी से पुन मिला । उनसे पूछकर ही बाद मे डॉ. रामविलास शर्मा से मिलने उनके निवास स्थान पर पहुँचा । बगला नया था । १८ अप्रैल १९६९ ई को मिला । सबेरे सबेरे गया था । पत्र-व्यवहार उनसे पहले ही हो गया था । वीरकाव्यो पर काम कर रहा था । उक्त विषय की ऐतिहासिकता पर चर्चा हुई । जो कुछ बात हुई, उसे मैंने उसी दिन सायकाल मे टिप्पणियो के रूप मे लिख ली । आगरा का किला देखा । ताजमहल देखा । दयालबाग देखकर आया । एक दिन फतेहपुर सीकरी देखकर आया । दूसरे दिन सबेरे सबेरे महेन्द्रजी से मिलने साहित्य सन्देश के कार्यालय 'साहित्य रत्न भाण्डार' पहुँचा । महेन्द्रजी मिल गये । उनसे बात हुई । वृद्ध हो गए थे । उन्होने बहुत काम किया । उनके समय मे आगरा ही केन्द्र था । दिल्ली को बाद मे महत्त्व प्राप्त हुआ । प. जगन्नाथ तिवारी से उस समय मिलना नही हुआ । उनका नाम डॉक्टर साहब से तिरुपति मे कई बार सुना है । तिरुपति में डॉक्टर साहब, डॉ चन्द्रभान रावत, डॉ रामबाबू शर्मा — सभी आगरा से जुडे हुए थे । आगरा के बाद मे वहाँ से मथुरा गया । स्टेशन पर पण्डो ने परेशान किया । मुझे मथुरा मे ठहरना नही था । प्रभुदयाल मीतल से मिलना था । उनका पता था । मिलकर आया । होली गेट पहुँचने से पहले ही स्टेशन के निकट उनकी कोठी थी । द्वारका मन्दिर गया और लौटकर जयपुर गया । दिल्ली नहीं गया ।

जयपुर मे स्टेशन के निकट पंचायती धर्मशाला है । उसी मे ठहर गया । यूनिवर्सिटी गया । हिन्दी विभाग में गया । इतिहास विभाग मे गया । डॉ. नरेद

भानावत से मिला। इतिहास विभाग मे उस समय गोविन्दचन्द्र पाण्डेय थे। उनसे मिलना चाहता था। मिले नही। उस समय सरनामसिंह शर्मा हिन्दी विभाग मे थे। डॉ सत्येन्द्र भी वही पर थे। डॉ. सत्येन्द्र को उनके क्वार्टर पर मिला। वही पर सरनामसिह शर्मा भी मिल गए थे। दूसरे दिन किसी ने मुझे मथुरालाल शर्मा का परिचय दिया और उनका निवासस्थान भी बतलाया। तदनुसार उनकी कोठी पर गया। मिल गये। वे सेवानिवृत्त वाइस-चांसलर थे। इतिहास के प्रोफेसर थे। उन्होने जदुनाथ सरकार के चार वाल्यूमों का 'मुगल साम्राज्य का पतन' हिन्दी मे अनुवाद किया था। उनसे बात हुई। वे बडे उदार थे। उन्होंने पूछा — 'कहाँ ठहरे हो ?' मैंने धर्मशाला का नाम बतलाया। बोले ठीक है। यहाँ ठहरना चाहो तो चले आओ। ऊपरवाला कमरा दिखलाया। वंशभास्कर के सभी छ भाग उनके पास में थे। उन्होंने दिखलाए। कहा — 'बैठकर पढ़ो। उन्होंने मेरे भोजन की व्यवस्था कर दी। तीन-चार दिन उनके घर पर बैठकर पढ़ता रहा और लिखता भी रहा। चाहकर भी उस लिखित सामग्री का उपयोग अपने लेखन मे नही कर सका हूँ। उसके प्रथम राशि के द्वादश मयूख का छंद लिख रहा हूँ। छद के साथ साथ मैंने उसका अर्थ भी लिख लिया था। वह इस प्रकार है —

वंशभास्कर — प्रथम राशि, द्वादश मयूख

प्राकृत संस्कृत पद प्रचुर ब्रजदेसी हु बिसेम ॥
अरु अपभ्रंस हु अधिक पैसाची कँह पेस ॥४॥
ब्रजबिभक्ति जुत है बहुत, ए ५ पद सभरवार ॥
बहुठाँ ए हि बिभक्ति बिनु, अपभ्रस अनुसार ॥५॥
पुर दिल्ली, ग्वालेर पुर, बीच ब्रजादिक देस ॥
पिंगल उपनामक गिरा, तिनकी मधुर बिसेस ॥६॥
या तै नरबानी यहहि, रक्खी तँहँ इक और ॥
कहुँ अर्थ रु पद दृढ करन जोहु सुनहु मति जोर ॥७॥

अर्थ — इस ग्रंथ मे प्राकृत, सस्कृत, ब्रजभाषा और अपभ्रश भाषा के पद बहुत हैं और कही कही पैशाची भाषा के पद भी है ॥४॥ हे सांभरवार (चहुवाण) इन भाषाओं के बहुत से पद तो ब्रजभाषा की विभक्तियो सहित हैं और ये ही पद बहुत सी जगह अपभ्रश भाषा के अनुसार बिना विभक्ति भी हैं ॥५॥ दिल्ली नगर और ग्वालेर नगर के बीच ब्रज आदि देश हैं, उन देशो की भाषा जिसका उपनाम पिगल है, बहुत ही मधुर है ॥६॥ इसी कारण से मैंने यही नर भाषा रक्खी

है जिसमे अर्थ और पद को दृढ करने के लिए एक और नवीन गीति रक्खी है सो भी बुद्धि लगाकर सुनिये ॥७॥

(कृष्णसिंह बारहठ ने टीका लिखी है । पृ १४० से)

□ □

वंशभास्कर

वंशभास्कर का कवि सूर्यमल्ल मिश्रण का जन्म १८१५ ई मे हुआ । उसकी मृत्यु १८६८ में हुई । वह उन्नीसवीं शती का कवि है । ब्रिटिश शासनकाल है। मुझे १६०० ई से १८०० ई के बीच के कवियों पर काम करना था । इसीलिए बाद मे मैंने इस कवि पर कार्य नहीं किया । मैं चाहता तो उसके सभी वाल्यूम खरीद सकता था । बाद मे मैंने मराठवाड़ा विश्वविद्यालय के ग्रंथालय मे उक्त काव्य के सभी भाग मगवा लिये ।

उक्त ग्रंथ का अध्ययन उस समय जो किया, उससे मेरा लाभ हुआ है । इतनी बात सच है कि उक्त ग्रथ के महत्त्व को हिन्दी साहित्य के इतिहास मे जगह नही मिली है । मुझे लगता है कि पृथ्वीराजरासो से वशभास्कर तक एक परम्परा रही है। एक छोर पर चंदबरदाई है, तो दूसरे छोर पर सूर्यमल्ल मिश्रण है । सूर्यमल्ल मिश्रण ने ब्रजभाषा मे काव्य लिखा है और पिगल का परिचय दिया है । परम्परा का पालन करते हुए उसने लौकिक (ऐतिहासिक) काव्य लिखा है ।

उदयपुर के आलमशाहखान ने वशभास्कर पर शोध कार्य किया है । वह शोध-कार्य मैंने प्रकाशित रूप मे नहीं देखा । आलमशाहखान कहानी लेखक के रूप में अधिक ख्यात हुए । उनकी कहानियाँ 'सारिका' में छपती रहती थी ।

□ □

बीकानेर : श्री अगरचंदजी नाहटा

भूषण पर शोध करते समय, मैंने बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा को पत्र लिखे थे । उन पत्रों के उत्तर भी मिले थे । उन्होंने लिखा था कि बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर की यात्रा करने से बहुत सामग्री मिलेगी । तिरुपति मे रहते हुए उस समय बीकानेर नहीं गया था । जयपुर का काम हो जाने पर बीकानेर जाने का निर्णय किया । कस्तूरचंद कासलीवाल से मिलना चाहता था । उनसे मिलना नही हुआ। मै सीधे बीकानेर पहुँचा । आगरा और जयपुर की यात्रा में ही थक गया था । बीकानेर स्टेशन पर उतरते ही सीधे टागा किया और नाहटो की गवाड पूछते-पूछते

पहुँच गया। सभवत सबेरे आठ-नौ बजे पहुँचा था। रात मे सो नही सका था। घर मे पहुँचा तो नाहटाजी मिले नही। वे आसाम गए हुए थे। उनका पुत्र मिला। उसने मुझे ऊपर का कमरा दे दिया। मैं वैसे ही सो गया। दोपहर तक सोता रहा। बाद में उठकर स्नान किया। भोजन किया। उनके पुत्र ने ग्रथालय दिखलाया। अभय जैन ग्रथालय का भवन निकट ही था और वह श्री अगरचन्दजी नाहटा का था। उनके पास विपुल सामग्री हस्तामलक थी। उक्त ग्रथालय मे बैठकर उक्त ग्रथालय से टिप्पणियाँ तैयार कर लीं। आवश्यक पुस्तके जो देखने मे आई, उनकी सूची बनवा ली। छिताई चरित्र सबसे पहले वहीं पर देखी। राजस्थान पुरातन ग्रथमाला के अन्तर्गत प्रकाशित कुछ रचनाएँ देखी — 'कवि पीथल विरचित, जुगल विलास' पुस्तक देखी। राधाकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित छंद उसमे थे। सम्पादको में मुनि जिनविजयजी और लक्ष्मीकुमारी चूडावत के नाम थे। उसी क्रम मे कवीन्द्राचार्य सरस्वती की रचना 'कवीन्द्र कल्पलता' देखी। उसका परिचय विस्तार से लिख लिया। और भी पुस्तके देखी। नाहटाजी के घर पर ही जहाँ मैं ठहरा हुआ था, उस कक्ष मे मैंने स्वय डॉ करणीसिंह की लिखी पुस्तक '**बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध**' (सन १४६५ ई. से १९४९ ई तक) देखी। उसका प्रकाशन बीकानेर से ही हुआ है। उक्त पुस्तक के परिशिष्ट की सामग्री लिख ली। उसमे बीकानेर के साथ साथ समकालीन जोधपुर, जयपुर, उदयपुर और केन्द्रीय शासकों के नाम ईसवी सन् के क्रम मे लिखे हुए थे।

□ □

उदयपुर : साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ

बीकानेर मे और कही नही गया और किसी के पास गया भी नहीं। वहाँ से सीधे उदयपुर गया। चाहकर भी जोधपुर नही गया। उदयपुर मे सूरजपोल के पास चम्पालाल धर्मशाला में ठहर गया। साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ के निदेशक डॉ देवीलाल पालीवाल ने उसी धर्मशाला का नाम बतलाया था। उक्त धर्मशाला से साहित्य सस्थान निकट था।

उस समय साहित्य सस्थान में डॉ मोतीलाल मेनारियाजी पृथ्वीराजरासो का कोष तैयार कर रहे थे। वे अलग कक्ष में बैठते थे। उनकी सहायता के लिए सस्कृत भाषा के एक विद्वान् की भी नियुक्ति हुई थी। मोतीलालजी मेनारिया पहले मेवाड के सरस्वती पुस्तकालय के ग्रंथपाल थे। वह पुस्तकालय गुलाब बाग मे है। वहाँ से सेवानिवृत्त होने के बाद मे वे उक्त कोष-सम्पादन का काम करने

लगे। शब्दो के कार्ड बनाए गए थे। उन पर चर्चा होती, खोज होती और तब अर्थ लिखा जाता। बाद मे वह कोष छपा या नहीं ? मैं नहीं जानता। दूसरी बार जब उदयपुर गया, उस समय मोतीलालजी मेनारिया नही रहे।

साहित्य सस्थान मे ही दिनभर बैठकर काम करता था। टिप्पणियाँ लिख लेता। पुस्तके देखता। उनकी सूची लिख लेता। उपलब्ध सामग्री खरीद ली। वहाँ से शोध-पत्रिका निकलती रही है। उसका ग्राहक हो गया। डॉ देवीलालजी पालीवाल ने महाराणा प्रताप पर विशेष कार्य किया है। उनके द्वारा सम्पादित पुस्तके साहित्य-सस्थान से छपी भी हैं। उनके साथ साथ सस्थान मे उस समय देव कोठारी से भी परिचय हुआ। बाद मे देव कोठारी उक्त सस्थान के निदेशक हो गए।

उदयपुर की झीले देखी। राजमहल और मन्दिर देखे। बाजार और गलियाँ देखीं। उदयपुर पर्यटकों के लिए उत्तम स्थल है। उदयपुर में सायकाल मे, कभी-कभी प्रातःकाल में भी गुलाब बाग पहुँच जाता था। घूमने-फिरने के लिए वह अच्छा स्थान हैं। सूरज पोल से निकट भी है। एक दिन सरस्वती पुस्तकालय भी पहुँच गया। वहाँ के अधिकारी से भी मिला। मैने वीर विनोद की चर्चा सुनी थी और यह भी किसी ने बतलाया था कि गुलाब बाग के सरस्वती पुस्तकालय मे वह उपलब्ध है। मैंने **वीर विनोद** खरीदने की इच्छा व्यक्त की। वहाँ के अधिकारी ने कहा कि केवल फारमे मिलेंगे। जिल्दे आपको तैयार करनी होगी। लाल कपडो मे लपेटे हुए वीर विनोद के फारमे मुझे दिखलाए गए। मैंने दो प्रतियाँ खरीदी। एक अपने लिए और दूसरी मराठवाडा विश्वविद्यालय के ग्रथालय के लिए। दोनों के अलग अलग बिल लिए और दोनो प्रतियाँ लाल कपडे मे बधी हुई लेकर अपने स्थान पर पहुँचा। औरगाबाद लौटने पर मैंने एक प्रति यूनिवर्सिटी के ग्रथपाल गोरे साहब को बिल-सहित दे दी। उन्हे बतलाया कि यह ग्रथ आऊट ऑफ प्रिंट है। बाद में मैंने तो उक्त ग्रथ की आठ जिल्दे तैयार कर ली। कविराजा श्यामलदास का यह विशाल ग्रंथ वाराणसी मे उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरणो में छपता रहा है। किसी ने महाराणा से कविराजा के सम्बन्ध मे कुछ कह दिया और महाराणा ने आदेश देकर ग्रथ की जिल्दे बनवाना रोक दिया था। भारत के स्वतंत्र होने तक यह स्थिति बनी रही। स्वतत्रता के बाद उक्त ग्रथ पर से बधन तो हट गया किन्तु जिल्दो का काम तब भी नहीं हुआ। अध्ययन हेतु जो विद्वान् खरीदना चाहता था उसे फारमे दिए जा रहे थे। भारत इतिहास सशोधक मडळ पूना में भी मैंने वीर विनोद की जिल्दे देखी है।

उदयपुर मे मैंने वीरकाव्यो की सूची तैयार की । उपलब्ध काव्य ग्रथालय मे देखे । कुछ ग्रथ खरीदे । डॉ देवीलाल पालीवाल से जो चर्चा हुई उसकी टिप्पणियाँ लिख ली। महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह का परिचय मुझे वही पर मिला। खिडिया जगा की वचनिका और रतनरासो का परिचय भी मुझे यहीं पर मिला। 'रतलाम का प्रथम राज्य' तथा 'मालवा मे युगान्तर' पुस्तको की जानकारी भी मिली। बतलाया गया कि मुनि जिनविजयजी चितौड के पास चदेरिया ग्राम मे मिलेगे। महाराजकुमार — मन्दसौर के निकट 'सीतामऊ' मे मिलेंगे। मैंने नाम और पते सब लिख लिए। उस समय जयपुर, बीकानेर तथा उदयपुर मे जो सामग्री मिली, उस सब का उपयोग आज तक नही हो सका है। इसका कारण यह है कि क्या पढना चाहिए, क्या छोड देना चाहिए — इसका निर्णय मै नही कर सका। उस समय मै तथ्यों को बटोरने में लगा हुआ था। उन पर चिन्तन करने के लिए समय भी नही था।

आगरा, जयपुर, बीकानेर तथा उदयपुर की यात्रा करने के उपरान्त लगभग तीन सप्ताह की यात्रा पूर्ण करने के बाद औरगाबाद लौट आया। मेरे साढू शामलालजी बम्ब, उस समय परभणी में थे। मेरी पत्नी मेरी यात्रा के काल में औरगाबाद मे नही रही। वह बच्चों को लेकर परभणी पहुँच गई। परभणी से किसी को भेज दिया जाता और पत्नी तथा बच्चे उसके साथ परभणी पहुँच जाते। परभणी से बाद मे आवश्यक होने पर परली होते हुए अपने गॉव हिवरा माता-पिता के पास भी पहुँच जाती थी। स्कूल खुलने से पूर्व वह पुन औरगाबाद आ जाती थी। मिल कार्नर पर पडोस में रावसाहब रहते थे। तेलुगु भाषी थे। प्राणीशास्त्र विभाग में थे। उनके घर पर महत्त्वपूर्ण सामान रख दिया जाता था। रावसाहब भी वहाँ पर कुरुलकर के मकान मे किराये से रहते थे।

तिरुपति से सारा सामान व्यवस्थित रूप में पहुँच गया था। फिर भी गृहस्थी पूरी नहीं थी। गैस मैंने तिरुपति में देखी तो थी किन्तु खरीदी नही थी। १९६९ ई में मैंने स्थानीय एजेण्ट चन्दूलाल टी पारिख से गैस खरीदी। तुरन्त मिल गई। उस समय सिलेण्डर के साथ गैस २५० रुपयो मे मिली। गैस का चूल्हा घर मे आ गया। लोहे के काट्स (पलंग) खरीदे। तेजमल लातूर से आया था। उसने बजाज स्कूटर का नम्बर लगवाया। मेरा ध्यान उस ओर नही था। तेजमल की तरह न तो मैं व्यावसायिक रूप में सोचता-विचारता और न ही कभी व्यावहारिक रूप मे सफल रहा। काम चल रहा था।

□ □

वाराणसी की यात्रा

१९६९ ई में ही अक्तूबर-नवम्बर मे दीपावली के एक मास के अवकाश के दिना में वाराणसी गया । उस समय डॉक्टर साहब वाराणसी पहुँच गए थे । उनको क्वार्टर मिल गया था । उसी मे रहते थे । प्रोफेसर का क्वार्टर उन्हें बाद में मिला । मै तो सीधे नागरी प्रचारिणी सभा मे पहुँचा । वहॉ पर ठहरने के लिए स्थान मिल गया । उस वर्ष की दीपावली मैंने वाराणसी मे — सभा — मे गुजारी। सबेरे मै कारमाइकेल पुस्तकालय जाता था और दोपहर मे सभा के ग्रथालय मे बैठकर काम करता था । कारमाइकेल पुस्तकालय चौक से गोदौलिया के रास्ते पर है । विश्वनाथजी के मन्दिर के निकट ही है । उक्त पुस्तकालय मे बहुत-सी प्राचीन पुस्तके हैं । मैंने पुस्तको सूची तैयार कर ली । कुछ काव्य ग्रथो की टिप्पणियॉ लिख लीं । इसी तरह दो-तीन दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ग्रथालय मे काम किया । डॉक्टर साहब के साथ ग्रथालय गया था । बाद में तो अकेले चला जाता था । विश्वविद्यालय का कैम्पस बहुत बडा है । डॉक्टर साहब इसी कैम्पस मे सबेरे-सबेरे और शाम मे भी घूमते रहते हैं । लका तक चले आते है और सकट मोचन के मन्दिर मे जाते हैं । सकट मोचन मन्दिर जाना उनकी दैनिक दिनचर्या का भाग है । वाराणसी से बाहर गए हुए हो तो अलग बात है । मै उनके साथ कई बार सकट मोचन मन्दिर गया हूँ । वहॉ से लौटकर लंका के नुक्कड पर दूध-जलेबी ले लेते थे । लौटकर पुन सभा आ जाता था । सभा से विश्वविद्यालय का कैम्पस बहुत दूर है । साइकिल रिक्शे से जाना पडता था । वाराणसी साइकिल रिक्शो का नगर है । साइकिले भी खूब हैं । गलियॉ सकडी है । जिन्हे हम मुख्य सडकें कहें, वे भी सकडी है । भीतर जो गलियॉ है, वे तो और भी संकडी हैं। विशेष रूप से गंगाजी के घाटो के निकट के मोहल्ले तो और भी संकड़ी गलियों से घिरे है । आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ब्रह्मनाल में रहते थे । उनके घर डॉक्टर साहब के साथ गया हूँ । वह तो मणिकर्णिका घाट के रास्ते पर है । स्वय विश्वनाथजी का मन्दिर पहुँचने के लिए सकड़ी गलियों से गुजरना पडता है । लंका से लगकर असी घाट है । वहॉ पर असी नदी आकर गंगाजी से मिलती है । असी घाट से गंगाजी के किनारे-किनारे अलग-अलग घाट है । वह क्रम राजघाट तक है। असी घाट से राजघाट तक कमान बनती है । उन घाटों के किनारे पर वाराणसी है । वरुणा और असी नदी के बीच में जो गगाजी है, वह वाराणसी की गगाजी है । सारे घाट असी घाट और राजघाट के बीच में है । इनमें मध्य भाग मे दशाश्वमेघ

घाट है । इस घाट से गोदौलिया आनेवाली सडक जाती है । यही चौडी सडक है । गोदौलिया वाराणसी नगर का केन्द्र है । नागरी प्रचारिणी सभा में रामनगीन शर्मा से मेरा परिचय हो गया था । उसे साथ में लेकर असी घाट से गजघाट तक किनारे-किनारे पैदल घूम आया । असी घाट से आगे लका के छोर पर पुल है । इस पुल को पार कर रामनगर पहुँच सकते है । रामनगर ठीक विश्वविद्यालय के प्रांगण के सामने है । बीच मे गगाजी हैं । जिन्हे गगाजी के साफ जल मे स्नान करना होता हे, वे गगा पार जाते है । मैं भी डॉक्टरसाहब के साथ गगा पार गया हूँ । गगाजी में स्नान भी किया है । इसी तरह साईकिल रिक्शों मे बैठकर सारनाथ भी देख आया । एक दिन गजघाट के मार्ग से बस में रामनगर पहुँच गया । वहाँ का किला और महल देखा । यों वाराणसी मे देखने योग्य बहुत से स्थल है । गजघाट से नगर की ओर आओ तो रास्ते मे वरुणा के किनारे-किनारे आश्रम दिखलाई देते हैं । रेलवे लाइन राजघाट से आती है । राजघाट पर ही गगाजी का पुल है । उन दिनों मे मुझे पैदल घूमने-फिरने का शौक़ था । डॉक्टर साहब के साथ रहने से भी पैदल घूमने की आदत हो गई थी । सभा मे निकलता तो मैदागिन होते हुए चौक पहुँच जाता था । चौक आने से पहले बुलानाला पर ही मारवाडी भोजनालय था । वहाँ पर सबेरे शाम भोजन के लिए पहुँच जाता था । यो मग लगभग एक मास वाराणसी में बीत गया । मैंने आस भैरव, बुलानाला की पुरानी पुस्तकों की दुकानों से पुरानी पुस्तकें जो Out of Print थी, खरीदी हैं । पुस्तके मैंने कारमाइकेल ग्रथालय मे देखीं । सभा के पुस्तकालय मे देखीं। इसी तरह विश्वविद्यालय के ग्रंथालय मे देखी । वे सब पुस्तके तो मुझे मिली नही । किन्तु जो उपलब्ध हुई, वे मैंने खरीद ली । नागरी प्रचारिणी पत्रिका के पुराने अक जो भी मिले वे भी ले लिए । आस भैरव के भगवानदास बुकसेलर से पुस्तके खरीदीं । जो पुस्तके खरीदी उनमे जयचन्द्र विद्यालकार की प्रसिद्ध पुस्तक **'भारत भूमि और उसके निवासी'** — पुस्तक भी है । बाद मे मैंने इस पुस्तक का बहुत उपयोग किया । सभा में पुस्तको की जिल्दे बनवानेवाले वहीं रहते थे । उनसे मैंने पुस्तकों की जिल्दे बनवा ली । पत्रिकाओं की भी जिल्दे बनवा ली । दिनभर घूमता-फिरता अवश्य था किन्तु ध्यान पुस्तको की खोज पर ही था । उस समय 'हस्तलिखित प्रतियों' की खोज की ओर मेरा ध्यान नही था । मैंने सामग्री जो भी देखी, वह मुद्रित थी ।

सभा के भवन से सामने उद्यान है। सबेरे उठकर देखता कि काफी लोग, उसमें घूमने-फिरने चले आते है। कभी-कभी मै भी चला जाता था। इस उद्यान के सामने ही सडक पार करते ही नगरपालिका का भवन था। और वाराणसी का मुख्य डाकखाना सभा के ठीक सामने था।

□ □

महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिंह से सम्पर्क

दीपावली की एक मास की छुट्टियाँ वाराणसी मे गुजारकर औरंगाबाद लौट आया। आने के बाद जो कुछ देखा, पढ़ा और लिखा उसके आधार पर कार्य की रूपरेखा तैयार की। उदयपुर मे मुझे महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह का पता मिल गया था। तद्नुसार मैंने १२ दिसम्बर १९६९ ई. को महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह को पत्र लिखा। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया। उनका वह प्रथम पत्र था। वह पत्र इस प्रकार है —

रघुबीर निवास
सीतामऊ (मालवा)
दिसम्बर १६, १९६९ ई.

प्रिय डॉ. राजमल बोरा,

सधन्यवाद वन्दे। आपका १२/१२ का पत्र यहाँ मुझे कल दोपहर मे मिला। सारे समाचार ज्ञात हुए। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप आजकल **'हिन्दी वीरकाव्यों पर — ऐतिहासिक पर्यालचन'** — विषय पर शोध कार्य कर रहे है और उसी सदर्भ में आपने काफी सामग्री एकत्रित भी की है और राजस्थान के प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा भी की हैं। उसी शोध कार्य के लिए मेरी कृति **'रतलाम का प्रथम राज्य'** चाहिए। साथ ही **'रतनरासो'** को भी देखना चाहते हो। तत्सम्बन्धी मेरा उत्तर इस प्रकार है।

यह बात सत्य है कि **'रतलाम का प्रथम राज्य'** की प्रतियाँ अतियॉ अधिक नही रही हैं, परन्तु जो व्यक्ति उसका सही और उपयुक्त उपयोग कर सके उसको उनमे से प्रति सुलभ कर देना मै कर्तव्य ही मानता हूँ। सो, मैं उसकी एक प्रति रजिस्ट्री पैकेट से भिजवा रहा हूँ। मुझे वी. पी. से भिजवाना उचित नही जान पडा। सो उसके मूल्य एव रजिस्ट्रेशन और उसके खर्च आदि का हिसाब

इसी पत्र मे आगे लिख दिया है। कृपया उक्त रकम सुविधानुसार जल्दी से मनीऑर्डर से भिजवा देने का कष्ट उठावें और उस पुस्तक की पहुँच भी सूचित करे। रतनरासो के सम्पादन कार्य में अनपेक्षित अधिक समय लग गया है। उसकी प्रेस कापी लगभग तैयार है। इधर कुछ अत्यावश्यक सुधार, सशोधन, परिवर्तन, किये जा रहे हैं। उसके प्रकाशन की भी व्यवस्था की जा रही है। सो उसके प्रकाशन मे अभी पर्याप्त समय लगेगा। क्या आप इधर कभी आने की सोच रहे हैं कि उसकी प्रेस कापी देख सकें। गर्मी की छुट्टियो तक तो उसे अन्तिम रूप प्राप्त हो ही जायेगा।

शेष कुशल। आशा है सानन्द होगे। इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे मेरा सहयोग सदैव सुलभ होगा। इस बारे में आश्वस्त हों। अधिक आगे पत्रोत्तर पाने पर ही।

सधन्यवाद,

भवदीय

(रघुबीरसिंह)

मैंने पत्र लिखा और तुरन्त उत्तर मिला। इसके बाद तो लगातर पत्र मिलते रहे है। मुझे एक ऐसा गुरु मिला जो मेरे कार्यों मे मेरी तरह अभिरुचि रखनेवाला है और सब कुछ बतलाने के लिए तैयार है।

□ □

सीतामऊ की यात्रा

'रतनरासो' का सम्पादन महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह और प काशीराम शर्मा दोनो ने मिलकर किया है। उसमे इतिहास से सम्बन्धित कार्य महाराजकुमार का है और पाठ का सम्पादन, साहित्यिक विवेचन, अर्थ-मीमांसा — सब कार्य प काशीरामजी शर्मा का है। टकण का कार्य पूर्ण हो गया था। उसकी एक टंकित प्रति प काशीरामजी शर्मा के पास में दिल्ली मे थी। पंडितजी उस समय केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय दिल्ली मे थे। 'रतनरासो' देखने और अन्य कार्यो के हेतु मैने सीतामऊ यात्रा की योजना बनाई। तदनुसार पत्र-व्यवहार जारी रखा। जून १९७० के प्रथम सप्ताह में मैं सीतामऊ गया। सीतामऊ कैसे पहुँचे ? यह सब महाराजकुमार ने लिख दिया था। तदनुसार मंदसौर पहुँच गया। मदसौर से २० मील पूर्व मे सीतामऊ है। सीतामऊ गॉव छोटा ही है। बस-स्टैड के सामने गॉव से बाहरी भाग मे

महल बना हुआ है । महल का अहाता बहुत बडा है । कम्पाउण्ड वाल बनी हुई है । इन्हींमे से एक कमरा मुझे मिला । कमरे पुराने ढग के लेकिन काफी बडे थे । पहली बार १९७० ई. में गया उस समय तीनों कमरे खाली थे । उस समय वहाँ स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की शाखा नही थी । बाद मे वे कमरे स्टेट बैंक ऑफ इंडिया को अपनी शाखा खोलने के लिए दे दिए गए थे । जिस कमरे मे ठहरा था, उससे बाहर आते ही खुली गैलरी थी । बाहर, कुर्सी लेकर बैठा जा सकता था । सामने विशाल उद्यान था । उसकी देखभाल ठीक न होने पर भी उद्यान व्यवस्थित था । मार्ग थे और वीथिकाएँ बनी हुई थी । उन कमरो के सामने से पनिहारिने गुजरती थी । भीतर बड़ा कुँआ था । वहाँ से वे गगरियों मे पानी लेकर लौटती थी । सबेरे-सबेरे यह क्रम जारी रहता था । रीतिकालीन दृश्य देखे जा सकते थे ।

मै अभी तक महाराजकुमार से मिला नही था । मुझे समय बतला दिया गया था । तदनुसार मैं तैयार होकर उद्यान की वीथिकाएँ पार करते-करते बतलाए मार्ग से भीतर गया । सामने एक-दूसरे से सटे हुए दो विशाल भवन थे । उनके पीछे एक दूसरा भवन था । उन सब को पार कर और भीतर पहुंचा तो दूर से कुँआ दिखलाई दिया । पनिहारिनें वही पर पानी भर रही थी । उद्यान में मोर स्वच्छन्दता से विहर रहे थे । बहुत ही आकर्षक पक्षी है । मोर को मैंने इतने निकट से पहले नही देखा था । आगे बढने पर सामने कम्पाउण्ड वाल के पास बड़ा गेट दिखलाई दिया । वस्तुत महल का प्रवेशद्वार यही है । उस गेट के पास भी कुछ कमरे बने हुए हैं । उन्हे पार करने पर महाराजकुमार का भवन मिला । जो ग्रथालय और उनके आवास का स्थान था । महाराजकुमार इसीमे रहते है ।

मैं उनके हाल में गया । वही बैठक थी । बैठे हुए मिले । मुझे बुलाकर निकट के सोफा पर बैठने के लिए कहा । मुद्रा गभीर थी । सहज भाव से मिले । मुझे देखकर प्रसन्न हुए । भय लगे, ऐसी मुद्रा नहीं थी । मैंने सहज भाव से जो प्रश्न पूछे, उनके उत्तर दिए । पढने के लिए कुछ पुस्तके निकलवाईं और मुझे दीं। शिवसिह को पुकारा । वह तुरन्त आया । उससे पुस्तकें मंगवाई । मुझे दी और कहा — 'बैठकर इन्हें पढ़ो । अपने कमरे में ले जाओ । कल-परसो फिर चले आना । पढकर बतलाना । 'रतनरासो' की टंकित प्रति दिखलाई । बहुत बडी थी। दी हुई सामग्री लेकर बाहर आया । अपने कमरे में गया । पढता रहा । सोचता रहा । हाल से बाहर आने पर वे उठकर भीतर चले गये । यह पहली भेंट थी।

अधिक बात नही की जा सकती थी। सायकाल मे मिलने का समय बतला दिया। दिन भर काम करने के बाद सायकाल मे फिर पहुँचा। उस समय वे कुछ उन्मुक्त थे। शिवसिह से कहकर दो केन की गोल कुर्सियाँ बाहर खुली गैलरी मे रखवाई। वहाँ पर बैठ गये। मुझे भी बैठने कहा। मैंने अपनी शोध-यात्रा का विवरण सुनाया। जिन विद्वानों और व्यक्तियों से मिला था उनके नाम बतलाए। सब सुन लिया। मुझे जो कहना था और मेरे मन मे जो प्रश्न थे, वे उन्होने सब सुन लिए। उक्त विषय पर अधिक बोले नही। मैंने गोविंदचन्द्र पाण्डेय और मथुरालाल शर्मा के नाम लिए थे। उनके सम्बन्ध मे उन्होंने कुछ नहीं कहा।

मै पहली बार ३ जून १९७० को उनसे मिला था। उसी दिन सबेरे उनके पास पहुँचा था। उसी दिन सायकाल में उनसे जब बात कर रहा था तो कुर्सी से उठकर भीतर गये और **'शेष स्मृतियाँ'** — पुस्तक की प्रति ले आए। पुस्तक पर लिखा — 'श्री राजमल बोरा को, लेखक की ओर से' — हस्ताक्षर किया और तारीख लिखी — जून ३, १९७० ई.। पहले ही दिन उन्होंने पुस्तक दी। वह पुस्तक आज भी मेरे पास है। विशेष बात यह है कि उस पुस्तक के साथ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जुडे हुए हैं। मैंने उक्त पुस्तक का बाद मे बहुत उपयोग किया है।

'भूषण और उनका साहित्य' — पुस्तक की प्रति मैंने पहले ही औरंगाबाद से भेज दी थी। उक्त पुस्तक मे 'शिवाजी औरगजेब' की भेट गुसलखाने मे हुई। — बतलाया गया था। भूषण ने गुसलखाने का उल्लेख किया है। इस गुसलखाने पर स्वतंत्र सामग्री महाराजकुमार ने दिखलाई। पुस्तक का नाम था — 'Mugal Hamam and the Institute of Ghusal-khana — by R Nath वह पुस्तक मैं ले गया। कुछ नोट लिखे। लौटा दिया। मैंने तो खो साहब ने जो बतलाया, उसके आधार पर सब लिख दिया था। अतिरिक्त सामग्री मिली। उससे भी मेरे कथन की पुष्टि होती है।

सीतामऊ से मैंने ५ जून १९७० ई को प काशीराम शर्मा को पत्र लिखा। महाराजकुमार ने मुझे उनका पता दिया था। इसी तरह डॉ महेन्द्रप्रतापसिह को भी पत्र लिखा। मैं नक्शे बनवाना सीखना चाहता था। तदर्थ प्रामाणिक नक्शे चाहता था। महाराजकुमार ने Director, Map Publication, Sarvey of India, Hathikhana, देहरादून का पता दिया। उन्हें भी पत्र लिखा। यों मैंने जाना कि

पत्र-व्यवहार के अपने लाभ है। पत्र-व्यवहार के लाभ-परिणाम मुझे बाद मे दिखलाई दिये।

पेशवों के काल में हिन्दी ने राजभाषा का रूप ले लिया था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मे पेशवो का काल आरम्भ होता है और पेशवे महाराष्ट्र तक सीमित नहीं रहे। उनका शासन मध्यप्रदेश, गुजरात आदि तक विस्तार पाते हुए दिल्ली तक पहुँच जाता रहा है। महाराजकुमार रघुबीरसिंह का एक लेख मध्यप्रदेश सन्देश, मार्च १९७० ई मे प्रकाशित हुआ था। लेख का शीर्षक था **'पेशवा राज्य की सम्पर्क भाषा हिन्दी'**। इसी विषय पर डॉ. का शं केळकर ने शोध-प्रबन्ध लिखा है। शीर्षक है — **मराठा शासकों से सम्बन्धित १८वीं शती के हिन्दी पत्रों का भाषाशास्त्रीय अध्ययन।**

यों मैने बहुत-सी पुस्तके देखी। कुछ की टिप्पणियाँ लिख लीं।

महाराजकुमार के साथ बैठकर बात करने के दिन मे दो बार ही अवसर मिलते थे। सबेरे के समय वे केवल काम की बाते करते। चाय पीने का उन्हें शौक था। शिवसिंह उन्हें चाय लाकर देता था। मै पास मे बैठा रहता तो मेरे लिए भी चाय आ जाती थी। चाय की घूँट के साथ उनकी बातचीत जारी रहती। 'देखो राजमल ...' सबोधित करने के बाद आगे बढते। अपने गुरुदेव जदुनाथ सरकार के संस्कार के सस्मरण सुनाते। कोई नई बात याद आती तो फिर से सबोधित करते — 'देखो राजमल . .' ऐसी ही चर्चाओं मे उन्होने मेरे अध्ययन के विषय को मोड दिया। मै वीरकाव्यों पर काम कर रहा था। लगभग आधा काम हो गया था। उसे पूर्ण करने के लिए ही मैने लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं। सारा काम उन्होने देखा। नई सामग्री साथ मे ले ली थी। उन्होने मेरा ध्यान 'पृथ्वीराजरासो' — की ओर मोडा। कहा — 'इस पर काम करो।' सामग्री कहाँ मिलेगी ? कैसे प्राप्त होगी। क्या करना होगा। सब कुछ उन्होने कहा। परिणाम यह हुआ कि मैने १९७० ई के बाद मे 'पृथ्वीराजरासो' — पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। रघुबीर ग्रंथालय मे 'पृथ्वीराजरासो का कथानक मालूम हो जाता था। महाराजकुमार ने मेरा जो कार्य चल रहा था, उसको रोका नही। उसे चलने दिया। मै उपलब्ध और एकत्रित सामग्री के आधार पर जो भी लिख लेता था, उन्हे भेज देता था। वे उक्त लेख को पढकर और जहाँ इतिहास की स्थूल भूलें रह जाती, उन्हे ठीक करने के उपरान्त अपनी टिप्पणी के साथ उदयपुर के डॉ. देवीलाल पालीवाल

(शोध-पत्रिका के सम्पादक) के पास भेज देते । इसकी सूचना वे मुझे पत्र द्वारा दे देते थे । उनके कारण मेरे कई लेख 'शोध-पत्रिका' मे छप गए ।

सायकाल का समय उन्मुक्त रहता । उस समय जब मै महाराजकुमार के पास पहुँचता तो हाल में सबेरे की तरह नही मिलते । केन की दो आराम कुसियाँ हाल से बाहर बरायदे मे रखी जाती । एक पर वे स्वय बैठ जाते और दूसरी पर मै बैठता । इस समय विषय पर बातें नही होती । सामान्य विषयों की चर्चा होती । जब मै बार-बार सीतामऊ जाने लगा तो बाद मे सायकाल मे अधेरा होने से पूर्व वे जब घूमने निकलते तो मुझे भी साथ मे चलने कहते । अपने भवन से बाहर निकलते ही वे सीधे लदूना की दिशा की ओर मूड जाते । कुछ दूर जाने पर मुख्य मार्ग छोड देते और खेतों मे से चलने लगते । चार-छ खेत लाधकर एक टीले पर पहुँचते और वहाँ बैठ जाते । उस क्षेत्र मे वह ऊँचा स्थान था । वहाँ से लदूना का तालाब देखा जा सकता था । वास्तव मे महाराजकुमार का मूल जन्मस्थान और निवासस्थान लदूना ही था । बहुत बाद में जब मैं एक सगोष्ठी मे लदूना पहुँचा था तो उस समय संगोष्ठी का आयोजन वही पर किया गया था। सीतामऊ-लदूना की संगोष्ठी में मैं सम्मिलित होता रहा हूँ । महाराजकुमार के मन मे लदूना के प्रति आकर्षण का एक बड़ा कारण वह तालाब था । महराजकुमार जब भी टीले पर बैठते, उन्हें लदूना याद आ जाता था । लौटते समय वे और और समाचार देते रहते थे । धीरे-धीरे मै उनके साथ ग्रथालय के भीतर पहुँचकर पुस्तके देखने लगता था । आरम्भ में भी उन्होने मुझे आकृष्ट किया और नये विषय पर काम करने को कहा । वह विषय था— **'पृथ्वीराजरासो'**

□ □

पृथ्वीराजरासो

हिन्दी वीरकाव्यों पर काम करते-करते मैं स्वय पृथ्वीराजरासो की ओर कैसे मुड गया ? यह मुझे ठीक से याद नहीं । किन्तु यह सच है कि महाराजकुमार ने धीरे धीरे अपने कार्य की ओर उन्होने मुझे मोड दिया । उस समय पृथ्वीराजरासो की मुद्रित प्रतियाँ उपलब्ध नही थी । राजस्थान के दरबारो में हस्तलिखित प्रतियाँ बिखरी हुई थी । उनका सर्वेक्षण आवश्यक था । मै तो हस्तलिखित प्रतियाँ पढना नहीं जानता था ।— प्रधान रूप से बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, जयपुर, दिल्ली, वाराणसी आदि प्रमुख स्थानों पर हस्तलिखित प्रतियाँ थी । कांकरौली मे भी थी। महाराजकुमार इन सब स्थितियो को जानते थे । उस समय मै यात्राएँ कर सकता

था । उन्हे ग्रथालयो, राजा-महाराजाओ तथा विद्वानो के नाम मालूम थे । उनके पास पहुँच कर काम करना सभव था । हर जगह जाकर ग्रथालयो, पोथीखानो मे पहुँचकर पृथ्वीराजरासो की सामग्री मालूम करना ही नही, उन्हे नोट करना, टिप्पणियाँ बनाना आवश्यक था । यह सारा काम मै महाराजकुमार के संकेतो पर करता गया । इस कार्य के लिए मैने १९७० ई. से १९७३ ई तक के ग्रीष्मावकाश और दीपावली के अवकाश गुजारे । यात्रा अकेला ही करता था । घर पर नहीं रहता था । यात्राओ का केन्द्र सीतामऊ ही रहता था । वहाँ पहुँचना, महाराजकुमार को पीछे का कार्य बतलाना और फिर नए काम के लिए निर्देश लेकर अगली यात्राओ पर निकलना । ऐसा क्रम चलता रहता था । मै तो निर्देशों के अनुसार कार्य करता था किन्तु उपलब्ध सामग्री उन्हे दिखलाता रहता था । मुझे लगता कि वे स्वयं भी इस विषय पर चिन्तन कर रहे है । उन्होने तदर्थ पत्र-व्यवहार भी किया । वे सारे पत्र भी उन्होंने मुझे दिखलाए । जो उन्होने लिखे और वे पत्र भी दिखलाए जो उन्हे मिले है । उन पत्रो मे से मैंने कुछ का प्रकाशन भी किया है ।

यो महाराजकुमार रघुबीरसिह का विश्वास अर्जित कर लेना सरल कार्य नही था । एक बार मै मन्दसौर मे महेन्द्र भटनागर से मिलने गया था । सीतामऊ जाने के लिए मन्दसौर स्टेशन पर ही उतरना आवश्यक था । मन्दसौर से सीतामऊ की बस मिलती थी । उन दिनो मन्दसौर में महेन्द्र भटनागर, वहाँ के स्थानीय कालेज मे हिन्दी के प्राध्यापक थे । अब तो वे ग्वालियर मे रहते है । अब भी उनके पत्र मिलते रहते हैं । जब उन्हे मैंने महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह के सम्बन्ध मे बतलाया तो उनकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं थी । उनकी यह भी धारणा थी कि उनके निकट पहुँचकर बात करना कठिन है । बहुत कम लोग उनसे मिलने का साहस करते हैं । मैंने सदैव महाराजकुमार का सम्मान किया । जदुनाथ सरकार की जन्मशताब्दी थी । उसका आयोजन भारत इतिहास सशोधक मडल पूना ने किया था । उसमें महाराजकुमार आमंत्रित थे । १० दिसम्बर १९७० ई. को यह आयोजन था । तदर्थ वे पूना आनेवाले थे । मुझे भी उक्त समारोह मे आने के लिए सकेत दे दिया था । यों मै अक्तूबर १९७० ई में भारतीय हिन्दी परिषद के अधिवेशन में पूना पहुँचा था । अधिवेशन से लौटकर मैंने महाराजकुमार को पत्र लिखा था । अधिवेशन में जाने से पूर्व १ अक्तूबर १९७० ई को पत्र लिखा था और अधिवेशन से लौटने के बाद ५ नवम्बर १९७० ई. को भी पत्र लिखा था । दोनो ही पत्र प्रस्तुत हैं —

ब्लॉक न ६, आनन्द नगर
टाऊन हाल, औरंगाबाद
दि १ अक्तूबर १९७०

आदरणीय डॉक्टर साहब,

सादर प्रणाम

आपका कृपा-पत्र एव लेख दोनो यथासमय प्राप्त हुए। अत्यंत आभारी हूँ। लेख के सम्बन्ध मे आपकी प्रतिक्रिया को जानकर मेरे आत्मविश्वास मे वृद्धि हुई है। परिषद में निबन्ध पढने का प्रयास करूंगा। यदि वहाँ समय न मिले तब भी मेरा लिखना सार्थक हो गया। किसी पत्र मे तो छप ही जायगा। सच ही तो है, सक्षेप मे बात कही भी नही जा सकती। केवल दृष्टिकोण ही व्यक्त हो सका है।

रतनरासो इस समय पढ रहा हूँ और जब भी लौटाऊंगा आपको लिखूँगा। इस रासो के प्रति अब मेरी श्रद्धा और बढ़ गई है। काव्य, कथानक, भाषा, वर्णन शैली, प्रबन्धात्मकता एव सामायिक इतिहास सभी दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है। उत्कृष्ट वीरकाव्य है। किन्तु हिन्दी मे इस वीरकाव्य के रूप मे मान्यता शीघ्र मिल जाएगी, ऐसा विश्वास नहीं होता। शुक्लजी के शब्दो में कुभकर्ण कवि ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय किया। (कारण नायक का चुनाव)

डॉ. भालचन्द्र तेलग हमारे यहाँ विभाग मे है। वे पुराने वयोवृद्ध साहित्यिक है एव रीतिकाल के विशेषज्ञ एव पद्माकर तेलंग (रीतिकालिन कवि) के वशज है। उन्होने नायकत्व-हीरोइजम के सम्बन्ध मे एक तर्क दिया है, तर्क के अनुसार दरबारी साहित्य में जिनको नायकत्व प्राप्त हुआ है, उसका आधार ऐतिहासिक मात्र न समझकर (वह तो है ही) उस नायकत्व मे धर्मतत्त्व को भी परखा जाय। युद्धवीर की तरह नायक दानवीर और धर्मवीर भी रहे है। मध्ययुगीन काव्यों मे नायकत्व का एक आधार धर्म भी है। इतिहास के अध्ययन में इस तथ्य को और वह भी विशेष रूप से मध्यकालीन साहित्य के संदर्भ मे भूलाया नहीं जा सकता। मैंने अभी तक इस दृष्टिकोण से विचार नहीं किया।

आपके विचार मै जानना चाहूँगा । निकट-भविष्य मे (ग्रीष्मावकाश मे) आऊँगा । उसी समय विचार हो सकेगा ।

आशा है सानन्द एव स्वस्थ होगे । कृपाभाव रखियेगा ।

विनीत

राजमल बोरा

० ०

ब्लॉक न ६, आनन्द नगर
टाऊन हाल, औरंगाबाद
दि ५ नवम्बर १९७०

आदरणीय डॉक्टर साहब,

सादर प्रणाम

आपका स्नेहपूर्ण पत्र अभी-अभी प्राप्त हुआ । अत्यंत आभारी हूँ । पूना अधिवेशन सफल रहा । निबंध पढ़ने का अवसर मिला। इससे पूर्व हैदराबाद के अधिवेशन में भी सम्मिलित हुआ था । उस समय भी मैने निबन्ध पढा था । इस बार कुछ अधिक आश्वस्त था । विद्वानों को निकट से देखने एव उन्हे सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ । मैने अब तक तीन अधिवेशन देखे है । उनमें मुझे यह अधिवेशन गोष्ठियो की दृष्टि से सफल जान पड़ा । व्याकरण-गोष्ठी सब में अच्छी रही । इस गोष्ठी का सभापतित्व पोतदारजी ने किया। इसी तरह मध्यकालीन साहित्य, आधुनिक साहित्य, काव्यशास्त्र एव भाषा-विज्ञान तथा विविध-साहित्य विषयो पर अलग अलग गोष्ठियाँ हुई । समयाभाव होने पर भी उपस्थित सभी विद्वानों को निबन्ध पाठ का अवसर मिला । संचालन उत्तम था । विषयो की अधिकता के कारण चर्चा नही हो सकी । बहुत से अच्छे निबंध पढे गये । मैं जिस विषय का अध्ययन कर रहा हूँ, उस पर किसी का भी निबन्ध नही था । अधिवेशन से प्रेरणा प्राप्त कर लौटा हूँ। इस बार प्रोफेसर देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रोफेसर एव अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, भारतीय हिन्दी परिषद के अध्यक्ष निर्वाचित हुए है । अगला अधिवेशन ग्वालियर में होगा । पूना में अधिवेशन के बाद और तीन दिन तक रूका रहा । इन तीन दिनो मे भारत

इतिहास संशोधक मंडल में काम किया। श्री खरे साहब के साथ विचार-विनिमय हुआ। बीजापुर, गोलकोण्डा एवं विजयनगर के इतिहास से सम्बन्धित मराठी पुस्तकें खरीद ली। जिस दिन लौट रहा था उसी दिन श्री देवीसिंह चौहान से भेट हुई। उन्होंने आपको याद किया। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप पूना आ रहे है। श्री काशीराम शर्मा का पत्र प्राप्त हुआ और आपके द्वारा भी ज्ञात हुआ कि रतनरासो का प्रकाशन, जोधपुर से होनेवाला है। यह जानकर मै बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। पूना से मैं अपने भाई के पास लातूर गया। दीपावली वहीं हुई। यहॉ मै २ नवम्बर को लौटा हूँ। अब मैने अपना काम शुरू कर दिया है। उत्तराधिकार युद्धवाला यह अध्याय जैसे ही पूर्ण होगा, उसकी एक प्रति अवलोकनार्थ आपकी सेवा मे भेज दूँगा।

आशा है सानन्द होंगे। स्नेह बनाये रखे।

विनीत

राजमल बोरा

पूना जाकर आने पर भी मे यथासमय १० दिसम्बर १९७० ई को पुन जदुनाथ सरकार की जन्मशताब्दी के अवसर पर पहुँच गया था। मेरे पहुँचने से महाराजकुमार प्रसन्न हुए। १९७० ई. का वर्ष यों ही गुजरा। मैं एकदम से पृथ्वीराजरासो की ओर नही मुडा। समय लगा। पुराना काम जारी था। उन्हे पूर्ण करता और तदर्थ जो कुछ लिखता, उन सब को महाराजकुमार के पास भेज देता। उन्हे ठीक लगता तो वे सीधे शोध-पत्रिका (उदयपुर) या नागरी प्रचारिणी पत्रिका, (वाराणसी) को भेज देते। उन्होंने मेरे कार्य को रोका नही। १९७० ई. के बाद मैंने पृथ्वीराजरासो पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। चिन्तन बदल गया।

□ □

डॉ. ब्रजमोहन जावलिया

पृथ्वीराजरासो — पर काम करने का मतलब था पोथीखाने में उक्त काव्य की हस्तलिखित प्रतियों से जूझना। इसमे दो-तीन प्रकार की कठिनाइयॉ थी। प्रथम कठिनाई तो यह थी कि **प्रतियों को पढ़ना**। पोथियॉ सभी हस्तलिखित थी। लिपिकारो ने उसे लिखा था। उन्हे लाल कपडो मे लपेट कर रखा था। ये पोथियॉ पोथीखाने या संस्थान में बैठकर पढी जा सकती थीं। पहले तो यह निर्णय करना

था कि पढने के लिए किस पोथी का निर्णय करें ? इस क्षेत्र मे मेरे सहायक डॉ. ब्रजमोहन जावलिया हुए । जावलियाजी उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की शाखा मे काम करते थे । उनका सम्पर्क हस्तलिखित पाण्डुलिपियो से था । जावलियाजी के सहयोग से मुझे वाछित पोथियाँ देखने मिली । मै प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा के कार्यालय मे बैठकर जब तपती दुपहरी मे पोथियाँ निहारता तो उस समय वहा के कार्यालय के लोग कभी-कभी कहने लगते — 'इनमें क्या देख रहे है ? इसमे क्या लाभ है ?' वस्तुत· वे लोग मुझे काम से रोकना चाहते थे । कारण यह था कि मेरे बैठने तक या काम करने तक उन्हे अपनी ड्यूटी पर रहना आवश्यक था । जब पोथी लौटा दी जाती तो फिर उन्हे छुट्टी मिल सकती थी । यो मैंने कार्य आरम्भ कर दिया था । मुख्य काम उदयपुर मे ही सीख सका । और उसमे मुझे डॉ ब्रजमोहन जावलिया का सहयोग अधिक मिला ।

□ □

डॉ. नरोत्तम स्वामी

स्वामीजी राजस्थान के पुराने विद्वान् थे । डॉ ब्रजमोहन जावलिया के गुरु थे । वे बीकानेर मे रहते थे । उनके अपने समय मे **पृथ्वीराजरासो** के वे अधिकारी विद्वान् थे । बीकानेर मे जब उनके घर पहुँचा तो वे मिले नही । उनका घर और उनका पुस्तकालय देखा । बाद मे मै यात्रा करते हुए जब आगरा पहुँचा तो प्रकाशक बन्धु के कार्यालय मे मिल गए । बात हुई । किन्तु घर पर मिलकर जो बात होती, वैसी बात नही हो सकी । प्रथम बार और अन्तिम बार वही मेरी उनकी भेट सिद्ध हुई । बाद मे उनसे मिलने बीकानेर जाना नही हुआ । किन्तु उनकी पुस्तक मे सर्वेक्षण की, उस समय तक की पूरी जानकारी थी । उन्होने पृथ्वीराजरासो का आद्योपान्त पठन और सर्वेक्षण पूर्ण किया था । उनका वर्गीकरण भी है । यद्यपि सब कुछ अति सक्षेप मे है किन्तु नए काम करनेवाले के लिए उनकी पुस्तक प्रेरणा स्वरूप है । पृथ्वीराजरासो की हस्तलिखित प्रतियो से वे जितना जूझे है, उतना मै जूझ नही सका हूँ । जोधपुर मे उपलब्ध धारणोजवाली पाण्डुलिपि को वे ठीक और प्रामाणिक मानते थे । मैने वह प्रति पहले जोधपुर मे देखी तो उसके नोट लिए थे । उसके फोटोग्राफ्स भी लिए थे और वे सब मैने अपनी पुस्तक मे दिए है । महाराजकुमार का निष्कर्ष भी उस प्रति को सब से पुरानी माननेवालो मे है । 'पृथ्वीराजरासो' पर मेरी पुस्तक १९७४ ई. मे छप गई । उस पुस्तक के लिख देने तक भी महाराजकुमार रुके नही । उनकी इच्छा थी कि मे उस पाण्डुलिपि

का सम्पादन करूँ ओर बाद मे सटीक प्रकाशन करवाऊँ । तदर्थ मै पुन जोधपुर गया था । उस समय वह प्रति वहाँ पर नही मिली । मालूम हुआ कि मूल पाण्डुलिपि स्वामीजी लेकर गए है । वे उसका सम्पादन कर रहे है । कुछ वर्षो बाद जब पुन जोधपुर गया तो पाण्डुलिपि मिल गई । मैने उस समय उक्त पाण्डुलिपि की फोटो प्रति प्राप्त कर ली । यहाँ स्वामीजी के सम्बन्ध मे इतना ही कहना है कि स्वामीजी अन्त तक पृथ्वीराजरासो से जूझते रहे । उनका सम्पादन कार्य पूरा नही हुआ । मै उनसे चाहकर भी पुनः नहीं मिल सका । उनसे भेट मात्र घर से बाहर हुई ।

□ □

पं. काशीराम शर्मा

ऊपर प. काशीराम शर्मा के सम्बन्ध मे लिख चुका हूँ । 'रतनरासो' के कारण उनसे पत्र-व्यवहार हुआ । रतनरासो का उपयोग करते हुए मैंने औरगजेब के उत्तराधिकार युद्ध पर आलेख भी लिखा । उक्त आलेख शोध-पत्रिका, उदयपुर के दो अको मे क्रमश प्रकाशित हुए । 'रतनरासो' का कार्य आरम्भ किया था । उसके बाद तो काम आगे बढता गया । पृथ्वीराजरासो की पाण्डुलिपि के सम्पादन का जब काम आरम्भ किया तो महाराजकुमार ने मुझे फिर उनसे सम्पर्क करने के लिए कहा । इससे पहले भी जब भी दिल्ली जाता तो उनको मिलने के लिए मोतीबाग अवश्य जाता । प झाबरमल्ल शर्मा अभिनंदन-ग्रथ का काम पडितजी ने ही किया था । तदर्थ एक लेख भी लिखा था । उनके साथ डॉ हरवशलाल शर्मा से मिलने के लिए उनके आवास पर भी गया । उनके कारण डॉ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव तथा श्री गोविद मिश्र से परिचय हुआ । सीतामऊ की संगोष्ठियो में वे कई बार मिले। किन्तु पृथ्वीराजरासो के सम्पादन के समय तक वे सेवानिवृत्त हो गए थे । मैने धारणोजवाली प्रति का पूरा पाठ लिख लिया था । पाण्डुलिपि पढना जावलियाजी से सीख लिया था । उसी आधार पर मैने पाठ लिखा था । किन्तु पाठ लेखन ठीक है या नहीं इसकी जाँच करना था और इसके लिए महाराजकुमार का आग्रह था कि मै उनके पास जाऊँ । तदर्थ जब दिल्ली गया तो मालूम हुआ कि पडितजी जम्मू गए है । उनका पता लिखकर मैं जम्मू गया । वहाँ पर वे मिल गए । वे मूल पाठ धाराप्रवाह पढते थे । मूल पाठ मे लिपिकर्ता की भूले वे पहचानते थे। छदों से परिचित थे और वे उन छदो को प्रवाह के साथ पढ लेते थे । वे मूल पाठ पढते गए और मै अपना पाठ ठीक करता गया । इस तरह मैंने अपने पाठ

का वाचन सुना और उसे ठीक किया । अर्थ की चिन्ता किये बिना मैंने सारा पाठ किया । बाद में अर्थ भी जान गया । आते-जाते तवी नदी देखी । लौटने का टिकट लेने मार्केट गया । सबेरे शाम पडितजी के साथ घूमता था । खाना-पीना रहना सब कुछ उन्ही के घर पर ही था । यह बात अप्रैल-मई १९८५ ई. की है।

यहाँ यह लिखू दूं कि पृथ्वीराजरासो के लिए मैने दो परियोजनाएँ प्रस्तुत की और दोनो परियोजनाएँ स्वीकृत हुई । यात्रा के लिए राशि मिली थी । पुस्तके भी खरीदी गई । पहली योजना से सम्बन्धी पुस्तक १९७४ ई मे प्रकाशित हो गई। दूसरी योजना का काम भी पूर्ण हुआ है । प्रकाशन मे विलम्ब हो रहा है । इस वर्ष (२००४ ई) प्रथम भाग हैदराबाद से छप गया है । शेष दोनो भाग प्रकाशनाधीन है ।

□ □

डॉ. रामविलास शर्मा

यहाँ बीच मे ही पुन डॉ. रामविलास शर्मा का उल्लेख करना चाहता हूँ । उनसे मै महाराजकुमार से मिलने से पूर्व ही आगरा मे मिलकर आया था । मै सत्रहवीं तथा अठारहवी शताब्दी के इतिहास की पुस्तके पढ रहा था । डफ का ग्रथ 'मराठों का इतिहास' तथा कर्नल जेम्स टॉड का ग्रंथ 'राजस्थान का इतिहास मैंने तिरुपति मे ही पढ़ लिए थे । मन मे कुछ शंकाएँ थी इसीलिए ८ जून १९६९ ई को उन्हें विस्तृत पत्र लिखा था । पत्र इस प्रकार है —

दि. ८ जून १९६९

आदरणीय डॉक्टर साहब,

सादर प्रणाम

इससे पूर्व लिखा हुआ पत्र मिला होगा । यह पत्र विशेष रूप से अपनी जिज्ञासा व्यक्त करने के लिए लिख रहा हूं। अध्ययन करते समय मन में अनेक सन्देह उपजते है और तथ्यो का मूल्याकन ठीक दृष्टिकोण में अभाव मे नहीं हो पाता । नीचे मैं इतिहास (भारतीय इतिहास) के सम्बन्ध मे कुछ शकाए प्रस्तुत कर रहा हूँ । आप इन्हें दूर करेंगे । इसी विश्वास से निवेदन कर रहा हूँ ।

(१) प्रथम बात, मुगलो के सम्बन्ध मे है। मुगलों को भारतीय मानना चाहिए । (आपने यही कहा था और सत्य भी है ।) किन्तु ऐतिहासिक ग्रथो में उन्हे विदेशी माना गया है ।

(२) दूसरी बात मुगलों के साथ भारतीय नरेशो के अनवरत सघर्ष में (ऐतिहासिक कारण युद्धो के चाहे जो रहे हो) मुगलो का विरोध धार्मिक धरातल पर हुआ है। धर्म एव संस्कृति के आधार पर उनके लिये तुरक एव अन्य शब्दो का प्रयोग हुआ है। बात काव्यों की है और यहाँ दृष्टिकोण (धर्म एव राष्ट्र के सम्बन्ध के आधार पर) तत्कालीन है। हम युग में इतिहास पर आरोपण नही कर सकते। हाँ तथ्य अवश्य खोज सकते है और फिर यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है।

(३) तीसरी बात, इतिहास का विश्लेषण (प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण) करते समय काल-विभाजन कहे, वश या जाति का इतिहास कहे, राजपरिवार का इतिहास कहे. हमें किसी न किसी दृष्टिकोण को बनाकर चलना पडता है। उदाहरण के लिये. सिक्खों का इतिहास, राजपूतों का इतिहास, जाटो का इतिहास, बुन्देलो का इतिहास, मराठों का इतिहास, इतिहास के सभी नाम, जातिवाचक है, कही स्थानवाचक हैं। यदि समग्र रूप से (भारत वर्ष एक है) देखें तो इन नामों को किस रूप में देखे ? मुगलों की स्थिति का भी इस सदर्भ में विश्लेषण करना पडता है। विभाजन भौगोलिक सीमाओं के आधार पर हो, रेस या जाति के आधार पर हो, धर्म के आधार पर हो या किसी अन्य आधार पर हो। अब तक लिखे गये इतिहासो में पुस्तक का नाम जैसा होता है, दृष्टिकोण वैसा ही मिलता है। मै अब तक निश्चय नहीं कर पाया हूँ, जाति या व्यक्ति का विस्तार देते समय उनकी चारित्रिक विशेषताएँ भी लिखना पडता है और तुलना भी करनी — (अपूर्ण)

पत्र का शेष अश अगले पृष्ठ पर था। वह अश खो गया है। उत्तर मुझे १४-६-६९ के पत्र मे मिला। पत्र इस प्रकार है —

० ०

दि. १४-६-६९

प्रिय बोरा,

१. बाबर विदेशी था; अकबर हिन्दुस्तानी। विदेशी के देसी बनने में समय लगता है। जो अकबर को विदेशी कहते है, उनसे मेरा मतभेद है।

२ तुर्क धार्मिक नही; जातिवाचक शब्द है। हिन्दू-मुस्लिम दगे आज भी होते हैं। १६वी सदी मे रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टट दल आपस मे लडे। जब तक धर्म रहेगा, धर्म के नाम पर लडाई भी होगी। सवाल यह नही है कि लोग स्थिति को क्या ममझते है वरन् यह कि स्थिति है क्या। लीगी मुसलमान अपने को अलग कौम मानते थे, तो क्या अलग कौम हो गये ?

३ पजाब एक जाति, सिख उसमे एक सम्प्रदाय, जाट एक पुराना कबीला जो सिखों, हिन्दुओ, पंजाबी-हिन्दी जातियो में बँटा हुआ हैं। आवश्यकता है दूसरों की बाते दोहराने की नहीं, अपनी समझ से वैज्ञानिक विवेचन करने की है।

शेष, यदि मिलें।

रामविलास शर्मा

डॉ. रामविलास शर्मा पत्रों के उत्तर तुरन्त देते थे। उसके बाद मे तो मै महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह की ओर अधिक आकृष्ट हो गया। बीच में कभी पत्र लिखता या कुछ पूछता तो वे साफ बतलाते कि उन का ध्यान उक्त विषय की ओर नहीं है। जब मेरा ध्यान भाषा विज्ञान की ओर गया तो उनसे पुन सम्पर्क बढा और वह अन्त तक बना रहा।

□ □

श्री शंभुनाथ वाजपेयी

पृथ्वीराजरासो के कार्य से मुझे पुन· वाराणसी जाना पडा। बृहत् सस्करण का प्रकाशन वही से हुआ है। उसके लिए जिस पाण्डुलिपि को आधार बनाया गया है, उस प्रति को देखना आवश्यक था। सभा का पुस्तकालय तो सब के लिए खुला रहता था। किन्तु प्रायः पाण्डुलिपियाँ देखने नहीं मिलती थी। आरम्भ मे मेरा ध्यान पाण्डुलिपियो की ओर नही था। बाद में पृथ्वीराजरासो की हस्तलिखित प्रतियाँ देखना आवश्यक हो गया। तदर्थ शंभुनाथजी वाजपेयी ने मेरी सहायता की। वे सभा के अधिकारी थे। उनके हस्ताक्षर से सभा का सारा कार्य होता था। उनके कक्ष में सभा के पुराने प्रकाशनों की प्रतियाँ थीं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के पुराने अक भी थे। हंसमुख स्वभाव के थे। परिश्रमी थे। सभा मे बैठे ही रहते थे। उनके हाँ कह देने से सारा काम हो जाता था। एक बार हँसी-हँसी मे उन्होंने कहा कि हमारी सभा का नाम नागरी प्रचारिणी है, साहित्य सम्मेलन

नही है और सच तो यह है कि सभा का सारा काम साहित्य का है । नागरी के प्रचार का काम साहित्य सम्मेलन कर रहा है क्योकि परीक्षा विभाग साहित्य सम्मेलन मे है । शभुनाथजी वाजपेयी के कारण सभा की हस्तलिखित प्रतियॉ देख ली और उस प्रति (मुद्रित) का मिलान कर लिया । मुद्रित बृहत सस्करण की मूल प्रति सभा मे है । पंड्याजी वाली प्रति वही है । इसका विस्तृत विवेचन मैने अपनी पुस्तक मे किया है ।

□ □

समाहरणात्मक प्रस्तावना

पृथ्वीराजरासो पर महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह ने समाहरणात्मक प्रस्तावना लिखी है । जो काम करता रहा, वह महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह को बतलाता रहा । उस सारे काम को देखते समय दो-तीन जगह अटक गए थे । एक तो उन्होने मध्यम सस्करण की मुद्रित प्रति देखी नही थी । वह प्रति मोतीलाल बनारसीदास ने प्रकाशित की थी । मैं वाराणसी मे उनकी दुकान पर गया । पूछा — 'असली पृथ्वीराजरासो आपने छापा है, उसकी प्रति दिखलाइए । कहा — 'पुस्तक नही है ।' मैने कहा — 'मुझे भीतर आने दीजिए और पुराना स्टाक जहॉ रखा है, वह स्थान दिखलाइए, मै खोज लूँगा । उन्होने मुझे पुस्तक खोजने की सुविधा दी । मैंने पुरानी पुस्तको मे उक्त पुस्तक खोज ली । लाहौरवाले स्टॉक की पुस्तक थी । मैंने दो प्रतियॉ खरीद ली । एक अपने लिए और दूसरी महाराजकुमार के लिए । दूसरी बात कर्नल जेम्स टॉड की प्रतियॉ देखनी थी । उसका विवरण तो मिल गया । किन्तु वे सारी प्रतियॉ लदन मे थी । मैंने पत्र-व्यवहार किया । लंदन से पत्र भी मिले । फोटो प्रतियॉ प्रयत्न करने पर मिल सकते थे । मैंने सारा पत्र-व्यवहार महाराजकुमार के पास भेज दिया । उसके आधार पर उन्होने सीधे लंदन से पत्र-व्यवहार को आगे बढाकर उन्होंने टॉड की महत्त्वपूर्ण प्रति प्राप्त कर ली । महाराजकुमार ने स्वय यात्राऍ नहीं की किन्तु उन्हे सब कुछ मालूम था । उन्होंने मेरी सामग्री का अवलोकन किया और समाहरणात्मक प्रस्तावना लिखी । बहुत श्रम से लिखी । वह प्रस्तावना 'पृथ्वीराजरासो इतिहास और काव्य' (१९७४ ई.) मे प्रकाशित है ।

□ □

3

महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिंह

मेरे शोध कार्यो का आरम्भिक विषय **'हिन्दी वीरकाव्य'** रहा है। पी-एच डी का विषय **'भूषण और उनका साहित्य'** तथा डी.लिट् का विषय — **'हिन्दी वीरकाव्य . सर्वेक्षण, वर्गीकरण एवं मूल्यांकन (१६०० ई - १८०० ई.)** रहे है। १९६० ई. मे पी-एच डी. के लिए नाम रजिस्टर्ड हुआ। और डी लिट् वाला प्रबन्ध १९७९ ई. मे प्रकाशित हुआ। यो मैं लगभग दो दशको तक इसी विषय पर काम करता रहा हूँ। और इस कार्य मे मुझे अनेक विद्वानों का सहयोग मिला है किन्तु प्रधान रूप से जिनके निर्देशन मे काम करता रहा हूँ, वे हैं — महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिंह। उनसे सम्पर्क औरंगाबाद आने के बाद मे हुआ है। १९६९ ई के बाद हुआ है। यह सम्पर्क उनके निधन होने तक फरवरी १९९१ ई. तक रहा है।

हिन्दी वीरकाव्यो पर मैने जो भी कार्य किया है, उस पर उनके साथ पत्र-व्यवहार किया है। उनका प्रथम पत्र दिसम्बर १६, १९६९ ई का है। तब

से जुलाई २३, १९८८ ई तक कुल १९४ पत्र मिले हैं। इन पत्रो का सकलन मैंने १९९० ई मे प्रकाशित करवाया है। पत्रो को प्रकाशित करने से पूर्व सीतामऊ गया था — अप्रैल १९८९ ई. मे मिला था। उस समय वे अस्सी से ऊपर के हो गए थे। वृद्ध थे। उन्होने प्यार से पाण्डुलिपि देखी और मुझे लौटा दी। बोले — 'ठीक है। छपवाओ।' वहाँ से सीधे जयपुर पहुँचा। ट्रेन मे बैठे-बैठे २३ अप्रैल १९८९ ई को पुस्तक का 'ज्ञापन' (आरम्भ का निवेदन) लिखा ओर श्री सियाशरणजी खण्डेलवाल को पुस्तक दे आया। १९९० ई मे पुस्तक छप गई। १९९० ई मे मै बीमार था। घर पर ही था। श्री सियाशरणजी ने पुस्तक की प्रति घर पर लाकर दी। पुस्तक उनकी उपस्थिति मे छप गई। महाराजकुमार ने पुस्तक देख ली थी, इसका मुझे सन्तोष है। उनकी प्रतिक्रिया जान नही सका। क्योंकि उसके बाद में मिलना नही हुआ। फरवरी १९९१ ई मे महाराजकुमार चल बसे। अन्तिम वर्षो में उनके पत्र भी नही मिले। पत्रो की पुस्तक के ज्ञापन की कुछ पंक्तियाँ उद्‌धृत है —

> "लगभग दो दशकों मे, एक शोध-छात्र के रूप मे मैंने क्या कुछ जाना है, सीखा है और इस पथ पर कार्य किया है, उसका कच्चा चिट्ठा इन पत्रो मे स्पष्ट है। ये सभी पत्र व्यक्तिगत होने पर भी इनमे विषय बाहुल्य है, शोध सम्बन्धी अनेक संकेत है, कार्य करनेवालों के लिए दिशा-निर्देश है, कई ऐसे तथ्यो का उद्‌घाटन है जिनको लेखन मे स्थान नही मिल सका है, और सब से बढकर आत्मीय वचनो द्वारा ज्ञान-पथ पर चलने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन है। मैंने जो लेखन कार्य किया है, उस कार्य मे ये पत्र मुझे सदैव आत्मबल प्रदान करते रहे है। मेरी अपनी योजनाओ के सकेत इनमे हैं और मै जानता हूँ कि योजनानुसार कार्य मैं अब भी नही कर सका हूँ। बहुत कुछ शेष है, जो अभी करना है।"
>
> "इन पत्रों में बहुत तथ्य ऐसे है जिनका उपयोग मै चाहकर भी यथास्थान नहीं कर सका हूँ। सब कुछ लिख लेने और बाद मे छप जाने पर महाराजकुमार ने ऐसे तथ्यो की ओर ध्यान आकृष्ट किया, जिनकी ओर मेरा ध्यान नही जा सका है और वे मब तथ्य ऐसे है जिन्हें पुस्तक में जगह नही मिली है। इतिहासकार को तथ्य बडे प्यारे लगते है और वह तथ्यो की रक्षा करने के लिए सदैव

तत्पर रहता है। सारे तथ्यों का उपयोग हो या न हो किन्तु उनकी सुरक्षा का आग्रह सदैव उनमे बना रहता है। ऐसे आग्रह का परिचय इन पत्रो मे मिल जायेगा।''

(महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह के पत्र — राजमल बोरा के नाम, प्रकाशक — पब्लिकेशस स्कीम, ५७ मिश्र राजाजी का रास्ता, जयपुर - ३०२००१, प्रथम सस्करण १९९० ई. — ज्ञापन से)

'ममाहरणात्मक प्रस्तावना' छप जाने (१९७४ ई मे) के बाद में महाराजकुमार को लगा कि उसमे बहुत-सी भूले रह गई है। उन भूलो का रह जाना, उन्हे अखरने लगा। उन्होंने उक्त प्रस्तावना को बदलना चाहा। जुलाई २१, १९८२ ई के पत्र मे लिखा —

दो वर्ष पहले तुमने आग्रह किया कि तुम्हारी पुस्तक **'पृथ्वीराज रासो : इतिहास और काव्य'** मे प्रकाशित अपनी **समाहरणात्मक प्रस्तावना** को मै सशोधित कर दूँ, जिससे तुम्हारी इस पुस्तक के आयोजित दूसरे सस्करण मे उसे प्रकाशित करवा दिया जावे। परन्तु पिछले डेढ-दो वर्षो मे अपनी अन्य व्यस्तताओं के साथ ही अपनी ऑखो की व्याधि के कारण मै तुम्हारे उस आग्रह की ओर ध्यान नही दे सका।

सौभाग्य से इधर शल्यक्रिया के फलस्वरूप अपनी बाँई ऑख से मैं पुन देखने लगा हूँ। पुन मुझे यथेष्ट अवकाश भी मिल गया है, जिससे मैंने पिछले दस दिनो में अपनी उस ममहारणात्मक प्रस्तावना' को पूर्णतया सशोधित कर दिया है। अब उसकी स्वच्छ प्रतिलिपि तैयार की जा रही है, जिसे पुन देख लेने के बाद उसकी प्रतियॉ टकित करवा ली जावेगी। इस सम्बन्ध मे तुम्हारी सूचना मिलने पर उसकी टकित प्रति मै रजिस्ट्री से तुम्हे भिजवा दूँगा।'

(डॉ रघुबीरसिह के पत्र, राजमल बोरा के नाम, पत्र क्रमाक १४५, पृ. १६४ तथा १६५)

उक्त प्रस्तावना मुझे अगस्त १९८२ ई में मिल गई। **पृथ्वीराजरासो · इतिहास और काव्य** पुस्तक का दूसरा सस्करण छपा ही नही है। मैंने महाराजकुमार के आग्रह से ही जोधपुर की दो-तीन बार यात्राएँ की थी। उनकी इच्छा रही कि

धारणोजवाली प्रति का सम्पादन कर उसे प्रकाशित कर दूँ। मैं धारणोजवाली प्रति लेकर (जीराक्स की प्रति) आया। उसी जीराक्स प्रति से दूसरी जीराक्स प्रति तैयार की और उसे महाराजकुमार के पास भेज दी। पृथ्वीराजरासो के सम्पादन का काम मैंने उनके सामने ही आरम्भ कर दिया था किन्तु उसका पूरा काम उनके निधन के बाद मे हुआ। सम्पादन के तीनो भाग १९९४ ई. में पूर्ण हुए। उसके पहले भाग मे आरम्भ मे मैंने यह सशोधित प्रस्तावना दी है। इसी वर्ष (२००४ ई.) में छप गई है। विश्वास करता हूँ कि क्रमश अन्य दोनो भाग छप जावेगे। इन प्रकाशनो के साथ महाराजकुमार का सौंपा हुआ काम पूरा होगा।

मैंने मेरे दादाजी के बाद मे घरेलू डॉट-फटकार महाराजकुमार से ही सुनी है। वे कल्पना लोक मे बहकनेवाले नही थे। प्रति वर्ष (१९६९ ई. के बाद मे) और कभी-कभी वर्ष मे दो बार उनसे मिलने जाता रहा हूँ और जब भी जाता — अपने कार्य का विवरण प्रस्तुत कर देता था। आगे के कार्य की योजना बनाता और पुन दूसरी यात्रा के लिए प्रस्थान करता था। वे जहाँ जाने के लिए कहते, वहाँ चला जाता और जो कुछ देखता-समझता, उसका कच्चा चिट्ठा उनको लिख देता। मेरे लिखे हुए पत्र मेरे पास नही है। कुछ है, उन्हें मैंने दिये भी है। पत्र न होने पर भी महाराजकुमार के पत्रों मे उनके सदर्भ है और सूचनाएँ हैं। मेरे लिए महाराजकुमार ने जयपुर के गोपालनारायणजी बहुरा से पत्र-व्यवहार किया। वह सारा पत्र-व्यवहार मैंने देखा है। उन्हे लिखा और अपनी सम्पादित पत्रोंवाली पुस्तक के परिशिष्ट मे उन्हे दिया हैं। इतिहासकार होने पर भी साहित्य से उन्हे लगाव था।

महाराजकुमार से बात करते समय यदि कोई तथ्यात्मक भूल हो जाती तो वे उसे बरदाश्त नहीं करते। तुरन्त बिगड जाते। फटकार लगाते। कहते — 'यह सब बकवाज है।' जितनी जल्दी वे गरम हो जाते, उतनी ही जल्दी वे ठण्डे हो जाते। मै तो आज्ञाकारी शिष्य था। डॉट-फटकार लगाकर मुझे ठीक करनेवाले गुरु मिले थे। केवल बातचीत मे ही नही, उनके पत्रों मे भी डॉट-फटकार है। व्यावहारिक भूलो के लिए भी वे मुझे डॉटते रहे है। सच तो यह है कि उनके निकट पहुँचने के लिए उन्हें समझने की आवश्यकता है।

मैंने सामग्री-सकलन का काम, उन्हीं से सीखा है। उन्हे मालूम रहा कि मै इस विषय पर मैं काम नही कर सकता किन्तु सामग्री मिल रही है और वह

महत्त्वपूर्ण है तो उन्होंने मगवाई है। मैंने स्वयं अपनी यात्राओं में जो सामग्री संकलित की उसकी सूचनाएँ उन्हे भेजी है और मेरी सूचनाओ के आधार पर उन्होंने सामग्री मंगवा ली है। उनके पास मे पत्रों का विशाल भण्डार हे। वे सब अप्रकाशित है। बीसवी शताब्दी के आरम्भ के दशको के साहित्यकारो (कवियो तथा लेखकों मे) से उनका सीधा सम्पर्क रहा है। मिले है और उनसे पत्र-व्यवहार रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पत्र मुझे उनके सग्रह से मिले है। इसी तरह और भी साहित्यकारों के पत्रों की सूचनाएँ मैंने उसी समय अपनी जानकारी के लिए लिख ली थी। उक्त सूची नीचे दे रहा हूँ।

नाम	पत्रों की संख्या	नाम	पत्रों की संख्या
१) श्री अगरचदजी नाटा	१५	२) श्री अनूप शर्मा	६
३) श्री आनदकृष्ण	१	४) श्री इलाचन्द्र जोशी	४
५) श्री ईश्वरदान आशिया	३	६) श्री कमलकुमार चटोपाध्याय	१
७) श्री कन्हेयालाल 'प्रभाकर'	१	८) श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	१०
९) श्री कन्हैयालाल सहल	२	१०) श्री कृष्णाचार्य	३
११) श्री कृष्णानंद	१	१२) श्री कृष्ण नारायण कमलेश	४
१३) श्री कृष्णबिहारी मिश्र	७	१४) श्री काशीप्रसाद जायसवाल	२
१५) श्री कालिकाप्रसाद दीक्षित	३४	१६) श्री काशीराम शर्मा	११
१७) श्री केशरीसिंह बारहट	१	१८) श्री गणेश रघुनाथ वैशपायन	१
१९) श्री गुलाबराय	२	२०) श्री गोपालशरणसिंह	१५
२१) श्री गौरीशंकर ओझा	१३	२२) श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार	७
२३) श्री चन्द्रभूषण त्रिपाठी	६	२४) श्री चतुरसेन शास्त्री	१०
२५) श्री चन्द्रबली पाण्डेय	२	२६) श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द	१
२७) श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा	६	२८) श्री जनार्दननाथ नागर	२
२९) श्री जयचन्द विद्यालकार	१६	३०) श्री झाबरमल्ल शर्मा	१
३१) श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी	१३	३२) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	८१
३३) श्री देवीदत्त शुक्ल	१६	३४) श्री नरेन्द्र	१५
३५) ना प्र सभा वाराणसी	१२	३६) श्री नाथूलाल व्यास	८
३७) श्री पद्मधर पाठक	१	३८) श्री प्रतापनारायण	१
३९) श्री प्रफुलचन्द्र ओझा	७	४०) श्री प्रभाकर माचवे	१

नाम	पत्रों की संख्या	नाम	पत्रों की संख्या
४१) श्री पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र	१	४२) श्री पुरुषोत्तमदास मेनारिया	४
४३) श्री बद्रीविशाल	३	४४) श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी	१
४५) श्री ब्रजरत्न दास	२	४६) श्री भगवतीचरण वर्मा	९
४७) सुश्री महादेवी वर्मा	४	४८) श्री महेन्द्र	२
४९) श्री मैथिलीशरण गुप्त	३	५०) श्री मोतीचन्द्र	९
५१) श्री यशपाल	४	५२) डॉ रघुवीर	२
५३) श्री रघुपति सहाय	१	५४) श्री रामकृष्ण सुमन	१
५५) श्री रामकुमार वर्मा	२	५६) श्री रामचन्द्र टण्डन	४
५७) श्री ईश्वरचन्द्र सक्सेना	१	५८) श्री रामकृष्ण सुमन	१
५९) श्री जगमोहन निगम	१	६०) श्री खेमराज जोशी	२
६१) श्री अखिल विनय	१	६२) श्री गोकुलचन्द्र शुक्ल	१
६३) श्री प्राणेश	१	६४) श्री राधेश्याम	१
६५) श्री वासुदेव उपाध्याय	१	६६) श्री बलदेव उपाध्याय	१
६७) श्री रामचन्द्र शुक्ल	५	६८) श्री रामधारीसिंह दिनकर	३
६९) श्री रामनारायण चौधरी	२	७०) श्री राधेश्याम गौरीशंकर ओझा	१५
७१) श्री राधाकृष्णदास	३८	७२) श्री रेणु	१
७३) श्री वचनेश	७	७४) श्री वृन्दावनलाल वर्मा	९
७५) श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी	२	७६) श्री विश्वम्भर	१
७७) श्री विष्णु प्रभाकर	१	७८) श्री विष्णुराम सनाथधर सुमनकर	४
७९) श्री वासुदेवशरण	३	८०) श्री वियोगी हरि	१
८१) श्री सत्यकेतु विद्यालंकार	५	८२) श्री अज्ञेय	९
८३) श्री सियारामशरण गुप्त	१२	८४) श्री सुदर्शन	५
८५) श्री सुधाकान्त राय चौधरी	१	८६) श्री सुमित्रानन्दन पन्त	१०
८७) श्री निराला	२	८८) श्री श्रीपतराय	३
८९) श्री श्यामसुन्दरदास	६	९०) श्री शान्तिप्रसाद वर्मा	१९
९१) श्री शुकदेवबिहारी मिश्र	११	९२) श्री हरिभाऊ उपाध्याय	१
९३) श्री हरिशंकर	४	९४) श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी	४
९५) श्री क्षेमचन्द्र सुमन	१	९६) श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	७७

इस सूची मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम क्रमाक ३२ तथा क्रमाक ९६ मे दो बार आया है । एक जगह उनके ८१ पत्र है और दूसरी जगह ७७ पत्र है । उनके कुल पत्र ८१+७७=१५८ है । सबसे अधिक पत्र उन्ही के है । ये सब पत्र सीतामऊ नगर के प्रवेशद्वार के भीतर के महल मे है, जिसमें ऐसी महत्त्वपूर्ण बहुत-सी सामग्री है । उन सबको देखने मे बहुत समय लगेगा । ये पत्र महाराजकुमार जहाँ बैठते हैं, वहाँ पर (उस भवन मे) नही है । इन पत्रो के साथ-साथ और-और विशेष लेखको की सामग्री भी है । जयचन्द्र विद्यालकार की अप्रकाशित और व्यक्तिगत सामग्री अलग से अलमारी मे रखी हुई है । बहुत से लेखक काम करते-करते इस लोक को छोड देते है । उनकी शेष और व्यक्तिगत सामग्री का ठीक से सकलन नही — **एकत्रीकरण** — हो पाता । उनका मूल्य पहचानेवाले प्राय घर के लोग नही होते । जानकार लोग पहुँचते है और जो हाथ आए, उठाकर ले जाते हैं । आचार्य रामचद्र शुक्ल की बहुत-सी सामग्री ऐसे ही लोग उठा ले गए । लोहे के सन्दूक में जो सामग्री थी, वह सुरक्षित रही । अधिक सामग्री प केशवचन्द्र शुक्ल के पास मे थी ।

मैंने व्यक्तिगत जानकारी पाने के लिए बहुत बार प्रश्न पूछे । सकोच के कारण कुछ बतलाते नही । पत्र भी लिखे । २३ जुलाई १९८८ ई को पत्र मे लिखा —

'जो व्यक्तिगत पत्र लिखे भेजे है, उनके बारे मे स्वय लिखना बडा कठिन होता है सो उत्तर मे लिखवा कर शीघ्र ही भिजवा दूँगा ।'

(महाराजकुमार के पत्र, अन्तिम पत्र, पत्र क्रमांक १९४, पृ २०२)

और वह पत्र कभी नही मिला । इस पर भी मैंने प्रयत्न जारी रखे और क्रमश जो कुछ ज्ञात हुआ, वह लिख लिया है । बहुत सक्षिप्त जानकारी लिख रहा हूँ —

पिता — श्री रामसिहजी के सी आई / जन्मतिथि — २३ फरवरी १९०८ ई

विवाह — प्रतापगढ स्टेट (राजस्थान) की मोहनकुमारी से १९२९ ई

बडी कन्या — उषाकुमारी, जन्म १९३२ ई., माजदा रियासत में विवाह हुआ।

ज्येष्ठ पुत्र — श्रीकृष्णसिह, जन्म १९३४ ई - बार्डर सेक्यूरिटि फोर्स मे I.G.।

दूसरी कन्या — रमाकुमारी, जन्म १९३६ ई. — विवाह १९५० ई काठियावाड मे ।

दूसरा पुत्र — ब्रजराजसिह, जन्म १९३८ ई — दादा की उपस्थिति मे विवाह — विवाह के तुरन्त कुछ दिन बाद पूना गए। वही पर निधन हो गया। महाराजा रामसिंह का निधन २० मार्च १९६७ ई को हुआ। उससे पूर्व छोटे पौत्र का निधन हुआ। आघात सह नही सके। पैतृक अधिकार श्री कृष्णसिह को दे दिया। महाराजकुमार अन्त तक महाराजकुमार रहे। महाराजकुमार के दो भाई है — गोविदसिह और रघुनाथसिंह। दो बहने हैं — चादकुमारी (बिजौलिया मे) और दूसरी कृष्णकुमारी, सरगुजा की महारानी।

शिक्षा — शिक्षा घर पर ही हुई। जुलाई १९२० को डलिली कालेज इन्दौर भेजा गया। सितम्बर २० को बीमार हो गए। पिताजी पधारे थे। प्रिसिपल परसी हाईल्ड नाराज़ थे। वोलचाल हो गई। सरकारने वापिस बुलवाया। टाइफाइड भी था। दिसम्बर २०, में लौट आए। 6th Class मे प्रवेश हुआ। सरकार 7th class में प्रवेश चाहते थे। दिसम्बर २० से मार्च २४ तक के चार साल का कोर्स घर पर ही हुआ। रावर्ट किंग प्रिंसिपल था। स्टेट के स्कूलो का इसपेक्टर भी होता था। पढानेवालो मे बी एस. नायक इतिहास-भूगोल पढाते थे। पूना के एस आर मराठे इंग्लिश पढाते थे। भानुलाल हेमसावडा, गणित-साइस के अध्यापक थे। काठियावाड के थे। सस्कृत पढानेवाले सी के गडकरी थे। १९२४ ई मे बडौदा से परीक्षा दी। इस तरह बम्बई यूनिवर्सिटी से मैट्रिक हुआ। जुलाई-सितम्बर १९२४ ई मे होलकर कालेज (इन्दौर) भेजा गया। चार महीने के बाद वापिस बुलवाया। घर पर ही स्टाफ रखा गया।'

यह सब मैने टुकडो-टुकडों मे सुना। सात अगस्त १९८७ ई. को सब लिख लिया था। महाराजकुमार का आत्मकथन अपूर्ण है। वे पिताजी को सरकार कहते थे। पिताजी ने बुलवा लिया कहने के स्थान पर, सरकार ने बुलवाया — कहते थे। स्वय आजीवन महाराजकुमार रहे और इसी नाम से वे पहचाने जाते है।

वीरकाव्यों पर मेरी जो पुस्तके प्रकाशित हुई, वे है — भूषण और उनका साहित्य (१९६८ ई.)/ पृथ्वीराजरासो . इतिहास और काव्य (१९७४ ई)/ हिन्दी वीरकाव्य सर्वेक्षण, वर्गीकरण तथा मूल्याकन (१६०० ई-१८०० ई) — (१९७९ ई)। इनमें प्रथम पी-एच डी का शोध-प्रबन्ध है। इसके दूसरे सस्करण मे (१९८७ ई में) महाराजकुमार का सहयोग मिला है। पृथ्वीराजरासो इतिहास और काव्य — पूरा का पूरा उन्हीके निर्देशन मे लिखा हुआ है। उसी पुस्तक की

समाहरणात्मक प्रस्तावना (दीर्घ है) उन्होंने लिखी है। और तीसरी पुस्तक डी लिट का शोध प्रबन्ध है। इसकी भूमिका स्वय महाराजकुमार ने लिखी है। वस्तुत इसके प्रकाशन के साथ मेरा काम पूर्ण हो जाता है किन्तु उनका सम्पर्क अन्त तक बराबर बना रहा है। १९७९ ई के बाद नियमित जाना बन्द हो गया था। तब भी पत्र-व्यवहार अन्त तक जारी रहा।

पृथ्वीराजरासो से सम्बन्धित कार्य उन्ही की प्रेरणा से स्वतंत्ररूपेण किया गया कार्य है। १९७४ ई मे पुस्तक छप जाने पर भी उसके सम्पादन का आग्रह उनका बना रहा। उनका वह कार्य मैंने १९९३-१९९४ ई. तक पूर्ण कर दिया। इन दस वर्षो के बाद उसके तीनो भाग (सटीक और भूमिकाओ सहित) छप रहे है। प्रथम भाग इसी वर्ष (२००४ ई) छपा है।

डी लिट् के प्रबन्ध के चौथे अध्याय के आधार पर मैंने दो पुस्तकें तैयार की। वे हैं— **'राजस्थान के गौरव ग्रंथ।'** (प्रकाशन १९८० ई.) और दूसरी पुस्तक है **'जुझौते बुंदेलो की शौर्यगाथाएँ'** (प्रकाशन १९८२ ई)। इस दूसरी पुस्तक की प्रस्तावना महाराजकुमार ने लिखी है। इसी प्रस्तावना मे महाराजकुमार ने लिखा— 'डॉ. राजमल बोरा ने इसी सदर्भ मे (हिम्मत बहादुर विरुदावली के सदर्भ में) हिम्मत बहादुर विषयक मान कवीन्द्र द्वारा रचित 'अनूप प्रकास' काव्य का भी उल्लेख किया है, जो अब तक अप्रकाशित है।'— अत बाद मे मैंने उक्त काव्य का सम्पादन किया। पहले उसका प्रकाशन मरू भारती (पिलानी) मे धारावाहिक रूप मे १९८६-१९८७ ई मे हुआ। उसकी अनुमुद्रित प्रतियाँ, उन्हें उसी समय मे भेज दी गई थीं। बाद मे उसे पुन सशोधित कर **ऐतिहासिक पर्यालोचन** की भूमिका सहित छपवाया। इसके प्रकाशन मे मुझे मेरे गुरु डॉ विजयपालसिह का सहयोग मिला। उनके कारण, संजय प्रकाशन, वाराणसी से उक्त पुस्तक का प्रकाशन १९९९ ई. मे हुआ। महाराजकुमार इस प्रकाशित पुस्तक को देख नही सके।

यहाँ, मैं यह स्पष्ट लिख दूँ कि मैंने अपने पत्रो मे मेरी निजी कठिनाइयो का उल्लेख किया है। आर्थिक कठिनाइयाँ। प्रकाशन की कठिनाइयाँ। पारिवारिक घटनाएँ तथा कार्य के विलम्ब के कारण— सब बतलाता रहा हूँ। और मेरी उन कठिनाइयो को जानकर उनके पत्रो में वे सब उल्लेख मिलते हैं। लगता है, पत्र सामने रखकर क्रमश सब का उत्तर लिखते थे। पूछे गए प्रश्नो का समाधान प्रस्तुत करते थे। उनके पत्रो से मुझे सात्वना ही नही, कार्य करने का बल भी मिला है। उनका पत्र मिलते ही मेरा कार्य में उत्साह बना रहता था। मैंने व्यक्तिगत

कठिनाइयो का — घरेलू स्तर पर — उल्लेख महाराजकुमार को लिखे गए पत्रो मे जितना किया है, उतना अन्यत्र नही किया है। बातचीत करते समय बाद मे वे मुझे मात्र 'गजमल' नाम से सम्बोधित करते थे। घर मे जैसे पारिवारिक सदस्यो से बात की जाती है, वैसे ही बोलते थे। कहते — 'देखो, गजमल . . .' और कहते कहते कधो पर हाथ धर देते थे। विशष रूप से सायंकाल मे टहलते समय ऐसी बात होती। जब वे खुले मैदान मे चलते तो कभी-कभी गॉव के लोग सामने से गुजरते। वे लोग दूर से ही जोहार करते। सिर झुकाते और निकल जाते। अपनी प्रजा के प्रति उनमें ममता व्यक्त होती। आगे निकल जाते फिर अपनी बात कहने लगते। ऐसे अवसरो पर वे पुरानी बाते सुनाते। विद्वानो की चर्चा करते। और सामायिक राजनीतिक प्रवृत्तियो की भी चर्चा करते। अपनी बात को दोहराकर कहने की उनकी आदत रही है।

१९८४ ई. मे मैंने दौलताबाद पर २० पृष्ठो का लेख लिखा। भारतीय हिन्दी परिषद के अधिवेशन (औरंगाबाद) की स्मारिका मे उसे छापना था। सम्पादक मैं ही था। इतिहास पर लिखने का साहस मैंने किया। मैंने उक्त लेख छापने से पूर्व महाराजकुमार को भेजा था। पढ़कर उन्होंने जो प्रतिक्रिया व्यक्त की उससे मैंने लेख छापा ही नही। और तब मैंने **'देवगिरि के यादव राजा'** स्वतत्र पुस्तक लिखी। उस पुस्तक की पाण्डुलिपि उन्हे भेजी। उन्होंने पढकर उसकी भूमिका लिखी है। १९८७ ई. में पुस्तक तैयार हो गई। महाराजकुमार की भूमिका के कारण उसे ICHR, दिल्ली की ओर से प्रकाशन अनुदान मिला। उसका प्रकाशन १९८९ ई. मे हुआ।

मैंने इतिहास सम्बन्धी पुस्तक लिखने के लिए दो पुस्तको की सामग्री सकलित की। **'सातवाहनों का इतिहास'** तथा **'विजयनगर साम्राज्य का इतिहास'**। इन विषयो पर काम करने की योजना थी किन्तु वह काम वैसे ही पडा रहा। महाराजकुमार रहे नही और फिर मै अन्य विषयो मे — विशेष रूप से भाषा विज्ञान मे — उलझ गया। अब तो दूसरे ही काम इतने हैं कि उन विषयों की ओर ध्यान नही दे सका।

यह सब होने पर भी मैंने दो पुस्तकें इतिहास पर लिखी है — वे है — **श्रीकृष्णदेवराय** और **अकबर** पर। दोनों अप्रकाशित है।

महाराजकुमार को अपने ग्रथालय की चिन्ता थी। उसे वे सस्था का रूप देना चाहते थे। तदर्थ उनका चितन जारी था। १९७५ ई मे उन्होंने श्री नटनागर

शोध सस्थान की स्थापना करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न की प्रगति से सम्बन्धित पत्र वे लगातार लिखते रहते थे। जनवरी २. १९७५ के पत्र मे लिखा —

"हॉ, श्री रघुबीर लाइब्रेरी को लेकर अब यहाँ श्री नटनागर शोध-सस्थान की स्थापना हो रही है। इस संस्थान का रजिस्ट्रेशन होने जा रहा है। और मध्यप्रदेश राज्यशासन मे अनुदान मिलने लगेगा। आशा है कि अब अगले मास से तो अवश्य ही यहाँ पर कार्यरत हो जावेगा"

(पत्र क्र ७१, पृ ८२ तथा ८३)

१९७६ ई. में मार्च २१ को पुन पत्र मे लिखा —

"श्री मनोहरसिहजी राणावत यही हैं। तुम्हे अपना सदेश वे स्वय ही लिख रहे हैं। उन्होंने कार्यभार सम्भाल लिया है। यह संस्थान सक्रिय और प्रगतिशील होता जा रहा है। आगामी वर्ष के अनुदान के लिए प्रयत्नशील हूं"

(पत्र क्र ८४, पृ ९८)

डॉ. मनोहरसिह राणावत १९७५ ई मे पूर्व ही महाराजकुमार के सम्पर्क मे रहे हैं। उनके पहुँचने के बाद पहले तो पी-एच डी का प्रबन्ध लिखवाया। १९७८ ई मे उन्होने शोध-ग्रंथ पूरा कर दिया। १९७९ ई. मे. पी-एच.डी. हो गए।

महाराजकुमार उसके बाद जब भी यात्रा पर निकलते, मनोहरसिंह राणावत साथ में रहते। उन्हें सहायक की आवश्यकता रही है। मनोहरसिह राणावत के आगमन के बाद संस्था को नई जीवनी शक्ति मिली। वे औरगाबाद आए तो मनोहरसिंह राणावत साथ में थे। नई दिल्ली में १९८३ ई विश्व हिन्दी सम्मेलन मे पहुँचे तो मनोहरसिह राणावत साथ मे थे। आज तो सस्था का कार्य डॉ. मनोहरसिंह राणावत कर रहे हैं।

अन्तिम वर्षो में भी वे निरन्तर काम करते रहे हैं। उनका निजी भवन — ग्रथालय का रूप ले चुका था। सामने बैठक। भीतर के दो-तीन कमरों में पुस्तके और लिखने-पढने का टेबल। सारी पुस्तके कहाँ रखी है, उन्हे मालूम रहती। शिवसिंह से पुस्तकें मंगवाते और उसीसे पुस्तकें यथास्थान रखवा देते। यो मै अकेला ही वहाँ पहुँचा हो, ऐसी बात नही। विद्वानों के पहुँचने का वह तीर्थ-स्थल हो गया था। उसका प्रचार-प्रसार कम था। किन्तु जानकार लोग पहुँचते ही रहते थे।

१९७९ ई के बाद मे मेरा आना-जाना कम हो गया था । इस पर भी श्री नटनागर शोध-सस्थान की ओर से आयोजित सगोष्ठियो मे जाता था । सगोष्ठियाँ प्राय लदूना मे होती । लदूना का पुराना राजभवन हम लोगो का आवास स्थान हो गया । उसीके पास खुली जगह मे सगोष्ठियाँ होती । सम्मिलित भोज मे सायकाल मे महाराजकुमार रहते थे । प काशीराम शर्मा भी इन सगोष्ठियो मे आते थे । उनकी उपस्थिति तक हमारा आना-जाना जारी था । दिन भर पडित काशीराम शर्माजी के साथ चर्चा होती । लदूना से बाहर खुली जगह मे घूमने के लिए निकल जाते । एक सगोष्ठी मे महाराजकुमार ने प. काशीरामजी शर्मा का सम्मान भी किया ।

महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह का सम्पर्क अपने गुरु सर जदुनाथ सरकार से रहा है । गुरुजी के पत्र उन्हें लगातार मिलते रहे हैं । उन्ही पत्रों ने श्री नटनागर शोध सस्थान के निर्माण में काम किया है । कुल ३२९ पत्र है । इन पत्रों का प्रकाशन महाराष्ट्र राज्य पुरातत्त्व विभाग की ओर से १९७५ ई. मे हुआ । यह पत्र-व्यवहार १९३३ ई से १९५८ ई तक जारी रहा है। उनके दूसरे शिष्य कालिकारजन कानूनगो का पत्र अन्तिम है । वह १५ मई १९५८ ई. का है। उसमे गुरुजी के निधन का समाचार है । कुल ३२९ पत्रो में ३२८ पत्र सर जदुनाथ के हैं । इस पुस्तक को आधार मानकर मैंने एक लेख लिखा — 'जदुनाथ सरकार और महाराजकुमार रघुबीरसिह।' — उक्त लेख मैंने लदूना की एक सगोष्ठी मे पढकर सुनाया। महाराजकुमार उस समय थे ।

महाराजकुमार के निधन के बाद मे भी डॉ मनोहरसिहजी राणावत की ओर से निमत्रण-पत्र मिलते रहे है । लदूना मे पुन एक सगोष्ठी में गया था । इन्दौर मे भी डॉ. मनोहरसिंह राणावत ने सगोष्ठी का आयोजन किया । उसमें भी गया। उसके बाद तो अब पत्र-व्यवहार होता है ।

□ □

पं. काशीराम शर्मा

महाराजकुमार जब तक थे तब तक दूसरे विद्वानो से सम्पर्क होने पर भी मेरा ध्यान उन पर ही अधिक रहा है । यहाँ तक कि वीरकाव्यो का काम बन्द कर देने पर भी, मैं जो कुछ पढता-लिखता, उसकी सूचनाएँ भेजता रहता । उनके पत्र भी मिलते रहते थे । उनके कारण मेरा परिचय पं काशीरामजी शर्मा से हुआ और वह परिचय इन पक्तियो के लिखने तक बना हुआ है ।

प काशीरामजी शर्मा मूल रूप मे सस्कृत के विद्वान् है । राजस्थानी भाषा के वाङ्मय के ज्ञाता भी है । प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियॉ पढ लेते है । छन्दो के ज्ञाता है और छन्दो के क्रम को जानकर सहज उच्चारण से काव्य पाठ करते है । उनका काव्य वाचन मैंने सुना है । 'रतनरासो' के कारण मेरा पत्र-व्यवहार हुआ और बाद मे मिलना भी हुआ ।

आरम्भ में मैं उन्हें हिन्दी निदेशालय मे मिला । वही पर वे काम करते रहे है । उनका आवास मोती बाग मे था । फ्लैट मे रहते थे । उनके कार्यालय मे गया और बाद मे घर पर भी गया । सबसे पहले मैं दिल्ली १९७१ ई मे गया। उसके बाद २००१ ई तक लगातार जाता रहा हूँ । कोई वर्ष ऐसा नही गया, जब मै दिल्ली नहीं गया हो । कभी-कभी तो वर्ष मे दो बार और तीन बार भी गया हूँ । महानगर मे पैदल भी बहुत घूमा हूँ ओर रहने के स्थान बदलता रहा हूँ । किन्तु यदि किसी के निवास स्थान पर घरेलू सदस्य बनकर पडित काशीराम शर्मा के घर पर ही रहा हूँ । मोती बाग — दिल्ली स्टेशन से — बहुत दूर है । उनके घर जाने-आने मे पूरा दिन चला जाता है, इसलिए आरम्भ मे उनके घर पर ठहरता नही था । चॉदनी चौक पर ही ठहरता था, किन्तु एक रात उनके घर पर गुजारता था । रात मे ठहरे बिना बात भी नहीं होती ।

मुझे वीरकाव्यो से भाषा विज्ञान की ओर मोडने वालो में पडितजी का योगदान मै भूल नही सकता । पुस्तक पढकर विषय को जानना और व्यक्ति के मुख से सहज गति से सुनना — दोनो मे बहुत अन्तर है । पडितजी उन विद्वानो में है, जिनके कंठ में विद्या है । सस्कृत के विद्वानो के गुण उनमें है ।

'रतनरासो' से पूर्व कवि रघुनाथ रसाल कृत **'रामचरित्र'** तथा **'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेस दासोत री खिडिया जगारी कही'** — दोनों के सम्पादन मे पडित काशीरामजी ने महाराजकुमार का सहयोग दिया है । 'रामचरित्र' का प्रकाशन १९५६ ई में हुआ और वचनिका का प्रकाशन १९६० ई में हुआ । दोनो का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन दिल्ली से हुआ है । उन दिनों मे महाराजकुमार दिल्ली मे थे । पडितजी ने इन काव्यो मे काव्य पक्ष को उजागर किया है । इन काव्यो की टीका भी लिखी है । 'रतनरासो' अपेक्षाकृत बडा काव्य है और उसकी भूमिका भी २५३ पृष्ठों की है । रतनरासो के कवि का नाम 'कुम्भकर्ण' कवि है । राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से छपनेवाला था । १९७० ई मे मैने 'रतनरासो'

की पाण्डुलिपि प. काशीरामजी शर्मा से मगाई थी । काम होने के बाद लौटा दी थी । उक्त ग्रथ पूरा आरम्भ से अन्त तक अभी भी छपा नहीं है । 'भूमिका' छपी है । वह २५३ पृष्ठो की है ।

आरम्भ मे जब पडितजी से मिला, उस समय वे केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय मे थे । मै अकेले ही गया था । उनके साथ ही निदेशालय से (रामकृष्णपुरम्) मोतीबाग तक हम पैदल आए थे । टेलीफोन की डायरेक्टरी देखकर बाईसाहब की याद आई । मालूम था कि बाईसाहब इस समय दिल्ली मे है । उनके तीसरे पुत्र मनोहरलालजी कोठारी — मन्ना भाईसाहब — के पास रहते हैं । मैंने डाइरेक्टरी मे मनोहरलाल कोठारी का फोन नम्बर खोज लिया । बात की । मन्ना भाईसाहब मिल गये । पता पूछा । मालूम हुआ कि ग्रेटर कैलाश मे पार्ट I के एम. ब्लाक मे रहते हैं। ब्लाक नम्बर भी बतलाया । तद्नुसार बाईसाहब से मिलने गया । पंडितजी का आग्रह था कि वहीं रहे । आरम्भ में सभव नही था । सामान सब फतेहपुरी में था । मोतीबाग से बस में बैठकर मूलचन्द स्टाप पर उतर कर, वहाँ से ग्रेटर कैलाश गया । बाईसाहब घर पर मिल गये । बात हुई । मन्ना भाईसाहब भी मिले। उस समय मन्ना भाईसाहब किराये से रहते थे । वहीं पर भोजन किया । वहाँ से दिल्ली स्टेशन की बस में बैठकर फव्वारा उतरा । फव्वारा से फतेहपुरी पहुँचा। दूसरी बार जब पुन. दिल्ली गया तो पत्नी साथ में थी । हम लोग फतेहपुरी की धर्मशाला मे ठहरे हुए थे । प. काशीरामजी शर्मा को जब मालूम हुआ कि हम दोनो आए हुए हैं तो वे स्वयं फतेहपुरी की लक्ष्मीनारायण धर्मशाला आए और हमे मोती बाग ले गए । यो पारिवारिक परिचय हुआ । और फिर तो यह परिचय बढता गया ।

पडितजी बहुत शीघ्र ट्रासलेशन ब्यूरो के कार्यालय मे आ गए। वह कार्यालय मोतीबाग से पैदल चलकर जाने मे सुविधाजनक था । सडक मात्र पार कर, चौरस्ते की दूसरी ओर की सड़क पर जाना पडता था । उस कार्यालय मे ख्वाजा बदीउज्जमाँ भी काम करते थे । पडितजी के सहयोगी थे । 'एक चूहे की मौत' — उनका उपन्यास उन दिनों मे बहुत प्रसिद्ध हो गया था । उन्होंने बर्ट्रेण्ड रसेल की पुस्तक Is Happiness still possible का हिन्दी अनुवाद किया था । उसका नाम **सुख की साधना** रखा । राजकमल प्रकाशन से वह पुस्तक छपी है । एक नए लेखक से परिचय हुआ । उस समय इसी क्रम मे औरों से भी परिचय होता रहा है । बाद मे तो

मेरा यह क्रम बन गया कि जब भी दिल्ली आता, एक रात मोती बाग मे ठहरता रहता था। मेरा काम दरियागज तथा चॉदनी चौक मे रहता था। इसलिए चॉदनी चौक के निकट फतेहपुरी की धर्मशाला मे ही ठहरता।

हमारी आपस मे जो बातचीत होती, वह विषयपरक होती। काव्य-पक्ष ओर भाषा-पक्ष पर ही वे अधिक बोलते। भाषा से सम्बन्धित जिन प्रश्नो से मै जूझता था, उन पर अधिक चर्चा होती। मै प्रश्न छेडता और वे बोलते रहते। सच देखा जाए तो यह एक पक्ष का बोलना होता। वे वक्ता अधिक रहते ओर मै मात्र श्रोता। **'वक्ता श्रोता ज्ञान निधि, कथा राम की गूढ'** जैसी हमारी स्थिति हो गई। उनके विचारों मे बहने लगा था। वे इतिहास की चिन्ता करनेवालो मे नही है। हॉ, विषय की उन्हे अधिक चिन्ता रही है। खिडिया जगा की वचनिका का सम्पादन डॉ शभुसिंह मनोहर ने किया है और उसमे पडितजी के सम्पादन की अनेक भूले बतलाई गई है। उसका खण्डन-मण्डन बहुत हुआ है। पडितजी के पास शिकायतें पहुँची। उनकी ओर से उत्तर देने से पूर्व ही दूसरे विद्वानो ने पडितजी के समर्थन मे लिख दिया था। पडितजी के गुरु नरोत्तमदास स्वामी थे। स्वामीजी के विचारो को ठीक मानते थे। कहना यह है कि शशिशेखरन् के विशेष आग्रह के कारण उन्होंने आक्षेपो का उत्तर देना स्वीकार किया। और **वचनिका का सम्पादन** शीर्षक पुस्तक उत्तर मे एक प्रवाह में लिख दी। उसका प्रकाशन १९८८ ई. में हुआ। सस्कृत की खण्डन-मण्डन की परम्परा हिन्दी में जीवित नहीं है। उस परम्परा को हिन्दी में (डिंगल काव्य के सम्पादन में) पंडितजी ने जीवित रखा है। उनके गम्भीर किन्तु विनम्र तेवर को उक्त पुस्तक के आधार पर समझा जा सकता है।

यहॉ, यह भी लिख दूँ कि डिंगल के छदो का उन्हें अच्छा ज्ञान था। वे उच्चारण से परिचित थे और छंदो की मात्राओं को उन्हें पूरा बोध था। नागरी लिपि में उच्चारण के अनुसार चिह्न न होने के कारण उन्होने राजकमल प्रकाशन द्वारा अपनी सम्पादित पुस्तक में विशेष विशेष चिह्न लगाए थे। और इसी प्रकार के चिह्न वे **रतनरासो** के पाठ के प्रकाशन मे लगाना चाहते थे। उसके लिए प्रकाशक तैयार नहीं हुए। इसलिए उनका मूल पाठ छप नहीं सका। भूमिका मात्र छपी है। पुस्तक छप नहीं पाई। अब उसकी संभावना कम है।

इतिहास के प्रति पंडितजी के विचार देखिए —

> "जहाँ तक हमारी समझ है, हम तो काव्य के ऐतिहासिक तत्व को कोई महत्व देते नही। उसे केवल अतिरिक्त उपयोग मानते हैं जो न हो तब भी चलेगा। इसमे सारे ऐतिहासिक तथ्य पूर्णत परिशुद्ध होते पर कवित्व न होता तो हम वचनिका को छूते ही नही। पर इसके सभी तथ्य इतिहास विरुद्ध होते तब भी हम इसके काव्यत्व पर लट्टू होकर इसका रसास्वादन अवश्यक करते। हमारे विचार से पृथ्वीराजरासो आद्यन्त इतिहास विरुद्ध है पर फिर भी हम उसे अति सग्रहणीय और आस्वाद्य रचना मानते है। उसको विशालतम रूप में ही देखना चाहते है। इतिहास की कसौटी पर तो लघुतम सस्करण भी नहीं टिक पायेगा। पर इतिहास के पीछे क्या हम साहित्य को जला दे ?"
>
> (— वचनिका का सम्पादन पृ ३९)

पंडितजी के तेवर को समझने के लिए उक्त पुस्तक पढनी चाहिए। पंडितजी शास्त्रार्थ करने में समर्थ है, ऐसा इस पुस्तक को पढकर लगेगा।

सेवा-निवृत्त होने के बाद पंडितजी शाहदरा में रहने लगे थे। उनका एक पुत्र चाँदनी चौक पर फोटो-स्टुडिओ पर काम करता था। उस बार मैं एक सप्ताह उनके घर पर ही रह गया। सबेरे उनके साथ टहलने जाता था। जिस मेन रोड़ पर हम पहले पहुँचते, वह साठ फुट की रोड है। उसे साठ फुटा रोड कहते हैं। उस रोड से सीधे चले जाओ तो वह रोड बडी रोड से मिलती है। वह सौ फुटवाली रोड़ है। उसे सौ-फुटा रोड कहते है। वह रोड़ सीधी ही सीधी विजय पार्कवाली रोड से मिलती है। विजय पार्क मे डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' रहते हैं। हम दोनों ही सबेरे टहलते-टहलते 'अरुण' जी के घर पर पहुँच गये। गली में घर था। उनसे पत्र-व्यवहार हुआ था। हम्मीर काव्यो पर उन्होंने कार्य किया है। उनके कार्य का उपयोग मैंने अपने लेखो मे किया है। उनका निजी प्रकाशन है। घर में दूध देनेवाले जानवर हैं। उनकी सेवा करते है। महानगर मे भी उनका घर ग्रामीण घर सदृश है। प्रेम से मिले। पंडितजी को भी जानते है। रीतिकाल की प्राचीन पाण्डुलिपियो का सम्पादन तथा प्रकाशन करते रहते है। काव्यशास्त्र के प्रेमी है। उनका एक लेख मैंने काव्यशास्त्र पर ही डॉ विजयपालसिंह अभिनदन-

ग्रथ मे प्रकाशित किया है । उनसे उस दिन मिलना हुआ और वह भी पडितजी के साथ में हुआ । इसी तरह एक दिन हम दोनो ईश्वरचन्द्रजी खण्डेलवाल के घर पर भी गये । उनका घर नवीन शाहदरा मे पचशील गार्डन के निकट है । राजपाल एण्ड सन्ज से सेवानिवृत्त होने के बाद वे घर पर ही रहने लगे थे । विश्वनाथजी उन्हे छोड नही रहे थे । कुछ दिनो तक वे आधे दिन बैठते थे । बाद मे वे घर पर रह गये । उनके समय ही राजपाल एण्ड सन्ज से परिचय हुआ । उनकी देखरेख मे अभिनदन-ग्रंथ छपा । उनके पुत्रो की प्रेस है । प्रेस नीचे की फ्लोअर पर है। ऊपर उनका आवास है । अभिनदन-ग्रथ की स्मारिका उनके प्रेस मे ही छपी है। ग्रथ दूसरी ओर से छपा । सारा श्रम उन्होने ही किया । डॉ नगेन्द्र ग्रंथ छप जाने के बाद राजपाल एण्ड सन्ज पहुँचे । मैं साथ मे था। उसी दिन अभिनदन-ग्रंथ समारोह का कार्यक्रम था । सारी व्यवस्था राजपाल एण्ड सन्ज की ओर से थी। डॉ नगेन्द्र ने गाडी मे बैठे-बैठे ही कहा कि ऊपर जाकर ईश्वरचन्द्रजी खण्डेलवाल को नीचे बुलवाओ । मैं सीढियाँ नहीं चढता । वे आए । व्यवस्था से सम्बन्धित बात हुई और हम लोग चले गए । उनके कारण **'नामों का भाषा विज्ञान'** मेरी पुस्तक राजपाल एण्ड सन्ज से प्रकाशित हुई ।

ईश्वरचन्द्रजी खण्डेलवाल पं काशीराम शर्मा से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होने प्रकाशक का काम छोड दिया था किन्तु उन्होंने जीवन भर वही काम किया। लेखकों से कवियो से प्राय वे ही मिलते थे ।

सबेरे-शाम जब हम घूमने निकलते तो संस्कृत वाङ्मय पर अधिक चर्चा होती । कालिदास के रघुवंश पर उनके मुख से जो कुछ मैंने जाना और सुना, वह बाद मे मुझे जानने नही मिला । वे केवल काव्य की वस्तु पर बतलाते और काव्यतत्व का विवेचन करते । कालिदास पर मुग्ध थे । मै तो मात्र श्रोता के रूप मे सुनता रहता था ।

१९८५ ई. मे अशोक महेश्वरी ने मेरी पुस्तक 'अर्थानुशासन' प्रकाशित की। उस समय प्रकाशन का कार्य अशोक महेश्वरी ही करते थे । ईश्वरचन्द्रजी खण्डेलवाल ने उसे छापना स्वीकार किया था । अनुबन्ध भी हुआ । फिर न जाने क्यों ? उसका प्रकाशन नही हुआ । तब मैंने पुस्तक अशोक को दी और उन्होने छाप दी । उक्त पुस्तक से प्रेरणा प्राप्त कर एक बहाव मे शाहदरा में पंडितजी ने 'अनर्थानुशासन' पुस्तक लिख दी । नवम्बर के मास मे दिल्ली गया था । जाडे के दिन थे । शाहदरा पहुँचा । पंडितजी खटिया पर रजाई ओढे लेटे हुए थे । 'अनर्थानुशासन' पुस्तक

के अश सुनाए । उमग मे आकर और सहज गति से लिखी हुई व्यग्यपूर्ण पुस्तक थी । पुस्तक की अर्थमीमासा मे ही चोट है । कोशार्थ भिन्न होते हैं और व्यावहारिक अर्थ भिन्न होते है और इस अलगाव को स्पष्ट करने का प्रयास उक्त पुस्तक मे है । पुस्तक तो मैंने पढी नही, मात्र पडितजी के मुख से सुनी है । मै चाहता था कि उक्त पुस्तक छप जाए । श्री अशोक महेश्वरी को उन्होंने दी भी है । वह अब तक छपी नही है । जैसे आचार्य किशोरीदास वाजपेयीजी अपनी पुस्तको मे अर्थ के अनर्थ हो जाने की चुटकियाँ लेते है । वैसे ही पडितजी भी अपनी शैली मे चुटकियाँ लेते है । वैसे उनसे कोई बात करें तो शब्दों के अर्थ कितने बिगाडे गए है । इसे वे खूब समझते है और उन पर चुटकियाँ लेते हुए अर्थ मीमासा करते हैं । सस्कृत के पण्डितो का यह स्वभाव है । इस स्वभाव को समझने के लिए अनर्थानुशासन पुस्तक बहुत उपयोगी है । उक्त पुस्तक क्यो नही छपी ? मै नहीं जानता ।

पडितजी का ज्येष्ठ पुत्र बैंक में अधिकारी है । नाबार्ड की शाखाएँ जहाँ-जहाँ है, वहाँ वहाँ वह रहता है । पडितजी अपने पुत्र के पास रहने के लिए पहुँचते रहते है । मुंबई में वे कान्दीवली में रहते थे । नाबार्ड के क्वार्टर वहीं है । उसीमें रहते थे । मुंबई गया तो कॅवर साहब के साथ नाबार्ड के क्वार्टर में पहुँचा था । भेट हो गई । बात हुई । पत्र-व्यवहार तो वैसे ही जारी था । उससे पूर्व जम्मू मे पुत्र रहता था । वहाँ गाधीनगर में रहता था । उनके लिए तब जम्मू गया था। पहली बार जम्मू गया था । लाल किले के पास से जम्मू को सीधी बस जाती है, उसी मे जालन्धर होते हुए जम्मू पहुँचा । तवी नदी के पुल मे बस गुजरी तो लोगों ने कहा — 'जम्मू' आ गया । मैंने देखा कि कुछ दूर जाकर बस खडी हो गई। मै नीचे उतरा । देखा कि वातावरण बदला हुआ है । चारों ओर इश्तिहार लगे हुए है, वे सब उर्दू मे है । नामपट्ट भी उर्दू मे लिखे हुए मिले । मुझे बचपन याद आ गया । लगा निजाम स्टेट मे पहुँच गया । पूछते-पूछते पडितजी के घर पर पहुँच गया । पडितजी घर पर मिल गए । बहुत प्रसन्न हुए ।

मैं तीन-चार दिन जम्मू में रह गया । उन्हीं के घर पर था । मै घूमने-फिरने की दृष्टि से जम्मू नहीं गया था । मुझे तो पृथ्वीराजरासो के सम्पादित पाठ को शुद्ध करना था । ठीक से वाचन करना । छद भग हो गया तो उसे ठीक करना । जो पाठ पढा नही जा सका और जहाँ चिह्न लगाए रखे थे, वे सभी स्थल मूल पाठ मे पढकर उन्हे यथास्थान लिख लेना था । पाण्डुलिपि का वाचन

मैंने डा ब्रजमोहन जावलिया के पास बैठकर सीख लिया था। उदयपुर मे सीखा था। पंडितजी काव्य-पाठ करते रहे और मै सुनता रहा। छदों से परिचित व्यक्ति पाठ पढते समय, वाचन करते समय, छद के प्रवाह में वाचन करता है। अक्षरदोष, मात्रादोष या किसी अक्षर के छूट जाने को, वह पहचान लेता है। उसमे पाठ भेदवाली बात कम रहती है। यों पंडितजी के वाचन के आधार पर मै पाठ शुद्ध करता रहा। सबेरे शाम बैठकर जम्मू मे यही काम किया। १९८६ ई. का सभवत जून मास था। जयन्त की लडकी छोटी थी। उसे लेकर पडितजी घूमते-फिरते थे। जम्मू में उनके साथ वहाँ का बड़ा मन्दिर देख आया। सभी देवताओं की मूर्तियाँ वहाँ पर थी। कहते हैं—तैंतीस करोड देवता है, और उन सब की मूर्तियाँ वहाँ रखी हुई है। मन्दिर का द्वार भव्य है। प्रागण विशाल है। अहाता बहुत बडा है। चक्कर लगाकर आए। बाजार देखा। लौटते समय, दिल्ली का बस का आरक्षण कर लिया। दिल्ली से मेरा लौटने का आरक्षण दूसरी गाडी का था। इसलिए जम्मू से सीधे नही लौटा। जम्मू गया, उस समय मैं अकेले यात्रा करता था। जम्मू मे मै वैष्णोदेवी नहीं गया और न यूनिवर्सिटी जा सका। बाद में तो जाना हुआ ही नही।

यो पृथ्वीराजरासो—के सम्पादन के साथ मेरा काम समाप्त हो गया था। लौटने के बाद भी सम्पादन का काम पुन अन्य प्रतियो से मिलान करके किया। वह सब क्या किया और कैसे किया, वह अब छप रहा है। तीन भाग हुए। काम मैंने पूरा कर दिया है।

पडितजी के साथ बैठकर काम करने मे मुझे सकोच नही था। मित्र और अग्रज बन्धु की तरह मैं उनके घर पर रहा हूँ। उन्होने झाबरमल्ल शर्मा अभिनंदन ग्रथ का सम्पादन किया, उसके लिए मैंने लेख लिखा। श्री अगरचंदजी नाहटा के अभिनंदन ग्रथ के लिए मैंने लेख भेजा था, वह उसमें छपा नहीं था। बाद मे वह लेख श्री झाबरमल्ल शर्मा अभिनदन-ग्रथ मे छपा।

सच तो यह है कि हिन्दी वीरकाव्यों के काम को समेटने लगा था किन्तु समेटा नहीं जा सका। अपूर्ण कामो को पूर्ण करने में भी काफी समय देना पडा है।

पृथ्वीराजरासो—मानें या न मानें, वह हिन्दी का महाभारत है। उसके साथ जूझनेवाले रहे नही। उसके रूप बदलते रहे। उसका ठीक से सम्पादन करने के लिए पुणे के भांडारकर रिसर्च इस्टीट्यूट की आवश्यकता है। महाभारत के सम्पादन

का काम उस सस्था में जैसा हुआ है, वैसा सम्पादन का काम मैंने अन्यत्र देखा ही नही है । मै जब वहाँ देखने गया था तो सम्पादन का काम चल रहा था। कुछ भाग छप गए थे और शेष पर काम चल रहा था । महाभारत की देश भर मे जो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध थी, वे सब वहाँ पर थी । ताडपत्रो पर पूरा महाभारत लिखा गया है, उसकी पाण्डुलिपि मैंने वहाँ देखी है । तमिल लिपि मे लिखे गए महाभारत की पाण्डुलिपि भी वहाँ पर देखी है । उन सब पाण्डुलिपियो को पढकर उन्हे पढनेवाले विशेषज्ञ वहाँ पर नियुक्त थे । अपना-अपना पाठ पढ लेते और लिख देते थे । एक-एक श्लोक का इडेक्स कार्ड बना था । उसको क्रम देकर बक्सो मे रखा जाता था । एक बडे शीट पर एक ही छंद के क्रमश एक के नीचे, दूसरा पाठ लिखा जाता था । दस-बारह पाठो मे लिखा हुआ वह शीट, मुख्य सम्पादक के पास पहुँचता था । मुख्य सम्पादक बैठकर उन पाठो की तुलना करता । शुद्ध पाठ की संभावना पर विचार करता और निर्णय करने के उपरान्त अपनी ओर से ठीक पाठ लिखता । पाठ भेद को, जिसे उचित मानता, उसकी टिप्पणी नीचे फुट-नोट मे देता था । कोई चाहे तो फुट-नोट की टिप्पणी को देखकर अपनी ओर से दूसरा पाठ ठीक मान सकता था । एक-एक श्लोक के पाठ सम्पादन के लिए जितना समय दिया गया और जितने विद्वानो ने बैठकर यह काम किया है, वैसा मैंने अन्यत्र नही देखा है । यह काम पीढियों से चलनेवाला काम है। किसी एक व्यक्ति का काम नही है । महाभारत की तरह रामायण के सम्पादन की मुझे जानकारी नही है । जिस ढग से महाभारत का सम्पादन हुआ है, उस ढग से — पृथ्वीराजरासो की सभी उपलब्ध पाण्डुलिपियो को एक स्थान पर एकत्रित कर सब की तुलना करने और पाठ-निर्धारण करने के लिए एक सस्था का यह काम अपने हाथ मे लेकर करना होगा । यह एक व्यक्ति का काम नही है ।

आरम्भ मे जब जोधपुर गया था तो प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान में धारणोजवाली मूल प्रति थी । मैंने अपना काम उसी समय कर लिया था । '**पृथ्वीराजरासो इतिहास और काव्य**' पुस्तक मे उस प्रति का परिचय मैंने दिया है । १९७४ ई मे पुस्तक छप भी गई । बाद मे महाराजकुमार का आग्रह रहा कि उक्त प्रति को आधार मानकर उसका सम्पादन करो । पुन प्रति देखने के लिए गया तो श्री नरोत्तमदास स्वामी प्रति लेकर चले गए थे । वे उसका सम्पादन कर रहे थे । उन्होने कुछ काम भी किया । वह किसी पत्रिका मे क्रमश छाप रहे थे । बाद मे काम पूरा नही हुआ । प्रति पुन प्रतिप्ठान में नही थी । तीसरी बार पुन जोधपुर गया

प्रति मिली नही । चौथी बार अपन काम से पुन गया । केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की योजना के अन्तर्गत यूनिवर्सिटी मे व्याख्यान देने गया । उस समय पद्मधर पाठक वहाँ थे । प्रति मिल गई । बैठकर मैने पूरी पाण्डुलिपि की जीराक्स प्रति तैयार कर ली थी । उसी के आधार पर सम्पादन किया । महाराजकुमार के पत्रो ने मुझे काम करने के लिए बल दिया । उनकी उपस्थिति मे मुझे यह सब काम करना पडा है। महाराजकुमार ने मुझसे जैसे काम करवाया, वैसा ही उन्होंने पडित काशीरामजी शर्मा से भी काम करवाया । तीनो पुस्तको का सम्पादन पडितजी से (रतनरासो, वचनिका और रामचरित) करवाया है । उनका प्रकाशन भी हुआ है ।

पृथ्वीराजरासो — का काम पूरा न हो तब भी आगे बढा है, इसीका मुझे सतोष है । सम्पादित प्रति के तीनो भाग छप रहे है । यही ठीक है । एक शका मन मे इस काव्य के सम्बन्ध मे रही है —

किसी एक विद्वान् ने इस काव्य का कार्य पूर्ण क्यो नही किया ? कही न कही कुछ छूट गया है । श्री नरोत्तमदास स्वामी ने आरम्भ किया — पूर्ण नहीं कर सके । बीच मे छोड गए । डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने यह काम किया, उसे वे मूल रूप मे देख नही सके । डॉ. नामवरसिंह की प्रतिलिपि के आधार पर उन्हाने सम्पादन किया । डॉ. नामवरसिंह ने भी केवल कनवज्ज समय का सम्पादन किया । उन्हे केवल भाषा पर काम करना था और वह काम किया । मध्यम संस्करण का सम्पादन पूरा नही हुआ । वह टॉड-कलेक्शन वाली प्रति थी । उसको लदन से मगवाने के लिए कहा । मैने पत्र-व्यवहार किया । उस पत्र-व्यवहार को आधार बनाकर स्वय महाराजकुमार ने फोटो कापी प्राप्त कर ली । वह प्रति महाराजकुमार के सग्रह मे है । अतिम दिनो मे टॉड पर काम कर रहे थे । वह संभवत: पूर्ण नही हुआ। कितना हुआ ? मैं नही जानता । और क्या मेरा काम पूर्ण हुआ है ? जो है, सामने है ।

दूसरी बात यह है कि महाभारत पढते समय मुझे तिरुपति में एक आयगार पडित ने मुझे कह दिया था — 'महाभारत घर पर नही पढना चाहिए । पढना ही है तो मदिर मे बैठकर पढो ।' परिणाम यह हुआ कि चाहने पर भी महाभारत का पूरा सेट खरीदा नही । टुकडों-टुकडो मे ग्रथालय से लाकर पढता रहा । मेरे पास आज केवल आदि पर्व है । पृथ्वीराजरासो पर काम करते समय मुझे बहुतो ने निराश किया । वह तो महाराजकुमार थे जिनके कारण डी लिट् का काम छोडकर

मैंने काम किया । काम उन्होंने स्वय नही किया किन्तु मुझसे काम करवा लिया टाडवाली पाण्डुलिपि पर कौन काम करेगा ? पृथ्वीराजरासो के सयोगिता से सम्बन्धित अश को — स्वयवरवाले अश को प्रथमत प्रकाशित करनेवाला टाड था । उसने लदन मे रहकर यह काम किया और उसे छपवाया । उसके कलेक्शन मे बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ है, जिनका काम अभी बाकी है । वे सब लदन मे ही है ।

उदयपुर मे बैठकर जब पाण्डुलिपियाँ देखता तो अकेले ही तपती दोपहरी मे पोथियो को पढता था । वहाँ का चपरासी मुझे काम करते देखकर कहता कि कब तक बैठेगे ? इनमे क्या है ? उसे घर जाने की जल्दी रहती । यो भी ऐसे किसी पोथीखाने मे पहुँच जाओ तो वहाँ के लोगो का प्रोत्साहन नहीं मिलता । न जाने कितनी पाण्डुलिपियाँ हैं ? हजारो की सख्या में है । लाल कपडो मे लपेट-लपेट कर रखी हुई हैं । उन पर काम कर भी ले तो उन्हें छापेगा कौन ?

मै साहित्य सस्थान विद्यापीठ, उदयपुर आरभ मे गया था, उस समय मोतीलालजी मेनारिया काम कर रहे थे । सस्कृत का एक विद्वान्, उनका सहायक था । शब्दो के कार्ड बनाए जाते थे । शब्द-कोष तैयार किया जा रहा था । वह कोष छपा या नही — मै नही जानता ?

मेरे गुरु डा. श्रीराम शर्मा (हैदराबाद) — ने भी पृथ्वीराजरासो पर काम किया। उन्होंने जो काम किया, वह अप्रकाशित है । उस पर उनकी दो पुस्तकें अलग-अलग है । वे मोहनलाल विष्णुलाल पड्याजी के समर्थक थे । उपलब्ध प्रकाशित प्रति पर (उदयपुरवाली पर) उन्होंने काम किया और पुस्तक लिखी । पृथ्वीराजरासो मे उपलब्ध अरबी-फारसी शब्दो का कोष भी अलग से बनाया । उनका निधन हो गया । पाण्डुलिपियाँ (हस्तलिखित) पड़ी रही । डॉ कुट्टनपिल्ले के पास मे थी। डॉ भीमसेनजी निर्मल के सहयोग से उन पाण्डुलिपियों की फोटो प्रतियाँ मैंने प्राप्त की हैं । उनका उपयोग मैंने सम्पादित पृथ्वीराजरासो के दूसरे भाग के आरम्भ मे किया । डॉ श्रीराम शर्मा तो काम अधूरा छोड गए । जो कुछ मुझे मिला, उसका उपयोग मैंने किया है ।

वीरकाव्यो से भाषा विज्ञान की ओर मुडने में भी पृथ्वीराजरासो पर काम करते रहने के कारण मुझे बाधा पहुँची है । वीरकाव्यो पर काम मैंने उपाधि के लिए और महाराजकुमार के आग्रह और आशीर्वाद के कारण किया ।

□ □

भाषा विज्ञान

भाषा विज्ञान से मेरा सम्बन्ध आरम्भ से रहा है। मै आरम्भ मे इटरमीडिएट मे विज्ञान का छात्र था। बाद में बी.ए. हिन्दी साहित्य का छात्र हुआ। एम.ए मे भाषा विज्ञान का एक प्रश्न-पत्र था। मैने भाषा विज्ञान से एम ए नहीं किया। भाषा विज्ञान के कारण एम.ए मे मुझे प्रथम श्रेणी मिली। मुझे उसमे अन्य प्रश्न-पत्रो से अधिक अंक मिले — ७८% अंक मिले। बाद मे मुझे भाषा विज्ञान विषय पढाने के लिए मिला। मराठवाडा विश्वविद्यालय मे तो मै एम ए. मे मात्र भाषा विज्ञान पढाता रहा हूँ। और सच्चाई यह है कि भाषा विज्ञान के पाठ्यक्रम मे (एम ए के अनिवार्य भाषा विज्ञान के प्रश्न-पत्र मे) मात्र **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान** पढाया जाता है। इस विषय में भारत के स्वतंत्र होने के बाद के वर्षो मे जो भी काम हुआ है, उसे पाठ्यक्रम मे जगह नही मिली है। आज भी हम डॉ धीरेन्द्र वर्मा और उनके विचारो के समर्थन मे लिखी पुस्तको को पढाते है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान मे भाषाओं के इतिहास की पूर्णत उपेक्षा की गई है। विदेशी विद्वानो ने भाषाओं का जो इतिहास लिखा, उसी को ठीक मानकर, इतिहास पढाया जाता है। इस स्थिति मे परिवर्तन की आवश्यकता है।

हिन्दी वीरकाव्यो पर काम करते समय भी भाषाओं पर मेरा ध्यान रहा है। शब्द-चितन मे व्यक्तिवाचक सज्ञाओं पर विचार करने लगा। वस्तुत भाषा विज्ञान की दृष्टि से शब्दों के अर्थ की मीमांसा करने लगा था। कुछ लेख लिखे। वे छपे भी है। इससे आत्मविश्वास बढा। अर्थ मीमासा मे दर्शन की सहायता ली। डॉ. बारलिंगे के साहचर्य के कारण अर्थ-मीमासा करने लगा था। इस दृष्टि से पहली पुस्तक लिखी — '**भाषा · अर्थ और संवेदना**'। इसका प्रकाशन १९७७ ई मे हुआ। इसी कार्य को आगे बढाते हुए मैंने **व्यक्तिवाचक संज्ञा** पर एक परियोजना बनाई। नगरों के स्थान नामो पर चिन्तन करने लगा था। इसलिए व्यक्तिवाचक सज्ञा — के अतर्गत स्थान नामो पर ध्यान रखते हुए तीन महानगरो के स्थान नामो पर काम करना आरम्भ किया। दिल्ली, वाराणसी और औरगाबाद नगरो के स्थान नामो पर परियोजना बनाई और यू जी सी को भेजी। परियोजना स्वीकृत हुई।

इन्ही दिनो में दो-तीन बार दिल्ली गया। वाराणसी भी जाकर आया। नगरो के स्थान नामों की सूचियॉ बनाई। नामकरण पर विचार किया। नामकरणो की भाषा पहचानने का प्रयत्न किया।

पहले मैं इतिहास के विद्वानो को मिलता था । अब भाषा विज्ञान के विद्वानो से मिलने लगा । दिल्ली मे डॉ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव थे । उनका बडा नाम था। प काशीरामजी शर्मा उन्हे पहचानते थे । उनको साथ लेकर माडल टाऊन मे उनके आवास पर गया । उस समय वे दिल्ली विश्वविद्यालय मे नहीं थे — केन्द्रीय हिन्दी सस्थान, आगरा की दिल्ली शाखा में काम करते थे । प काशीरामजी शर्मा के साथ मै केन्द्रीय हिन्दी सस्थान की दिल्ली शाखा मे भी गया । १९७६ ई मे जयपुर मे, आपातकाल में शिबिर हुआ था । उसमे हिन्दी के अनेक विद्वानो से परिचय हुआ था । उनमें डॉ कर्णसिह चौहान भी थे । उनके घर पर गया था । माडल टाउन के निकट की कालोनी मे रहते थे । उस समय डॉ भोलानाथ तिवारी से मिलने उनके घर पर भी गया था । तिवारीजी का ग्रंथालय देखा । उनके पास शब्दकोशों का विशाल सग्रह था । एक कक्ष मे मात्र भाषा विज्ञान की पुस्तके थी । यो किसी विषय पर योजना बनाकर वे काम करते ही रहते थे । भाषा विज्ञान के विद्वानो का ध्यान — 'हिन्दी भाषा के इतिहास' पर नही था । भारत की प्राचीन भाषाओ का कोई विद्वान् मुझे दिल्ली मे नही मिला । यदि कोई था तो स्वय पं काशीराम शर्मा का नाम मेरे सामने था । और उनके घर पर तो मै ठहरता था । उनके पास रहकर उनको पहचानने में मुझे समय लगा । जैसे-जैसे अन्य विद्वानो से सम्पर्क कर विचार करने लगा तो अनुभव करने लगा कि पडितजी ही ठीक है । उनकी विद्वत्ता को पहचाना नही गया है । उन्होने आधुनिक ढग की पुस्तके लिखी नही है । लिखी भी है तो उनको प्रकाशक नही मिला। उमग मे आकर द्रविड परिवार की भाषा हिन्दी पुस्तक लिखी और स्वय प्रकाशित कर उसे विद्वानो में वितरित की । भाषा परिवारों की पहचान पर आधुनिक पद्धति की पुस्तक है । उस पुस्तक पर दिल्ली के विद्वानो का ध्यान नहीं गया । उक्त पुस्तक का प्रकाशन १९६८ ई मे हुआ था । पडितजी से सम्पर्क होने के बाद १९७० ई मे उन्होंने पुस्तक भेजी थी । पुस्तक मुझे पसन्द आई । मैंने कुछ नाम पडितजी को भेजे । पडितजी ने उन नामो के पतो पर पुस्तक की प्रतियाँ भिजवाई । वाह, वाह करनेवाले ग्राहक तो हो गए किन्तु उसकी चर्चा सीमित लोगो मे ही रही । १९८० ई. तक तो मेरा ध्यान हिन्दी वीरकाव्यों पर था । महाराजकुमार के कार्य को अग्रक्रम मे रखकर काम करता था । भाषा विज्ञान का काम अग्रक्रम मे नही था ।

साहचर्य के कारण मैंने जाना कि पडितजी भारतीय पद्धति से **भाषा विज्ञान** विषय को परखते हैं । संस्कृत भाषा के अधिकारी विद्वान् है । पाणिनि का अध्ययन होने के कारण वे **हिन्दी व्याकरण** से सतुष्ट नही हैं । कारण यह है कि **हिन्दी व्याकरण** (कामता प्रसाद गुरू) को वे **हिन्दी ग्रामर** कहते है । हिन्दी के व्याकरणो की पुस्तको को वे **हिन्दी ग्रामर** की पुस्तके कहते हैं । **हिन्दी भाषा का हिन्दी व्याकरण** पर उनका ध्यान नही था । सेवानिवृत्त होने के बाद (१९७२ ई के बाद में) **डॉ. रामविलास शर्मा** ने भाषा विज्ञान की ओर ध्यान दिया । उस समय उन्होन आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के कार्य की सराहना की । राहुल साकृत्यायन न भी आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के कार्य की सराहना की हे । उनके कार्य को महत्त्वपूर्ण मान लिए जाने पर भी भाषा विज्ञान के विद्वानो का ध्यान उनकी ओर नही गया ।

बाद मे मैने अपना ध्यान **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान** पर केन्द्रित किया । डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के विद्वान् हे और उन्हे इस रूप मे मान्यता मिल चुकी हे । ऐसी मान्यता हिन्दी मे किसी विद्वान् को नही मिली । चाटुर्ज्या का अनुकरण करनेवाला नाम हिन्दी मे डॉ धीरेन्द्र वर्मा का है। उनके बाद, वही नाम अब तक चल रहा है ।

विदेशी विद्वानो ने भारतीय भाषाओ पर खूब काम किया है । भारतीय भाषाओ के विद्वानो मे अनेक नाम है । हिन्दी ही नही, सिंधी, मराठी, तमिल, तेलुगु, कन्नड आदि भाषाओ के स्वतत्र विद्वान् विदेशियो मे मिल जाएगे । उन लोगो ने आरम्भ मे जो कार्य किया, वह सारा कार्य ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का कार्य है । उनके कार्यो का मूल्याकन अब तक ठीक-ठीक नही हुआ है । उन्होंने जो कुछ लिखा है, उनमे ऐतिहासिक दोष हैं । ऐतिहासिक दोषों को पहचानने के प्रयत्न भारतीय विद्वानो ने किया है । उनमे प काशीराम शर्मा, डॉ रामविलास शर्मा, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी आदि है । इनमे सब से अधिक मेरा सम्पर्क पडित काशीरामजी शर्मा से रहा है । उन्होंने मेरे कार्य की दिशा क्रमश मोड दी । हिन्दी वीरकाव्यो पर काम करना मैने बन्द कर दिया और पूरी तरह से भाषा विज्ञान की ओर उसमे भी ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की ओर मुड गया ।

जैसे मै पहले महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह की ओर नियमित चला जाता था । केवल उनसे मिलने और चर्चा करने के लिए जाता था, वैसे ही उनके बाद मे प काशीरामजी शर्मा के पास जाने लगा । पास में रहना, साहचर्य में समय

गुजारने, चर्चा करने के अपने लाभ है और वे लाभ मुझे मिले है। उनके आवास पर मै पारिवारिक सदस्य की तरह रहा हूँ। उनसे बात करने मे मुझे सकोच नही रहा। अपनी बात मै, उन्हे खुलकर कहता रहा हूँ। सबेरे शाम उनके साथ टहलने जाता था।

प काशीरामजी शर्मा, डॉ. हरबंशलाल शर्मा के मित्र रहे है। डॉ हरबंशलाल शर्मा मेरे गुरू के गुरू रहे है। वे डॉ. विजयपालसिह के गुरु सदृश है। डॉ विजयपालसिंह के मूल गुरू तो प जगन्नाथ तिवारी थे। किन्तु उन्होंने कार्य डॉ हरबशलाल शर्मा के निर्देशन मे किया और तिरुपति आने से पहले उनके साथ मे अलीगढ में थे। डॉ. हरबशलाल शर्मा अलीगढ से सेवा मुक्त होने के बाद केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के निदेशक हो गए। उस समय, वे मोतीबाग मे पडितजी के पडोस में थे। पडितजी का सम्बन्ध उनके साथ पारिवारिक स्तर पर था। डॉ हरबंशलाल शर्मा के परिवार के सदस्यों को वे जानते थे। उनकी बेटी और दामाद उनके घर पर आते थे। डॉ. हरबशलाल शर्मा भी स्वय उनके घर पर पहुँचते थे। यो डॉ हरबशलाल शर्मा भी स्वय पुरानी परम्परा के विद्वान् थे। सस्कृत भाषा के विद्वान् थे। उनके कंठ मे विद्या थी। इसलिए दोनों का मेल मुझे स्वाभाविक लगा। डॉ. हरबंशलाल शर्मा का नाम तो मैंने बहुत सुना किन्तु उनको निकट से जानने का अवसर पंडितजी के साहचर्य के कारण मिला।

सबेरे-सबेरे एक दिन पं काशीरामजी शर्मा मुझे डॉ. हरबशलाल शर्मा के घर ले गए। सबेरे टहलने का समय था। मुख्य सडक को लाघ जाओ तो सामने ही उनका घर था। डॉ. हरबंशलाल शर्मा, वे भी बाहर आए। हम लोग मोती बाग से चाणक्यपुरी की ओर मुड गए। पुल पार करते समय मैने देखा कि रेलवे का कोई स्वतत्र विभाग है जिसमें प्रदर्शनी का दृश्य है। दूर से ही देखा। पुल पार करने के बाद चाणक्यपुरी है। विदेशी दूतावासो के बंगले बने हुए है। आगे जाने पर सडक की एक ओर गार्डन है। पडितजी प्राय उस गार्डन मे पहुँचते थे और घूम फिर कर लौट जाते थे। उस दिन तो पंडितजी, डॉ हरबंशलाल शर्मा के साथ बाते करते रहे। मैं मात्र श्रोता था। जो पूछा जाता, उतना ही उत्तर देता था। दोनों की बातचीत में मुझे उनके आपस के आत्मीय बोध का परिचय मिला। हॅसना-बोलना, समान स्तर पर था। बाद मे जब डॉ शभुसिह मनोहर द्वारा सम्पादित वचनिका सम्पादित हुई तो उसकी प्रतिक्रिया मे 'वचनिका का सम्पादन' पुस्तक लिखी। उसका प्रकाशन १९८८ ई. मे हुआ। उस पुस्तक

ऐ 'श्रद्धा-स्मरण' का पृष्ठ पडितजी ने डॉ हरबशलाल शर्मा को दिया है । उक्त श्रद्धा-स्मरण' की पक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ —

''मै मूल पुस्तक मे लिख चुका हूँ कि मैने इस पुस्तिका की रचना अपनी स्मृति के सहारे की है । मेरा अध्ययन-क्रम १९५० ई मे समाप्त हो गया था । विगत चार दशक या तो सरकारी सेवा मे बीते या सेवा निवृत्ति में फिर भी जो कुछ स्मृति में बना रह सका, उसका बहुत कुछ श्रेय मेरे एक स्वर्गीय अग्रज तुल्य स्नेही को है । उनका नाम है परम श्रद्धेय डॉ. हरबशलाल शर्मा । सन १९७८ से १९८२ की अवधि मे वे मेरे प्रतिवेशी थे, अति स्नेही मित्र भी । उनका अग्रज तुल्य वरदहस्त मेरे सिर पर रहा । उनके साथ मेरा प्रचुर समय शास्त्रचर्चा मे ही बीतता था । उनकी स्मृति तो मुझसे कहीं अधिक थी क्योकि उनको चार दशक तक अध्यापन का अवसर भी मिला था ।

अस्तु, मुझे तुलना नहीं करनी, केवल यह कहना है, उनके साथ पूरे पॉच वर्ष तक लगभग प्रति दिन प्रात साय हुई चर्चाएँ मुझे विस्मृत प्राय को पुन स्मृत कराने में सहायक हुई । वे वस्तुतः विद्या महोदधि की अतल गंभीरता मे अवगाहन करनेवाले महातिमि थे, जिनके श्रृग में मनु के पोत को बाधे रख सकने की क्षमता थी ।

डॉ हरबशलाल शर्मा हिन्दी निदेशालय के विभागध्यक्ष और वैज्ञानिक शब्दावली आयोग के अध्यक्ष थे । तदनन्तर वे झांसी विश्वविद्यालय के कुलपति बनकर चले गये । वहॉ रहते हुए भी मुझ पर पूर्ववत् कृपालु रहे । मै जब तक दिल्ली रहा, तब तक दिल्ली पधारते तो मेरे यहॉ रुकते । वे ही शास्त्र चर्चाएँ होती । मेरा विस्मृत होता काव्य और शास्त्र का ज्ञान पुन स्मृतिपथ पर आता रहता ।''

पडितजी ने ये पक्तियॉ संवत् २०४५ (१९८८ ई) मे लिखी । उस समय डॉ हरबशलाल शर्मा को दिवगत हुए दो मास हुए थे ।

इन पक्तियो को उद्धृत करने का एक कारण यह है कि पडितजी काव्य और शास्त्र की चर्चा में अभिरुचि रखते थे । उनकी विद्या उनके कठ मे थी और

यही स्थिति डा. हरबशलाल शर्मा की भी थी। डॉ. हरबशलाल शर्मा तो बहुत काम कर सकते थे। उनको वे लोग ही जान सके है, जो उनके साहचर्य मे रहे हैं। **'वचनिका का सम्पादन'** पुस्तक काव्य और शास्त्र की चर्चा से युक्त पुस्तक और इसीलिए उक्त पुस्तक उन्होंने डॉ. हरबशलाल शर्मा को समर्पित की है।

यों पडितजी के साहचर्य मे रहने के कारण, मेरे व्यक्तिगत अनुभवो मे वृद्धि हुई। डॉ. नगेन्द्र के साथ भी पडितजी की शास्त्रचर्चा होती थी। विशेष रूप से पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण मे जो बैठके होती, उनमे डॉ. नगेन्द्र के साथ पडितजी भी रहते थे। शब्दो की अर्थ-मीमांसा मे जो चर्चा होती, उसके कुछ प्रसग उन्होंने बतलाए है। वे सब अब याद नही है।

पडितजी के पास अपना निजी पुस्तकालय नही है। ग्रथालयो का उपयोग करते हैं। पढी हुई पुस्तकें लौटा देते है। पुस्तकालय के अभाव मे लिखना कठिन होता है। मै चाहता था कि पडितजी का ज्ञान लेखनीबद्ध होना चाहिए। बार-बार कहता रहा कि **द्रविड परिवार की भाषा हिन्दी** का नया सस्करण छपवाएँ। किन्तु उन्होंने ऐसा कोई प्रयास नही किया। उनसे **हिन्दी व्याकरण** लिखवाने की इच्छा हुई। एक तो पुस्तकें चाहिए और दूसरी बात प्रकाशक चाहिए। दोनो स्थितियाँ ठीक होने पर ही पडितजी लिख सकते है। मैने ऐसा प्रयास करना आरम्भ कर दिया।

□ □

श्री विद्यासागर विद्यालंकार

पं. काशीराम शर्मा के नाम के साथ श्री विद्यासागरजी विद्यालंकार का नाम जुडा हुआ है। कारण यह है कि दिल्ली मे हम दोनों के लेखन कार्य को प्रकाश में लाने का श्रेय उन्हीको है। मैं १९७२ ई. से 'प्रकर' के साथ जुडा हूँ और अन्त तक १९९८ ई. तक उनसे सम्पर्क बना रहा है। यदि मै कहूँ कि 'प्रकर' ने मुझे लेखक बनाया तो अत्युक्ति नही होगी। 'प्रकर' 'मासिक' पत्र था। मुख्य रूप मे विद्यासागरजी आकाशवाणी में काम करते थे। आकाशवाणी से सेवा निवृत्त होने के बाद में तो उन्होने पूरा समय 'प्रकर' को दिया। वे स्वय सम्पादक, प्रकाशक और सब कुछ थे। उनसे सम्पर्क के दो कारण है—प्रकाशक होने के नाते से और दूसरा लेखक-समीक्षक होने के नाते से। १९७१ से १९७९ ई. तक मैं स्वय प्रकाशक हो गया था। 'नमिता प्रकाशन' के नाम से पुस्तके औरगाबाद मे छापता था। उनके विक्रय में विद्यासागरजी ने मेरी सहायता की है। इसी तरह

समीक्षा-लेखन मे वे सदैव मुझे पुस्तकें देते रहे है । बाद में उन्होने आलेख भी छापे । बाद मे तो मेरी पुस्तके धारावाहिक रूप में 'प्रकर' मे छापने लगे । **भारत की भाषाएँ** पुस्तक तथा **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान** दोनो ही पुस्तके धारावाहिक रूप मे 'प्रकर' मे पहले छपी । ये दोनो ही पुस्तकें उनके कारण लिखी गई । यही नही **भारत की भाषाएँ** पुस्तक में पं काशीरामजी शर्मा की दीर्घ भूमिका भी धारावाहिक रूप में प्रकर मे छपीं । मैने डॉ एस टी. नरसिंहाचारी के 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' से सम्बन्धित आलेख भी उन्हे भेजे । वे भी धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुए। बाद मे प काशीराम शर्मा ने **'हिन्दी व्याकरण मीमांसा'** से सम्बन्धित लेख लिखे। वे भी धारावाहिक रूप मे 'प्रकर' मे प्रकाशित हुए है ।

हैदराबाद रियासत के सत्याग्रह आन्दोलन के समय विद्यासागरजी निजामाबाद जेल मे थे । बाद मे लाहौर और मुलतान के जेल में भी रहे । कारण यह है कि दैनिक हिंदुस्तान के सम्पादक भाई सत्यदेव विद्यालकार ने विद्यासागरजी को सदेश लेकर भेजा । पं. लेखराम गिरफ्तार हो चुके थे । जब उनका पता पूछते-पूछते विद्यासागरजी वहाँ पहुँचे तो पुलिस ने उन्हें भी वही पकड लिया। पहले उन्हे लाहौर के किले में और उसके बाद मुलतान जेल मे रखा गया । उन्हें जेल की यातनाएं सहनी पडी है । यह १९४४ ई की बात है । निजामाबाद, लाहौर तथा मुलतान जेल मे रहने पर भी विद्यासागरजी को स्वतत्रता सेनानी मानने में काफी विलम्ब हुआ । कहते हैं १९४२ ई मे भी कारावास मे रहे है किन्तु उनके पास कोई प्रमाण-पत्र नही है । इन्दिरा गाधी ने बहुत बाद में हैदराबाद के सत्याग्रह सग्राम को जब स्वतत्रता युद्ध माना, तब विद्यासागरजी को स्वतंत्रता सेनानी माना गया और नियमानुसार पेशन भी मिली ।

जो लोग विद्यासागरजी को 'प्रकर' के सम्पादक के रूप में जानते है, वे उन्हे स्वतंत्रता सेनानी के रूप में नहीं जानते । प्रकर का प्रथम अंक जनवरी १९६९ ई का है और अन्तिम अक जुलाई १९९५ ई का है । अन्तिम अंक में आवश्यक सूचना पृ. ४ पर लिखी है—

> "हमे हार्दिक खेद है कि इस अंक के साथ 'प्रकर' का प्रकाशन बद हो रहा है । गत २६ वर्ष सात मास तक इसका निरन्तर प्रकाशन होता रहा है, इस अवधि मे 'प्रकर' के लिए व्यय की गई सम्पूर्ण पूजी उसीको समर्पित है ।"

— सचालक-सम्पादक-व्यवस्थापक

विद्यासागर विद्यालंकार पत्रकार रहे है। आकाशवाणी मे पहुँचने से पहले वीर अर्जुन तथा दैनिक हिंदुस्तान में काम करते रहे है। पत्रकारिता का उन्हें अनुभव है। आकाशवाणी में भी समाचार कक्ष मे ही वे काम करते रहे हैं। आकाशवाणी मे काम करते समय मे उन्होने 'प्रकर' का आरभ कर दिया था। 'प्रकर' मासिक पत्र था। और अन्तिम अक तक मासिक बना रहा। आकाशवाणी से सेवानिवृत्त होने के बाद तो उनका मुख्य कार्य प्रकर का सम्पादन हो गया। वे संचालक, सम्पादक और व्यवस्थापक सभी थे। अकेले ही सब कार्य करते थे। उनका घर प्रकर का कार्यालय था। पता है—ए-८/४२, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-११०००७।

राणाप्रताप बाग का निवासस्थान उनका निजी है। उसमे वे और उनके परिवार से सम्बद्ध बहन आदि अलग-अलग रहते है। उनके दो विवाह हुए हैं। पहली पत्नी से विद्यासागरजी को एक पुत्र और पुत्री है। पुत्र तो दिल्ली में किसी बैंक में काम करता है और पुत्री कैनेडा में रहती है। दूसरे विवाह से भी उन्हें एक पुत्र है। वह अब रोहिणी में रहता है। उसका अपना निजी निवास है। विवाह होने के बाद स्थान की कमी के कारण रोहिणी चला गया। आते-जाते रहता था। दूसरा पुत्र चांदनी-चौक में पहले फोटोग्राफर की दुकान पर काम करता था। सभवत अब भी वह वही काम निजी रूप में रोहिणी मे करता हो। मेरी भेंट दूसरी पत्नी से श्रीमती प्रकाशवतीजी से हुई है। वह भी विद्यासागरजी के अन्तिम वर्षो में। वह भी किसी स्कूल में अध्यापिका रही है। अब सेवानिवृत्त है। आरभ मे जब विद्यासागरजी से मिलने जाता तो घर पर अकेले ही मिलते। क्योंकि मै जब तक घर पर पहुँचता, सब लोग काम पर चले जाते। उस समय अकेले बैठे-बैठे प्रकर का काम करते रहते थे। कमरे में चारो ओर पुस्तकों का ढेर, प्रकर का ढेर दिखलाई देता। स्वय बैठकर प्रकर का डिस्पैच करते। ग्राहकों के पते स्वयं लिखते। पोस्टल स्टैम्प लगवाते और डाकखाने जाते। सब काम स्वय करते। पत्र पढते। लेखको और प्रकाशको को पत्र लिखते। प्रूफ्स देखते। अगले अक की तैयारी करते। यही सब करते-करते आनेवालो का स्वागत करते। खुद ही उठकर पीने के लिए पानी ले आते। दूध की गिलास लेकर आते। साथ मे और कुछ आता। उनके पास से अतिथि कुछ-न-कुछ खा-पीकर ही लौटता। पुस्तकों का ढेर सामने करते और कहते, इनमें से अपनी पसद की पुस्तके चुन लो। समीक्षाएँ समय से भेज दे। कुछ पते पूछते। पते लिख लेते। सामायिक चर्चा करते। बाते होती। सब कुछ हँसते-हँसते होता। उनसे मिलना सुखद होता।

विद्यासागर विद्यालंकार की अभिरुचि व्याकरण और भाषा विज्ञान मे तथा भारतीय भाषाओ के इतिहास मे रही है । इस सम्बन्ध मे जो नवीनतम पुस्तके होती, उनको वे बराबर देखते रहते थे । डॉ रामविलास शर्मा की **भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी** पुस्तक के तीन भाग क्रमश १९७९, १९८० और १९८१ ई. मे राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुए । ये तीनो भाग प्रकर को समीक्षार्थ मिले नहीं । मैने तीनो भाग यथासमय खरीद लिए थे । विद्यासागर विद्यालंकार उन तीनो भागों की समीक्षा प्रकर में छापना चाहते थे । पहले उनका ध्यान प काशीराम शर्मा की ओर गया । अगस्त ९२ के पत्र में विद्यासागरजी ने मुझे लिखा —

> "के के बिडला फाउण्डेशन ने डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी' को डेढ लाख की राशि से पुरस्कृत किया है । मैने श्री पं काशीरामजी को पत्र लिखकर पूछा है कि क्या वे इस पुस्तक पर समीक्षात्मक लेख लिख सकते है ? उत्तर की प्रतीक्षा है ।"

बाद मे पडित काशीराम शर्मा ने मुझे लिखा कि तीनो भाग उनके पास नही हैं । मैने समीक्षा लिखने हेतु तीनो भाग उन्हे भेज दिए थे । कुछ महीने बाद पुस्तके वापिस आ गई । उन्होने पुस्तके देखने के बाद समीक्षा लिखना ठीक नही माना । बाद मे फिर उन्हीं पुस्तको पर समीक्षात्मक लेख लिखने कहा । मैने पुन पुस्तकें पढ़ी और छोटी लेखमाला लिखीं । वह लेखमाला क्रमश प्रकर के मार्च १९९४ से फरवरी १९९५ ई. तक के अको में कुछ अन्तरालो के साथ क्रमश प्रकाशित हुई । बाद में यह लेखमाला पुस्तक रूप में **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान (डॉ. रामविलास शर्मा का भाषा-चिंतन)** नाम से दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय से १९९८ ई. मे प्रकाशित हुई ।

विद्यासागरजी दक्षिण भारत की यात्रा करना चाहते थे । उन्होने २-४-९१ ई के पत्र मे लिखा —

> "वस्तुत. इन दिनों मैने प्रकर के ७१ ई. में प्रकाशित 'अहिन्दी भाषियों का हिन्दी साहित्य' विशेषांक को नई सामग्री के साथ प्रकाशित करने की योजना बनाई है । इसी प्रसंग मे हैदराबाद गया था । वहाँ उस्मानिया वि वि. के डॉ चक्रवर्ती से पता चला कि डॉ

भीमसेन निर्मल ने लेखमाला के सम्बन्ध मे आपको लिखा है । डॉ चक्रवर्ती का यह भी कहना था कि उनके वि वि के भाषा विज्ञान के प्राध्यापक लेखो से असहमत है । वैसे तो यह सहज स्वाभाविक है, जो ख्याल वर्षो के प्रयत्न से उनके मन-मस्तिष्क को ढंके हुए है, उससे मुक्ति पाना उनके लिए सहज नही है । स्वय वे शोधकार्य मे रूचि नही लेते । फिर भी इस स्थिति का सामना तो करना ही होगा ।

कार्यक्रम बना रहा हूँ, पूरे दक्षिण की यात्रा का । यह यात्रा खण्ड-खण्ड मे होगी क्योकि प्रकर का कार्य भी जारी रखना है।''

इसी तरह १२ नवम्बर ९१ के पत्र मे लिखने और कार्य करने के लिए ् लिखा —

''काल्डवेल को आप अवश्य पढें । उसका यदि समीक्षात्मक अध्ययन और उसकी प्रचारित मान्यताओं का पुनरीक्षण हो सके तो अच्छा है । बल्कि इस दृष्टि से काल्डवेल और ग्रियर्सन दोनों का सम्मिलित समीक्षात्मक अध्ययन सभव हो तो वह होना चाहिए ।''

प्रकर १९९४ ई मे ही बद हो गया था । और उसके बद हो ज ागरजी को बहुत दुख हुआ है । एक प्रकार से प्रकर के बल पर , थे । ५ दिसम्बर १९९४ के पत्र मे उन्होंने अपनी मानसिक स्थि । किया है । लिखते हैं —

प्रिय भाई,

आप यहाँ पधारे, परतु आपसे सुविधापूर्वक बातचीत नही हो पाई, क्योंकि गाडी पकडने की जल्दी थी । फिर भी दो-चार चर्चाएँ तो हो ही गई । तीन दिन बाद लौट आया था । पारिवारिक कार्य होते है, तो निपटाने ही होते है ।

प्रकर के बद होने का सबसे अधिक तो मुझे ही दुख हुआ है । वस्तुत कुछ दिन तक क्षोभ इतना रहा कि कोई काम नही कर सका । स्थानीय मित्रों को भी कम दुख नहीं हुआ । डॉ. रमेशचद्र मिश्र और डॉ. रामनाथ त्रिपाठी ने इन दिनो बहुत उत्साहवर्धक और प्रेरणादायक विचार प्रकट किया और प्रकर निरन्तर प्रकाशित करने

और सहायता देने का आश्वासन दिया । उनसे बातचीत का सार यह था कि सभी मित्रो से न्यूनतम १०००.०० रु मागा जाए और उसकी स्थायी निधि बनाकर बैंक अथवा यूनिट ट्रस्ट में जमाकर उसका व्याज प्राप्त किया जाए और उसे प्रकर के लिए व्यय किया जाए । मुझे पता नही कितने बधु इसके लिए तैयार होगे, परतु उनका आग्रह पत्रिका जारी करने का है । शका इसलिए है क्योकि आरभ से ही मित्रो से यह इच्छा प्रकट कर रहा हूँ और प्रकर मे भी ऐसी सूचनाएँ अनेक बार प्रकाशित हुई है । फिर भी इतनी राशि प्राप्त नही हुई कि उसे निधि रूप मे जमा कराया जा सके। अब जो अनुरोध है, उन्हे ध्यान मे रखकर एक बार पुन यह कार्य करने की तैयारी कर रहा हूँ, यदि निधि की योजना चल सकी तो प्रकर का प्रकाशन दीर्घजीवी हो सकेगा । यदि प्रारंभ मे कुछ कामचलाऊ राशि प्राप्त हो गई तो शीघ्र ही पुन प्रकाशन शुरू हो जाएगा । इन दिनो मुख्य रूप से विचार-विमर्श और चर्चाएँ चल रही है । परिपत्र दो-एक बार लिखे है, सशोधन किए है, पुन· पुन देखकर जोड़ा-घटाया है । यहाँ मित्रो से चर्चा कर अन्तिम रूप देकर उसे भेजने का कार्य शुरू हो जाएगा ।

वह कार्य शुरू हो जाने पर सम्पादन कार्य मे रूचि लेनेवाले मित्रों का मडल बनाने का विचार है ।

अपने संस्मरण अवश्य लिखूँगा, व्यक्तिगत की अपेक्षा सार्वजनिक दृष्टि के । संभवत शीघ्र प्रारंभ कर सकूँगा ।

यह इच्छा है कि आपकी जो लेखमाला अधूरी रह गई है, उसका शेष अंश भी आगे के अकों मे प्रकाशित हो जाए । इसलिए यदि उसे रोक सकें तो कुछ दिन के लिए रोक ले । दृढतापूर्वक कार्य करने के सम्बन्ध मे अवश्य आपको जानकारी दूँगा । थोडा समय चाहूँगा क्योकि इस समय पुनर्प्रकाशन को सुलझाने मे लगा हूँ । योग्य सेवा ।

आपका

वि. सा. विद्यालंकार

० ०

८ जनवरी के पत्र मे लिखा —

"अन्तत कल सामग्री प्रेस में भेज दी (नये अक की) दैनिक कार्यक्रम बीच मे बदला था, पर अब प्रकर के कार्य के कारण पूर्व कार्यक्रम चालू हो गया है। अब क्योंकि श्रीमतीजी को थोडी सुविधा हागी, इसलिए वे प्रकर के सम्पादकीय कार्य मे इतर कार्य मे हाथ बटायेगी। सम्पादकीय कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्तियो से सहायता सुलभ हो गई तो प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा। वैसे जनवरी की सामग्री पूर्व क्रम के अनुसार भेजनी शुरू कर दी है। सहायता सुलभ होने पर पर्याप्त परिवर्तनो की आशा की जा सकती है।

मेरा दैनिक कार्यक्रम ऐसा समय बद्ध नहीं है, जैसा कि आपके समय बद्ध कार्यक्रम के बारे मे सुना है। मुख्य रूप से कार्य 'प्रकर' का है। उसे सर्वाधिक प्राथमिकता देता हूँ। वह रात्रि की नीद जब खुल जाए। नीद बहुत अनियमित है। प्रकर का कार्य लेकर बैठ जाता हूँ। इसी कारण न नीद समय बद्ध है न जागरण। रात को प्राय दो बजे नीद खुल जाती है तो दिन मे शरीर की माग पर नीद पूरी करनी होती है। यदि सौभाग्यवश नीद पूरी होती है तो प्रात ५ बजे उठकर घूमने चला जाता हूँ। लौटकर नित्यकर्मो से निवृत्त होकर पुन काम मे जुट जाता हूँ इसलिए आपके अनुरोध करने पर भी कभी नियत नियत दैनिक कार्यक्रम नही लिख पाता। विवशता है क्योंकि नीद पर मेरा नियंत्रण नही है। उपचार कभी कभी किये हैं। डॉक्टरों से भी विचार विमर्श किया है, परंतु वे कभी उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। अब यह सब शरीर की स्वाभाविक गति पर छोड दिया है। सामान्य रूप से कभी कोई उग्र रोग नही हुआ क्योंकि भोजन आदि की व्यवस्था नियमित है। वह भी शाकाहारी।

आशा है आप सानन्द है। योग्य सेवा।

आपका

वि. सा. विद्यालंकार

इसके बाद प्रकर कुछ नियमित होने लगा किन्तु बहुत दिन नहीं चला ार लिखा है, प्रकर का अन्तिम अक जुलाई १९९५ का है। विद्या

का अन्तिम पत्र १९ मार्च १९९५ का मिला । उसके बाद कोई पत्र नहीं मिला। पत्र नीचे प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

२८/३/१९९५

प्रिय भाई,

आपका १८/३/१९९५ का पत्र २२/३/९५ को प्राप्त हो गया था । इस बार डाक विभाग ने अपनी कुशलता का परिचय दिया। उस समय मै मार्च अंक में व्यस्त था, वह भी २८/३/९५ को भेज दिया गया है । तत्काल बाद अप्रैल अक की सामग्री तैयार करने मे जुट गया, वह भी अधिकाशतः तैयार होकर प्रेस चली गई है । आपकी लेखमाला का अन्तिम अश इसी अप्रैल अक मे आ रहा है ।

इस बार समीक्षा अकों की पाँच प्रतियाँ आपको भेज दी गई है। वे इस पत्र के पहुँचने तक मिल गई होगी । अथवा मिलनेवाली होगी ।

अभी तक **भारत की भाषाएं** पुस्तक प्राप्त नही हुई । **भारतीय भक्ति साहित्य** की प्रति की भी प्रतीक्षा है । राधाकृष्ण प्रकाशन से भी **अनुसंधान . प्रविधि और क्षेत्र** की प्रतीक्षा है । राधाकृष्ण प्रकाशन से बात करूँगा । अभी तक तो बहुत व्यस्त रहा, अब दो-एक दिन का विश्राम मिलेगा । तो बात कर लूँगा ।

'**अर्थात्**' की समीक्षा की प्रतीक्षा रहेगी ।

'**हिंदी आलोचना की पहचान**' की प्रति आ गई है। इसकी समीक्षा के लिए पुणे वि. वि के डॉ. उपाध्याय उपयुक्त रहेंगे ? अथवा किसी उपयुक्त व्यक्ति से आप लिखाना चाहें तो लिखिएगा।

'प्रकर' के सम्पादकीय बहुत अधिक सम्पादन, परिवर्तन परिवर्धन की माग करते हैं। दिन भर की व्यस्तता के बाद समय नही मिल पाता । इच्छा तो मेरी भी है, परन्तु समय की विवशता के कारण काम रुका हुआ है ।

आशा है आप सानन्द है। परिवार में मेरा सभी को यथायोग्य।

सस्नेह बधु
वि सा विद्यालकार

प्रकर के कार्य की व्यस्तता का बोध विद्यासागरजी के पत्रो मे व्यक्त हो जाता है। उनकी कोई पुस्तक छपी हो तो मुझे मालूम नहीं है। किन्तु प्रकर के लिए वे खूब पढते थे। समीक्षाएँ ध्यान से पढते थे। लेखकों को निर्देश देते थे। वे मूलत पत्रकार थे और उनका पत्रकारिता का स्वभाव प्रकर मे भी झलकता है। प्रकर के भीतर की सामग्री, उनके सम्पादकीयो से पूरी तरह मेल नही खाती। विद्यासागरजी का पत्रकार रूप सामायिक समस्याओं से और विशेष रूप से राजनीतिक समस्याओ के प्रति सचेत दिखलाई देता है। दैनिक समाचार पत्र या साप्ताहिक पत्र के सम्पादकियो के समान उनके सम्पादकीय होते है। उनके सम्पादकीय संवादी सम्पादकीय नही है। अपने सम्पादकीयो को उन्होंने 'स्वर-विसवादी' नाम दिया है। जब भी प्रकर का काम करते-करते समय मिल जाता, वे अपना सम्पादकीय लिख देते थे। किसी मास विशेष मे बहुत व्यस्तता रही तो प्रकर बिना सम्पादकीय के छप जाता था। प्राय सम्पादकीय रहे है। सम्पादनो की सामग्री के आधार पर तीन-चार पुस्तकें तो आसानी से तैयार हो सकती है। १९९५ मे जब तक (जुलाई मास तक) प्रकर निकलता रहा तब तक तो सब कुछ ठीक था किन्तु प्रकर का सदैव के लिए बद हो जाने से विद्यासागरजी का मन टूट गया। वे पहले जैसे नहीं रहे। दिनचर्या पूरी बदल गई। कहाँ तो बहुत व्यस्तता रहती थी, वह अब गायब हो गई। मैंने उन्हे पत्र लिखे, पुस्तके भेजी। किसी पत्र का उत्तर नहीं मिला। पुस्तको की प्राप्ति सूचना भी नहीं मिली। मुझे चिंता हुई। प्रकर बद होने के बाद दो बार उनसे मिला हूँ। पहली बार जब मिला, उस समय पति-पत्नी दोनो मिले। विद्यासागरजी मिले। पहचान प्रदर्शित की। किन्तु कुछ भूले-भूले लगे। श्रीमतजी बोली — 'हम लोग औरंगाबाद आ रहे थे। बीच मे ही इनकी तबियत बिगड गई। तब हम लौट गए।' अधिक नही बोली। कुछ स्मरण करते हुए विद्यासागरजी ने बोलने का प्रयत्न किया। मैंने पूछा — '**भारत की भाषाएँ** पुस्तक मिली क्या ?' चुप हो गए। डाक में आई भी तो वे डाक देखने की स्थिति मे नही थे। उन्होंने पुस्तक देखी ही नही थी। वस्तुत वह पुस्तक मैंने उन्हीको समर्पित की थी। किन्तु वे पुस्तक देख नहीं सके। अपना नाम उन्होंने पढा नही। कुछ बहकी-बहकी बाते बोल गए। श्रीमतीजी ने उनके बचाव मे कुछ कहा। हम दोनो ने कुछ सुना। श्रीमतीजी हमारे लिए कुछ ले आई। बैठ-बैठे मै उनको ध्यान से देखता रहा। कुछ समझने का वैसे ही प्रयत्न किया किन्तु सब परे था। कुछ देर बाद कुछ और बोले किन्तु बोलने

मे तारतम्य नही था । इससे पहले जब मिला था तब विद्यासागरजी भीतर जाकर कुछ बडे-बडे ग्रथ ले आए थे और कहा था कि ये ग्रंथ आपको काम आएगे, इन्हे ले जाइए । मैने वजन के भय से लेना ठीक नहीं समझा । देखकर वही रख दिया। उस समय बोले —प्रकर के अंको की पूरी फाइल मेरी बेटी कैनेडा ले गई है । वह मेरे लिए कुछ करेगी । कहकर चुप हो गए थे । इस बार की भेट मे इतनी पहचान भी नही रही । दोनों बार के मिलने मे मुझे काफी अन्तर दिखलाई दिया। और अन्त मे मेरा मिलना ९ नवम्बर १९९७ ई को हुआ । उस दिन रविवार था । हम लोग वीरनगर (जैन कॉलोनी) मे ठहरे हुए थे । वहाँ से विद्यासागरजी का निवास स्थान निकट था । इसलिए पहले दूसरी ओर गये । पहले हम डेरावाला गए । वहाँ साध्वियो के दर्शन किए ओर फिर राणा प्रताप बाग की ओर मुडे। दिन डूब चुका था । गेट पर वे मिल गये । विद्यासागरजी लेटे हुए थे । उठ बैठे। उनकी श्रीमतीजी मिली । दोनो ही उस समय सेवा निवृत्त थे । श्रीमतीजो ने बतलाया की विद्यासागरजी १९७९ ई में आकाशवाणी से सेवा निवृत्त हुए । यों उन्हे सेवानिवृत्त होकर १८ साल बीत गए थे । ५८ वर्ष में सेवा निवृत्त हुए तो इस समय वे ७६ वर्ष के थे । श्रीमती ने बतलाया कि स्वय उन्हे भी सेवा निवृत्त होकर चार वर्ष हो गए है । दोनो ही अब अवकाश प्राप्त जोवन गुजार रहे है । देखने मे विद्यासागरजी स्वस्थ लगे । बतलाया कि अब भी तीन-चार किलोमीटर प्रतिदिन चलते है । उनके घूमने का समय अब सायकाल का है किन्तु उन्हे अब सुनाई कम देता है । अकेले मे गुमसुम रहते है । लिखना-पढना, डाक देखना — पूरी तरह बद है । मिलकर बहुत खुश हुए । बस देखते ही रह गए । कुछ बोले नहीं । श्रीमतीजी ही बोलती रहीं । उनके दोनो लडके दिल्ली मे ही हैं किन्तु पास मे नही रहते । एक बैंक मे काम करता है। दूसरे का निजी स्टुडिओ है । सब कुछ श्रीमतीजी को ही करना पडता है । वृद्धावस्था के कष्ट बतला रही थी । दैनिक दिनचर्या का काम स्वय को ही करना पडता है । कुछ देर बैठने के बाद नमस्कार कहकर हम लोग चले आए । हमारा अन्तिम मिलन यही था । उसके बाद कोई पत्र-व्यवहार नही हुआ । काफी समय बीत जाने के बाद मैंने श्रीमती प्रकाशवतीजी ने नाम पत्र लिखा और जानना चाहा कि विद्यासागरजी कैसे है ? ४ अगस्त १९९९ का पत्र मिला । वह इस प्रकार है —

ए ८/४२ बाग
दिल्ली-७
४-८-९९

आदरणीय भाईजी,
सादर प्रणाम

आपके पत्र से विदित हुआ कि आप देहली आ रहे है। मिलकर मन हलका होगा व प्रसन्नता भी।

भाईजी, आपके हृदय मे उनके लिए इतना आदर व प्रेमभाव है, जानकर मन गर्वोल्लासित हो उठा। परतु मै बडे ही दुख से आपको भी पीडित कर रही हूँ। आपके भाईजी (विद्यासागर) का निधन ९ नवम्बर १९९८ को हो गया। अब वे आपको और पत्र न लिख सकेगे। उनका जीवन परिचय जब आप देहली आएगे, जितना मैं जानती हूँ, अवश्य बताऊँगी।

स्नेहमयी भाभी भी स्वस्थ व कुशल होगी। आपका स्वास्थ्य भी आशा करती हूँ ठीक होगा।

शेष कुशल है। अमिताभ आनद से है। आपको व भाभी को और अन्यो को मेरा नमस्कार। दिल्ली आने पर अवश्य मिले।

आपकी शुभ
प्रकाशवती

□ □

4

आनन्द नगर (टाउन हॉल)

कोतवालपुरा के बाद मैं आनन्द नगर (टाउन हॉल) कालोनी मे रहने के लिए चला गया था। कम्पाउण्ड वाल के साथ नया बगला बना था। पी आर पाटील का बगला था। वास्तु-पूजा नही हुई थी। इसलिए एक महीना ठहरना पडा। सन १९७० ई में वह बंगला मुझे १५० रुपये मासिक किराये पर मिला। मई-जून १९७० ई मे मै उस बगले मे रहने के लिए चला गया। लगभग ग्यारह वर्ष (जनवरी १९८२ ई. तक) मै उसी बंगले मे रहता था। तीनो बच्चो का बचपन टाउन हॉलवाले आनन्द नगर के बगले पर गुजरा है।

टाउन हॉल के सामने चौरस्ते का सर्कल बना हुआ है। एक सीधी सडक दिल्ली गेट की ओर जाती है। वही सडक दूसरी ओर भडकल गेट की ओर जाती है। आगे वही औरंगाबाद के रेलवे स्टेशन तक जाती है। औरंगाबाद की यह मुख्य सडक है। यह सड़क नगर के भीतर की सबसे बडी सडक है। और यों

देखे तो यह नगर के बाहर की सडक है। नगर के सरकारी कार्यालय इसी सडक पर है। टाउन हॉल से एक सडक नगर मे प्रवेश करती है, वह बुड्ढी लाइन होते हुए शाहगंज तक जाती है। दूसरी ओर वह सडक मकई गेट होते हुए बेगमपुरा और वहॉ से आगे छावनी तक जाती है। शाहगज से छावनी जानेवाली सिटी बस टाउन हॉल के मोड पर रुकती है। बच्चों का बस में बैठा देता था। वे सीधे छावनी होते हुए स्कूल तक पहुँच जाते थे। दस पैसो में बच्चे स्कूल पहुँच जाते थे और सायकाल में स्कूल से लौट आते थे। बस के 'मासिक पास' लेने से रुपये कम लगते थे। बच्चो के स्कूल का नाम होलीक्रास इंग्लिश हाइस्कूल था। औरंगाबाद में यह स्कूल प्रसिद्ध है। कोतवालपुरा मे रहते समय दोनो लडके उस स्कूल मे जाने लगे थे। नमिता का स्कूल मे प्रवेश टाउन हॉल आने पर हुआ।

टाउन हॉल वस्तुत देवगिरि कालेज के प्राध्यापकों की कालोनी थी। उसमे कुछ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर भी रहे हैं और उनके सम्पर्क के लोगों को भी उस कालोनी मे प्रवेश मिल गया था। मै जिस समय कालोनी मे गया, उस समय सब बगले नये-नये ही थे। मैंने भी स्वयं वास्तु शान्ति होते ही बगले में प्रवेश किया था। सब बगलों का नक्शा एक जैसा था। सामने वराण्डा, भीतर हॉल, हॉल से लगा हुआ रसोई घर। हाल में तीन दरवाजे थे। एक पीछे की ओर रसोई घर में, दूसरी ओर बाथ रूम की ओर और बाथ रूम मे लगा हुआ शयन कक्ष। यों वराण्डा के साथ चार कमरे हो जाते थे। सामने कम्पाउण्ड वाल। खुली जगह सामने और पीछे थी। दोनो ओर फेसिंग भी थी।

यो देखा जाए तो आनन्द नगर कालोनी मे अध्यापकों की सख्या अधिक थी। कालोनी मे एक नम्बर का बगला प. काशीनाथ मिश्र का था। वे बलिया जिले के निवासी है। पहले नाशिक में अध्यापक थे, फिर यहॉ आ गए। देवगिरि कालेज मे हिन्दी के प्राध्यापक थे। इसी कालेज मे भगतसिंह राजूरकर भी प्राध्यापक थे। आरम्भ मे मिश्राजी छावनी में रहते थे किन्तु जब अपना बगला बन गया तो आनन्द नगर मे आ गए।

दूसरे नम्बर का बगला मराठी के प्रोफेसर एव अध्यक्ष यू म. पठाण का है। विश्वविद्यालय में उनसे पहले वा ल. कुलकर्णी प्रोफेसर एवं अध्यक्ष थे। पठाण साहब का वह निजी बंगला है। सेवानिवृत्त होने के बाद आज भी वे उसी बगले में रहते है। तीन नम्बर का प्लाट खाली पड़ा हुआ था। कालोनी छोड़ने तक मैंने उसे खाली ही देखा है। चार नम्बर डॉ वसंत बोरगावकर का है। वे देवगिरि कालेज मे मराठी के प्राध्यापक रहे हैं। पॉच नम्बर मुळे परिवार का

है इसके बाद छ: नबरवाले बगले मे मैं रहता था । सात नम्बर मे Zoology के प्राध्यापक बाब्रस रहते हैं । वे मेजर कहलाते है । मेजर बाब्रस क बाद मे अन्तिम सिरे पर तालिब परिवार है । उसके बाद सामने की लाइन शुरू हो जाती है । उसमे पुरुषोत्तम पाटील के मित्र काटे का बगला है । मुळे का बगला है। प्रोफेसर जी आर. शर्मा हे तथा अन्त में प्रोफेसर खानोलकर का बगला । तीसरी लाइन मे पाथ्रीकर और पटेल के बंगले है । यों कालोनी मे तीन लाइनो का त्रिकोण बनता है ।

कालोनी मे किराये से रहनेवाले परिवार भी हैं । मैं जब रहता था, उस समय किराये से रहनेवालों में डॉक्टर अधिक थे । टाउन हॉल से लगा हुआ घाटी दवाखाना है । यह सरकारी अस्पताल है । कैम्पस बहुत बड़ा है । एक सिरे पर मकई गेट है तो दूसरे सिरे पर पनचक्की के निकट का गेट है और तीसरे सिरे पर भडकल दरवाजे के सामने नौखण्डा महल तक वह अस्पताल है । वस्तुतः वह स्थान मलिक अम्बर का निवास स्थान रहा है । उसका बगीचा भी उसमें रहा है । मकई गेट मे पनचक्की के दरवाजे तक खाम नदी बहती है। खाम नदी के किनारे पर सड़क की दूसरी ओर डॉक्टरो, प्रोफेसरों के कार्टस बने हुए है । कैम्पस के बाहर और कैम्पस के भीतर भी है ।

डॉक्टरो मे जो लोग पड़ोस में रहते थे, उनमे डॉ कोतवाल, डॉ कावरा, डॉ निकते, डॉ भारत कुलकर्णी, डॉ देशपाडे, डॉ. कुभकर्ण के नाम प्रमुख है। सम्प्रति इन सब डॉक्टरो ने अब आनन्द नगर छोड़ दिया है और अन्यत्र बस गए हैं । डॉ. माळी भी थे, जो अमरीका चले गये । इन डाक्टरो से अधिक सम्पर्क रहा है । इनके कारण हम सब को बहुत आराम था । किसी भी समय सम्पर्क करने पर उपलब्ध हो जाते थे और दवाखाने मे स्वय उपस्थित रहकर काम कर देते थे । तालिब परिवार मे भी एक डॉक्टर तालिब है ।

तिरुपति मे डाक्टर साहब के साथ पैदल घूमता था । वह आदत कोतवालपुरा मे टूट गई थी । आनन्द नगर में, मैंने सबेरे फिर घूमना शुरू किया । टाउन हॉल से दिल्ली गेट की ओर जानेवाली सडक पर घूमना आरम्भ किया । दिल्ली गेट से आगे जलगॉव मार्ग पर हिमायत बाग के अन्तिम सिरे तक जाता था । और आगे तो मौलाना आज़ाद कालेज है और उसके बाद हरसूल है । हरसूल तक नही जाता था ।

आनन्द नगर के सामने, कालोनी से बाहर निकलते ही एक ओर छोटा-सा मार्ग था । वह हाइस्कूल के पीछे का मार्ग है । उस हाइस्कूल से लग कर

मलिक अम्बर के समय की बडी मस्जिद है । आगे वह मार्ग मुख्य सडक से मिल जाता है । इस मार्ग के बॉई ओर तालाब है । यह तालाब हमारी कालोनी से लगा हुआ है । खानोलकर के बंगले से तालाब लगा हुआ है । वर्षाकाल मे खानोलकर के बगले के अहाते मे तालाब बन जाता था । काटे के बगले से खानोलकर के बगले तक पीछे तालाब है । इस तालाब की दूसरी ओर आम-खास मैदान है । आज यही शिवाजी मैदान है । आम-खास मैदान पर देश के नेताओ के भाषण होते रहे है । श्रीमती इदिरा गाधी के भाषण इसी मैदान मे हुए हैं । यह मैदान किले आर्क की सीमाओ को छूता है । मैदान के पीछे की ओर पहाडी है, जो मैदान को खाम नदी से अलग करती है । नदी की दूसरी ओर बेगमपुरा और बीबी का मकबरा है । मक्कई गेट से नगर की प्राचीर पहाडी की ऊँचाइयों से गुजरती हुई किले आर्क की प्राचीर तक पहुँच जाती है । किले आर्क औरगजेब का निवास स्थान था । आज वहाँ गवर्नमेण्ट कालेज है । किले आर्क के प्रवेश द्वार के सामने सूबेदारी गेस्ट हाउस है । उस गेस्ट हाउस से दूसरी ओर बाहर निकलने पर दिल्ली गेट के पास पहुँच जाते है ।

मै सवेरे-सवेरे जब घूमने निकलता तो मुख्य सडक पर ही घूमता था । आम-खास मैदान से गुजर कर मुख्य सडक पर आता । किले आर्क की तलहटी से सडक गुजरती है । किले आर्क तो पहाडी की ऊचाई पर है । किले आर्क के भीतर पहुँच कर ऊपर से नीचे की ओर निहारे तो सामने औरगाबाद नगर दिखलाई देता है । किले आर्क मे औरगजेब की मसजिद अलग बनी हुई है । उस मसजिद के ठीक सामने नीचे की मुख्य सडक की ओर काला दरवाजा है । काले दरवाजे से नगर मे प्रवेश होता है । आगे औरगाबाद का प्रसिद्ध चौक है । यह चौक, दिल्ली का चॉदनी चौक नही है फिर भी उसे नगर का मुख्य बाजार कह सकते है । लाल किले के सामने जैसे चॉदनी चौक है, वैसे ही किले आर्क के सामने यह चौक है । चौक मे चार सडके मिलती है । एक मछली खड़क बाजार (कपडा मार्केट) की ओर जाती है । दूसरी नगर के भीतर की मुख्य सडक सराफा होते हुए शाहगज की ओर और वही सडक पुन चौक से आगे जुना बाजार की ओर जाती है । और एक सडक काले दरवाज़े की ओर है । यो किले आर्क नगर से बाहर भी है, और नगर के निकट भी है ।

किले आर्क के ढलान पर मुख्य सडक पर सरकारी अधिकारियों के बगले बने हुए है । इन बगलो के सामने बडा दरवाजा है । रगीन दरवाजा कहलाता है । इस दरवाजे से आगे सूबेदारी गेस्ट हाउस की सीमाओ की मोड से दिल्ली

गेट की ओर सडक मुडती है । उस ओर न मुडकर दूसरी ओर मुडे तो शाहगंज की ओर सडक जाएगी ।

मै हिमायत बाग मे भी कई बार गया हूँ । उसके लिए मुख्य सडक से पहले ही किले आर्क मे जाता था । सडक मे ऊपर की ओर बढने के लिए औरंगजेब की मसजिद के पास सीढियॉ बनी हुई है । उन सीढियो के दो-तीन मोड है । ऊपर चढ जाएँ तो किले आर्क में प्रवेश हो जाता है । रंगीन दरवाजे को पार कर सूबेदारी गेस्ट हाउस के पास के मुख्य प्रवेश द्वार से गुजरने की आवश्यकता नही रहती । गवर्नमेण्ट कालेज के पीछे चले जाएँ तो हिमायत बाग शुरू हो जाता है । हिमायत बाग ठीक किले आर्क के पीछे है । बहुत बडा बाग है । भीतर घूमना अच्छा लगता है । उसका प्रवेश द्वार दिल्ली गेट से भी आगे है । जलगॉव मार्ग पर है । दो-तीन किलोमीटर घूमने पर बाग के प्रवेश द्वार तक पहुँच सकते है । गवर्नमेण्ट कालेज के पीछे से बाग मे पहुँचना नियम के विपरीत है । हम तो टहलते-टहलते पहुँचते थे । प्रवेश द्वार तक जाते ही नही थे । भीतर ही भीतर टहल कर उसी मार्ग से लौट जाता था । औरंगजेब की मसजिद के पास आकर पुन खडा हो जाता और नगर का दृश्य देखता था । कुछ देर वहीं पर मुडेर पर बैठ जाता । समय को देखते हुए सीढियों मे उतर कर काले दरवाजे की ओर के सडक पर पहुँचता और टाउन हॉल की ओर मुड जाता था । यद्यपि मेरा सबेरे का यह घूमना पूरी तरह से नियमित नहीं था तथापि मै जब जब भी औरंगाबाद मे रहता तब-तब सबेरे घूमता ही रहता था । टाउन हॉल का कोई सदस्य मेरे साथ नही रहता । सबेरे घूमने की आदत बचपन की आदत है । सिकंदराबाद मे भी पिकेट के गार्डन तक चला जाता था । किन्तु अम्बाजोगाई जैसा घूम नही सका । अकेले घूमने में और साथियो के साथ घूमने मे बहुत फर्क है । बीच-बीच में व्यंकट जब भी मिलता तो वह भी बतलाता कि वह भी सबेरे सबेरे जालना रोड पर घूमने जाता है । उसके साथी उसे मिलते हैं । वह अकेले नहीं जाता।

□ □

स्कूटर खरीदी

मै कोतवालपुरा मे रहता था । उस समय १९६९ ई के आरम्भ में तेजमल आया था । उसने उसी समय बजाज स्कूटर के लिए नम्बर लगाया था । २५० रु अग्रिम भर दिए थे । रसीद ले ली थी । उसके नाम का स्कूटर उसे तीन वर्ष बाद १९७२ ई में मिला । १९७२ ई मे वह स्कूटर लेने फिर औरंगाबाद

आया साथ मे तेजमल का एक साथी भी था । उसने भी नम्बर लगाया था। तेजमल के साथी ने अपना स्कूटर बेच दिया । उसे दो हजार पॉच सौ रुपये उसी समय ऑन के (अतिरिक्त — नम्बर लगाने के) मिल गये । तेजमल भी इसी तरह ऑन के रुपये ले सकता था । उसने वह स्कूटर मुझे दे दिया । स्कूटर खरीद लिया। उस समय मुझे बजाज स्कूटर साढ़े-तीन हजार मे मिल गया । तेजमल के कारण मैंने स्कूटर खरीदा । मै तो स्कूटर चलाना जानता नहीं था । वह रुका रहा । पहले-पहले स्कूटर पर साथ में बैठकर स्कूटर चलाना सीख लिया । बाद में व्यकट अम्बेकर तथा श्री अष्टेकर की सहायता से ठीक से स्कूटर चलाना सीख गया । १९७२ ई. से स्कूटर द्वारा यूनिवर्सिटी जाने लगा ।

मेरा बहुत-सा लेखन टाउन हॉलवाले मकान मे हुआ है । उस समय टाइपराइटर का उपयोग करता था । आरम्भ मे मैंने पुस्तकें स्वयं टंकित की है । मैं स्कूटर का उपयोग तो करता था किन्तु आशंकित रहते हुए ही चलाता था । उन्मुक्त रूप में स्कूटर कभी नहीं चलाया । नगर के भीड-भाड वाले इलाके में — औरंगपुरा, गुलमण्डी, शाहगंज आदि स्थानों पर कभी नहीं गया । पीछे किसी दूसरे को नही बैठाता था । घर से यूनिवर्सिटी, और पुन. घर — जाता आता था । उस समय पेट्रोल डेढ़ रुपये लीटर के भाव मे मिलता था । तेजमल के कारण पत्नी का ध्यान भी स्कूटर का नम्बर लगाने की ओर गया । उसके कारण मैंने अपने नाम से नम्बर लगवाया । रुपये पत्नी ने दिये । १९७२ ई. मे लगाया हुआ नम्बर आठ वर्ष बाद १९८० मे आया । नम्बर लगवाने के पॉच हजार रुपये मिले । उस समय मै मनीषा कालोनी मे मकान बनवा रहा था । रुपये काम आए ।

☐ ☐

चन्दू काकाजी तथा अन्य काकाजी

चन्दू काकाजी का जन्म १९२२ ई मे हुआ । वे मुझ से दस वर्ष बडे हैं। दादाजी जब तक थे, वे अम्बाजोगाई में थे । दादाजी का निधन फरवरी १९५३ ई मे हुआ । उससे दो-तीन वर्ष पूर्व १९५० ई के पास, वे घाटनादूर चले गए। घाटनादूर मे उन्होंने चाय की टपरी खोली । उसीसे गुजर करने लगे । फूलचंद काकाजी परली मे ब्रुकबाण्ड कम्पनी का काम कर रहे थे । मैं परली गया था। काकाजी के पास कुछ दिन रहा भी हूँ। इसी तरह चन्दू काकाजी से मिलने घाटनांदूर भी गया हूँ। परली के बाद का दूसरा रेलवे स्टेशन घाटनांदूर है। घाटनादूर अम्बाजोगाई से परली की अपेक्षा निकट है। किन्तु राजमार्ग परली का है। सारी बसें (गाडियॉ) परली ही जाती है । घाटनादूर का रस्ता बहता हुआ रास्ता नही है । अम्बाजोगाई

स अहमदपुर जानेवाली बसे घाटनादूर से जाती है । घाटनादूर छोटा सा गॉव है । रेलवे लाइन पर है । परली से सिकदराबाद जानेवाली ट्रेन, वहाँ ठहरती है । एक्सप्रेस गाडी नहीं ठहरती । अम्बाजोगाई छोडने के बाद घाटनादूर को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर वहीं पर चन्दू काकाजी रहने लगे । स्वय (पैरो से अपग होने के कारण) कुछ कर नही सकते थे । नौकर रखना ही पडता । भाग-दौड होती नही । फिर भी चाय की टपरी चला रहे थे । दादाजी जब तक थे । अम्बाजोगाई आते-जाते थे । दादाजी के बाद में अम्बाजोगाई छूट गया । चाहते थे कि भाइयो मे बॅटवारा हो जाए तो सब को कुछ-न-कुछ मिलेगा । कभी किसी ने कुछ मॉगा नही । काकाजी की अपनी मजबूरी थी । १९७० ई मे मै औरगाबाद आ गया था । उन्होने १२ अगस्त १९७० ई. को मुझे पत्र लिखा । उक्त पत्र मे उनकी विवश कथा है । उक्त पत्र प्रस्तुत है—

घाटनादूर
दि १२-८-७०

चि राजमल, आशीस !

आपको सूचना दी जाती है कि परिस्थितियों के अनुकूल इस साल मुझे नुकसान रहा, २ बार मेरी चोरी भी हो चुकी थी । इस कारण लोगो के पैसे जुमला १२८० रुपये का कर्ज हो चुका, बढती महगाई, नौकर खर्च और किराया मे काफी वृद्धि हो चुकी है । और छोटा धंदा होने से और मेरी मजबूरी होने से सहूलियत की जगह चाहे कुछ भी किराया रहे लेना ही पडता है । कारण नहाने धोने और जगल जाने की सहूलियत न होने से ज्यादा किराये की जगह बगैर मेरा निभना मुश्किल है ।

और आज तक मैं निभाता रहा । परन्तु अब दुकानो की सख्या भी काफी बढ चुकी है और तंगी के कारण २ साल से मैं व्याजी रकम पर ही निर्भर रहता था, लेकिन इस साल व्याज देने की भी कोई आशा नही रही और लोगो के तकाजे तथा डाक्टर का बिल बहुत कुछ देना है । और इन तकाजो मे मै बिलकुल निराश हो चुका हूँ ।

और मेरी इच्छा यह है कि दूसरा कुछ धदा खोलू । इतनी रकम तो शायद कही से मिलने की आशा नही । इस कारण मेरा

विचार है कि घर की तकसीम ही ठीक रहेगी, जिससे कर्ज देकर बचत मे दूसरा धदा हो सकेगा अथवा रहने पुरती जगह लेकर किराया तो बचेगा ही ।

मुझे आज तक घाटनादूर मे बीस साल से ज्यादा हो चुके परन्तु किसी का भी कुछ निर्णय न हो सका और न इस बारे मे कोई दिल खोल बाते हुयी । एक कॉपी तेजमल ओर फूलचदजी भाईसाहब को भी दी गयी । ताकि सब की राय को अनुकूल सहूलियत हो सके ।

इसका उत्तर जल्द देने की कृपा करे ।

आशा है सब आनदित होगे ।

Yours Kaka
M C Bora

(Note इसका उत्तर किसी भी प्रकार निराशावाद रहा, तब मै अपने स्वतत्र विचारो से ही जो कुछ वाजबी होगा मुझे मजबूरी से करना ही पडेगा । मुझे किसी से नाराजी अथवा द्वेष नही परन्तु लोगो के तकाजे से मै परेशान हूँ । शायद विलब होने से वह लोग मुझ पर दावा दे सकेगे ।)

From : M C Bora
Bora Library, at Po. Ghatnandur,
Tal. Ambajogai, Dist Bhir

काकाजी के पत्र अम्बाजोगाई से भी मिले हैं । काकाजी ने अपना पता अन्त मे लिखते समय 'Bora Libarary' लिखा है । वे अपना समय लिखने-पढ़ने मे गुजारते थे । सातवीं-आठवीं कक्षा तक वे सिकदराबाद मे बाईसाहब के पास बुलेटिन मे रहते थे । रामगोपाल स्टेच्यू के पास जेम्स स्ट्रीट पर ही वेसली हाईस्कूल था । उसीमे उनकी पढाई हुई थी । उन्हे, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषाओ का ज्ञान था । दोनों भाषाओ में भी लिखते थे । हिन्दी उन्होंने घर पर ही सीखी है । १९७० के ऊपर के पत्र के बाद का एक पत्र और नीचे दे रहा हूँ । इस पत्र मे उन्होंने अपनी योजनाएँ और विवशता व्यक्त की है । सभवत. यह पत्र १९७३ ई का हो । पत्र पर तिथि लिखी हुई नही है ।

श्री राजमलजी बोरा, प्रणाम

प्रथम पुस्तक मै 'हलवे और सीरा' लिखने का विचार कर रहा हूँ । ये किताब मैं रफ कागज़ पर कारबन की नकल के साथ

लिखूँगा । इसकी जानकारी श्री रजनीश की कृपा से मुझे पूरी हो जाएगी । क्यूँकि विचार आते है । रजनीश के विचार आये है ये किताब छपवाएँगे क्या ? मालूम करे ।

दूसरा कारण ये है कि मेरी एक आँख मे (दाहिनी) जाला आया है और धुंधक दिखायी देता है लेकिन अभी एक डावी आँख से मै लेख लिखते रहता हूँ । ये जाला आकर ३ महीने हो गये है । आशा है और १, २ महीने तक ऐसी हालत रहेगी लेकिन बाद मे कम होते जायेगी । क्यूकि ये जाला कुछ अलग प्रकार का है । अभी तक मैं ये किसी डॉ या हकीम को बतलाया नही हूँ । क्यूकि मै यहाँ अकेला हूँ बाकी भाईसाब और परिवार पूरा सिकदराबाद कान्ता के यहाँ जाकर ७, ८ महीने हो गये है । लेकिन मिश्रीबाई और बाबू हर २ महीने मे आकर जाते है ।

श्री तेजमलजी और सुरेशजी भाई १०, १२ दिन पहले आये थे । मुझसे मिलकर गए है । खर्च के लिये भी कुछ देकर गये हैं।

यह दूसरा पत्र भी घाटनादूर से लिखा हुआ है । इसके बाद विवश होकर घाटनांदूर से लातूर गए या मुंबई गये — ठीक से मालूम नही । इतनी बात सच है कि वे मदनलाल भाईसाहब के पास गए थे । लगभग चार-छ महीने मुबई मे थे । फिर लातूर आए । पुन घाटनादूर गए । इस तरह १९७५ ई मे वे लता के विवाह मे सिकदराबाद पहुँच गए। मेरी पत्नी सिकदराबाद लता (फूफाजी मिश्रीलालजी बाफना की लडकी) के विवाह में गई थी । उस समय काकाजी ने कहा — 'मुझे औरगाबाद चलना है ।' पत्नी लौटते समय काकाजी को साथ में लेकर आई । वे औरगाबाद आ गए । मई १९७५ के अन्तिम सप्ताह मे आए । उस समय से लगभग चार मास तक सितम्बर १९७५ तक यही पर रहे ।

काकाजी चाहते तो नियमित पुस्तके पढ सकते थे किन्तु उन्होने पढने की – ओर विशेष ध्यान नहीं दिया । बच्चो के स्तर की — मनोरजन की — पुस्तके और पत्रिकाएँ पढ लेते थे । मैंने उनकी व्यस्तता के लिए काम दिया । मैंने आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित पुस्तक के आधार पर भूषण के शब्दो के कार्ड बनाने कहा । प्रत्येक शब्द का एक कार्ड बनवाया, उस पर वह शब्द लिखा जाता। शब्दो के आगे छद सख्या लिखी जाती । वह शब्द एक ही छंद दो बार आए तो वह सख्या दो बार लिखी जाती । दूसरे छंद मे पुन आए तो वह सख्या भी लिखी जाती । यो उन्होने 'भूषण' का क्षिप्रता कोश तैयार कर लिया । भूषण के

कार्डो का काम समाप्त हो जाने पर कार्डो को अकारादिक्रम में रखकर रजिस्टर पर शब्द चन्दूकाकाजी ने ही लिखे हैं। कोश उन्होंने ही तैयार किया। बाद मे मैंने **क्षिप्रता कोष** टंकित भी किया है। शोध-छात्रा डॉ (श्रीमती) शकुन्तला पाञ्चाल ने 'उस क्षिप्रता कोश' के आधार पर शब्दकोश भी तैयार किया है। आरम्भ के (नमूने के रूप मे) कुछ पृष्ठ मैंने भी लिखे और बाद में कार्य-पद्धति बतलाने पर उसने कार्य पूरा किया है। वह कोश भी प्रकाशनार्थ तैयार है। कोश की दो प्रतियाँ तैयार की गई। मूल प्रति मैंने पाचाल को दे दी। उसकी दूसरी प्रति मेरे पास है।

काकाजी ने कुछ कहानियाँ लिखी। मैंने 'पराग' को भेजी। वे लौट आई। एक छोटा बालको का उपन्यास 'भाईचारा' लिखा। सिकंदराबाद के दो परिवारो के जो पडोसी थे, बच्चो के साथ-साथ (नागपुर तक की) यात्रा का वर्णन उसमे है। हिन्दू-मुस्लिम परिवारो मे भाईचारा बतलाया गया है। वह उपन्यास औरंगाबाद के स्थानीय साप्ताहिक **दौड़ता मनुष्य** में धारावाहिक रूप मे छपा है।

काकाजी कम्पाउण्ड मे घूम लेते थे। उठकर चलना बन्द हो गया था। दीवार के सहारे हाथ पकड कर चलते थे। एक कमरे से दूसरे कमरे मे चले जाते। मैंने उनके लिए एक फोल्डिंग कुर्सी के दो पाँवों मे दो पहिए लगवाए। इसे पकड कर चलना अपेक्षाकृत सरल था। उनका मन, औरंगाबाद में नही लगा। तेजमल आया तो उसके साथ लातूर चले गए। बाद मे वे लातूर में ही रहे। फूलचंद काकाजी भी लातूर में थे किन्तु उनके पास नही रहे। लातूर से भी उनकी चिट्ठियाँ मिली हैं। रजनीश भक्त हो गए। अपने को 'सन्त चन्दू' कहने लगे। पत्र के अन्त में 'सन्त चन्दू' लिखते थे। ऐसी ही एक पत्र—

श्रीमान राजमलजी बोरा और श्रीमती आशादेवी बोरा,
मै प्रणाम करता हूँ—दोनो को प्रणाम करता हूँ
क्यूकि इस दिवाली से—३रा वर्ष वैराग्य का
शुरू होने वाला है इसलिये—मैं ये लेख लिखता हूँ
मेरी कुछ किताबें मैं—छपाना चाहता हूँ—लेकिन
इस समय मैं मजबूरी की—छाया मे रह रहा हूँ
ये छाया कुछ दिनों में—दूर होनेवाली है क्यूकि
कृपा रजनीश की—ये हो चुकी थी
ये कृपा होने से—मै आनंदित हो गया हूँ
क्यूकि द्रष्टात हो गया था—श्रीसमर्थ रामदास का
कृपा से द्रष्टात हो चुका था—इसलिये विश्वास हो गया था

श्री रजनीश का विश्वास हो चुका था — इसलिये धारण कर लिया था
वैराग्य धारण कर लिया था — छपाने के लिये योजना क्या क्या रहती हैं
ये पत्र द्वारा मुझको सूचित कर देना — इसलिये ये लिखा हूँ
मै प्रणाम करता हूँ — सब को प्रणाम करता हूँ

सत चन्द्

काकाजी से कभी कभी बैठकर बाते करता था। उनकी योजनाओ और आवश्यकताओ को जानना चाहता था। यद्यपि टाउन हॉलवाला मेरा मकान तीन कमरों और वराण्डा वाला था। उसमे वराण्डा उन्हीके लिए था। फिर भी वे स्वतत्र कमरा चाहते थे। उन्हे लगता वराण्डा तो आने-जाने का मार्ग है। स्वतत्र कमरा अम्बाजोगाई मे उन्हे उपलब्ध (भाडे का) रहा है। वैसा कमरा उन्हे तेजमल के पास में भी नहीं मिला। तेजमल जब कामदार बिल्डिंग मे, लातूर मे ही किराये से रहता था। उस समय वे मकान के सामने की गली मे किसी गैरेज मे दिन भर रहते थे। उनसे मिलने गैरेज में गया। वहाँ से जब (१९७५ ई मे) पुन तेजमल के पास गये, तब तक तेजमल ने थत्ते नगर मे बगला बनवा लिया था। उस बंगले मे भी उनकी योजना के अनुसार उन्हे स्वतत्र कमरा नही मिला। बाद मे तेजमल ने उसी बगले से लगा एक प्लाट और खरीद लिया। उसमे अलग से बाथ रूम बना दिया और खुला आंगन था। कुछ कमरे थे। वह जगह उन्हे ठीक लगती। उसमे समय कट जाता था। अन्तिम वर्षो मे वे लातूर मे ही रहे। अपने समय से खाने की इच्छा रहती। इसलिए रसोई स्वय बनवाते। उन्हें रसोई घर उपलब्ध था। स्वय रसोई करते और भोजन कर लेते। उसमे भी वे स्वतत्रता चाहते थे। उन्हे स्वतंत्र नौकर चाहिए था, वह उन्हे नही मिल सका। बीच मे ऊब जाते तो घाटनांदूर चले जाते। पुन लौट आते। नित्य आसन करते। अपना काम स्वय करते। इच्छा हुई तो बात करते। अन्यथा चुप रहते। घर के सदस्यों से कुछ अलग रहते। तेजमल के लडके सतीश को बजाज स्कूटर की एजेन्सी मिली। बगले से लगकर जो खाली प्लाट मे जगह खाली थी। उसमे उसने गैरेज खोल दिया। गाडियो का स्टाक रखता। नौकर चाकर बैठने लगे। मशीने बैठाई गई। वे चलने लगीं। उससे काकाजी को पुन तकलीफ हुई। स्वतत्र जगह पुन नही रही। अब वे सीढियाँ चढकर छत पर बैठने लगे। दो-तीन बार मुझे सीढ़ियों पर बैठे हुए मिले। हाल मे आकर सब के साथ में बैठकर बात नही करते थे। बुढापे के कष्ट थे। उन कष्टो को देखकर पहचाना जा सकता था। बडे बाईसाहब

दिल्ली मे थे । उनके पास रहकर बडे हुए । उनको मिलने की इच्छा रही । जा नही सके । फूलचन्द काकाजी लातूर से मिलने के लिए दिल्ली गये तो बाईसाहब ने पद्रह दिन रोक लिया । लौटकर वे उसी वर्ष गुजर गये । मै उस समय दिल्ली मे था । बाईसाहब से मिलने ग्रेटर कैलाश गया था । मन्ना भाईसाहब (मनोहरलाल कोठारी) द्वार पर ही मिले । बोले, आज ही पत्र मिला है । फूलचंद मामासाहब नही रहे । बाईसाहब को मैने बतलाया नहीं क्योकि उन्हें और तकलीफ होगी। अभी अभी कुछ दिन पहले यही पर पद्रह दिन रहकर गए है । मै बाईसाहब से मिलने भीतर गया । मिलकर लौट आया । यह १९८५ ई. की बात है । फूलचद काकाजी चले गये । लौटने के बाद लातूर गया । उस समय तक सतीश का गैरेज खुला नहीं था । काकाजी का अन्तिम सस्कार तेजमल के घर पर ही हुआ । १९८६ ई. मे तिरुपति गया था । लौटते समय बडे काकाजी (भागचन्दजी) से मिलने गया था । बहुत थक गये थे । उस समय वे ८४-८५ साल के होगे । लौटने के बाद मार्च १९८६ मे मालूम हुआ कि काकाजी नही रहे । सिकदराबाद जाकर आया । चारो काकाओ मे से अब सबसे छोटे चन्दूकाकाजी रह गये थे। बाईसाहब तो सभी काकाओं से बडे थे । मै प्रतिवर्ष दिल्ली जाता तो मिलकर आता। कभी-कभी वर्ष मे दो बार भी जाता और मिलता था । एक बार मन्ना भाईसाहब का फोन आया कि बाईसाहब याद कर रहे है । उसके बाद मे दिल्ली गया तो मिलकर आया । मार्च १९९१ में बाईसाहब भी चले गए । दिल्ली से पत्र मिल गया था ।

दिसम्बर १९९३ ई. के प्रथम सप्ताह मे बम्बई होते हुए आनन्द गया था । लोटकर बम्बई आया तो नम्मू ने बतलाया कि मिश्रीलालजी महाराज साहब का देवलोक हो गया है और चन्दूकाकाजी भी नहीं रहे । औरगाबाद पहुँचा और बाद मे लातूर गया । मालूम हआ कि ग्यारह दिसम्बर १९९३ ई. को काकाजी सबेरे-सबेरे साढ़े चार या पॉच बजे उठे । बाथ रुम जाकर आए और पुन सो गए । तेजमल उस दिन मिश्रीलालजी महाराज साहब के अन्तिम संस्कार मे सम्मिलित होने औरगाबाद निकलने की तैयारी मे था । काकाजी अभी उठे नही इसलिए चादर उठाकर देखा गया । काकाजी कब गये — पता ही नही चला । तेजमल ने औरगाबाद की यात्रा स्थगित कर दी । काकाजी का अन्तिम सस्कार किया । यो एक-एक कर सभी काकाजी चले गये ।

□ □

प्रकाशन

सन १९७१ ई. मे औरंगाबाद से मैंने पहली पुस्तक प्रकाशित की। पुस्तक का नाम था — 'चिन्तामणि भाग १ - मीमासा'। यह पुस्तक मैंने भारतीय हिन्दी परिषद के पूना अधिवेशन मे लौटकर आने के बाद मे लिखी। पूना का यह अधिवेशन २४ वॉ अधिवेशन था। और उसकी तिथियाँ २३-२४-२५ अक्तूबर १९७० ई थी। चिन्तामणि भाग-१ पुस्तक मे पढ़ाता था। पढाने के कारण पुस्तक लिखने मे कोई कठिनाई नही हुई। दिसम्बर १९७० ई मे काम आरम्भ किया और जून १९७१ ई तक पुस्तक छप गई। उस समय पुस्तक का मूल्य सात रुपये पचास पैसे मात्र था। लागत मूल्य से तीन गुना कीमत रखी थी।

यहाँ पर मैं डॉ भालचन्द्र तेलग का उल्लेख करना चाहूँगा। वे स्वय भी प्रकाशक हो गए थे। पद्माकर कवि के वशज थे। 'पद्माकर श्री' — पुस्तक का सम्पादन किया। और यही पर स्वय प्रकाशित किया। औरंगाबाद मे उस समय 'मराठवाडा' (दैनिक समाचार पत्र) की अलग से जयहिन्द प्रेस थी। उसमें जगन्नाथराव बर्दापूरकर थे। उनके सहयोग से पुस्तके छपती थीं। उस प्रेस मे मेरे साथ-साथ डॉ तेलग साहब की पुस्तके छपने लगी। तेलग साहब ने अपने नागसपुरा 'सुषमा निकुज' मे 'पद्माकर अनुसधान शाला' सस्था का काम आरम्भ किया और उसी नाम से पुस्तके छापने लगे।

डॉ तेलग साहब सेवानिवृत्त होने के बाद मे लेखक-प्रकाशक हुए। इससे पहले उनकी एक पुस्तक **'छत्तीसगढी, हलबी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन'** पी-एच डी शोध-प्रबन्ध मात्र छपा था। गवर्नमेण्ट कालेज मे काम करते समय यो भी उन्हे पुस्तक छपवाने मे कठिनाइयॉ हुई है। उनकी एक और पुस्तक **'औरंगाबाद की हिन्दी संत वाणी'** (सम्पादित) हे। रामनारायणलाल बेनीप्रसाद इलाहाबाद से छपी है। मेरे औरगाबाद आने से एक वर्ष पूर्व १९६७ ई. मे छपी थी। विभाग खुलने से पूर्व तेलग साहब ही अध्यक्ष थे।

पुस्तक छापना जितना सरल है, उतना विक्रय कार्य सरल नहीं है। 'चिन्तामणि भाग १ मीमासा' से पहले मैंने एक पुस्तक १९५९ ई में प्रकाशित की थी। उस समय उस पुस्तक को छापने में चार सौ से कुछ ऊपर लगे थे। कुल छ सौ प्रतियॉ छापी थीं। उस पुस्तक की कुछ प्रतियाँ सिकदराबाद मे ही बिक गई थी। मुश्किल से पचास-साठ प्रतियाँ बिकी हो किन्तु उसके छप जाने से लेखन कार्य के प्रति विश्वास दृढ हुआ। दूसरा लाभ यह हुआ कि मुझे विश्वविद्यालय मे नौकरी मिलने मे उस पुस्तक ने सहायता पहुँचाई। तिरुपति मे उक्त पुस्तक की

(साहित्य एक विवेचन की) शेष प्रतियों के बण्डल वैसे ही पडे रहे। सिकदराबाद-हैदराबाद में तो कुछ प्रतियॉ बिक सकती थी। तिरुपति मे तो हिन्दी पुस्तको का न कोई प्रकाशक था और न कोई पुस्तक विक्रेता। तिरुपति मे जब विभाग खुला तो छात्र मिलना कठिन था। वहॉ पर बी ए मे जिसकी द्वितीय भाषा हिन्दी थी, आरम्भ मे उन्हे एम ए हिन्दी में प्रवेश देना पडा। वहॉ पर कोई प्रकाशक आता नही था। आवश्यक कार्य पत्र-व्यवहार से सभव था। आगरा के विनोद पुस्तक मदिर से पुस्तकें मगवाई जाती थी। भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ से पुस्तके आती थीं। इस तुलना मे औरगाबाद मे प्रकाशको का आवागमन अधिक था। प्रकाशक को प्रकाशकों से सम्पर्क करना पडता है और इसी तरह पुस्तक विक्रेताओ से सम्पर्क भी आवश्यक है। लेखन का कार्य अलग है और प्रकाशक का कार्य अलग है। मै लेखक तो हो गया किन्तु प्रकाशक नही हो सका।

कुछ लोगों ने कहा—'तीसरी पुस्तक छपने तक पहली पुस्तक की राशि मिलने लगती है। एक पुस्तक छपकर कोई भी प्रकाशक नही हो सकता। इसलिए अगले वर्ष (१९७२ ई) मैंने **'हिन्दी उपन्यास · प्रयोग के चरण'** पुस्तक प्रकाशित की। तीसरे वर्ष १९७३ ई मे., **'आधुनिकता और राष्ट्रीयता'** पुस्तक का प्रकाशन किया। चौथे वर्ष मे (१९७४ ई) **'पृथ्वीराजरासो : इतिहास और काव्य'** का प्रकाशन किया। इसी तरह क्रमश १९७५ ई मे **'संवेदना के स्तर'** और १९७६ ई मे **'सवेदना और सौंदर्य'** का प्रकाशन किया। बाद में १९७७ ई मे **'भाषा : अर्थ और संवेदना'** का प्रकाशन किया। और अन्तत १९७९ ई. मे डी.लिट् का शोध-प्रबन्ध **'हिन्दी वीरकाव्य : सर्वेक्षण, वर्गीकरण और मूल्यांकन** (१६०० ई -१८०० ई) का प्रकाशन किया। यो मैंने औरगाबाद से कुल ८ पुस्तके प्रकाशित की।

इस तरह प्रकाशक बन जाने में लाभ भी हुआ और हानियॉ भी हुई। पुस्तक व्यवसाय के अनुभव प्रकाशको को अधिक रहते हैं। सभी पुस्तक विक्रेता और छोटे प्रकाशक आपको ईमानदारी से पुस्तको की राशि दे देगे, इसका विश्वास नही किया जा सकता। जो भी प्रकाशन मार्केट मे नामी हैं, वे सभी व्यवहार मे साफ रहते है। ऐसा हुए बिना वे प्रकाशक के रूप मे टिक नही सकते। कई ऐसे पुस्तक विक्रेताओ से सम्पर्क हुआ। उनमे तीन-चौथाई ऐसे रहे, जिन्होंने रुपया दिया ही नही। कुछ तो तुरन्त रुपये देनेवाले थे। हिसाब बराबर रखते थे। लेकिन सात/आठ पुस्तकें छाप कर और मात्र अपनी ही पुस्तकें छापकर मार्केट मे जम जाना बहुत कठिन है। और फिर लेखक बनकर यह सब काम करना बहुत कठिन है। प्रेमचद स्वय प्रकाशक हो गए थे। इसमें उन्हे विशेष लाभ नही हुआ। प्रेमचद

की पुस्तके प्रेमचद की मृत्यु के बाद अधिक बिकी है और उसका लाभ उनके पुत्रो को और अन्य प्रकाशको को मिला है ।

मुझसे प्रकाशन व्यवसाय मे प्रधान रूप से दो भूलें हो गई । बडी भूल तो यह हुई कि सभी पुस्तकों की मैंने ग्यारह सौ, ग्यारह सौ प्रतियाँ छपवाई । मैंने देखा कि बडे प्रकाशक भी मार्केट देखकर पुस्तक की प्रतियो का निर्धारण करते है । मै तो मार्केट जानता ही नही था । दूसरी बात यह कि सभी पुस्तको की जिल्दे बनवा लेता था । इसमे व्यर्थ मे रुपया अधिक लग जाता था । आर्डर देखकर जिल्दे तैयार करवाना अधिक लाभप्रद रहता हैं । यह मै नही कर सका। दूसरी भूल मुझसे कुछ पुस्तको मे **नामकरण** को लेकर हुई है । अनुभवी प्रकाशक कह देते हैं कि इस **नामकरण** से पुस्तक बिकेगी नही । वे मार्केट को देखकर और विषय को देखकर पुस्तक का नामकरण चाहते हैं । उदाहरण के लिए मैंने **व्यक्तिवाचक संज्ञा** पर काम किया । बाद में उसी. विषय को भौगोलिक नामो तक सीमित किया । और उन नामो में भी तीन नगरो के नामो का चयन किया। वाराणसी, दिल्ली और औरंगाबाद । काम करते-करते दिल्ली नगर तक सीमित हो गया । पुस्तक लिख दी । भूमिका पूना के डॉ अशोक केळकर से लिखवाई । पुस्तक की पाण्डुलिपि ICSSR नई दिल्ली को भिजवाई । नामकरण के लिए लौटाई गई । समाधान लिखकर भेजने पर अनुदान मिला । उसके बाद मे ईश्वरचंद्रजी के प्रयत्नो से राजपाल एण्ड सन्ज को ICSSR की ओर से मान्यता मिली । पुस्तक समय पर छप नही सकी। अनुदान कैंसल हो सकता है । इस समय तक राजपाल एण्ड सन्ज का सारा काम ईश्वरचद्रजी खण्डेलवाल देखते थे । लेखक को प्रकाशक से मिलने का काम ही नहीं रहता था । ईश्वरचंद्रजी ने काम लगभग छोड दिया था। इसलिए मुझे बाद मे विश्वनाथजी से मिलना पडा । विश्वनाथजी ने पाण्डुलिपि सामने रखी और नामकरण पर विचार किया । अन्त मे उनके कहने से पुस्तक का नामकरण **नामों का भाषा विज्ञान** रखा और वह पुस्तक फिर विश्वनाथजी ने छाप दी ।

□ □

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजनाएँ

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को मैंने समय-समय पर परियोजनाएँ भेजी। वे हर बार स्वीकृत हुई । प्रथम परियोजना तिरुपति मे स्वीकृति हुईं और उसको मैंने वहीं पर पूर्ण भी किया । नाम था मध्यकालीन वीरकाव्य । उसके लिए मुझे पाँच सौ रुपये मात्र पुस्तको के लिए मिले थे । मैंने पुस्तके खरीदी । बाद मे

वे सभी पुस्तके विश्वविद्यालय को लौटानी पडी । मुझे पुस्तके नही मिली । सारा हिसाब देना पडा । काम भी प्रस्तुत करना पडा । उसके बाद कार्य पूर्ण करने का प्रमाण-पत्र विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से मिला । १९६८ ई में पूर्ण की गई परियोजना के कार्य को आगे बढाने के लिए मैने शोध-यात्राए आरम्भ की। १९६८ ई. में पूर्ण की गई परियोजना मैने १९७८ ई मे पूर्ण की । उसी को डी लिट् का विषय बनाया । महाराजकुमार डॉक्टर रघुबीरसिंह के सहयोग से काम पूर्ण हुआ और उन्होने डी लिट्. की पुस्तक की भूमिका लिखी । पुस्तक तो — पहले मे ही हिन्दी की पत्रिकाओ मे छप गई थी । नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वाराणसी), सम्मेलन पत्रिका (इलाहाबाद), कल्पना (हैदराबाद), सरस्वती (इलाहाबाद) आदि पत्रिकाओ मे प्रबन्ध के लगभग सारे अध्याय छप गए थे । कुछ अतिरिक्त शोध-लेख भी छपे थे । जो शोध प्रबन्ध मे नही छपे थे । डी लिट् का रजिस्ट्रेशन विलम्ब से हुआ और वह भी डॉ. विजयपालसिह के कारण हुआ । उस समय भागलपुर गया। डॉ शिवनन्दनप्रसाद के निर्देशन मे काम किया । १९७८ ई में डी.लिट्. की उपाधि मिली और १९७९ ई में **'हिन्दी वीरकाव्य सर्वेक्षण, वर्गीकरण तथा मूल्यांकन'** (१६००-१८०० ई) का प्रकाशन १९७९ ई में किया । वह पुस्तक भी मैने स्वय प्रकाशित की । उस पुस्तक के बाद प्रकाशन बन्द कर दिया । मै प्रकाशन की निरन्तरता को बनाए रख नही सका ।

□ □

प्रकाशक बन जाने के लाभ

प्रकाशक बन जाने में आर्थिक हानि हुई । वह होनी ही थी । किन्तु उसके लाभ भी हुए । मै जो भी पुस्तक छापता, उसकी सौ प्रतियॉ विद्वानो को, मित्रो को, पत्र-पत्रिकाओ को समीक्षार्थ भेज देता था । इससे कुछ विद्वानों के पत्र मिले। लगा पुस्तक पढी जाती है । पत्र-पत्रिकाओ मे समीक्षाएँ छपती रही । एक बात साफ लिख दूँ कि निजी प्रकाशक के होने पर हम औरो को पुस्तक अपनी इच्छानुरूप दे सकते है । प्रकाशक दूसरा हो और स्वय लेखक न हो तो उसे गिनती की प्रतियॉ (अधिक से अधिक दस प्रतियॉ) मिलती है । और चाहिए तो खरीदना पडता है। प्रकाशको के अपने प्रचार के साधन होते है । वे अपने साधनो का उपयोग करते हैं । बहुत कम प्रकाशक होते हैं, जो पुस्तके समीक्षार्थ प्रस्तुत करते है । पत्रिकाओं को पुस्तके भेजते ही नहीं । मैंने जो पुस्तके स्वय प्रकाशित की उनकी समीक्षाएँ जितनी छपी हैं, उतनी समीक्षाएँ प्रकाशको द्वारा छपी पुस्तको की नही छपी । मैंने पुस्तके छापते समय यह विचार ही नही किया कि इससे

मुझे कुछ आय होगी। मै स्वय यही चाहता रहा कि लागत मूल्य मिल जाए। लागत मूल्य न मिलने पर तो हानि ही हानि है। इस तैयारी से या ऐसा होगा मानकर चलने से मुझे कोई दुख नही हुआ। मुझे मेरे लेखन के गुण-दोष समीक्षको ने बतलाए। इससे मुझे निर्देश मिले। आत्मविश्वास बढा और आगे काम करने मे सुविधा हुई।

मेरी एक पुस्तक 'अर्थानुशासन' — छपी। प्रकाशक ने उस पुस्तक का पूरा सस्करण बेच दिया। उसका पूरा हिसाब भी मुझे दिया किन्तु उक्त पुस्तक की समीक्षा कही नही छपी। मुझे उक्त पुस्तक की प्रतिक्रिया मिली ही नही। मैने उस पुस्तक के सम्बन्ध मे कहीं कुछ नही पढा। इसी तरह 'भाव, उद्वेग और सवेदना' पुस्तक छपी। उसकी समीक्षा भी मैने कही नही पढी। उस पुस्तक को मार्केट भी नही मिला। उसका एक कारण यह भी है कि उसके नामकरण में भूल हो गई। पुस्तक मूल रूप मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पुस्तक 'रस-मीमासा' को आधार बनाकर लिखी गई और उसका प्रकाशन आचार्य शुक्ल की जन्म-शताब्दी वर्ष १९८४ ई मे हुआ। उसकी शुभाकाक्षा डॉ नगेन्द्र ने लिखी और दो शब्द डॉ. भालचन्द्र तेलग ने लिखे थे। इस पर भी पुस्तक के नामकरण में न तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम था और न ही उनकी पुस्तक 'रस-मीमासा' का नाम था। पुस्तक का नाम 'भाव, उद्वेग और संवेदना' था। यह नाम विषयपरक था और दार्शनिक स्वरूप का था। इस नामकरण के कारण पुस्तक को मार्केट नही मिला। इस सम्बन्ध मे मुझे एक पाठक का पत्र मिला। पत्र उद्धृत कर रहा हूँ —

सुलतान अहमद
जूनी कसाई की चाल
रखियाल रोड,
अहमदाबाद ३८० ०२३
दिनाक ३१-९-१९८६ ई

आदरणीय बोराजी,

आपकी पुस्तक 'भाव, उद्वेग और सवेदना' पढी। मै चाहता था कि इसका खूब गहन अध्ययन करने के बाद ही आपको पत्र लिखूँ। लेकिन जिस तरह एक बेहतरीन कविता अभिभूत कर लेती है, उसी तरह इस पुस्तक ने अभिभूत कर लिया और मुझे पत्र लिखने को विवश कर दिया। कहा जाता है कि ज्ञानात्मक पुस्तके अभिभूत नहीं करती।

भावो के जिन सूक्ष्म भेदो के बारे मे शका थी, दूर हुई। आभासी ज्ञान दृढ ज्ञान में बदला। जिन भावो का ज्ञान था उनका पुनरावर्तन रोचक लगा।

पुस्तक पढते हुए ऐसी इच्छा जगी कि इन विषयो पर बोलते हुए आपको सुना जाए तो कितना सुखद अनुभव होगा।

आशा है स्वस्थ एव सानन्द होंगे।

आपका

सुलतान अहमद

मेरा लेखन विषयपरक अधिक था। सुलतान अहमद का पत्र विषयपरक है। व्यक्ति शुक्ल का उल्लेख कही नही है। सुलतान अहमद ही क्यों जाने माने विद्वान् समीक्षक डॉ. विश्वभरनाथ उपाध्याय को उक्त पुस्तक के छप जाने से पूर्व उसका एक अध्याय जो मराठवाड़ा यूनिवर्सिटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ था, उसकी अनुमुद्रित प्रति भेजी थी। उसकी प्रतिक्रिया भी कुछ ऐसी ही थी। पत्र इस प्रकार हैं—

७ड-२५ जवाहर नगर

जयपुर-४, (राजस्थान)

दिनांक १७-१२-८३

प्रिय भाई,

शोध लेख। धन्य.। आपने बडा परिश्रम किया है पर शुक्लजी की भाव की—धारणा पर तुलनात्मक आलोक और पडता, तो बेहतर रहता। . . . .

भवदीय

विश्वभरनाथ उपाध्याय

उपाध्यायजी ने ठीक ही लिखा। मेरा लेखन विषयपरक अधिक हो गया। मैंने प्रकाशक को पुस्तक का नामकरण बदलने के लिए कहा है। कहा है और लिखा भी है—**'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की रस-मीमांसा'**। अब देखना है कि यह काम कब होता है ?

सक्षेप में मै कहना यह भी चाहता हूँ कि निजी प्रकाशन के अपने लाभ हैं। प्रकाशक दूसरे हो तो पुस्तक की प्रतिक्रियाओं से अवगत होना कठिन हो जाता है। निजी प्रकाशन मे व्यावसायिक भूले हो जाती है और आर्थिक हानि भी होती है। उसका लाभ अप्रत्यक्ष रूप में होता रहता है। वह मालूम नहीं पडता।

□ □

सम्पादन

हिन्दी विभाग का एकेडेमिक कार्य मैं करता रहा हूँ। विशेष रूप से सम्पादन का काम मै करता था। इस कार्य में डॉ भ ह राजूरकरजी ने सदैव मुझे सहयोग दिया। उनके सहयोग और समर्थन के कारण लगभग दस-बारह पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। और ये पुस्तकें प्राय दिल्ली से प्रकाशित हुई है।

विभाग मे एम फिल. की कक्षाएँ होती थी। उसका पाठ्यक्रम था। चार प्रश्न-पत्रो मे दो प्रश्न-पत्र सामान्य (सबके लिए) थे। अनुसन्धान की पद्धति से सम्बन्धित थे। अत पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखते हुए विद्वानो से लेख मगवाए। देश के चोटी के विद्वानों ने आलेख भेजे हैं और क्रमश चार पुस्तकें तैयार हुई है। इन चारो पुस्तकों मे तीन पुस्तको का प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली मे हुआ है। चौथी पुस्तक अप्रकाशित है और अभी प्रकाशक के पास पडी हुई हैं। पुस्तको के नाम इस प्रकार है—

१) हिन्दी अनुसधान का स्वरूप (१९७८ ई)

२) हिन्दी अनुसधान के आयाम (१९८१ ई)

३) आधुनिक साहित्य और अनुसधान (१९९७ ई)

चौथी अप्रकाशित पुस्तक का नाम हैं—

४) साहित्य और समवर्गी विधाशाखाएँ (अप्रकाशित)

विभाग मे सगोष्ठियो का आयोजन हुआ। इन सगोष्ठियो मे देश के विद्वानों के भाषण हुए है। विद्वानों से प्राय लिखित आलेख मांगे गए। सामग्री एकत्रित हो गई। उनका सम्पादन किया और पुस्तके प्रकाशित की है। तुलनात्मक अध्ययन पर संगोष्ठी हुई। इस विषय पर दो पुस्तके प्रकाशित हुई है। वाणी प्रकाशन, दिल्ली द्वारा इनका प्रकाशन हुआ। नाम इस प्रकार हैं—

५) तुलनात्मक अध्ययन स्वरूप और समस्याए (१९९० ई)

६) तुलनात्मक अध्ययन · भारतीय भाषाएँ और साहित्य (१९९२ ई)

न्यायमूर्ति मुरलीधरराव कानडे उपकुलपति थे। उनके कार्यकाल मे डॉ नगेन्द्र 'हिन्दी नाटक और रंगमच' संगोष्ठी का उद्घाटन करने के लिए आए थे। साथ में डॉ इन्द्रनाथ चौधुरी भी आए थे। सगोष्ठी सफल हुई। उनके आलेख मिले। उस समय 'हिन्दी नाटक और रंगमंच' पुस्तक का सम्पादन हुआ। पचशील प्रकाशन, जयपुर से उसका प्रकाशन हुआ।

७) हिन्दी नाटक और रगमच (१९८८ ई)

इस पुस्तक के मम्पादन मे डॉ नारायण शर्मा ने सहयोग दिया है ।

विभाग में बुजुर्ग सदस्य डॉ चन्द्रभानु सोनवणे थे । वे सब से पहले सेवानिवृत्त हुए। उनको अभिनदन-ग्रथ देने का निर्णय विभाग मे हुआ । उनके नाम से सहयोगराशि विभाग मे एकत्रित हुई । उस राशि का उपयोग कर विभाग मे हुई **अनुवाद संगोष्ठी** की सामग्री का सम्पादन किया । तदनुसार उक्त पुस्तक का प्रकाशन वाणी प्रकाशन, दिल्ली से किया ।

८) अनुवाद क्या है ? (१९९३ ई)

विश्वविद्यालय अनुवाद आयोग की व्याख्यानमाला के अन्तर्गत कई विद्वान् विभाग मे आए है । उन व्याख्यानो को एकत्रित कर उन्हींके नाम से पुस्तके विभाग की ओर से प्रकाशित हुई हैं । इनमे दो नाम है । 'आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री' और डॉ. एस. टी नरसिहाचारी । आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की पुस्तक का प्रकाशन नेशनल पब्लिशिग हाउस से हुआ और आचार्य डॉ. एस टी. नरसिहाचारी की पुस्तक का प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन से हुआ है ।

९) अनुचिन्तन आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री (१९८६ ई.)

१०) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्यिक अभिरूचि और समीक्षा (१९९६ ई)

इन सब पुस्तको के सम्पादकीयों मे सम्बन्धित पुस्तक के सम्बन्ध मे विस्तार से लिखा है । यहॉ पर केवल नामो का उल्लेख हुआ है ।

सम्पादन के अपने अनुभव है । प्रकाशन तुरन्त होता नही है । पुस्तके वर्ष दो वर्ष मे छपती नही है । लम्बी प्रतीक्षाओ के बाद आर्थिक सहयोग से पुस्तके छपती है । यह सच्चाई है । पुस्तकें इसलिए छपी कि उनके लेखक देश के ख्यात लेखक हैं । पुस्तके लेखको के नाम से जानी जाती है । दूसरी बात एकेडेमिक पुस्तकें छापते समय प्रकाशक पाठ्य-पुस्तक का ध्यान रखता है। कम-से-कम सहायक पुस्तक तो होनी ही चाहिए । आर्थिक सहयोग तो कहने के लिए होता है । सच्चाई यह है कि मात्र आर्थिक सहयोग से पुस्तक छपती नही है । प्रकाशक तो पुस्तके बेचना चाहता है और खरीदनेवाले लेखको के नाम देखते है । लेखको के नाम नही लिख रहा हूॅ । वे सब पुस्तको मे है । सारा श्रेय मै लेखको को देता हूॅ। उनके कारण श्रम सार्थक हुआ है ।

□ □

5

व्यंकट अम्बेकर

व्यंकट अम्बेकर मेरा एकमात्र अम्बाजोगाई का मैट्रिक का सहपाठी है, जिसने अन्त तक मुझ से सम्पर्क बनाए रखा है। हम दोनों एक ही कक्षा मे थे। उसके पिता और काका की मण्डी बाजार मे पुल के निकट दुकान थी। वही एकमात्र सहपाठी है, जो औरंगाबाद मे मेरा स्वागत करनेवाला और अपने घर पर आश्रय देनेवाला था। मै सोलापुर से सीधे जब औरंगाबाद आया, (३ दिसम्बर, १९६८ ई की रात्रि मे) उस समय वह शाहगंज बस स्टैण्ड पर मेरी प्रतीक्षा मे था। मै उसके घर पर गया और वही डेरा डाल दिया। उसीकी साइकिल लेकर यूनिवर्सिटी गया। व्यंकट का घर उस समय जिनसी मे था। मार्किट कमेटी मे वह अधिकारी था और उसे क्वार्टर मिला हुआ था। उसीमे वह रहता था।

व्यंकट का घर अम्बाजोगाई मे सदर बाजार मे ही था। हमारे बाजार के पीछे गोपू अभंगे के घर के निकट उसका घर था। मैट्रिक हो जाने के बाद,

मै तो सिकंदराबाद चला गया। किन्तु लगता है, उसने अपनी पढाई बन्द कर दी। शीघ्र ही उसे नौकरी मिल गई। मार्किट कमेटी मे काम मिला। सिकंदराबाद से लौट आता तो परली से अम्बाजोगाई जाना पडता। परली मे वह उसी समय मार्किट कमेटी में काम करते हुए मिला। परली से उसकी बदली हैदराबाद मे हो गई थी। हैदराबाद मे उसका कार्यालय नामपल्ली से बेगम बाजार के रास्ते पर, दूसरी मजिल पर था। वहाँ पर भी वह मिला। यों हमारी भेंट होती रही। सम्पर्क छूटा नही। मै उसे मिलने के लिए विशेष रूप से जाता रहा हूँ। उसका तेजमल से अच्छा परिचय रहा है। दोनों सदैव अवसर मिलने पर मिलते रहे है। औरंगाबाद पहुँचते-पहुँचते वह मार्किट कमेटी का अधिकारी हो गया। सभवत उसने कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण की हो। मैने कभी पूछा नही।

व्यकट को अम्बाजोगाई का आकर्षण रहा है और सदर बाजार के साथियो का स्मरण सदैव रहा। मुझ से ज्यादा उसके पास साथियो की सूचनाएँ रहती। वह सब से सम्पर्क बनाए रखता। औरंगाबाद मे उसकी मित्र-मडली का विस्तार था। निजामकालीन तौर-तरीके उसे मालूम थे। कार्यालयीन व्यवस्था से उसका अच्छा परिचय था। मैं जब औरंगाबाद आया तो उस समय निजामकालीन व्यवस्था और कार्य-पद्धति जारी थी। उर्दू भाषा का प्रचलन पूरी तरह बन्द नही हुआ था। सरकारी कार्यालयो मे उर्दू जाननेवालों की संख्या अधिक थी। व्यंकट हैदराबाद में रहने के कारण उस तहजीब से परिचित था। स्वय उसके कार्यालय मे निजामकालीन पद्धति जारी थी। बातचीत मे हम दोनो हिन्दुस्तानी का व्यवहार करते। वह कार्यालयीन मुहावरो और शब्दो का उपयोग करता। वह प्राय. उर्दू का उपयोग अधिक करता। 'दस्तखत करो मियाँ' वह मियाँ की भाषा अधिक जानता था। बाद में उसके कार्यालय मे भी मराठी का व्यवहार होने लगा था। फिर भी वह साहबी मिजाज की बाते अधिक करता था। कार्यालयो की कार्य-पद्धति से और उस-भाषा मे परिचय रखने के कारण उसके काम तुरन्त हो जाते थे। कागज कहाँ अटका है? किससे मिलना चाहिए? यह सब वह ठीक जानता था।

अम्बाजोगाई में रहते समय मे मेरा गोपू से अधिक मेलजोल नही था। मै गोपू के घर पर बहुत बार गया हूँ। गोपू के पिताजी विनायकराव के पास बैठकर समर्थ रामदास का दासबोध सुनता था। उन्हे रामचरितमानस का पाठ सुनाता था। गोपू के दादा मारुति मामा, दादाजी के पास चबूतरे पर तुरपई करते हुए बैठे रहते थे। और विनायकराव मेरे काकाजी के साथ चौपड (रात मे बारह बजे तक)

खेलते रहते थे । काकाजी को चौपड खेलने का शौक था । गोपू मदरसे फोकानिया मे मुझ से दो जमाअते आगे था । मै हश्तुम मे था तब वह दहुम मे था । वह १९४९ ई. का मैट्रिक है और मैने १९५१ ई. में मैट्रिक किया । पढने-लिखने मे उसका ध्यान रहता था । वह प्रथम श्रेणी मे मेट्रिक उत्तीर्ण हुआ । बाद मे वह इजिनिअरिग कालेज मे, जाइन हो गया । उस्मानिया विश्वविद्यालय से इजिनिअरिग की उपाधि उसे मिल गई । मै जब औरगाबाद आया, उस समय गोपू औरगाबाद मे रहता था । वह ऊचे पद पर था । अधिकारी था ।

व्यकट का गोपू से अच्छा परिचय था । वह मुझे गोपू के घर ले गया। मै गोपू से मिला । उसे प्रसन्नता हुई कि मै भी औरगाबाद आ गया हू । जिस मकान में मै मिलने गया, उस मकान — बगला कहना चाहिए — मे वह रहने के लिए नया-नया ही गया था । बन्सीलालनगर मे उसने फायर ब्रिगेड के मोड की गली मे बंगला बनवाया था । दुमजला बगला बनवाया । आज भी वह सेवानिवृत्त होने के बाद उसी बगले में रहता है ।

गोपू को यहॉ पर 'गोपू' कोई नही कहता । अम्बाजोगाई मे हमारी बाल-मडली सब उसे गोपू कहते थे । मैं भी उसे इसी नाम से जानता था । यहॉ पर, वह 'अभगे' के नाम से पहचाना जाता था । उसके पिताजी औरगाबाद आते-जाते रहते थे । जब भी पिताजी आते, मै उनसे मिलने जाता रहा हूँ । वृद्ध हो गए थे । मिलकर बहुत खुश होते थे । उनका एक वाक्य मुझे आज भी याद है — 'पुरुष्या शाळेला गेला' । चौपड खेलते समय वह उस मुहावरे का प्रयोग करते रहते थे । चौपड हमारे घर के सामने खेलते रहते थे । बिछायत वही होती । काकाजी भी खेलते । उनके और साथी भी जुट जाते । 'पुरुष्या शाळेला गेला' वह उस समय कहते जब चौपड की कोई गोट उड़ जाती (आउट हो जाती) । अपनी गोट को दूसरे की उडनेवाली गोट से टकराकर खुशी से चिल्लाते हुए कहते — 'पुरुष्या शाळेला गेला' (अर्थात पुरुषोत्तम स्कूल चला गया है) । पुरुषोत्तम, विनायकराव अभगे के भतीजे का नाम है । गोपू अभगे का वह भाई है । वह भी औरगाबाद मे रहता है । समर्थनगर मे उसने भी बंगला बनवाया है । व्यकट के कारण मैं उससे भी मिला हूँ । बाद मे भी उससे मिलना होता रहा है ।

मेरे बडे काकाजी (भागचन्दजी) सिकंदराबाद से यहाँ आए थे । मैं उस समय टाउन हॉल की आनद नगर कालोनी में रहता था । उन दिनो मे विनायकराव भी यही पर थे । मै विनायकराव के पास काकाजी को लेकर गया । दोनों पुराने मित्र

मिले । बहुत प्रसन्न हुए । उनका मिलना दुर्लभ था । काकाजी ने भी अम्बाजोगाई छोड दिया था । वे सिकंदराबाद मे रहने लगे थे और वहीं से आए थे । वर्षो बाद में किसी पुराने मित्र को मिलकर जो प्रसन्नता होती है, वह देखते ही बनती है । बूढा आदमी अतीत मे खोया रहता है । उसके सुख के स्रोत अतीत मे बिखरे रहते है । अवसर मिलते ही उन्हे दोहराने के प्रयत्न होते है । बातचीत में अतीत को दोहराया जाता है । काकाजी बहुत खुश हुए थे । उसके बाद काकाजी सुनिल के विवाह के अवसर पर आए । (१९८५ ई मे), बाद मे नही आए । उसी समय वे अस्सी से ऊपर थे । १९८६ ई. में वह चल बसे । उनके मित्र विनायकराव अभंग की स्थिति भी वही थी । बीमार हो गए थे । मुझे मालूम हुआ तो अस्पताल मे मिलने गया था । बाद में वे भी नही रहे ।

व्यकट के कथानक मे गोपू आ गया । इसी तरह व्यकट ने गोविंद से मिलवाया । गोविंद यही पर रहने लगा था । वह तो अम्बाजोगाई मे ठीक हमारे घर के सामने रहता था । उसे चित्रकला का शौक था । वह चित्रकार हो गया । कमर्शियल आर्टिस्ट हो गया । वह मैट्रिक मे उत्तीर्ण नही हुआ । उसने पढाई बन्द कर दी । औरंगाबाद मे वह चित्रकार के रूप मे प्रसिद्ध हो गया । उसे बोर्ड, बैनर बनाने के काम मिलते । विज्ञापनो का काम मिलता । वह कपडो पर, दीवारो पर भी पेंटिंग करने लगा था । नए डिझाइन बनाकर देता था । खूब काम करता रहा है । मेरी पुस्तक जब औरंगाबाद मे छपने लगी तो उनके मुखपृष्ठ उसीने बनवाए। १९७१ ई से १९७९ ई तक पुस्तकें औरंगाबाद मे छपती रही हैं और उनके कवर डिझाइन उसीने बनवाए हैं । फाइन आर्टस् में रुपये कम मिलते है । इसलिए इस क्षेत्र में उसकी अभिरूचि कम थी । उसके पास सोचने-विचारने का समय कहॉ ? काम का ढेर पडा रहता और ग्राहक द्वार पर खडा ही रहता । गोविंद के लिए चित्रकला रुपये कमाने का साधन था । उसीसे उसका निर्वाह होता रहा है । वह पोस्टर बनवाता रहता था और उसके लिए दूसरे गॉव भी चला जाता था । हमारे क्षेत्र अलग-अलग हो गए । फिर भी हम मिलते रहते थे । अब तो गोविंद ने काम करना बन्द कर दिया है । 'एन-४' (सिडको मे) मे उसने मकान बनवा लिया है । दो पुत्र और दो पुत्रियॉं है । सबके विवाह कर दिए । आत्मकथा का पहला भाग यहो पर छप रहा था । गोविंद से फोनपर बात की । समय निकाल कर उससे मिलने गया । खडकेश्वर के मन्दिर के पास मिले । उससे कवर डिझाइन बनाने कहा । यद्यपि उसने काम करना बन्द कर दिया फिर भी वह मान गया।

उसने चित्र बना दिया, घर पर आकर दे दिया। अम्बाजोगाई से कस्तूरचंद मुथा आया। गोविंद के पडोस में ठहरा हुआ था। गोविंद उसे लेकर घर आया। मेरा मिलना हो गया।

व्यंकट ने जिनसी में रहते हुए, शाम दरवाजे से लगकर नई बनी हाउसिंग सोसायटी में अपने लिए प्लाट खरीदा। उसका बडा भाई विष्णु हैदराबाद में रहता था। वह व्यंकट के पास आने-जाते रहता था। बडे भाई के लिए अलग से प्लाट खरीद लिया। मुझे भी प्लाट दिलाना चाहता था। किन्तु मैंने नहीं खरीदा। व्यंकट ने स्वयं का और भाई का मकान बनवा लिया। रहने के लिए नहीं गया। इसी बीच मेरे साढू ने मनीषा हाउसिंग सोसायटी में मेरे लिए प्लाट देखकर रख लिया। उस समय वे परभणी में रहते थे। परभणीवालों के समूह की वह सोसायटी थी। मुझे प्लाट दिखलाया। उस समय प्लाट की रकम देने की स्थिति में नही था। तिरुपति से नया नया आया था। यह १९६९ ई. की बात है। सोसायटी के प्लाटस बेचे जा रहे थे। बम्ब साहब ने पहले विचार किया कि एक बडा प्लाट दोनों मे खरीद लेंगे। बाद मे उन्होंने वह प्लाट मुझे ही दिला दिया। यों १९६९ ई. में बात पक्की हो गई। तिरुपति मे प्राविडेंट फंड की रकम आई नहीं थी। वह १९७० ई. के बाद (दो वर्ष पूरा होने के बाद) मिलनेवाली थी। इसलिए ठहरना पडा। १९७१ ई. के आरम्भ के महीनों में वह आई। उक्त राशि मैंने अदा कर दी और प्लाट मेरे नाम पर हो गया। बम्ब साहब ने भी अपने लिए स्वतंत्र प्लाट, उसी समय खरीद लिया। उस समय प्लाट खरीदना ही हुआ। मकान नही बनवा सका।

व्यंकट ने मकान तो बनवा लिया किन्तु वह रहने के लिए नही जा सका। उसने क्वार्टर्स् में रहते हुए ही अपनी बडी लडकी का ब्याह कर दिया। उस समय अम्बाजोगाई की मित्र-मंडली एकत्रित रूप में मिली।

औरंगाबाद मे राजनीतिक परिवर्तन हुआ। शिव सेना का प्रभाव बढ़ने लगा। इसके कारण दंगा हुआ। गोलियाँ चली। कुछ लोग गलती से गोलियों के शिकार हुए। कर्फ्यू लग गया। हमारे लिए रेलवे स्टेशन जाना मुश्किल हो गया था। आरक्षित टिकट था। मेहमानों से कहा — 'आप जालना चले जाओ और वहाँ से ट्रेन पकड लो। बस स्टैण्ड निकट था। उस ओर कोई गडबड़ नहीं थी। उन्हें बस में बैठा दिया गया। जालना मे उन्होंने ट्रेन पकड ली। सिकंदराबाद पहुँच गए। उस समय मुस्लिम बस्तियों में रहनेवाले हिन्दुओं ने अपने मकान बेच

दिये और हिन्दू बस्तियो मे चले आए । हमारे विभाग के श्री अनिल कोठारकर ने भी अपना नया बना मकान बेच दिया और खिंवसरा पार्क के आगे की सोसाइटी मे प्लाट खरीद लिया । नया मकान बनवा लिया । उसमे रहने लगा ।

व्यकट ने दोनों बगले (स्वय का और भाई का) जिनसी मे बनवाए थे । किन्तु जल्द ही उसकी समझ मे आ गया कि वह सोसाइटी मुस्लिम बस्तियो से घिरी हुई है । उसने कोकणवाडी मे नया फ्लैट खरीद लिया । वह निर्णय ठीक रहा । कोकणवाडी हमारी सोसाइटी से लगकर ही है । वहाँ के कुछ मुसलमानो ने अपने मकान बेच दिए और मुस्लिम बस्तियो मे चले गये ।

जून १९८० ई मे व्यकट अपने परिवार के साथ तीर्थयात्रा की योजना से काशी गया । उस समय उसका दस वर्ष का बालक अजय साथ मे था । मणिकर्णिका घाट के कुड मे वह अज्ञात आकर्षण से नहाने के बहाने गिर गया और डूब गया। बाद में उसकी मृत्यु हो गई । इस घटना को व्यकट ने विस्तार से प्रसंगो मे यात्रा के क्रम मे जो कुछ घटित हुआ, वह सब सुनाया । मैंने उस वृत्त को उसी समय व्यंकट की सवेदना के साथ लिख लिया । बाद में मैंने 'अजय की तीर्थयात्रा' यथावत् (सत्यकथा ही कहना चाहिए) लिख डाली । वह कथा दिल्ली से प्रकाशित 'प्रकाशित मन' में सितम्बर १९८१ ई. के अंक में प्रकाशित हुई । छपवाने के बाद मैंने व्यकट को मुद्रित प्रति दी । दिल्ली भेजने से पहले भी उसको कहानी सुनाई थी । वह चकित था । अजय को भूलता नही था ।

हमारी कालोनी 'आनन्द नगर' (टाउन हॉल), में पडोस में डॉ. माली रहते थे । व्यकट उनके पास आता रहता था । पडोस में रहने के कारण डॉ माली से अच्छा सपर्क था । कुछ दिनो बाद वे अमरीका चले गये । कुछ वर्षो बाद पुन आए । मिलने आए और लौटने से पहले उन्होने बच्चो के फोटोग्राफ्स् लिए। व्यकट से भी मिले । अमरीका से उन्होने फोटोग्राफ्स् की प्रतियाँ भिजवाई । व्यंकट के मित्र, मेरे मित्र हो गए ।

मैं जब मनीषा कालोनी में मकान बनवाने लगा तो उसने सीमेंट प्राप्त करने में मेरी सहायता की । सरकारी कीमत पर मुझे सीमेंट मिला । बात यह है कि उस समय अब्दुल रहमान अतुले मुख्यमत्री थे । एशियाड गेम्स का वर्ष था । इदिरा गांधी का शासन था । दिल्ली मे उस समय खेल गॉव बन रहा था । फ्लाय ओवर बन रहे थे । अतुले सीमेंट दिल्ली भिजवा रहे थे । औरगाबाद में सड़क से सीमेंट ले जाना अपराध था । ऐसे समय मे मैंने मकान बनवाया । कथा लम्बी है । व्यकट को सब स्रोत मालूम थे । उसने उस समय आवश्यक सहायता की है ।

ऐसे मित्र की अचानक मृत्यु का समाचार सुना तो विश्वास नहीं हुआ । मै कही बाहर गया हुआ था । लौटते ही घर पर समाचार मिला । व्यकट नही रहा है । हम दोनो उसके घर पर (जिनसीवाले क्वार्टर पर ही) गए । उसका बडा भाई हैदराबाद से आया हुआ था । परिवार के अनेक सदस्य एकत्रित हुए थे । सब मुझे पहचानते थे । उस समय मृत्यु की घटना का विवरण मिला ।

हुआ यो — व्यकट ट्रेन से नान्देड जा रहा था । अपनी बडी लडकी को पहुँचाने जा रहा था । एकदम स्वस्थ था । बडी लडकी मधु मात्र अकेली साथ में थी । एक्सप्रेस गाडी थी । सेलू मे नीचे उतरकर 'चने' लिए । मधु को चने खिलाए। चने तो खा लिए । अब पानी की माँग हुई । पानी के लिए पुन ट्रेन से नीचे उतरे । पानी लेने उतना समय नही था । ट्रेन छूटनेवाली थी । फिर भी दौडकर पानी लेकर दूसरे हाथ से ट्रेन पकड ली । एक हाथ में पानी और दूसरा हाथ ट्रेन के हैण्डल पर । गाडी चल पड़ी । पानी छोड देते तो दूसरे हाथ से भी हैण्डल पकड़ कर गाडी मे चढा जा सकता था । होनहार को क्या कहे । गाडी में वेग आ गया । व्यकट अपने शरीर को सभाल नही सका । झटके मे हाथ छूट गया। गिर पडा । फिर वह तो दौडती ट्रेन थी । सेलू पर वह एक्सप्रेस गाड़ी अधिक ठहरती भी नही । गिरने से पटरियो से रपटा गया । ट्रेन आगे बढ गई । कुछ ही पल में वह चकरा गया । वहीं पर अन्त हो गया । पानी के बहाने मुस्कुरानेवाला व्यकट सदा के लिए चला गया । मुझे यह वृत्त मालूम हुआ तो और भी बुरा लगा । अजय की घटना में कुण्ड ने अजय को खीच लिया और इस घटना में पानी का बहाना हो गया । मौत के लिए बहाना चाहिए । पीछे रहनेवाले कर्मकाण्ड करते रहते हैं । जो हुआ, उसे दोहराते हैं ।

अब तो व्यकट के परिवार ने जिनसीवाला क्वार्टर छोड दिया है । वह परिवार कोकणवाडीवाले फ्लैट मे रहने आ गया है और वहीं पर रहता है । अजय का बडा भाई संजय अब सब कुछ देखता है । संजय का विवाह उसकी मृत्यु के बाद मे हुआ । मेरे लिए तो व्यकट स्मृतियों की धरोहर है । यहाँ पर रहते हुए भी वह अम्बाजोगाई से सम्पर्क बनाए हुए था । समाचार उससे मिलते रहे हैं । सूचनाएँ भी मिली है । व्यकट की तरह गोपू (पूरा नाम गोपालराव अभगे) भी नहीं रहा । स्थानीय समाचार पत्र लोकमत मे समाचार छपा कि (३ अगस्त २००३) २ अगस्त २००३ को हृदयाघात से उसका निधन हो गया । निधन के समय वह ७२ वर्ष का था ।

□ □

डा. नारायण रघुनाथराव राजदेरकर (एन आर. राजदेरकर)

औरंगाबाद मे सबसे पहले मेरा आवास मिल कार्नर, कोतवालपुरा, में सुरकर साहब का बगला था । यह १९६८ ई -१९७० ई की बात है । डॉ राजदेरकर मेरे पडोसी थे । उनके घर पर हारमोनियम बजते रहती थी । हमारी नम्मू दौडकर उनके घर पर चली जाती । इसी तरह उनकी लडकी अंजु दौडकर हमारे घर पर चली आती । यों परिचय बच्चो के माध्यम से हुआ । बच्चों के लिए पडोस का घर, उनका अपना घर होता है । तब मे अब तक उनका परिचय रहा है । उनके व्यक्तित्व और पारिवारिक जीवन को जानने मे समय लगा ।

पडोसी के नाते ही और बच्चो के कारण उनके घर पर जाना-आना हुआ। एक कलाकार के रूप में मैंने उन्हें जाना । मालूम हुआ, वे कीर्तन करते है । कीर्तनकार है । विश्वविद्यालय मे वे बाटनी विभाग में काम करते है ।

सेवानिवृत्त होने के बाद उनसे परिचय बढता गया । मैंने उनसे उनका परिचय पूछा । बतलाया कि उनका मूल गाँव मेहकर (जि बुलढाना) है । चार भाइयों मे सबसे छोटे हैं । पिताजी रघुनाथराव कानूनदाँ थे । उनकी पढाई पुणे में हुई। फर्ग्यूसन कालेज, पुणे के छात्र रहे । उसी समय अहमदनगर की छात्रा कु. तमीज बानो दारुवाला वाडिया कालेज, पुणे में पढती थीं । दोनों मे प्रेम हुआ । वह बी.ए आनर्स में पढती थी । प्रेम की परिणति विवाह मे हुई और इस विवाह को उस काल के समाज-सुधारको और शिक्षाविदो का आशीर्वाद मिला । जयकर, सर रघुनाथराव परांजपे, वीर सावरकर आदि ने इस विवाह में अभिरूचि ली । ६ मई १९५६ को यह विवाह सम्पन्न हुआ और कु तमीज बानो दारुवाला, विद्यादेवी हो गई । पुणे जैसे स्थान में यह विवाह क्रान्तिकारी विवाह था । १९५५ ई मे एम.एस सी आनर्स हुए । आरम्भ मे खामगॉव (विदर्भ) में गोविंदराम सक्सेरिया कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए । वहाँ से मराठवाडा मे आए । बीड के बलभीम कालेज मे वाइस-प्रिंसीपल हुए । १९५९ ई. मे औरंगाबाद आए । १९५९-१९६२ ई. तक देवगिरि कालेज मे बाटनी विभाग के अध्यक्ष थे । उसी समय मराठवाडा विश्वविद्यालय के बाटनी विभाग में वाइस-चासलर डोंगरकेरी के कारण प्रवेश मिला। Ph.D. नहीं थे । गाइड ठीक से नही मिला । अतत. वाइस-चासलर की कृपा से उन्हे Ph.D करने की अनुमति मिल गई । बिना गाइड के उन्होने अपना प्रबन्ध प्रस्तुत किया । १९६८ ई. में पी-एच डी हुए । लगातार प्रयास के बाद विभाग मे लेक्चरर हुए. बाद में रीडर हुए और फिर प्रोफेसर हुए । बाटनी विभाग मे रहते

हुए उन्होंने पर्यावरण विभाग को स्वतन्त्र विभाग मे परिणत किया और अन्तत उस नये विभाग मे प्रोफेसर एव अध्यक्ष हुए । १९९४ ई मे सेवा निवृत्त हुए ।

राजदेरकर साहब की पहचान कोट और टाई है । कोट और टाई — को वे सामान्य वस्त्रो की तरह पहनते है । मराठी और अग्रेजी धारा प्रवाह बोलते हैं । मच पर खड़े हो जाए तो माइक छोडते नही है । मराठी भाषा पर उनका अधिकार सत-वाङ्मय के ज्ञाता होने के कारण है । उनकी ख्याति का प्रधान कारण कीर्तनकार होना है । उन्होने कीर्तन करना १९५८ ई मे आरम्भ किया । तेईस वर्ष की अवस्था मे मेहर बाबा से भेंट हुई । गुरु प्रसाद पैलेस, वन गार्डन, पुणे में मेहर बाबा के सामने पहला कीर्तन हुआ । उसी समय मेहर बाबा ने राजदेरकर के सिर पर पुणेरी पगडी रखी और कीर्तन करने का आदेश दिया । उस समय एक हजार आठ कीर्तनो का सकल्प किया । अब वे बतलाते हैं कि उस सख्या को उन्होंने पार कर लिया है । अब तो उनके ११९० कीर्तन हो गए हैं । देश में तो उन्होंने कीर्तन किए ही हैं, विदेश मे भी उनके कीर्तन हुए है । १९९२-१९९३ ई. मे राजदेरकर ग्लोबल कान्फ्रेंस मे अमरीका गए । वहाँ पर १३ मेट्रोपालिशियन (महानगरो) मे उन्होंने कीर्तन किए है । वहाँ पर १३ कीर्तन अग्रेजी मे और एक कीर्तन हिन्दी में किया । कीर्तनो के कारण उन्हे अमरीका मे अधिक समय तक रुकना पडा । उनके कीर्तन अमरीका मे पसन्द किए गए ।

राजदेरकर की पहचान का आधार 'साईबाबा' है । वे साईबाबा के परम भक्त हैं । कोतवालपुरा मे रहते समय, उन्होने खडकेश्वर के मार्ग पर प्लाट खरीदा । उस पर चाहने पर भी अपनी इच्छानुरूप बगला नही बना सके । कोतवालपुरा छोडने के बाद वे यूनिवर्सिटी के कार्टर मे रहने चले गए । और सेवानिवृत्त होने तक क्वार्टर मे ही रहे । सेवानिवृत्त होने के एक वर्ष पूर्व वे अमरीका गए । लौटकर आने के बाद उनका ध्यान मकान बनाने की ओर गया । वे उस कार्य मे जुट गए । क्वार्टर छोडने के बाद वे सीधे अपने नये 'साई सदन' में चले आए । अपनी एक मात्र कन्या अजु का विवाह मुबई में कर दिया । उसे डॉक्टर बनवाया । बेटी और जँवाई दोनो ही बम्बई में अधेरी मे रहते है । अपने भवन में वे दोनो ही रहते हैं । राजदेरकर का अपना साईबाबा का मदिर है । नये भवन में सामने का बडा हाल साई बाबा का मन्दिर हो गया है । प्रत्येक गुरुवार को सायकाल मे ७ बजे विधिवत् पूजा-आरती होती है । इस पूजा-आरती मे श्रीमती विद्या राजदेरकर अभिरुचि लेती है ।

कीर्तनकार होने के साथ-साथ राजदेरकर ज्योतिषी भी हैं। हाथ देखते है। चेहरा देखते है। ज्योतिष के गणित से परिचित हैं। प्रधान रूप से उनकी ख्याति का आधार उनका ज्योतिषी होना है। हाथ दिखलानेवाले और भविष्य पूछनेवालो का ताता लगा रहता है। राजदेरकर साहब प्राय गुरुवार को ही यह काम करते है। और कहते रहते है कि मै नही कहता — साईबाबा कहते है। साईबाबा की विधिवत् पूजा-आरती का दिन गुरुवार ही है।

होनहार को कौन टाल सकता है ? जो होना है, वह तो होगा ही। इस तथ्य को पहचानने पर भी मुख से कभी कटु शब्दो का व्यवहार राजदेरकर साहब नही करते। वे मुस्कुराते हुए मिलते है। उनकी मुद्रा हास्य-विनोद की रहती है। किसी के मन में मानसिक द्वद्व रहता है, किसी यातना की आशका से घबराए हुए रहते है, उसे पहचान लेते है और उससे बातचीत मे खुश कर देते है। इतनी बात मैंने निश्चित रूप मे देखी है कि किसी के दुख का हलका करने का गुण उनकी वाणी मे है और भविष्य के प्रति आशावादी स्वर ही उनके मुख से निकलता है। उनकी वाणी के वल की प्रतीति वहुतों को मिली है। इसलिए जब भी उलझन का प्रश्न उपस्थित होता है तो निदान के लिए मै ही नही, परिवार के सदस्यो को आनेवाले अतिथियों को लेकर उनके पास पहुँचता रहा हूँ। लौटते समय सतुष्ट होकर ही लौट है।

आज भी राजदेरकर साहब बहुत व्यस्त रहते है। 'साई-सदन' — दुमजला बडा भवन है। सामने का विशाल हॉल साई बाबा का मन्दिर है। पति-पत्नी दोनो ही रहते है। १९३४ ई. के है। सत्तर वर्ष की देहरी तक पहुँच गए हैं किन्तु घर पर मिलते नहीं। व्यस्त दिनचर्या रहती है। कभी-कभी महीनो गायब रहते है। मालूम होता है, मुंबई मे अपनी लडकी के पास गए हुए हैं। लडकी — अजु उन्हे औरंगाबाद लौटने नही देती। माँ-बाप दोनों को अपने पास रखना चाहती है। किन्तु राजदेरकर साहब को 'साई सदन' की याद आती रहती है। वही तो उनका अपना सपना है। मुझे राजदेरकर साहब ने अपना मुंबई का पता दिया और फोन नंबर भी दिया। किसी कारण से में मुबई अपनी नम्मू के पास गया था। नम्मू, कॅंवरसाहब के साथ हम दानों राजदेरकर के घर पर पहुँचे। फोन करके पहुँचे। मिल गए। बहुत प्रसन्न हुए। बोले — 'हमारी अंजु तो नम्मू से मिलती रहती है। सब्जी विलेपार्ले मे मिलती है। अजु अधेरी से सब्जी खरीदने विलेपार्ले आती ही रहती है और वहाँ पर नम्मू से भेट हो जाती है। पत्नी कुछ

परेशान थी। उसने कुछ पूछा तो राजदेरकर साहब ने सतुष्ट कर दिया। लौटे तो मन हलका हो गया था। नम्मू ने राजदेरकर साहब को निमत्रण दिया। राजदेरकर साहब नम्मू के यहाँ पहुँच गये। बहुत खुश हुए। नम्मू अपने परिवार के सदस्यो को लेकर राजदेरकर साहब से मिलने पहुँचती है। यो दोनो परिवारो में घर की तरह आना-जाना जारी है।

मुबई मे रहते समय भी साईबाबा को भूलते नही। अपनी मजबूरी बतलाते रहते है ? अजु और दामाद विदेश जाते है तो घर पर कौन रहेगा ? बच्चो को कौन देखेगा ? नाना-नानी को वहाँ रहना ही पडता है। 'अजु' डॉक्टर होने के कारण बहुत व्यस्त रहती है। दामाद भी वैसे ही व्यस्त रहते है। घर पर कोई रहता ही नही हैं। नाना-नानी रहे तो घर खुला रहता है। ऐसे ही कुछ कारण हैं। राजदेरकर साहब स्वयं दामाद के घर पर रहना नहीं चाहते किन्तु विवशता रहती है। मुबई आवास के समय साई-सदन को ताला रहता है। घर की रक्षा के लिए ७ कुत्ते रहते है। कुत्ते बडे-बडे है। साई-सदन के सामने के हाल मे घूमते है। वहीं बैठते है। पूरा घर उनका अपना है। कुरसियो पर आराम से बैठे रहते हैं। अपनी अनुपस्थिति मे राजदेरकर साहब उनके खाने की व्यवस्था करके जाते है। कुत्तो के कारण घर सुरक्षित है।

बहुत दिन हो गए। राजदेरकर साहब से मिलना नही हुआ। पत्नी ने कहा—राजदेरकर साहब से मिलना है। फोन करने पर घंटी बजते रहती है। एक दिन अचानक फोन पर मिल गए। बोले—'कल ही आया हूँ।' घर का काम चल रहा है। समय लेकर हम लोग गुरुवार को पहुँचे। छ बजे पहुँचे। पत्नी ने दरवाजा खोला। हाल मे जाते ही कुरसियों पर कुत्ते विराजमान थे। उन्हे भीतर भगाया गया। उन्होंने कुरसियाँ छोड दी। हम लोग बैठ गये। वह दिन पूजा-आरती का था। साढे छ बजे राजदेरकर साहब लौटे। बैठ गए। बात हुई। मै उनके लिए पुस्तक लेकर गया था। उन्होने पुस्तक साई-चरणों मे रख दी। भीतर गया। पूजा की तैयारी से आए। और लोग भी यथासमय आते गए। मन्दिर सदृश वातावरण हो गया। सात बजे पूजा आरम्भ हो गई। विधिवत् पूजा के बाद आरती हुई। खडे रहकर आरती करने लगे। तालियाँ बजाते हुए, नृत्य करते हुए गाते रहे पूरा एक घण्टा आरती चलती रही। गला ठीक हो गया। बीमारी दूर हो गई। उनकी आरती-गान को सुना। भक्त की मुद्रा देखी। तल्लीनता का दर्शन हुआ। तर्क करना बेकार है। पडोस के बच्चे भी खडे हो गए। एक

घण्टे के लिए साइ सदन मे आरती गूजते रही . धीरे धीरे हाल म कुछ परिवारो के सदस्य पहुँच गए। ऐसे मे राजदेरकर साहब से बात कैसे करे ? उनकी पत्नी ने कहा — उन्हे घर पर बुलवा लो, यहाँ पर तो निरन्तर यह क्रम जारी रहता है। आरती के बाद मे आधा घण्टा बैठकर निमत्रण देकर चले आए। वे बाद मे आए। दो-तीन घण्टे तक बैठे। उन्मुक्त बाते की। हँसते-हँसाते रहे। अतीत की बाते बतलाते रहे। अपने सपने कहते रहे। उनकी योजना मे साई बाबा की मूर्ति सगमरवर की लेना है। जयपुर, उदयपुर जाना है। मूर्ति की प्रतिष्ठा करना है। मदिर को गरिमा प्रदान करना है। पूजा-आरती को नियमित जारी रखना है। साई-बाबा की मूर्ति के पास मेहेर बाबा का विशाल चित्र लगा है। उन्ही के कारण, उनके कीर्तन चलते रहे है। एक प्रोफेसर की इस समर्पित भक्ति को विश्वसनीय मानना पडता है। राजदेरकर की इस साधना और तपस्या को देखकर लगता है कि विज्ञान भी क्या करे ? भक्ति तो भक्ति है।

□ □

डॉ. भगवानदास वर्मा

डॉ भगवानदास वर्मा सरस्वती भुवन महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। मैंने आरम्भ से ही उन्हें इसी रूप मे देखा है। उक्त महाविद्यालय औरगाबाद का पुराना महाविद्यालय है। इस शिक्षण संस्था की स्थापना १९१५ ई. में हुई। १९६३ ई मे महाविद्यालय ने आकार ग्रहण किया। इसका हीरक महोत्सव १९७७ ई मे मनाया गया। उक्त सस्था की अनेक शाखाएँ हैं। उनमें हाईस्कूल है। छात्रो का अलग, छात्राओ का अलग। महाविद्यालय अलग है। कला, वाणिज्य एव विज्ञान की अलग-अलग शाखाएँ हैं। जयहिन्द प्रेस है। मराठवाडा दैनिक समाचार-पत्र है। मराठवाडा क्षेत्र मे इनकी शाखाएँ है। यों इस सस्था का काफी नाम है। इस सस्था मे काम करनेवाले हैदराबाद के निजाम राज्य में, हैदराबाद राज्य के मुक्ति सग्राम में भाग लेनेवाले सदस्य रहे है। प्रमुख कर्णधार लोग पहले हैदराबाद मे काम करते रहे है। वहाँ से औरंगाबाद में — निजाम के शासन का अन्त होते ही — आ गए। यहाँ पर काम किया। संस्था को आगे बढाया।

मेरा सम्पर्क इस सस्था से पहले जयहिन्द प्रेस से हुआ। प्रेस के व्यवस्थापक श्री ज रा. बर्दापूरकर थे। प्रेस की कालोनी अलग थी। जयहिन्द कालोनी उसका नाम है। बर्दापूरकर साहब उसी कालोनी मे रहते थे। मैंने अपनी पुस्तकें जयहिन्द प्रेस मे छपवाई हैं। इस नाते प्रेस में नियमित जाना पडा है। १९७१ ई से पुस्तके

छपती रही है । १९७७ ई. तक सात पुस्तके क्रमश. छपी है । १९७७ ई. मे हीरक महोत्सव के अवसर पर इस सस्था ने मेरा सम्मान किया । मेरे साथ डॉ भालचन्द्र तेलग का भी सम्मान किया । उक्त महाविद्यालय मे डॉ. भगवानदास वर्मा हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे । उनका नाम नगर मे ख्यात था । हिन्दी के साथ-साथ मराठी भाषा पर भी उनका अधिकार था । मराठी के साहित्यकार औरगाबाद आते ही रहे हैं । उन साहित्यकारो से वर्मा साहब सम्पर्क बनाए हुए थे । हिन्दी मे लेखन कार्य भी करते रहे है । संगीत एवं अन्य कलाओं मे उनकी अभिरुचि रही है । मैं जब औरगाबाद आया, उस समय वे औरगपुरा की गोकुलवाडी मे रहते थे ।

वर्मा साहब बीड जिले के निवासी है । उनका गॉव तालखेड है । उनका छोटा भाई हनुमानदास वर्मा परभणी के महाविद्यालय मे कार्यरत रहा है । वर्मा साहब की अभिरुचि प्रधान रूप से आधुनिक साहित्य मे रही है । और उसमे भी कहानी साहित्य मे अधिक रही है । विश्वविद्यालय की पाठ्यक्रम समिति के वे सदस्य रहे हैं । उन्होने पाठ्यक्रम मे आधुनिक साहित्य और उसमें भी कथा-साहित्य को अधिक जगह दिलाने का सदैव प्रयत्न किया । वीरगाथाकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल — तीनों को एक ही प्रश्न-पत्र में समेट लेते थे । उनका सर्वथा त्याग सभव नहीं था । और फिर चार कवि रखना था । सूरदास, कबीर तथा तुलसीदास की उपेक्षा संभव नहीं थी । कुल मिलाकर प्राचीन साहित्य मे भक्तिकाल ही रहता। वीरगाथाकाल मे किसी को जगह नही मिलती । कबीर की उपेक्षा वैसे भी सभव नही । राजूरकर साहब प वंशीधर विद्यालंकार की तरह कबीर के पक्षधर थे। स्पेशल पेपर (विशेष कवि) कबीर पर रहता और उस पेपर को राजूरकर साहब पढ़ाते थे। डॉ भगवानदास वर्मा के शोध-प्रबन्ध का विषय 'हिन्दी की नई कहानी की मूल सवेदनाएँ' था । १९७१ ई मे वे पी-एच डी. हुए ।

१९७७ ई. मे उन्होंने **गवाह** त्रैमासिक का प्रकाशन आरम्भ किया । सम्पादक, प्रकाशक सब कुछ वही थे । तदर्थ झोला लेकर जगह-जगह पहुँचते थे । बहुत श्रम किया । किन्तु इस श्रम से वे थक गए । वह काम अकेले का नहीं है और फिर प्रकाशन के लिए पूंजी चाहिए । इस पत्रिका के कारण वे ख्यात हो गए। औरगाबाद से अच्छी पत्रिका निकलने लगी । औरगाबाद और मराठवाडा क्षेत्र मे उन्होने साहित्यिक वातावरण तैयार करने का प्रयत्न किया । **गवाह** मे वे मराठी के लेखको को स्थान देते थे । उनसे लिखवाते थे । **गवाह** का **राजस्थान** विशेषाक

निकाला । तदर्थ मुझसे भी लेख लिखने के लिए कहा । मैंने लिख दिया । वह छपा है । राजस्थान विशेषाक के बाद बाल साहित्य विशेषाक — वर्ष ३, अक एक और दो का प्रकाशन किया । अक्तूबर १९७९ से मार्च १९८० का वह अक है । ठीक इसी समय उनका बगला श्रेयनगर मे बन रहा था । १९८१ ई. मे वे 'श्रेयनगर' मे चले गये । पता बदल गया । जनवरी से सितम्बर १९८१ का एक ही अक निकला । उसे गवाह का १४, १५, १६ अक कहा गया । बंगले का नाम 'कामायनी' रखा । यो १९७७ ई से १९८१ ई तक गवाह छपता रहा है। विशेषाक स्तरीय है । इस कार्य से थक गए । बाद मे उन्होने दिशा बदल दी। 'आधुनिक साहित्य' से प्राचीन वाड्मय की ओर मुड गए । प्राचीन वाड्मय की व्याख्या और विश्लेषण — आधुनिक सदर्भ मे करने लगे । भक्ति साहित्य की ओर ध्यान गया । उनमें सगठन की शक्ति थी । स्थानीय लोगो से सम्पर्क कर व्याख्यान मालाओ का आयोजन करने लगे । भागवत का वाचन करने लगे । भीड एकत्रित होती थी । मच के अनुकूल वस्त्र पहनने लगे । रुद्राक्ष की माला पहनी । व्याख्यानो को लिख लिया जाता । फिर उसी को ठीक करके उन्होने पुस्तक भी प्रकाशित की । इस कार्य मे डॉ साधना शाह ने वर्मा साहब की बहुत सहायता की है। उसके पी-एच डी. का विषय — 'अज्ञेयोत्तर कहानियो में आधुनिकता बोध' — रहा है । बाद मे उसने कहानी साहित्य पर डी लिट. की उपाधि भी अर्जित की । सच तो यह है कि वर्मा साहब जो कहते और सुनाते उसे साधना शाह लिख लेती थी । मै जब-जब गोकुलवाडी मे वर्मा साहब के घर गया, तब-तब साधना शाह मुझे वर्मा साहब के कक्ष मे लिखती हुई या कुछ काम करते हुए दिखलाई दी । 'कामायनी' मे पहुँचने पर वर्मा साहब वानप्रस्थी हो गए थे । आयोजन करने लगे और मच से अधिक बोलने लगे । सगीत की सभाओं मे अधिक रुचि लेने लगे ।

एक दिन मै सहज ही उनसे मिलने गया । मुझे भीतर के कक्ष मे ले गए। बोले — देखते हो, इतनी पुस्तकें एकत्रित हो गई । इनका क्या होगा ? पुस्तकों को रखने के लिए कमरा चाहिए । एक कमरे का कितना होता है ? पुस्तको के लिए रुपये और फिर उन्हें सुरक्षित रखने के लिए रुपये — बहुत महगा काम है। यह सोचने की बात है । उनकी वृत्ति उस समय वीतरागी हो गई थी । पहले की तरह दहाडना उन्होंने बन्द कर दिया था । खूब बोलनेवालों मे थे । मंच के शौकीन थे । अवसर की प्रतीक्षा मे रहते थे । किसी आयोजन में (मै नहीं था)

नान्देड के प्राचार्य और मराठी के प्रसिद्ध समीक्षक नरहर कुरुदकर आए हुए थे। मंच पर ही बोलते-बोलते गिर पडे। नहीं रहे। उसका प्रभाव उन पर हो गया। क्योंकि सब कुछ उनके सामने घटित हुआ। मंच पर वर्मा साहब भी आयोजको मे थे। उस घटना के बाद मे वे आश्रम मे अधिक रुचि लेने लगे। पैठण रोड पर एक आश्रम खोला गया था। उसमे वे जाते थे। उसी में उन्हें शान्ति मिलती।

डॉ. श्याम वर्मा से उनकी मित्रता थी। उनके प्रभाव से उन्होने होमियोपैथी सीख ली थी। गोकुलवाडी में अपने घर पर होमियापैथी की दवाइयाँ देने लगे थे किन्तु उनका यह डाक्टरी रूप बहुत दिनों तक नही चला। वह उनका एक शौक हो गया था। समय-समय पर उन्होने दिशाएँ बदली है। उनमे यह भी एक दिशा थी। वर्मा साहब की ख्याति देश के अन्य प्रदेशों मे हो गई थी। बाहर से जो विद्वान् विश्वविद्यालय के विभाग में पहुँचते तो मै उन्हे वर्मा साहब के घर लेकर जाता था। वे कालेज मे सेवानिवृत्त हो गए। सेवानिवृत्त होने के बाद उनसे मिलने घर पर गया था तो बोले — जन्म-तिथि गलत लिखवाई गई है, दो वर्ष पहले सेवानिवृत्त हो गया। यह फरवरी १९९० की बात होगी। उसके बाद वे अपनी योजनाएँ पूर्ण करने लगे थे। डॉ. नरेन्द्र मोहन, डॉ. महीपसिंह, डॉ. विनय आदि दिल्ली के साहित्यकारो से सम्पर्क बना हुआ था। दिल्ली से उनकी कुछ पुस्तके छपी हैं।

बाद मे अचानक मालूम हुआ कि वर्मा साहब नही रहे। मैं मालूम होते ही निवास पर पहुँचा। डॉ. साधना शाह वहाँ पर थी। और लोग भी थे। बतलाया गया कि उनका अन्तिम सस्कार पैठण रोड के आश्रम मे किया जाएगा। उन्होने पहले ही यह कह दिया था। इसीलिए आश्रम मे ले जाने का निर्णय हुआ। मै स्वय, उन दिनो आश्रम जाने की स्थिति मे नही था। देखकर चला आया।

वर्मा साहब के आश्रम का नाम — 'आनन्द आश्रम' है। डॉ. साधना शाह उक्त आश्रम का काम करती है। २००० ई. की गुरु पौर्णिमा को उसने मुझे उक्त आश्रम मे सम्मान हेतु आमत्रित किया। उक्त अवसर पर मै पहली बार आश्रम मे गया। श्री चम्पालालजी देसरड़ा वहाँ पर मिले। और लोग भी आए थे। मेरे साथ-साथ सरस्वती भुवन महाविद्यालय के प्राचार्य श्री जीवन देसाई, डॉ. रघुनाथ भागवत एव कुछ अन्य गुरुजनो का सम्मान किया गया था। मच पर मैंने देखा

कि डा भगवानदास वर्मा का फोटा था । बाद मे आश्रम घूम कर देखा । आश्रम अपनी योजनानुरूप बना था । डॉ. साधना शाह ने हमे वह स्थान दिखलाया, जहॉ वर्मा साहब का अन्तिम सस्कार हुआ ।

वर्मा साहब ८७, श्रेयनगर 'कामायनी' मे रहते थे । उनके बगले के सामने का मार्ग भगवानदास वर्मा मार्ग कहलाने लगा है ।

□ □

डॉ. श्याम वर्मा

औरगाबाद का लाल किला — किले आर्क है । इसी किले-आर्क मे औरगजेब रहता था । दिल्ली मे लाल किले के पीछे यमुना नदी है । ठीक इसी तरह इस किले के पीछे खाम नदी है । शाहजहॉ ने लाल किला बनवाया, औरगजेब ने किले आर्क का निर्माण किया । लाल किला दिल्ली मे जैसे नगर के परकोटे के भीतर है, ठीक वैसे ही किले आर्क औरगाबाद के परकोटे के भीतर ही है । किले आर्क का मुख्य दरवाज़ा पूर्व दिशा की ओर है । आज वही दरवाजा गवर्नमेंट कालेज का प्रवेशद्वार है । गवर्नमेंट कालेज इसके भीतर है । निजाम के शासनकाल का, औरगाबाद का यह सब से पुराना कालेज है । यह पहले, निज़ाम के समय मे इटर कालेज रहा है । बी ए पढना हो तो हैदराबाद जाना आवश्यक था । मराठवाडा विश्वविद्यालय की स्थापना (१९५८ ई) के बाद मे यह कालेज मराठवाडा विश्वविद्यालय से जुड गया । फिर यह डिग्री (Graduation) कालेज हो गया । डॉ श्याम वर्मा इस महाविद्यालय मे पहले हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे और बाद मे प्रिंसिपल भी हुए ।

वस्तुत. डॉ. श्याम वर्मा, जबलपुर के निवासी थे । उनकी नियुक्ति पहले मध्यप्रदेश में हुई थी । १९५६ ई में स्वतत्र महाराष्ट्र हो जाने के बाद नागपुर के कुछ लोग भोपाल जाना चाहते थे और भोपाल के कुछ लोग नागपुर आना चाहते थे । डॉ. विनयमोहन शर्मा पहले नागपुर मे थे । बाद में मध्यप्रदेश सरकार ने उन्हें भोपाल बुलवा लिया । उन्ही के स्थान पर डॉ. श्याम वर्मा नागपुर आ गए । उसके बाद डॉ श्याम वर्मा अन्त तक महाराष्ट्र मे रहे । डॉ श्याम वर्मा ने मुझे यह सब बतलाया है ।

डॉ. श्याम वर्मा को पहचानने और जानने मे मुझे समय लगा । वे पहले उस्मानपुरा मे, नानासाहेब मुसळे के बगले के सामने रहते थे । बाद में स्नेह नगर (कार्टर्स् में) में रहते थे और अन्तिम दिनों मे अपने बगले मे रहने गए । महावीर

कालोनी मे उन्होंने बंगला बनवाया । उनका जीवन बहुत व्यस्त था । वे होमियोपैथिक डॉक्टर थे । घर पर उनकी प्रतीक्षा मे रोगी बैठे ही रहते थे । एक-एक रोगी से खूब बाते करते । बिल्कुल घर के सदस्य बन जाते । उनकी बातचीत से ही आधी बीमारी ठीक हो जाती । घर पर आनेवालो का ताता लगा रहता था। रोगियो को देखना और उन्हें दवा देकर घर भेजना — इसे वे अपनी रुचि का काम मानते। वही उनके सुख का स्रोत था । उनका ध्यान डॉक्टरी फी पर नही था । पेशट जो खुशी से देता ले लेते थे । रुपयो के लिए उन्होने काम किया ही नहीं । सेवाभाव अधिक था । उनका मुख्य काम तो कालेज का काम था । पाँच बजे तक कालेज मे रहते और फिर रात मे पेशटो को देखना । सोने मे रात के बारह बज जाते थे । उन्होने कभी किसी को नही लौटाया । रास्ते मे कोई पुराना पेशट मिल जाता तो उसका स्वास्थ्य पूछते । घर के समाचार पूछते पारिवारिक डाक्टर की तरह व्यवहार करते । बाद मे तो मैं भी अपने सम्बन्धियों को लेकर उनके पास पहुँचता था ।

उनका पारिवारिक जीवन सुखी नही था । उनकी पत्नी अर्द्ध-विक्षिप्त थी । घर का बहुत-सा (रसोई भी) काम स्वय को करना पड़ता था । खुद ही चाय बनाते । बच्चो को तैयार कर स्कूल भेजते थे । एक पुत्री और तीन पुत्र थे । बच्चो पर विशेष ध्यान देने के लिए उनके पास समय नही था । ऐसा होने पर भी घर मे कोई शिकायत-शोर नही होता । बाहरवालो को कुछ मालूम नही होता। घर मे उनकी सेवा कौन करता ? सब के लिए स्वय काम करते । फिर प्रसन्न-चित्त रहते । उनके धैर्य और साहस की मै प्रशसा करता हूँ । सब कुछ पीकर उनके मुख पर मुस्कान रहती । यही बात जानने मे मुझे समय लगा ।

इदिरा गाधी प्रधान मत्री थी । उस समय ग्यानी जैलसिंह राष्ट्रपति थे । उन्होने अपने कालेज के डायमंड ज्यूबिली के उत्सव का आयोजन किया । ग्यानीजी से उन्होंने स्वीकृति प्राप्त कर ली । गवर्नमेण्ट कालेज होने के कारण सरकारी अधिकारियों को सतर्क कर दिया गया था । यथासमय धूम-धाम से आयोजन सम्पन्न हुआ । इसमें डॉ श्याम वर्मा और उनके सहयोगी डॉ. रमेश मेहरा ने बहुत परिश्रम किया। राष्ट्रपति के लौट जाने के बाद डॉ. श्याम वर्मा के अधिकारियों ने उनकी बदली मुबई के इस्माइल यूसूफ कालेज के प्रिंसिपल के रूप मे कर दिया । डॉ श्याम वर्मा मुबई चले गये । उनका बगला, उस समय महावीर कालोनी मे बन रहा था। वे ठीक से देख नही पाए । परिवार को वैसे ही छोडकर वे मुबई चले गए ।

वर्ष-दो वर्ष के बाद मे मुझे अचानक मुबई से MPSC से फोन मिला कि मुबई मे उम्मेदवारो के चयन के लिए आना है । तदनुसार मै सपरिवार मुबई गया । वह १९८६ ई की बात है । चेम्बूर मे मदनलालजी मडलेचा के घर पर टहरा। उस समय डॉ. भ. ह राजूरकरजी विश्वविद्यालय के कुलपति हो गए थे । मै विभाग का अध्यक्ष था ।

मुबई मे पहले दिन जब मैं अपने कार्य के लिए MPSC के कार्यालय मे पहुँचा तो टेबल पर मैने जिन अन्य दोनो सदस्यों को देखा, वे पूर्व परिचित थे। चेअर पर बैठनेवाले डॉ. भोसले (पहले मराठवाडा विश्व विद्यालय के कुलपति थे) साहब थे । गणित के प्रोफेसर थे । दूसरे सदस्य स्वय श्याम वर्मा थे । वे इस समय इस्माइल यूसूफ कालेज के प्रिसिपल थे । वे उस समय शासन की ओर से नियुक्त थे। चेअर पर भोसले साहब थे और हिन्दी विषय का विशेषज्ञ मै था। एक दिन में. एक बैठक मे १० बजे से एक बजे तक १० से १५ उम्मीदवारो का साक्षात्कार लेते थे । अन्त मे तीनो को अपना निर्णय अकों सहित — उसी दिन देना पडता था । दूसरे दिन फिर वही प्रक्रिया दोहराई जाती । यह क्रम एक सप्ताह तक चला । बाहर आने पर हम लोग मिलते । फ्लोरा-फाउटेन के पास मे ही MPSC का कार्यालय ऊपर की मजिल पर था । फ्लोरा-फाउटेन से बस सीधी चेम्बूर जाती है । मै उसी बस से चेम्बूर लौट जाता था । फ्लोरा-फाउटेन — ब्रिटिश काल का नाम है । अब उसे हुतात्मा चौक कहते है । डॉ श्याम वर्मा वहॉ से चर्चगेट पहुँच जाते । चर्चगेट पर उन्हें लोकल ट्रेन मिल जाती। सीधे जोगेश्वरी जाते । जोगेश्वरी में उनका कालेज है । एक दिन मै उनके साथ जोगेश्वरी गया । उनके कालेज के कैम्पस में गया । कैम्पस बहुत बडा है। हरा-भरा क्षेत्र है । उनका आवास वही पर था । पहले तो उनके कक्ष मे गया। फोन की घंटियॉ बजती रहती थी । उनके औरगाबाद के पेशटों के फोन मिलते रहते थे । वे उनसे आत्मीयता से बात करते और अपना निर्देश दे देते थे । इस बीच में वे शासकीय कार्य भी देख लेते । बाद में उनके आवास पर भी गया। बडे बडे कक्ष थे । अंग्रेजों की पद्धति के बने हुए कमरे थे। छत ऊची थी । लम्बे-चौडे कक्ष थे । आवास तो बडा था क़िन्तु अकेले रहते थे । क्या करते ? कोई उपाय नही । अपना काम करते थे ।

श्याम वर्मा इतने व्यस्त रहते कि लिखने-पढ़ने के लिए उनके पास समय नही था । जितना समय मिलता, उसमे वे अपना काम कर लेते । स्वतत्र विचार

रखनेवाले थे और अपनी बात कहने मे और मनवाने मे चूकते नही थे । तर्क भी खूब करते। आनद नगर कालोनी मे डॉ. काशीनाथ मिश्र रहते थे । मुझे याद है — मराठवाडा साहित्य परिषद का अधिवेशन जब परभणी मे हुआ । उसमे काशीनाथ मिश्र (देवगिरि कालेज के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष) और श्याम वर्मा दोनो आए थे । परभणी मे दोनो ही एक दूसरे से भिड गए । दोनो के अपने-अपने तर्क थे । काशीनाथ मिश्र — बलिया के थे और बलिया का पडित झुकता नही है और श्याम वर्मा एडवोकेट के पुत्र थे । शासकीय भाषा जानते थे । मै केवल सुनता रहा । बीच-बचाव मे कोई लाभ नही था । बहस का अन्त नहीं हुआ । यों कार्यवश उठना पडा ।

विभाग मे 'हिन्दी नाटक और रगमच' सेमिनार हुआ । यह सेमिनार १९ नवम्बर १९८४ ई से २४ नवम्बर १९८४ ई तक हुआ । इसका उद्घाटन भाषण देने डॉ नगेन्द्र आए थे । बाद मे सेमिनार के निबन्धो का सम्पादन मैंने किया। उस सम्पादित पुस्तक के लिए डॉ श्याम वर्मा से भी मैंने आलेख मांगा । उनसे लिखवाना पडा । लिखा । आलेख का शीर्षक है — 'हिन्दी नाटक की व्यथा-कथा' । हिन्दी रगमच के विकसित न हो पाने की व्यथा-कथा लिखी है । उस समय वे मुबई मे ही थे ।

इस्माइल यूसूफ कालेज से डॉ श्याम वर्मा पुन औरगाबाद आए । सेवानिवृत्त होने से पहले ही आ गए थे । उनकी अनुपस्थिति में भी उनका बगला बनता रहा । स्नेहनगर का क्वार्टर छोड दिया । अपने बगले में रहने चले गए । उन्होने अपनी लडकी का ब्याह कर दिया । दामाद यही का है । अपनी लडकी को होमियोपेथी का प्रशिक्षण दे दिया । वह भी पिता के साथ काम करने लगी । एक लडके को होमियापेथी के कालेज मे पढाना चाहा । उसे प्रवेश नही मिला।

सेवानिवृत्त होने से पहले उनकी तरक्की हो गई । गवर्नमेण्ट कालेज में IAS का प्रशिक्षण दिया जाने लगा था । वे उसके डायरेक्टर हो गए थे । अथक परिश्रम के कारण और घर मे विशेष सहयोग न मिलने से वे बीमार हो गए । शूगर बढ गई । स्वयं डॉक्टर होने पर भी अपना इलाज आप नही कर सकते । घाटी अस्पताल मे मैं उन्हे देखने गया था । बोले — 'कुछ नही हुआ । मै ठीक हूं ।' बाद मे घर पर लौट गए । बाद मे बहुत दिनों तक मिलना नहीं हुआ । बाद मे मै बीमार हो गया । डॉक्टर ने 'हाउस-रेस्ट' का आदेश दिया । छुट्टी लेकर घर पर पडा

रहता था । यह १९९१ ई (दिसम्बर) की बात है । मे घर मे लेटा हुआ था । देखा — 'श्याम वर्मा आए है । आकर बैठ गए । बोले — 'मुझे मालूम नही । क्या हो गया । शागा ने फोन पर बतलाया कि आप बीमार है ।' बाते करते समय उन्हे चाय दी गई । और कुछ खाने की इच्छा नही थी । बिस्कुट थे । वे ले लिए । बोले — 'गले का कष्ट है । कुछ खाया नही जाता । चाय मे भिगोकर बिस्कुट खा सकता हूँ । मालूम हुआ, उन्हे गले का कैन्सर हो गया है । मैने विश्वास नही किया । किन्तु जब स्वय ने बतलाया तो विश्वास करना पडा । अन्तिम दिनो मे परिवार के लोग आ गए थे । पुत्र के ब्याह की चिन्ता थी । ब्याह निश्चित हो गया । तदर्थ निमंत्रण-पत्र भेजे गए । घर पर बिस्तर पर ही लेटे हुए थे । उस्मानपुरा के गोपाल हॉल में स्वागत करने के लिए वे स्वय नही थे । मै गोपाल हॉल से सीधे उनके घर पर पहुँचा । लेटे हुए मिले । मिलनेवालो का ताता लगा हुआ था । बोलने मे कठिनाई हो रही थी । फिर भी कुछ स्फुट शब्दो मे बोले — 'भोजन हो गया ?' मैने — 'हॉ कहा ।' परिवार के सब लोग उपस्थित थे । उन्हे अपनी बीमारी की बिलकुल चिन्ता नही थी । साहसी थे । मृत्यु से जूझते रहे । कुछ ही दिन बाद मे मालूम हुआ कि वे नही रहे । शव-यात्रा मे गया था । शव के पास खडी-खडी लीला मेहरा रो रही थी । श्याम वर्मा के छात्र, उन्हे बहुत चाहते थे । जो भी उनके सम्पर्क मे आया, वह उन्हे भूल नही सकता । अपने पिता के निधन के बाद एक वर्ष के भीतर वे भी चले गए । अपने पिता से मिलकर आए थे ।

□ □

आचार्य यज्ञेश्वर शास्त्री कस्तुरे से बातचीत

आज सबेरे (१३ जुलाई १९९७, रविवार) साढे नौ बजे आचार्य यज्ञेश्वर शास्त्री कस्तुरे से मिलने गया । इतना मालूम था कि वे गुरुकुल के आचार्य है और वहॉ पर वेदो का अध्ययन होता है । जिज्ञासावश गया । उनकी ओर जाने का एक आकर्षण यह भी था कि डॉ सुरेन्द्र बारलिगे उन्हे अपना गुरु मानते है । डॉ बारलिगे २ जुलाई को औरगाबाद आए थे । उनसे भेट हुई । बातचीत हुई । उनके यहॉ आने का एक आकर्षण गुरु के दर्शन करना था । उस दिन मै उनके साथ गुरु से मिलने नही गया । गणित विभाग के डॉ दामोदर कस्तुरे, (प्रोफेसर एव अध्यक्ष) — जो इसी वर्ष सेवानिवृत्त हुए है, ने मुझ से कहा कि पिताजी अभी यही पर हैं । घर पर मिले । उनसे समय लेकर आज मै डॉ दामोदर कस्तुरे के

घर गया । घर पर डॉ कस्तुरे नही थे । वे अपने भाई के पास गए थे । भीतर से गुरुकुल का एक सदस्य, जो गुरुजी के साथ आया हुआ था, बाहर आकर मिला । कहा डॉ कस्तुरे नही है । मैंने कहा — 'उनके पिताजी से मिलना है ।' भीतर जाकर पूछ आया और कहा, चलिए गुरुजी बुला रहे हैं । भीतर, पूजा घर मे (मराठी मे देवघर) वे बैठे हुए थे । पूजा-पाठ समाप्त कर अपने आसन पर बैठे हुए थे । बैठने के लिए कहा । वहीं पर बैठे-बैठे मैंने उनसे बातचीत की। वही भेट वार्ता नीचे लिख रहा हूँ ।

प्रश्न वैदिक काल मे क्या सस्कृत बोलचाल की — व्यवहार की — भाषा थी ।

उत्तर सस्कृत बोलचाल की — व्यवहार की — भाषा नही थी । व्यवहार मे प्राकृत भाषा थी ।

पूछा वेद अब तक सुरक्षित कैसे रहे ?

बोले मौखिक परम्परा है, सब श्रुति है । वेदो को श्रुति कहने का कारण यही है ।

पूछा सस्कृत बोलनेवाले इस समय कितने लोग होगे और ऐसे लोगो से आपका सम्पर्क होगा ।

बोले हॉं । आज भी सस्कृत बोलनेवाले लोग है । यह ठीक है कि सख्या कम है किन्तु है । मै ऐसे लोगो को जानता हूँ । मुबई मे इस समय एक मुसलमान है । उसका नाम इस्माईल है । पचास वर्ष का होगा । वह सस्कृत अच्छी तरह से बोल सकता है । मै उसे जानता हूँ । वसतराव गाडगील (सस्कृत मे समाचार पत्र प्रकाशित करते है), श्रीपाद शास्त्री कवीश्वर — (दोनो पुणे मे हैं) आदि लोग हैं जो संस्कृत सहज बोल सकते है । दूर क्यो जाते है — मेरा लडका दामोदर बाल्यावस्था मे अच्छी संस्कृत बोल लेता था । उसने भरी सभा मे व्याख्यान दिया है किन्तु अब तो वह यूनिवर्सिटी मे गणित का प्रोफेसर हो गया ।

पूछा सस्कृत बोलनेवाले के सम्बन्ध मे कुछ और बतलाएगे ?

बोले कर्नाटक मे 'ताडपी' नाम का गॉव है । घने जगल मे है । पश्चिम कर्नाटक मे है । वहॉं पर एक हजार ब्राह्मणो के घर है और वे सब आपस मे आज भी सस्कृत मे व्यवहार करते है । वे मत्रो की भाषा भी जानते

ह . यद्यपि मै स्वय तो वहॉ नही गया । किन्तु हमारा एक साथी उस गॉव मे गया था और उसने आकर हमे यह बतलाया ।

वेदो की रक्षा के लिए आप क्या कर रहे है ?

हमारा गुरुकुल है । तीन अध्यापक है । ३० छात्र है । सब लोग आश्रम की तरह एक ही स्थान पर घने जंगल में रहते हैं । ऋग्वेद, अथर्ववेद दो वेदों का पाठ होता है । नित्य पठन (उच्चारण सहित) जारी है । याज्ञिक (पुरोहित के सस्कार) का अध्ययन-अध्यापन होता है । तीन ही विषय है और तीन अध्यापक है ।

सस्था का नाम और उसकी शाखाओ के सम्बन्ध मे बतलाइए ।

सस्था का नाम 'श्री चतुर्वेदेश्वर धाम' है । जिस गॉव के निकट हमारी यह सस्था है, वह गॉव सावरगांव है । पोस्ट पिपळी धामणगांव, ता परतूर, जि. जालना है । हमारी सस्था की तीन शाखाएँ हैं — एक हमारी सावरगांववाली मुख्य शाखा है । दूसरी — पुणे के निकट अळदी मे है। अळदीवाली शाखा में केवल यजुर्वेद का पठन होता है । उसके लिए वहॉ पर एक अध्यापक है और ३० छात्र है । हमारी तीसरी शाखा ढालेगाव में है । वहॉ पर चारों वेदो का पठन होता है । वहॉ पर चार अध्यापक है । प्रत्येक वेद के लिए अलग-अलग अध्यापक है ।

वेदों का पाठ्यक्रम कैसे हैं ? कितने वर्षो में पढाई पूरी होती है ?

सहिता के लिए ५ वर्ष का पाठ्यक्रम है । और यदि किसी एक वेद का पूर्ण अध्ययन करना हो तो उसके लिए १२ वर्ष अपेक्षित है । पाठ में उच्चारण को प्रधान माना जाता है । क्रम से — पद/क्रम/जटा और घन — पाठ होते हैं । घनपाठी होने मे समय लगता है । इस पठन ने ही वेदों को सुरक्षित रखा है । उच्चारण दोष को ठीक नहीं माना जाता। तब तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा । इस उच्चारण के कारण ही वैदिक भाषा व्यवहार की (सामान्य बोलचाल की) भाषा नही हो सकती ।

आपका जन्म कब हुआ ? मूल गॉंव कौनसा है ?

मैं इस समय ८९ वर्ष का हूॅ । नब्बे वाला वर्ष चल रहा है । १९०८ ई. मेरे जन्म का वर्ष है । मूलगॉव, जहॉ जन्म हुआ — कळमनूरी है। तालुकास्थान है, जिला परभणी हैं । मेरी शिक्षा नाशिक, पुणे और इन्दौर मे हुई ।

वेदसेवा मे आपको किसने प्रवृत्त किया ?

एक नाम स्वर्गीय वामनाचार्य गोकाककर का है । वे मूल में गोकाक (कर्नाटक के एक गाव का नाम) के रहनेवाले थे किन्तु कोल्हापुर मे बस गये थे । कहते है, उन्हे वेदमूर्ति ने स्वयं साक्षात् दर्शन दिया और राष्ट्र मे वातावरण को शुद्ध बनाने हेतु वेदसेवा मे प्रवृत्त किया । साक्षात् दर्शन स्वप्न में हुआ ।

वामनाचार्य का पूरा नाम गोविद गुण्डो वामनाचार्य है ।

कथा इस प्रकार है । प्रेरणा श्रीरंगपट्टण के निकट कावेरी नदी पर मिली । नदी से लौटते समय आवाज आई 'मुझे बाहर निकालो' जाकर इधर-उधर देखा तो कोई दिखलाई नही दिया । लौट आए । तीसरे दिन सबेरे-सबेरे सपना देखा। एक सोलह वर्ष के बटु के दर्शन हुए । उसने कहा — 'मै कावेरी में हूँ । मुझे तुम्हारे पास आकर रहना है । मेरा नाम वेदेश्वर है । वामनाचार्य ने तुरन्त उस बटु से पूछा — 'तुम्हें कहाँ खोजना चाहिए ?' बोला — 'जहाँ परसो खोज रहे थे, वहीं पर खोजो ।' स्वप्न सच हो झूठ । विश्वास न होने पर भी वही पर उसे खोजने गये । स्नान करते समय किसी ने उनके हाथ छोटा सा महादेव रख दिया । वामनाचार्य उसे अपने घर ले आए । उसका नाम 'अणुचतुर्वेदेश्वर' रखा । सब प्रकार के वेदो की उपलब्ध शाखाओं से उसका अभिषेक किया । बाद मे १९४५ ई. मे कोल्हापुर मे अपने निवास स्थान पर वामनाचार्य को दिव्य मूर्ति के दर्शन हुए । सारा शरीर मनुष्य का किन्तु मुख अजा का । तेजस्वी नेत्र थे । मूर्ति को नमस्कार करने पर मूर्ति ने आदेश दिया कि 'वेदसेवा' करो । कहा — मुझे वेद का ज्ञान नहीं है । कहा — वैदिक ब्राह्मणो की सेवा करो । प्रत्येक एकादशी को तीन घण्टे वेदपाठी ब्राह्मणों का बुलाकर वेदपाठ करवाओ और उन्हें दो-दो रुपये दक्षिणा दो । कहते है, यह मालूम होने पर भी वामनाचार्य चुप रहे । छ. मास बीत गये ।

मे पूछा इस कथा का आप की संस्था से क्या सम्बन्ध है ?

इस कथा का हमारी संस्था से सम्बन्ध है । इसीलिए कह रहा हूँ । बाद मे वही मूर्ति पुन. स्वप्न मे दिखलाई दी । कहा — 'यह काम तुम्हे करना ही होगा ।' जानकार मित्रों को पत्र लिखकर पूछताछ की । मित्रों ने 'सनातन प्रदीप' पुस्तक उनके पास भेजी । और बतलाया कि जिस

मूर्ति का दर्शन लाभ हुआ है, वह मूर्ति यजुर्वेद की है । वह सौम्य मूर्ति है । पारायण करे । उसके बाद वामनाचार्य ने अपनी आय का चतुर्थांश वेद के पारायण के लिए खर्च करने लगे । स्वयं ऋग्वेदी थे किन्तु यजुर्वेदी मूर्ति की आज्ञा का पालन करने लगे । बाद मे उन्होंने माना कि वेदो मे भेद मानना ठीक नही है ।

बाद मे १९६६-६७ वर्षो मे इसी मूर्ति ने पुन स्वप्न मे दर्शन दिया और कहा कि 'गौतमी तीर पर मुझे लेकर जाओ, और वही पर मेरी स्थापना करो ।' ठीक उन्ही दिनो मे रावसाहब कुलकर्णी मावरगावकर के बाग मे मैसूर की ओर से एक ज्योतिषी आया और उसने कहा — 'आगामी छ मास के भीतर कुछ तपस्वी यहाँ आएगे और इसी जगह पर सत्कार्य होगा । अन्नदान भी होगा । मेरे इस कथन का ध्यान रखे ।' शीघ्र ही उक्त कथन के अनुरूप कार्य होने का योग आ गया ।

एक दिन स्वय को नारदकृपापत्र कहनेवाला ब्राह्मण रावसाहब कुलकर्णी के पास उनके खेत में चला आया और कहा — 'मै नारद की आज्ञा से यहाँ आया हूँ । यह स्थान तीन हजार वर्ष पूर्व किसी तपस्वी की तपस्या का स्थान रहा है । इसी स्थान पर पुन देवता आने के लिए उत्सुक हैं ।

ठीक इन्ही दिनो में मैंने वानप्रस्थाश्रम स्वीकार किया था और निर्जन वन मे वास करने की इच्छा से स्थान खोज रहा था । उस समय रावसाहब कुलकर्णी से मेरी भेंट हुई । उनके साथ बातचीत हुई । उन्होंने मेरी मन की भावना को समझ लिया । उन्होंने अपना उक्त स्थान 'चतुर्वेदाश्रम' को देने का निर्णय किया । दानपत्र लिख दिया और इसी स्थान पर फिर मैंने रहने का निर्णय किया । बाद मे इसी जगह हमारा आश्रम बना ।

वामनाचार्य की कथा का क्या हुआ ?

हमारा आश्रम बन जाने के बाद, वामनाचार्य की वह वेदमूर्ति यहाँ लाई गई । कोल्हापुर से महादेव भी आए (कावेरी मे जो प्राप्त हुए थे) । उसकी स्थापना यहाँ की गई है । वामनाचार्य स्वय वे सब लेकर आए । मध्य भाग मे महादेव है और उसके चारो ओर चार वेदमूर्तियाँ हैं । ये सभी वेदमूर्तियाँ कोल्हापुर मे तैयार की गई हैं । ऋग्वेद की मूर्ति श्वेत वर्ण की है । उसका मुख गर्दभ का है । बाकी सारा शरीर मनुष्य की

तरह है। इसी तरह यजुर्वेद की मूर्ति पीतवर्ण की है, उसका मुख 'अजामुख' है। सामवेद की मूर्ति नीलोत्पल है ओर उसका मुख हयानन है और अथर्ववेद की मूर्ति धवलवर्ण की है और मुख मर्कटानन है। शरीर मनुष्य का ही हैं। इन मूर्तियो की स्थापना का खर्च औरगाबाद के कर्वे गुरुजी ने किया है।

कथा का विस्तार चल रहा था। इतने मे डॉ दामोदर कस्तुरे आ गये। चलते-चलते मैंने पुन पूछा आपके आश्रम का खर्च कैसे चलता है ?

बोले सगमनेर निवासी श्री किशोरजी व्यास हैं। वे इस समय घूमते-फिरते रहते है। नगर (अहमदनगर) में रहते है। वे सब हमारी आर्थिक व्यवस्था करते है। बाल-ब्रह्मचारी है।

मुझे और बहुत कुछ पूछना था। वेदमूर्तियो का वर्णन तो सुन लिया किन्तु इन मूर्तियो के मुख आदि के सम्बन्ध मे जो कुछ उन्होंने बतलाया, उससे प्रतीको के कारण जानने की इच्छा रह गई। वामनाचार्य के सम्बन्ध में तो उन्होंने बतलाया कि अब वे नहीं है। कर्वे गुरुजी भी नही है। इतनी देर बैठकर बात करने पर भी वेदपाठ सुनने और वेदो के सम्बन्ध मे जानने की इच्छा रह गई। उन्होंने बतलाया कि कल मैं अकोला जा रहा हूँ और वहाँ से पुन आश्रम को लौट जाऊँगा। हम सीधे जाते तो आप हमारे साथ आश्रम को चल सकते थे।

पूजाघर में ही उन्हे प्रणाम कर, मैं बाहर आ गया। दूसरे कमरे मे डॉ. कस्तुरे मिले। कहने लगे — 'पिताजी से मिलिए।' मैने कहा — 'मिलकर ही बाहर आया हूँ।' उन्हें नमस्कार कर मै अपने घर लौट आया।

□ □

प्राचार्य गंगाधर पाथरीकर

दिसम्बर १९६८ ई मे मैं औरगाबाद आया। मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरगाबाद के हिन्दी विभाग मे मेरी नियुक्ति हुई। ठीक दूसरे ही वर्ष १९७० ई मे विश्वविद्यालय की ओर से पत्र मिला कि छात्रों के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर जाना है। हिन्दी विभाग का एक भी छात्र साथ मे नही था। मैंने दायित्व स्वीकार कर लिया। कार्यालय से मुझे नियमानुसार पत्र मिला। छात्रों के नाम मिले। आठ या दस दिन की यात्रा थी। इस यात्रा में हम लोग हैदराबाद, बैगलोर तथा मैसूर गए। इन नगरों के आसपास के ऐतिहासिक और प्राकृतिक स्थल देखे।

उस समय साथ रहनेवाले दो छात्रों के नाम मुझे विशेष रूप से याद है । उनमे गगाधर पाथरीकर और वसंत मुढे । गगाधर पाथरीकर केमिस्ट्री के छात्र थे । वसत मुंढे किस विभाग में थे, याद नहीं । तीसरा नाम थोटे है । वह अग्रेजी विभाग का छात्र था । ये तीनो कुछ प्रौढ थे । अलग-अलग विभागो के छात्रों को नियत्रण मे रखना और यात्रा मे उनकी सुविधाओं का ध्यान रखना मेरे लिए कठिन था। किन्तु अनुभव ने सब कुछ ठीक कर दिया । मैने छात्रो में कुछ छात्रों को पहचान लिया । मालूम हुआ कि दो छात्र कुछ विशेष है और यदि दो छात्रों पर नियंत्रण कर लो तो बाकी सबको नियत्रण मे रखना सरल हो जाएगा । उन विशेष छात्रो मे गंगाधर पाथरीकर को साथ मे रखे तो और सब पर नियत्रण सरल हो सकता है । मैने ऐसा ही किया । गगाधर पाथरीकर को आरम्भ से साथ मे रखने लगा। वसंत मुढे और गंगाधर पाथरीकर पक्के साथी थे । इसलिए वसत मुढे भी मेरे साथ रहने लगा । बाद में मुझे यात्रा मे कोई कठिनाई नही हुई ।

यात्रा का एक प्रसंग लिख रहा हूँ । बैंगलौर मे मेरी इच्छा टेलिफोन इंडस्ट्री सबको दिखलानी थी । बैंगलौर मे हम वहाँ की यूनिवर्सिटी के होस्टल मे ठहरे हुए थे । दूसरे दिन सबेरे ८ बजे टेलिफोन इडस्ट्री जाना था । सभी को यथासमय उठकर चलने के लिए कहा गया था । सब यथासमय तैयार हो गए थे । गगाधर पाथरीकर और वसत मुढे — दोनो ही आराम मे सो रहे थे । मैने स्वय दोनों को उठाने का प्रयत्न किया । उठ तो गए किन्तु बिस्तर पर बैठे रहे । समय होते देखकर मैंने अन्य छात्रो को कहा — 'आप लोग आगे-आगे चलो । इंडस्ट्री के द्वार पर ठहर जाना । मैं इन दोनों को लेकर पहुँच रहा हूँ ।' सब चले गए । हम लोगो के पहुँचने मे कुछ विलम्ब हो गया था । छात्रो का द्वार पर उचित स्वागत नहीं हुआ । छात्र ही ठहरे । इधर-उधर भटक गए । आधे से अधिक छात्र वहाँ पर नही मिले । जो उपस्थित थे और इन दोनों को साथ में लेकर मैं भीतर गया। गेटमन ने मुझे भीतर जाने से रोका । मैंने कहा — 'अधिकारी को मिलना चाहता हूँ ।' गेटमन ने कहा — 'आप भीतर नहीं जा सकते । मैंने कहा — 'यदि आप सम्पर्क करने नहीं देते और भीतर भी जाने नही देते तो इस कागज पर लिख दीजिए कि हम लोगो ने इन्हे रोका है और हस्ताक्षर कर दीजिए ।' यह कहने पर उसने फोन किया और बात करने के लिए कहा । मैंने अपना परिचय दिया और प्रार्थना की कि इडस्ट्री देखने के बाद हम लोग चले जाएगे ।' अधिकारी ने भीतर आने की अनुमति दी । तब मै उपस्थित छात्रो के साथ भीतर गया ।

वहाँ से दो व्यक्ति हमारे साथ आए और पूरी इडस्ट्री हम सब को दिखलाते गए। यह कार्यक्रम तीन घण्टे तक चला । हम लोग लौटकर पुन. होस्टल आ गए । वहाँ पर पुन सब से मिलना हुआ । गगाधर पाथरीकर को और वसत मुढे को तब समझ में आया कि उनके कारण कितने छात्र इडस्ट्री नहीं देख पाए । बाद मे मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई । मैसूर मे राजमहल देखने हम सभी गए थे । वृंदावन गार्डन मे सब साथ-साथ थे । श्रीरगपट्टणम् मे टीपू सुलतान का स्थान देखने के बाद सब को कावेरी नदी देखने ले गया था । हमें किराए से साईकिलें मिल गई थी । कावेरी के तट पर पहुँच कर वहाँ का प्राकृतिक मनोरम दृश्य देखकर हम सब प्रसन्न हुए थे । हम लोग श्रवण बेळ्गोला और हळेबीड भी गए थे । मन्दिर देखे । ऐतिहासिक स्थल देखे ।

लौटते समय पुन बैगलौर मे ठहरे थे । सभी छात्रो ने कहा — 'हम 'नन्दी हिल्स्' देखना चाहते हैं ।' तदर्थ टैक्सी से जाना आवश्यक था । गंगाधर पाथरीकर और वसत मुढे भी यही चाहते थे । टैक्सी की व्यवस्था की और हम सब लोग गए । वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि 'फिल्मो की शूटिग' भी वहाँ होती है । किसी फिल्म की शूटिग चल रही थी । छात्र बहुत प्रसन्न हुए । खुशी-खुशी लौट आए। लौटने की यात्रा शुरू हो गई ।

मैंने आरम्भ मे ही गगाधर पाथरीकर में नेतृत्व के गुण देखे । अपने साथियो के लिए काम करना उसका स्वभाव था । अनुशासन प्रिय व्यक्ति था । और बाद मे मैंने देखा कि वही गगाधर पाथरीकर मराठवाडा विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रार हो गया । विश्वविद्यालय छोडने के बाद मे विवेकानन्द महाविद्यालय में प्राचार्य हो गया । अपनी कार्यक्षमता से महाविद्यालय के भवनो को गति दी । और प्रांगण को मनोरम रूप दिया । महाविद्यालय में छात्रो की संख्या बढती गई । कार्य जारी रहा । कई बार अकेले बैठे-बैठे कार्य करते रहे ।

मेरी छात्रा डॉ. शकुतला पांचाल इसी महाविद्यालय मे हिन्दी विभाग की अध्यक्ष हो गई । प्राचार्य गंगाधर पाथरीकर ने मनोविज्ञान विभाग को विशेष महत्त्व दिया। हिन्दी एव अन्य विषयो मे एम ए की कक्षाएँ खुल गई । स्नातकोत्तर महाविद्यालय हो गया । महाविद्यालय मेरे निवास स्थान से निकट होने के कारण सप्ताह मे दो घण्टे एम ए. को भाषा विज्ञान पढाने जाने लगा । मुझे प्राचार्य से मिलने और बात करने का प्राय अवसर नहीं मिलता । मै कालेज जाता था और यथासमय लौट आता था । मै देखता था कि कालेज मे कक्षाएँ नियमित होती

है । कोई गडबड नही । छात्रो की सुख-सुविधाओ की चिन्ता प्राचार्य पाथरीकर करते रहे है ।

कालेज मे पॉच-छ वर्ष से पढाते आया हूँ। वैसे ही थक गया था । इसी वर्ष फरवरी २००२ के प्रथम सप्ताह मे मेरी अन्तिम क्लास थी । साढे-चार बजे लौटना था । इच्छा हुई कि अब पुन इस कालेज मे अगले वर्ष आना नही है। इसलिए प्राचार्य से मिल लेना चाहिए । उनके कक्ष मे पहुँचा । अकेले मिले । बोले 'सर, या बसा ।' — मराठी मे ही बात करते थे । छात्र-जीवन में तो मुझे 'सर Sir' कहते थे । किन्तु उस दिन भी उन्होंने छात्र की तरह बात की । मैंने घर परिवार की बात पूछी तो बतलाया, 'मकान नन्दनवन कालोनी में है । उसके लिए डॉ. सूर्यवशी ने उनकी सहायता की । बच्चो की खुशहाली बतलाई । सारी बातचीत पारिवारिक स्तर पर हुई । मुझे उस समय मालूम नही था कि वह मेरी उनसे अन्तिम भेट होगी । लौटते समय मैंने कहा — 'अब थक गया हूँ । अगले वर्ष नही आ सकूँगा । इसीलिए लौटने से पूर्व मिलने आया हूँ ।' बोले — 'वैसे हम कभी-कभी आपको बुलाएगे, कालेज आपका है ।' बहुत प्यार और सम्मान से उन्होंने बात की । मै लौट आया ।

२३ मार्च २००२ के लोकमत मे पढा कि २२ मार्च को सायकाल मे पाथरीकर अचानक अपने कर्तव्यों का पालन करते-करते चले गए । विश्वास नही हुआ । अभी तो बहुत काम करना था । उनके निधन से उनका परिवार, कालेज का परिवार ही नहीं अपितु औरगाबाद का शिक्षा-जगत् सभी दुखी हो गए ।

□ □

6

भारतीय हिन्दी परिषद

मैं भारतीय हिन्दी परिषद के अधिवेशनों मे अवसर मिलने पर जाता रहा हूॅ। कुल आठ अधिवेशनो मे उपस्थित रहा हूॅ। उन अधिवेशनो मे अवसर मिलने पर अपना आलेख भी पढता रहा हूॅ। प्रथमत· अलीगढ अधिवेशन मे १९६३ ई. मे गया था। उस समय मैं तिरुपति मे था। दूसरी बार १९६७ ई मे तिरुपति से ही हैदराबाद गया था। दोनो अधिवेशनो के सम्बन्ध में मैंने प्रथम भाग मे लिख दिया है। इसके बाद के सभी अधिवेशनों मे मै औरंगाबाद से ही गया हूॅ। बाद के अधिवेशन क्रमश पुणे (१९७० ई) / कालिकट (१९७५ ई.) / आनन्द (१९७७ ई.) / वाराणसी (१९८० ई) / औरगाबाद (१९८४ ई.) तथा लखनऊ (१९८८ ई.) मे भी यथासमय उपस्थित रहा हूॅ।

पुणे अधिवेशन मे, जिन विद्वानो को देखने, सुनने और मिलने का अवसर मिला, उनमें कुछ नाम लिख रहा हूॅ। विशेष नाम है — आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, आचार्य विनयमोहन शर्मा, आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा। उस समय डॉ. विजयपालसिंह वाराणसी से आए थे और आचार्यजी (डॉ. एस. टी. नरसिंहाचारी) तिरुपति से आए थे। उस समय डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित तो पुणे में ही थे। उनके सभी सहयोगी काम कर रहे थे। सदस्यों के लिए पुणे-दर्शन के लिए बस की व्यवस्था की गई थी। पत्नी भी साथ मे थी। हम दोनो ने 'पुणे-दर्शन' का लाभ उठाया। पर्वती की सारी सीढ़ियाँ चढ गए और नीचे उतर आए। समूह में पुणे देखा। सदस्यो का साहचर्य मिला। उस समय डॉ. चन्दूलाल दुबे से परिचय हुआ। वे पहले हैदराबाद अधिवेशन में भी मिले थे।

पुणे अधिवेशन की विशेष संगोष्ठी — 'व्याकरण-संगोष्ठी' थी। उसमें दो वक्ता विशेष थे। एक तो आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे और दूसरे आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी व्याकरण जैसे विषय पर — गंभीर विषय पर — सहजता से विषय को सहज बनाकर बोले। विषय को सृजनात्मक रूप दिया। शब्द (पारिभाषिक शब्द) कहेंगे, उसकी व्याख्या व्याकरणिक ढंग से न करके, सृजनात्मक ढंग से करेंगे। जैसे 'सर्वनाम' कहा। फिर बोले — 'यह सब का नाम है, किसी अकेले का नाम नहीं है। भेद भी, इसी प्रकार बतलाते गए। वे उन दिनो मे व्याकरण की किसी परियोजना पर काम कर रहे थे। प्रत्ययों पर, व्याकरणिक रूपों पर इसी तरह बोलते रहे। चिन्तन को उन्होंने सृजनात्मक रूप दिया। सृजनात्मक लिखनेवाले को शास्त्र पढना पडा जो उनके स्वभाव मे नही। शास्त्र पढ लिया तो उसे भी सृजनात्मक स्वरूप दिया। वे सदैव 'मूल' तक पहुँचने का प्रयत्न करते है — शब्दों से जूझते है। उनका जूझना चलता रहता हैं। इसलिए वे बोलते-बोलते चुप हो जाते है और फिर अचानक एक प्रवाह में बोलते जाते हैं। वक्ता की प्रवाहमयी वाणी किसी दूसरे वक्ता से सुनने नही मिली। नामवरसिंह उन्हीं के शिष्य है।

पुणे के अधिवेशन में डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह अध्यक्ष थे और इस अधिवेशन का उद्घाटन भाषण माननीय बालासाहब भारदे ने दिया था। सर परशुराम भाऊ कालेज के प्रांगण मे इस अधिवेशन के सभी कार्यक्रम हुए। उक्त कालेज तिलक रोड पर है। पुणे के अधिवेशन में नये अध्यक्ष का चुनाव हुआ। नये अध्यक्ष आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा हुए। अक्तूबर १९७० ई. में हुए। इस पुणे अधिवेशन के बाद में दिसम्बर १९७१ ई. में ग्वालियर मे २५ वॉं अधिवेशन हुआ। उसमे मैं जा नहीं सका। उसके बाद में २६ वाँ अधिवेशन जून १९७४ ई. मे वल्लभ

विद्यानगर (आनन्द के निकट) में हुआ। उस समय आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ही अध्यक्ष थे। उद्घाटन भाषण डॉ. नूरुल हसन ने दिया था। वल्लभ विद्यानगर के अधिवेशन में गया था। गुजरात में पहली बार गया। सरदार वल्लभभाई पटेल की वह भूमि है। उन्हीं के नाम से विश्वविद्यालय पहचाना जाता है। उनका गॉंव 'खेडा' वहाँ से निकट है। आनन्द से वल्लभ विद्यानगर तक बस की व्यवस्था है। मार्केट स्थान आनन्द ही है। आनन्द मे दूध की 'अमूल डेअरी है। विश्वविद्यालय उस समय नया-नया लगा। विश्वविद्यालय के नाम से नगर भी कहलाने लगा है। विश्वविद्यालय का कैम्पस — वल्लभ विद्यानगर है। उस समय की विशेष स्मृतियो मे आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का नाम ले सकता हूँ। कलकत्ता से वे भी आए थे। लौटते समय आनन्द रेलवे स्टेशन पर घण्टे-दो घण्टे तक हमे प्लेट फार्म पर प्रतीक्षा करनी पड़ी। हमारे साथ और भी कई सदस्य थे। शास्त्रीजी ने औरंगाबाद मे दौलताबाद की चोटी पर हमे कविताएँ सुनाई थीं। आनन्द स्टेशन पर भी उन्हे कविता सुनाने कहा। मैंने तुलसी की विनयपत्रिका के पद सुनाए। जवाब मे उन्होंने तुलसी के कई पद सुनाए। उनकी स्मरणशक्ति गजब की है। विद्या उनके कंठ मे है। जिसके कंठ मे विद्या हो, वह अच्छा वक्ता हो सकता है। मच पर खडे हो जाएँ तो धाराप्रवाह बोलने की क्षमता उनमें है।

वल्लभ विद्यानगर के बाद, दिसम्बर १९७५ ई मे कालिकट मे अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन मे मै कालिकट गया था। उसमे विभाग से डॉ चन्द्रभानु सोनवणे भी आए थे। कालिकट अधिवेशन में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक अध्यक्ष थे। उद्घाटन भाषण डॉ डी. पी. यादव, उप शिक्षा मंत्री ने दिया था। कालिकट विश्वविद्यालय कालिकट शहर से बहुत दूर है। वैसे ही जैसे वल्लभ विद्यानगर से आनन्द स्टेशन दूर है। आनन्द — शहर है। कालिकट विश्वविद्यालय का कैम्पस एक अलग नगर हो गया है। कालिकट के अधिवेशन में डॉ नामवरसिंह, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल (नाटककार) भी उपस्थित थे। सभवत वे किसी अन्य योजना के अन्तर्गत आए थे। हम लोग उन्हे सुनने गए थे। उस समय तक परिषद के नये अध्यक्ष का चुनाव हो गया था। डॉ मलिक मोहम्मद नये अध्यक्ष हो गए थे।

कालिकट में हिन्दी विभाग की स्थापना १९७१ ई. हुई। उस समय डॉ मलिक मोहम्मद की नियुक्ति हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष के रूप

मे हुई। उनके साथ मे डॉ. जी गोपीनाथन् की नियुक्ति हुई । उनके बाद में और भी नियुक्तियाँ हुई हैं। कालिकट अधिवेशन के समय मे ठाकुर साहब (डॉ श्रीधरसिंह) तिरुपति मे ही थे। बाद मे डॉ. मलिक मोहम्मद के आग्रह से वे कालिकट विश्वविद्यालय में पहुँच गए । और वही से गुवाहाटी गए ।

कालिकट नगर मैंने उसी समय देखा । समुद्र का किनारा देखा । मार्किट मे काजू खरीदे । उस समय कोकण रेलवे नहीं थी । मै तो कालिकट एक ही बार गया । पुन जाना नही हुआ ।

कालिकट अधिवेशन के बाद १९७७ में कुरुक्षेत्र में अधिवेशन हुआ । उसमे नही जा सका । बाद में १९८० ई मे, जनवरी मास मे, वाराणसी मे अधिवेशन हुआ । उसमें गया था । वह अधिवेशन रेलवे स्टेशन के निकट काशी विद्यापीठ के प्रागण में हुआ। विश्वविद्यालय मे नही हुआ। उस अधिवेशन में डॉ. आनदप्रकाश दीक्षित अध्यक्ष थे । उद्घाटन भाषण महादेवी वर्मा ने दिया था । उक्त भाषण का अब तक स्मरण है । महादेवी बोलती है तो सरस्वती मुखरित होती है । नपी तुली सारगर्भित उनकी शब्दमाला होती है । उनके गद्य में भी छायावादी-रहस्यवादी झलक को पहचाना जा सकता है ।

डॉ. विजयपालसिह उस समय BHU मे प्रोफेसर एव अध्यक्ष थे । मालूम हुआ कि आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र बीमार है । उन्हे देखने के लिए BHU के अस्पताल डॉ. विजयपालसिंह के साथ गया । घर पर गया । चाची से और बच्चो से मिला । हम लोग जहाँ ठहरे हुए थे, उनमे मेरे साथ में डॉ. बिजेन्द्रनारायणसिंह थे । वे भागलपुर के थे । डी.लिट् की मौखिकी के लिए जब गया, उस समय (१९७८ ई.) डॉ. बिजेन्द्रनारायणसिह भागलपुर में थे । निवास पर गया था। उनके साथ रहने से मेरा परिचय क्षेत्र बढा । जनवरी का प्रथम सप्ताह था । वाराणसी का जाडा था। सबेरे नहाने के लिए गरम पानी चाहिए था। उस समय बिजेन्द्रनारायणसिह के BHU के छात्र के घर पर गये । वही स्नान किया । फिर लौट आए । उनके साथ चौक मे मोदीजी की दुकान पर गये । कुछ पुस्तकें खरीदी । समाजशास्त्र और साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तके खरीदी ।

वाराणसी के अधिवेशन मे भाषा विज्ञान से सम्बन्धित सगोष्ठी में मैंने अर्थ-विवृत्ति शीर्षक निबन्ध पढा । गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ विद्यानिवास मिश्र थे । उक्त निबध के पढने के बाद उस विषय पर मेरा ध्यान् केन्द्रित हुआ । वाराणसी

से लौटने के बाद मैंने 'अर्थानुशासन' पुस्तक लिखी । पूरी पुस्तक डॉ. तेलग साहब को क्रमश सुनाता रहा । वे बहुत प्रसन्न हुए । वही पुस्तक बाद मे वाणी प्रकाशन, दिल्ली से १९८५ ई. में प्रकाशित हुई । प्रकाशन मे पॉच वर्ष लग गये । डॉ. तेलग साहब के निधन के बाद में उक्त पुस्तक का प्रकाशन हुआ । वे उस पुस्तक को देख नहीं सके ।

उसी वर्ष (१९८० ई.) मे नवम्बर मास मे मैंने डॉ. विजयपालसिंह अभिनंदन ग्रथ के काम का आरम्भ किया । १९८३ ई. मे काम पूरा हुआ । १९८३ ई. के सितम्बर मास मे ग्रथ प्रस्तुत हुआ । मेरी और डॉ. धनराज मानधाने की प्रार्थना का स्वीकार कर डॉ. साहब चाची के साथ औरगाबाद आए । मेरी योजना, उनका सम्मान करने की थी । डॉ. मानधाने ने बीड के अपने महाविद्यालय मे कार्यक्रम आयोजित किया और बाद मे लातूर में तेजमल न लाहोटी गार्डन के प्रांगण में वैसा ही आयोजन हुआ । वहाँ से लौटने के बाद मैंने डॉक्टर साहब से निवेदन किया कि आपकी अध्यक्षता का परिषद का अधिवेशन औरगाबाद में होना चाहिए । वाराणसी के (१९८० ई. के) अधिवेशन मे डॉ. विजयपालसिंह का चयन अध्यक्ष के रूप में हो गया था । डॉक्टर साहब को प्रस्ताव अच्छा लगा । वे विभाग मे आए । उन्होंने राजूरकर साहब से बात की । उनसे बात करने के बाद उन्हें और मुझे साथ लेकर वाइस-चासलर से मिलने के लिए चले । उस समय कानडे साहब वाइस-चांसलर थे । वाइस-चासलर के कक्ष मे हम सब बैठ गए । परिचय हुआ । वाइस-चांसलर को बतलाया गया कि डॉक्टर साहब भारतीय हिन्दी परिषद के अध्यक्ष है । डॉक्टर साहब उठ खडे हुए । वे आरम्भ से ही साहसी रहे है । सीधे वाइस-चांसलर की कुर्सी के पास चले गए । कानड़े साहब को उठाया और भीतर के कक्ष में जाकर उनसे बात की । मैं और राजूरकर साहब बैठे रहे । पॉच-दस मिनट बाद पुन बाहर आये । निर्णय हो गया । कानडे साहब ने स्वीकृति दे दी और आयोजन की तैयारी के लिए कह दिया । भारतीय हिन्दी परिषद के औरगाबाद अधिवेशन की तैयारी का काम उसी समय शुरू हो गया । अधिवेशन की तिथियो का निर्णय उसी समय हो गया । २, ३, ४ जून १९८४ ई. — तिथियों का निर्णय हुआ । उक्त अधिवेशन परिषद का तीसवाँ अधिवेशन था ।

उक्त अधिवेशन का सम्पूर्ण कार्यभार डॉ. राजूरकर साहब पर था । उन्होंने निर्णय कर लिया और अपने साथियों के साथ कार्य मे जुट गए । नवम्बर

१९८४ ई. म निर्णय हुआ और अधिवेशन जून १९८४ ई मे था । 'स्मारिका' के लिए विज्ञापन जुटाने का बडा काम था । उन दिनों मे अलीगढ के प्रोफेसर डॉ. प्रेमस्वरूप गुप्त औरंगाबाद में थे । वे विभाग मे विजिटिंग प्रोफेसर थे । तीन महीने वे यहाँ रहे हैं । उनका लडका भी यहीं पर काम करता था । डॉ गुप्त की पहचान यहाँ के औद्योगिक क्षेत्र से थी । उनके कारण काफी विज्ञापन एकत्रित हुए । विभाग के प्राय सभी सदस्यों ने खूब परिश्रम किया । डॉ भट्टेकर, डॉ. चन्द्रदेव कवड़े, डॉ नारायण शर्मा, डॉ. नन्दकिशोर शागा आदि सभी कार्य कर रहे थे । डॉ चन्द्रभानु सोनवणे भी हमारे साथ रहते थे ।

डॉ राजूरकर साहब का प्रभाव विश्वविद्यालय के अन्य विभागो से, कार्यालय के अधिकारियो पर रहा है । उनका कार्य कोई रोकता नही । खेल विभाग के डॉ ढोकरट और उनके सहयोगिया ने भोजन की व्यवस्था की । आवास की व्यवस्था होस्टल में की गई । डॉक्टर साहब परिषद के अध्यक्ष थे । उनकी व्यवस्था गेस्ट हाउस में की गई थी । किन्तु वे अपने साथियो के साथ होस्टल में ठहरे । डॉ रमेशकुमार शर्मा के साथ मे रहे । कौन-कौन आए, कहाँ-कहाँ ठहरे, क्या-क्या हुआ ? यह सब देखने के लिए मेरे पास समय ही नही था । मै तो प्राय बैठकर टेबल वर्क करता था । स्मारिका का सम्पादन मैंने किया । प्रेस में बैठकर प्रूफ्स देखता रहा। जो सामग्री मिलती, उसे क्रम देता । यथासमय स्मारिका छप गई।

उक्त अधिवेशनो की सगोष्ठियो में सम्मिलित नहीं हो सका । मिलने-जुलने मे तथा अन्य-अन्य कार्यो मे व्यस्त रहा । उस समय जिस सगोष्ठी की चर्चा अधिक सुनने में आई, वह प्रेमचंद वाली सगोष्ठी थी । दो प्रेमचंद विशेषज्ञ आपस मे जूझ रहे थे । दिल्ली के डॉ. कमलकिशोर गोयनका और अलीगढ के डॉ. शैलेश जैदी ।

उक्त अधिवेशन के लिए डॉ. राजूरकर साहब ने मुख्यमंत्री माननीय वसतदादा पाटील से सम्पर्क किया था । तदर्थ मुख्यमत्री ने एक लाख रुपया दिया था । उक्त राशि बैंक मे जमा की गई । वह राशि अतिरिक्त होने के कारण बैंक मे पडी रही । उक्त राशि के खर्च के लिए डॉ. राजूरकर साहब की योजनाएँ थी। वे विभाग के लिए उसका उपयोग करना चाहते थे ।

परिषद के अधिवेशन के दो दिन तो सफलता से सम्पन्न हुए । कार्यक्रम ठीक हुआ । इस बीच चुनाव भी हुआ । डॉ राजूरकर साहब परिषद के नये अध्यक्ष हो गये ।

अधिवेशन के दूसरे दिन रात्रि भोज की व्यवस्था औरंगाबाद की नगरपालिका ने की । आयोजन सिद्धार्थ-गार्डन में हुआ । भोजन के उपरान्त सब सदस्यों को आइसक्रीम दिया गया । आन्ध्र विश्वविद्यालय से प्राध्यापक आए हुए थे । उनमे से एक सदस्य ने आइसक्रीम खा लिया । अच्छा लगने के कारण अतिरिक्त आइसक्रीम का सेवन किया । उन्हे शुगर की बीमारी थी । यो भी आइसक्रीम सेवन करने की उन्हे मनाई थी । उनके साथी उन्हे समझाते रहे, माने नही । लौटने के बाद उनका स्वास्थ्य बिगड गया । अस्पताल पहुँचाया गया । उनका निधन हो गया । तीसरे दिन का कार्यक्रम नही हो सका । दोपहर मे ही शोक सभा के बाद सदस्यो को छुट्टी कर दी गई । हम लोग तो घाटी अस्पताल मे थे । शव को वाल्टेर भिजवाने की व्यवस्था की गई । आन्ध्र विश्वविद्यालय के डॉ कर्णराज शेषगिरिराव शव के साथ गए । यहाँ से भी एक सदस्य को साथ भेजा गया । किस समय क्या होगा ? कुछ कहना कठिन है ।

डॉ. राजूरकर साहब अब अध्यक्ष हो गये थे । उनकी अध्यक्षता मे अधिवेशन कहाँ पर हो इसका निर्णय जल्दी नही हो सका । दक्षिण के किसी विश्वविद्यालय से ठीक से सम्पर्क नही हो सका । उन्हीं दिनों मे डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित यहाँ आए थे । उनके व्याख्यान विभाग मे हुए । वे मेरे घर पर भी आए । भाईसाहब डॉ. राजूरकर ने लखनऊ अधिवेशन की बात चलाई । उक्त अधिवेशन का निर्णय हो गया । इकतीसवाँ अधिवेशन लखनऊ मे हुआ । उस समय डॉ. भ. ह राजूरकर अध्यक्ष थे ।

हम सब लोग यहाँ से १९८८ ई. में लखनऊ गये । औरंगाबाद से लखनऊ पहुँचनेवालों की संख्या अधिक थी । मै भाईसाहब डॉ. भ. ह. राजूरकरजी तथा डॉ (श्रीमती) अनीता राजूरकरजी के साथ में गया । लखनऊ की सूपर फास्ट ट्रेन से गये । औरंगाबाद से डॉ. चन्द्रदेव कवडे तथा डॉ कमलाकर गंगावणे भी आए । वे दोनों साथ मे थे । लखनऊ मे हम सब मिल गये । लखनऊ मे चुनाव हुए । नये अध्यक्ष आचार्य कल्याणमल लोढा हुए । उपाध्यक्ष के रूप में मेरा चयन हुआ । मेरा नाम प्रस्तावित हुआ और मैं चुन लिय गया । आचार्य कल्याणमलजी लोढा की अध्यक्षता में अगले अधिवेशन के लिए प्रयत्न जारी थे ।

लखनऊ अधिवेशन के बाद मे लौटने की कथा लिखता हूँ । लखनऊ तक तो हम पहुँच ही गए थे । वहाँ से अयोध्या निकट ही है । सीधे बस जाती है। इसलिए लखनऊ से हम लोग अयोध्या गये । पहले फैजाबाद आता है । वस्तुत

फैजाबाद अयोध्या का ही भाग है । वह अयोध्या का नया विकसित नगर है । मुगलकालीन प्रतीत होता है । अयोध्या प्राचीन है । फैजाबाद मे नया मार्किट है। अयोध्या के लोगो का आना-जाना अधिक हैं । हम लोग अयोध्या के निकट बिड़ला धर्मशाला में ठहर गए । कमरे मिल गए । अयोध्या का राममन्दिर देखा । रामलला को देखा । राम का वह जन्मस्थान है । मन्दिर का साकेतिक रूप है । मसजिद तो बाद में ढह गई थी । पुलिस पहरा था । घेरे से बाहर महतो के पीठ थे । अयोध्या — वस्तुत साधुओ का नगर है । मन्दिर भी बहुत हैं । एक दिन में सारे मन्दिर देखना सभव नहीं । हम लोगो ने विशेष-विशेष मन्दिर देखे । वाल्मीकि रामायण सगमरमर के सफेद पत्थरो पर काले अक्षरो मे अकित है । दुमजली छत है । सीढियाँ चढकर ऊपर जाओ तो मन्दिर के अधिकारियो के कक्ष बने हुए हैं। उन कक्षो मे 'राम-नाम की बैंक हैं ।' वहाँ से लोग राम-नाम की रिक्त बहियाँ ले जाते हैं । नियमित राम-नाम लिखते हैं । बाद मे उक्त बही वहाँ जमा कर दी जाती है । आपके नाम का खाता खुल जाता है । श्रद्धालुओ की भीड रहती है । बैक के काउण्टर पर सम्बन्धित व्यक्ति बैठा हुआ मिलता है । वाल्मीकि मन्दिर के ठीक सामने साधुओं के ठहरने का स्थान है । अलग-अलग खुले कक्ष है । एक साधु के लिए आवश्यक जगह साधु को मिल जाती है । रमते जोगी आते है और फिर यात्रा पर चले जाते है । मन्दिरो में हमने फिर प्राचीन जैन मन्दिर देखे । नगर के मध्य भाग में है । हम सब की इच्छा सरयू तट देखने की हुई। वाहन द्वारा सरयू तट पहुँचे । सरयू का किनारा देखा । सरयू का घाट था । घाट की सीढ़ियाँ उतर कर नीचे गए । हाथ-पैर धोए । मुख धोया । सिर-पर भी जल डाला । सरयू का जल निर्मल था । नदी अपने बहाव में थी । रमणीय दृश्य देखा। लौट आए । अयोध्या के बाद वहाँ से हम कानपुर लौट गए । ट्रेन हमे कानपुर में पकडनी थी । कानपुर मे साहित्य रत्नालय के मालिक महेश त्रिपाठी ने होटल मे हमारे कमरे बुक कर दिये थे । होटल से महेश की दुकान निकट ही थी । हम लोग थके हुए थे । सोना चाहते थे । उस दिन रात्रि मे होटल के पडोस के प्रागण में रामानन्द सागर का कार्यक्रम चल रहा था । हमे सब सुनाई दे रहा था । सुमनजी को मंच मिल जाए तो उनकी आवाज गूजती है और वे मच जल्दी छोडते नहीं। हमने दोनो के भाषण सुने । नीचे नहीं गए ।

महेश त्रिपाठी ने हमारे बिठूर जाने की व्यवस्था कर दी । कानपुर गंगा नदी के किनारे पर है । बिठूर नानासाहब का स्थान है । १८५७ ई की क्रान्ति का

ऐतिहासिक स्मृति स्थल है। हमने वह ऐतिहासिक स्मृतिस्थल घूमकर देखा। वहाँ से गगा के घाट की सीढियाँ उतर कर नाव में बैठकर वाल्मीकि के आश्रम में गये। लव-कुश के जन्म-स्थान का वह आश्रम है। सीता के बनवास का वह स्थान है। प्रकृति की रमणीय गोद मे वह आश्रम बना हुआ है। सीता की कुटिया बनी हुई है। धरती में समा जानेवाला स्थान भी वहाँ पर है। अयोध्या से वह आश्रम दूर नही है। लखनऊ से हम लोग तो अयोध्या चले गए। उस समय डॉ कवडे और डॉ कमलाकर गगावणे कानपुर चले आए थे। उन्होने सभवत हमारी सारी व्यवस्था हमारे लिए की थी। महेश को सब बतला दिया हो। कानपुर स्टेशन पर हमे यथासमय महेश ने गाडी में बैठा दिया। हम लोग लौट आए।

लखनऊ के अधिवेशन के बाद मे, मै किसी अन्य अधिवेशन में नही गया।

□ □

आचार्य कल्याणमलजी लोढा

आचार्य कल्याणमलजी लोढा से परिचय बहुत पहले औरगाबाद में ही हुआ। १९८३ ई से पूर्व हुआ। उस समय डॉ भालचन्द्र तेलंग सेवानिवृत्त होने पर भी सक्रिय थे और व्याख्यानो मे आते रहते थे। पूना राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार सभा की शाखा औरगाबाद में है। उसमे उनको व्याख्यान देना था। उनके साथ पटना के डॉ. कुमार विमल भी आए हुए थे। उक्त आयोजन मे डॉ. तेलग साहब ने परिचय देते हुए कहा था कि दोनों मल्ल उपस्थित है। अपने-अपने विषय में निपुण है। व्याख्यान उस समय ही नहीं। बाद में भी हुए। कामायनी पर तीन व्याख्यान उन्होंने दिए है। मै उन दिनो टाउन हॉल, ६ आनन्दनगर मे रहता था। १९८३ ई से तो पत्र-व्यवहार जारी है। उनके पत्र मिलते ही रहते हैं। लखनऊ के भारतीय हिन्दी परिषद मे वे भारतीय हिन्दी परिषद के अध्यक्ष हो गए। उस अधिवेशन मे डॉ भ ह राजूरकर के बाद में उन्हे अध्यक्ष बनाया गया। उसी समय मै भी परिषद का उपसभापति हुआ। उसके बाद के वर्षो में उनके पत्र लगातार मिलते रहे हैं।

कलकत्ता में तो उनका स्थायी आवास है। किन्तु जयपुर में भी उन्होंने अपनी कोठी बना ली है। जयपुर का पता है— ७५, किरण मार्ग, सूरज नगर पश्चिम, सिविल लाइन्स, जयपुर ३०२००६। १९८८ ई के बाद मे, लखनऊ में भारतीय हिन्दी परिषद का अध्यक्ष हो जाने के बाद मे उनके साथ पत्र-व्यवहार बढ गया था। हम लोगो को लखनऊ के बाद के अधिवेशन की व्यवस्था करनी थी।

हैदराबाद तथा बम्बई विश्वविद्यालयो से सम्पर्क करने पर विशेष सफलता नही मिली। बाद के वर्षों में मेरा दो-तीन बार (१९८८ ई. से १९९१ ई. तक) जयपुर जाना हुआ। दिसम्बर १९८९ ई मे तो कलकत्ता मे मिलन हुआ था। उस समय उनकी पत्नी थीं। जयपुर की यात्रा में डॉ. नरेन्द्र भानावत से मिलना हुआ तो उन्होने कहा कि लोढाजी यहीं पर है। उन्होंने फोन किया। लोढाजी को फोन करके बुलवा लिया। मैंने आगामी अधिवेशन की बात चलाई। उस समय डॉ भानावत तैयार नही हुए। उस समय विभाग मे डॉ हीरालाल माहेश्वरी अध्यक्ष थे। इसीलिए। भानावतजी के बगले से हम लोग लोढ़ाजी के आवास पर गये। श्रीमती लोढा मिली। पत्नी भी साथ मे थी। घूमकर सारा भवन दिखलाया। लोढाजी से साहित्यिक संवाद हुआ। बाद मे उन्होंने हमें हमारे आवास पर छोड दिया। बाद मे भानावतजी से लोढाजी से पत्र-व्यवहार द्वारा सम्पर्क जारी रहा। और अन्तत जयपुर में अधिवेशन का निर्णय हुआ। अक्तूबर १९९२ ई. में उक्त अधिवेशन हुआ। कई पत्र मिले। मैं तो सितम्बर १९९२ ई. में पूना के रुबी अस्पताल में था। यद्यपि मै जा नही सकता था। तथापि मुझे सारे समाचार मिलते रहे है।

□ □

इलाहाबाद से सम्पर्क

परिषद का उपसभापति होने के कारण इलाहाबाद से सम्पर्क बना रहा है। विशेष रूप से डॉ रामकमलराय, डॉ. राजेन्द्रकुमार वर्मा और डॉ जगदीश गुप्त से पत्र-व्यवहार रहा है। दिल्ली से डॉ. कमलकिशोर गोयनका और पटना से डॉ. गोपालराय के पत्र भी मिलते रहे हैं। डॉ. जगदीश गुप्त तो यहाँ पर आए थे। विभाग में दो सप्ताह तक आते रहते थे। गेस्ट हाउस मे ठहरे थे। घर पर भी आए। परिषद के नाम जो औरंगाबाद में राशि बैंक में थी, उसे वे लोग इलाहाबाद ले जाना चाहते थे। बाद मे वह राशि इलाहाबाद के केन्द्रीय कार्यालय को दे दी गई। आचार्य कल्याणमलजी लोढा के दो पत्र —

प्रो. कल्याणमल लोढा

२ए, देशप्रिय पार्क (ईस्ट)
कलकत्ता - ७०००२६
दिनाक २० जून, १९८९

प्रिय भाई,

आपका दिनाक २१-५-८६ का पत्र मुझे परसों मिला। जयपुर में आपसे मिलकर मुझे भी हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह शुभ समाचार

भी मिला कि आपके पुत्र का विवाह १२-६-१९८९ को सम्पन्न होगा । घर मे वधू का आगमन भी सदैव मागलिक होता है । जून मे आप परिषद का कार्य पूरा कर दे । यह एक बडा दायित्व हम लोगो पर है । प्रयाग तो शिथिल है । अब ठीक होगा । जोधपुर मे अधिवेशन सभव नही है । हैदराबाद देखे । चारो ओर विचित्र निष्क्रियता है । मै तो अपना दायित्व निभा रहा हूँ । अभी तक रु ३५,०००-०० भेज दिये है । आर्थिक सकट तो दूर हो गया पर विभिन्न कार्यो में गति नही आयी है । यह कठिनाई है । सभवत मुझे प्रयाग जाना पडेगा । आप विश्व कोश का कार्य भी अब कर दे । यह भी एक बडा बोझ उठा लिया है । वीर प्रभु की ही शरण है ।

आप दक्षिण से जितने स्थायी सदस्य बना सकें — बनाएँ । परिषद के अखिल भारतीय रूप के लिए यह आवश्यक है ।

कृपया अपने समाचार देते रहें । परिवार मे सबको यथायोग्य । आप कलकत्ता कार्यक्रम अवश्य बनाएँ । आपका फोन तो २७८४२ ही है ?

आपका
कल्याणमल लोढा

० ०

कलकत्ता
दि २६-६-९०

प्रिय भाई,

आज आपका कृपा पत्र मिला । प्रसन्नता हुई । औरगाबाद से लौटकर मैंने आपको एक पत्र भेजा था, मिला होगा । डॉ. राजूरकर को भी पत्र भेजा था पर उत्तर नही मिला । अस्मिता के विवाह पर तुच्छ भेंट भी भेजी थी, पता नही वह भी मिली या नही । अब आप के पत्र का उत्तर —

१. अधिवेशनाङ्क छपा तो पर भद्दा । छपायी निकृष्ट है । कई पेज तो पढे ही नही जा सकते ।

२. प्रसाद भारतीय आत्मा व वर्मा के अक भी शीघ्र छपेंगे ।

३. अधिवेशन के लिए डॉ बादिवडेकर को लिखा है — अन्य कोई विभाग प्रस्तुत नहीं होता ।

४. अनुवाद सगोष्ठी का उद्‌घाटन भाषण भेजा, वह मिला। यह सूचना भी । आप ने देखा होगा परिश्रम से लिखा है । कैसा लगा ? लिखे ।

५ परिषद भवन के न्यास की नियमावली तैयार है । मैंने रूपरेखा डा. राजूरकर को भेज दी थी । आप देखें और अभिमत लिखें ।

६. मैंने उन्हे लिखा है कि निष्पादन समिति की बैठक वे औरंगाबाद मे बुलाए जिससे अन्तिम निर्णय लिए जा सकें । आप उनसे परामर्श करें ।

७ विश्वकोश का कार्य स्थगित हो रहा है । बिडला जी ने हठात् अपने हाथ खींच लिए । देश-विदेश मे मर्यादा नष्ट हुई। पर लगता है वह येनकेन प्रकारेण पूरा होगा ।

८ आप अपने स्वास्थ्य का का ध्यान रखे । अब कैसा है, तन्दुरुस्ती हजार नहीं लाख नियामत है ।

९. विश्व कोश के लिए आपकी सामग्री व्यय गयी । आपको चेक भी मिल गया होगा । परिवार मे सब को नमस्कार कहे। भाभी कैसी है ? बच्चे-बहुएं । पुत्री का सम्बन्ध होना चाहिए । लडकियाँ तो परायी धरोहर है, जिसकी है उसे ही सौंपना है । लीली आपको नमस्कार कह रही है । भाभी को भी ।

पत्र मे कृपया सविस्तार सूचनाएँ दें ।

आपका

कल्याणमल लोढा

□ □

डॉ. नरेंद्र भानावत

जब भी जयपुर गया, डॉ. नरेन्द्र भानावत के घर गया हूँ । हमारा परिचय सहज मे हुआ और फिर धीरे धीरे हम निकट आते गए । सन् १९७६ ई मे राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर मे सगोष्ठी हुई थी । लगभग दो सप्ताह तक जयपुर मे रहने का अवसर मिला । उस समय विभाग के सदस्यों से परिचय हुआ । उनमें

घरेलू सम्बन्ध डा भानावत से ही हुआ । उनके घर गया । हमारा पारिवारिक परिचय हुआ । बाद मे भी जब जब जयपुर गया डॉ भानावत से मिले बिना लौटा नही हूँ ।

मैने अनुभव किया कि डॉ भानावत ने अपने लिए क्षेत्र विशेष का चयन कर लिया है । और वे सदैव अपने क्षेत्र से सम्बन्धित बात करते थे । साहित्यिक कार्य तो करते ही थे किन्तु उसमे भी अधिक जैन-वाङ्मय पर कार्य करने मे रुचि लेते प्रतीत हुए । उनके कार्य के कई पहलू हैं । प्रधान रूप से लेखन कार्य तो है ही किन्तु उससे अधिक सामाजिक सगठन का कार्य भी राजस्थान मे बाहर के क्षेत्रो मे भी किया । संगोष्ठियाँ आयोजित की । उन सगोष्ठियो में मुझे भी निमंत्रित किया । सगोष्ठियो के विषय प्राय जैन साहित्य और सस्कृति रहा है । मेरा अपना विषय 'जैन साहित्य और सस्कृति' नही रहा । इसलिए चाहकर भी किसी सगोष्ठी मे सम्मिलित नही हो सका । किन्तु डॉ भानावत की ओर से योजनानुसार पत्र मुझे मिलते रहे हैं । इसीसे मैने जाना कि उनमें सामाजिक सगठन की शक्ति है। तीसरी बात यह कि सम्पर्क मे आनेवालों को लिखने के लिए प्रेरित करते रहे। कइयो से उन्होने धार्मिक और जीवन के व्यावहारिक विषयो पर लघु पुस्तके लिखवाई और उन्हे प्रकाशित भी किया । और फिर **जिनवाणी** का सम्पादन कार्य अलग से करते रहे हैं और जिनवाणी के माध्यम से उनका परिचय उन-उन क्षेत्रों मे होता गया, जहाँ-जहाँ जिनवाणी पहुँचती रही ।

जयपुर से बाहर झालावाड की मैथिलीशरण गुप्त सगोष्ठी मे हम मिले । हम लोग पास पास ही ठहरे हुए थे । सबेरे शाम साथ-साथ रहते । मन का साथी मिले तो बात बात मे समय कट जाता है और जीवन के क्षण सुखद प्रतीत होने लगते है । हम दोनों के अध्ययन के विषय एक नही रहे । इसलिए हम मिलकर काम नहीं कर पाए । किन्तु बातचीत मे उनके कार्यो का विवरण मुझे मिलता रहा और मैने सदैव उनके कार्य का मन मे सम्मान किया है और अब भी करता हूँ । साध्वी डॉ सरोजश्री जी की मौखिकी हेतु मुझे जयपुर जाना पड़ा । हम लोग रेलवे से मीनाक्षी एक्सप्रेस से गये थे । बम्बई विश्वविद्यालय ने पी-एच डी की मौखिकी जयपुर में लेने की अनुमति दी थी और बम्बई से पत्र पाने पर ही मै जयपुर गया था । जयपुर स्टेशन पर स्टेशन से बाहर आने पर मालूम हुआ कि जयपुर मे दगा हो गया है । सडके बन्द है । बाजार बन्द है । मुश्किल से एक ऑटो हमे मिला । हम लोग खोजते खोजते यथास्थान विश्वविद्यालय के निकट

पहुच गये । मैंने पहले ही राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को अपने आगमन के सम्बन्ध मे पत्र लिख दिया था । डॉ नरेन्द्र भानावत मे मिला । उन्होंने हमारी व्यवस्था, यूनिवर्सिटी के गेस्ट हाउस मे कर दी । मौखिकी के लिए प्रबन्ध निर्देशक बम्बई से यथासमय पहुंच नही सके । कारण — स्पष्ट था । जयपुर के दगे की खबर सब ओर पहुँच गई थी । बिना प्रबन्ध निर्देशक के मौखिकी कैसे ले ? हमारे सामने प्रश्न था । डॉ. नरेन्द्र भानावत ने छुट्टियो मे भी यथासमय विभाग में मौखिकी की व्यवस्था करवा दी । वे स्वय ही नही आए, अपितु विभाग के तीन-चार सदस्य भी यथासमय पहुँच गये । पी-एच.डी. की छात्रा साध्वीजी भी यथासमय विभाग में पहुँच गई । सबके सम्मुख नियमानुसार मौखिकी सम्पन्न हुई। वही पर रिपोर्ट लिखकर मैंने विभागाध्यक्ष डॉ. नरेन्द्र भानावत को दी । उन्होंने यथास्थान हस्ताक्षर किए और नियमानुसार रिपोर्ट बम्बई विश्वविद्यालय को भेज दी। उस समय यदि डॉ. भानावतजी का सहयोग न मिलता तो हमारी जयपुर यात्रा बेकार हो जाती । हमने अपना काम कर दिया । आगे का काम विश्वविद्यालय को करना था । जयपुर आवास के वे तीनो दिन ऐसे थे जिनमे हम शहर नही जा सके । अजमेरी गेट के आगे पुराने शहर मे जाना मना था । हम तो बिना शहर मे गए वैसे ही जयपुर से लौट गए । लौटते समय हम उस आतंकित वातावरण से बचकर सीधे घर पहुँचने की इच्छा से हवाई जहाज से लौटे । हमारे उस सक्षिप्त आवास मे डॉ. नरेन्द्र भानावत और उनके स्नेही सहयोगी डॉ. रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ का पूरा पूरा सहयोग और स्नेह मिला है । बहुत बाद मे हमे मालूम हुआ कि डॉ सरोजश्री की वह रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई और उन्हे बम्बई विश्वविद्यालय ने पी-एच डी की उपाधि प्रदान की ।

उक्त यात्रा के बाद हमारा सम्बन्ध और भी दृढ हुआ । औरंगाबाद के भारतीय हिन्दी परिषद के बाद, लखनऊ में अधिवेशन हुआ । उक्त अधिवेशन मे आचार्य कल्याणमलजी लोढ़ा भारतीय हिन्दी परिषद के अध्यक्ष हो गए । उनके साथ मै भी भारतीय हिन्दी परिषद का उपाध्यक्ष हुआ । लखनऊ के बाद मे अधिवेशन कहाँ हो ? इस चिन्ता मे हम रहते थे । हमारा पत्र-व्यवहार जारी था । पुन. जब जयपुर पहुँचा तो डॉ. भानावत के घर पर गया था । हम लोग बैठकर बातें कर रहे थे । डॉ. भानावतजी ने बतलाया कि इस समय आचार्य कल्याणमलजी लोढ़ा यही पर है, चाहे तो फोन मिला देता हूँ, बात कर लीजिए । हमारी बात हुई। कहा कि वही ठहरो, मै आ रहा हूँ । आचार्य कल्याणमलजी लोढा वहाँ पर आए।

हमारी बातचीत हुई । उस समय मैने कहा था कि अगला अधिवेशन जयपुर मे होना चाहिए । किन्तु उस समय अध्यक्ष डॉ हीरालाल माहेश्वरी थे । मैंने उनसे बात की । किन्तु उत्साह दिखलाई नही दिया । प्रस्ताव रखकर हम लोग प्रतीक्षा करते रहे । उसके बाद दूसरी बार जब जयपुर पहुँचा तो हम दोनो ही डॉ भानावतजी के घर पहुँचे । उस दिन दोनो ही डॉ भानावत और डॉ शान्ता भानावत किसी यात्रा पर निकलने की तैयारी मे थे । समय बहुत कम था । फिर भी हम लोगो के साथ उनकी बातचीत हुई । कहा कि आचार्य कल्याणमलजी लोढा इस समय भी यही पर है । इस बार वे अध्यक्ष हो गए थे । अब वे भारतीय हिन्दी परिषद का अधिवेशन जयपुर में ले सकते थे । इस सम्बन्ध मे समयाभाव के कारण मेरी उनसे विशेष बातचीत नही हुई । लौटने से पूर्व मै आचार्य कल्याणमलजी लोढा से मिलने के लिए उनके जयपुर के निवास स्थान पर गया था । भेट हो गई । बात भी हुई । लौटने के बद मालूम हुआ कि जयपुर मे भारतीय हिन्दी परिषद का अधिवेशन हो रहा है । मुझे प्रसन्नता हुई । किन्तु अस्वस्थता के कारण मैं जयपुर नही जा सका । औरंगाबाद से विभाग के कई सदस्य जयपुर गए थे । लौटकर आनेवालो ने जयपुर के अधिवेशन की बडी सराहना की । डॉ नरेन्द्र भानावत ने अधिवेशन की व्यवस्था उत्तम की थी । मुझे उनके दो पत्र अधिवेशन के बाद मे मिले है । स्मारिका भी मिली । सब कुछ सुना और पढा भी । किन्तु चाहकर भी उनसे मिलना नहीं हुआ । ४ नवम्बर १९९३ को दोपहर मे आकाशवाणी से सुना कि डॉ. नरेन्द्र भानावत नहीं रहे । सन्न रह गया । विश्वास नहीं हुआ । तुरन्त पत्र लिखा । पत्र मिलने पर स्वीकार करना पडा । उनके अन्तिम तीन पत्र आगे प्रस्तुत है —

डॉ नरेन्द्र भानावत
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय

सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग,
तिलक नगर,
जयपुर - ३०२ ००४
दिनाक २-११-९१

प्रिय बोरा सा.

सस्नेह बन्दे ।

मै नैनीताल, मसूरी, ऋषिकेश, हरिद्वार, देहरादून, मथुरा, वृन्दावन व आगरा की दस दिवसीय यात्रा से लौटा ही हूँ ।

यहाँ आने पर आपका ३-१०-९१ का लिखा पत्र प्राप्त हुआ ।

डाक-अव्यवस्था के कारण पत्र समय पर नही मिला । यदि पत्र समय पर मिल जाता तो आपको असुविधा न होती और विश्वविद्यालय का गेस्ट हाउस गौरवान्वित होता ।

आप भाभीजी के साथ घर पर पधारे, पर हम आपका विशेष आतिथ्य न कर पाये, उसी दिन हमे जाना था, अत पूरी बात भी न हो सकी । आशा है, अन्यथा न लेगे ।

प्रो लोढा से आपका मिलना हो गया होगा । भारतीय हिन्दी परिषद के अधिवेशन के सम्बन्ध मे क्या बात चली, लिखे ।

दीपावली पर आपका व परिवार के सभी सदस्यो का अभिनंदन व बधाई ।

आपका

डॉ नरेन्द्र भानावत

० ०

डॉ नरेन्द्र भानावत
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय

सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग,
तिलक नगर,
जयपुर - ३०२ ००४
दिनाक ७-१-९३

प्रिय बोगजी,

सस्नेह,

आपका पत्र मिला था । अधिवेशन की सफलता का श्रेय वस्तुत आप जैसे सहृदय, शुभचिन्तक, विद्वान्, साहित्यकारो की भागीदारी को ही है । मैं तो मात्र निमित बना । आपकी सद्भावनाओ के लिए आभारी हूँ । स्मारिका शीघ्र ही आपकी सेवा में पहुँचेगी ।

नव वर्ष आपके एवं आपके समस्त परिवार के लिए सुख श्रीवर्धक एव मगलमय हो ।

इन्ही शुभकामनाओ के साथ ।

आपका

डॉ नरेन्द्र भानावत

० ०

डॉ नरेन्द्र भानावत
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय

सी-२३५ ए, दयानन्द मार्ग,
तिलक नगर,
जयपुर - ३०२ ००४
दिनाक ७-२-९३

प्रिय बोरा,

सस्नेह वन्दे !

सौ का. नमिता एव चि महेश के शुभविवाह की कुकुम पत्रिका सधन्यवाद प्राप्त हुई ।

चाहते हुए भी इस अवसर पर सदेह उपस्थित होना हमारे लिए सभव नही हो पा रहा है, कृपया क्षमा करें। समन हम आपके साथ है ।

नव-दम्पती को हमारी ओर से आशीर्वाद कहें । हम उनके चिर सुखी दाम्पत्य जीवन की मगलकामना करते है ।

परिवार, समाज और राष्ट्र को अपने स्नेह, शील एव कर्मठ व्यक्तित्व से सिंचते हुए अभ्युदय और श्रेयस के पथ पर निरन्तर बढ़ते हुए नव-दम्पती यशस्वी बने, यही मगलकामना है ।

परिवार में सभी को स्नेहाभिवादन ।

आपका
डॉ नरेन्द्र भानावत

□ □

डॉ. विजयपालसिंह अभिनंदन ग्रंथ

मैं 'भाव, उद्वेग और सवेदना'—पुस्तक लिख रहा था । उसको सुनाने डॉ भालचन्द्र तेलग के पास नियमित जाता था। उस समय वे अपने सुषमा निकुंज, बगले के पीछे के दो-तीन कमरो मे रहते थे। मुख्य बगला पूरा का पूरा किराये से दिया था । उनकी सेवामे एकमात्र पत्नी सुशीलादेवी थी । वह उनकी दूसरी पत्नी थी । पहली पत्नी दिवंगत हो गई थी । उनके दो पुत्र थे और दो पुत्रियॉ थी । दोनो पुत्र मध्यप्रदेश मे और दोनो पुत्रियॉ राजस्थान मे थे । पहली पत्नी का निधन १९४८ ई मे हुआ । तेलग साहब जब औरंगाबाद आए उस समय उनकी पहली पत्नी नही थी । दूसरी पत्नी के साथ कोई भी बच्चा रहने के लिए तैयार नही था । मिलने के लिए आते और मिलकर चले जाते । उन्होंने सारी

जिन्दगी औरंगाबाद मे गुजारी । मै जब पहुचता तो बहुत खुश होते । जो सामग्री लाकर पहुँचता, उसे ध्यान से सुनते । टिप्पणी करते । रीतिकाल के तो अधिकारी विद्वान् थे । उन्हें शुक्लजी याद आते । वे बनारस मे उस समय पढ़नेवालो मे थे, जब आचार्य शुक्ल पढानेवालो में थे । त्रिवेणी के सम्पादक उनके मित्र थे। पुरानी स्मृतियो को दोहराते । मुझे वाराणसी से डॉक्टर साहब के पत्र मिलते रहते थे । तेलंग साहब बोले — 'क्यो न डॉ. विजयपालसिह का अभिनदन करें ?' मैंने कहा — 'मैं तो करना चाहता हूँ, किन्तु यह होगा कैसे ? बोले — ' औरंगाबाद में बैठने से काम नहीं होगा । इसके लिए वाराणसी जाना होगा । उनसे अनुमति लेने के लिए मिलना बहुत आवश्यक है । यह १९८० ई की बात है । १९७९ ई तक मैं पुस्तके छापता रहा । १९८० ई. मे मकान बनवाने की ओर ध्यान दिया था । वस्तुत पुस्तक छपकर आते ही १९७९ ई मे ही काम आरम्भ कर दिया था । उस समय कोई नई पुस्तक नही लिख रहा था । डी.लिट् १९७९ ई में हुआ था । मैंने डॉ तेलग साहब के अनुरोध को स्वीकार किया । वाराणसी गया । डॉक्टर साहब मिल गये । उनके घर पर ही ठहरा । निवेदन किया । पहले तो नकार दिया । कहा — 'क्यो चक्कर में पड़ता है ?' मैंने कहा — 'आप, हाँ कह दीजिए । बाकी काम मेरा है । मै सब कुछ करूँगा ।' मान गए । वही पर काम शुरू हो गया । उस समय दीपावली की छुट्टियाँ थीं । नवम्बर १९८० की बात हैं ।

उक्त काम की रूपरेखा तैयार करने, वाराणसी के नामो की सूची बनाने तथा अन्य सामग्री संकलन हेतु मैंने डॉ नागेन्द्रनाथ उपाध्याय का सहयोग लिया । उनके घर पर बैठकर काम किया । दूसरे दिन डॉक्टर साहब के घर पर बैठकर काम कर रहा था । उसी समय औरंगाबाद से तार मिला कि बम्बई में मेरे साले साहब मदनलालजी मंडलेचा नही रहे । वे उस समय चेम्बूर मे इग्लिश माध्यम हाईस्कूल के प्रिंसिपल थे । उस समय मेरा पुत्र सुनिल बम्बई में था । किसी फैक्ट्री की योजना के अन्तर्गत काम करने गया था । वह मेकानिकल डिप्लोमा हो गया था। समय की बात देखिए वह अपने मामाजी से मिलने के लिए पहली बार चेम्बूर गया और उसी रात उसके मामाजी चल बसे । अन्तिम समय मे वह उनके पास मे था । तार मिलते ही मैंने डॉक्टर साहब से बिदा ली । स्टेशन पहुँच गया । मुगलसराय गया । क्योकि वही पर गाड़ियाँ अधिक मिलती है । किसी भी गाड़ी से लौटा जा सकता था । मै पहले तो औरंगाबाद पहुँचा और बाद में तुरन्त बम्बई

(चेम्बूर) गया, बम्बई मे पारिवारिक लोगो से मिला। अपनी स्कूल मे मदनलालजी बहुत लोकप्रिय थे। अब तो कुछ वर्ष पूर्व बम्बई कार्पोरेशन ने उस स्कूल के मार्ग का नाम मदनलाल मडलेचा मार्ग रख दिया है।

बम्बई से लौटकर मैने योजनानुसार सबको पत्र लिखे। सब से पहले डॉ नगेन्द्र का पत्र मिला। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा —

डॉ नगेन्द्र — ई-४/१८, मॉडल टाउन
कृतकार्य आचार्य, हिन्दी विभाग — दिल्ली-११०००९
दिल्ली विश्वविद्यालय — दूरभाष - ७१७१६९
दिनाक २५-११-८०

प्रियवर

आपका पत्र २४ नवम्बर १९८० मिला। डॉ विजयपालसिह अभिनदन ग्रथ की योजना के लिए मै आपका साधुवाद करता हूँ। आप मेरा नाम सम्पादक मण्डल में अवश्य रख लीजिए।

शुभैषी
नगेन्द्र

उसके बाद तो और पत्र मिलते गए और राशि भी जमा होती रही। फुटकल स्वरूप के लेख न छापकर काव्यशास्त्र से सम्बन्धित लेख एकत्रित करने का निर्णय किया। सम्पादक-मण्डल मे नाम छपे है और जिनका निर्णय अंतत लिया गया, वे नाम इस प्रकार हैं —

प्रधान सम्पादक · प जगन्नाथ तिवारी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरबशलाल शर्मा, और डॉ सत्येन्द्र।

सपादक मडल डॉ. ओम्प्रकाश, डॉ. रमेशकुमार शर्मा, डॉ. प्रेमस्वरूप गुप्त, डॉ. चन्द्रभान रावत, डॉ. भ. ह राजूरकर, और डॉ. मलिक मोहम्मद।

प्रबन्ध सम्पादक एव संयोजक डॉ राजमल बोरा।

इन नामों के अतिरिक्त परामर्श मडल मे बारह नाम इस प्रकार थे —

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा (पटना) / डॉ विजयेन्द्र स्नातक (दिल्ली) / डॉ रामसिह तोमर (शान्तिनिकेतन) / डॉ संसारचन्द्र (जम्मू-कश्मीर) / डॉ सरला शुक्ल (लखनऊ) / डॉ. धर्मपाल मैनी (चण्डीगढ) / डॉ श्यामनन्दन किशोर (मुजफ्फरपुर) / डॉ. राजेन्द्रप्रसाद शर्मा (जयपुर) / डॉ एस. टी. नरसिहाचारी (तिरुपति) / डॉ. कुमार विमल (पटना) / डॉ एस. कृष्णमूर्ति (बेंगलौर) और डॉ रवीन्द्रकुमार जेन (मद्रास)।

इन नामो मे डा. नामवरसिंह का नाम भी रखा गया था किन्तु उनका नकारात्मक पत्र मिलने के कारण उनका नाम हटा दिया गया। यो इस कार्य के लिए अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी विभागों के सदस्यों से अपूर्व सहयोग मिला है। औरंगाबाद के हिन्दी विभाग के प्रत्येक सदस्य ने आर्थिक सहयोग दिया है। डॉ. भ. ह. राजूरकर एवं श्रीमती (डॉ.) अनीता राजूरकर दोनो ने ५०१ की राशि अलग अलग दी। यो सामान्य रूप में १०१ रु. सभी ने अपनी ओर से दिए है। सब के नाम नहीं लिख रहा हूँ। इस सम्बन्ध मे ग्रंथ के आरंभ में **'यह आयोजन यह ग्रंथ'** शीर्षक के अंतर्गत मैंने लिखा है —

"नवम्बर १९८० की वाराणसी यात्रा के बाद पहली यात्रा दिसम्बर १९८० में हैदराबाद और तिरुपति की की। मार्च ८१ मे जयपुर, जोधपुर तथा उदयपुर गया। बाद मे २२ अप्रैल से १७ मई तक फिर लम्बी यात्रा पर गया। इस बार, वाराणसी, इलाहाबाद, कानपुर, अलीगढ, बनवारीपुर (डॉक्टर साहब का गॉंव), आगरा तथा दिल्ली गया। आगे २८ अक्तूबर से ९ नवम्बर तक फिर वाराणसी, इलाहाबाद, दिल्ली तथा हैदराबाद गया। फरवरी १९८२ ई. मे फिर दिल्ली गया। इन यात्राओं में बहुतों से भेंट हुई। सहयोग राशि एकत्रित हुई और ग्रन्थ के लिए सामग्री भी मिली। डॉक्टर साहब का गाँव बनवारीपुर, उनके प्रधान कार्यक्षेत्र आगरा, अलीगढ, तिरुपति और वाराणसी — सब स्थानों पर गया हू। उनके प्रधान कार्यक्षेत्र दो रही रहे हैं — तिरुपति (श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय) और वाराणसी (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) इन कार्य क्षेत्रो के आधार पर ही ग्रंथ का नाम 'वेंकटेश्वर से विश्वनाथ' रखा गया है।

यहाँ पर प. जगन्नाथ तिवारी का विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ। वे डॉक्टर साहब के ही गुरु नहीं अपितु डॉ. नगेन्द्र के भी गुरु रहे है। जब प्रधान सम्पादको मे मैंने डॉ. नगेन्द्र का नाम रखा तो उन्होंने पत्र लिखकर निर्देश दिया कि सबसे ऊपर नाम प. जगन्नाथ तिवारी का रखना चाहिए। आगरा की यात्रा में श्री विश्वभर अरुण के सहयोग से जब उनसे मिलने, उनके निवास स्थान पर पहुँचा, तो उस समय वे अपने बगीचे में काम कर रहे थे। धोती और बनियाइन पहने हुए थे। उनके मुख पर श्रम की प्रसन्नता विराजमान थी। वैसे ही उठकर चले आए। प्रसन्न मुद्रा से स्वागत किया। मैं चाहता कि पण्डितजी डॉक्टर साहब के लिए आशीर्वचन लिख दें। वे लिखवाते तो मै लिख लेता। किन्तु तुरन्त यह संभव नहीं हुआ। मेरे पत्र उन्हे मिले थे। स्वीकार किया। कार्य के प्रति सहमति व्यक्त

की .. हा, ठीक है । कहा । मै देख रहा था, पण्डितजी में केशव की विद्वता के साथ, वह अक्खडता भी थी । उनकी वाणी गुरु-गम्भीर लगी । उनके बोलने मे बडा आत्मविश्वास लगा । उस दिन मुझे वैसे ही लौटना पडा बाद मे मैंने डॉ राजेन्द्रपालसिंह को पत्र लिखा कि गुरुजी के आशीर्वचन चाहिए और यह कार्य आपको ही करना है । ३१ अगस्त १९८१ ई के पत्र के साथ उन्होंने पण्डितजी के आर्शीर्वचन भिजवाए । आर्शीर्वचन लिखवा लेने की कठिनाई भी बतलाई। मैं चाहता था कि ग्रंथ के आरम्भ में उनके आशीर्वचन, उन्ही के हस्ताक्षर मे छपे। आवश्यक निर्देश देने पर भी यह सभव नही हुआ । उनके आर्शीर्वचन आरभ में छप गए है ।

ग्रथ के प्रकाशन के बाद जब मैंने ग्रथ की प्रति पण्डितजी को भिजवाई तो पण्डितजी गद्‌गद् हो गए । उन्होने प्राप्ति सूचना का पत्र तुरन्त लिखा । पत्र इस प्रकार है —

२/२६, स्वेदशी बीमानगर,
आगरा,
दिनाक · २१-१०-१९८३

प्रिय बोराजी,

आपके द्वारा प्रेषित स्मारिका-सहित विजयपालसिह अभिनंदन ग्रथ प्राप्त हुआ । धन्यवाद ।

आपने जिस योग्यता तथा परिश्रम के साथ इस ग्रन्थ को तैयार किया है, वह अत्यंत प्रशसनीय है । बधाई है ।

जगन्नाथ तिवारी

अभिनन्दन-ग्रंथ की योजना को सफल बनाने में मुझे सबसे अधिक सहयोग डॉ नगेन्द्र का मिला है । इस सम्बन्ध मे मुझे उनके पत्र मिले हैं । कुछ पत्र प्रस्तुत कर रहा हूँ —

दिल्ली-९
दिनाक . २८-२-८१

प्रियवर,

आपका पत्र क्रमांक ६२८ दिनाक १७-२-८१ मिला । आप अभी सकलित सामग्री मेरे पास न भेजे । मेरा अपना सैद्धान्तिक लेख मेरे पास तैयार है, यथासमय आपको भेज दिया जाएगा । डा विजयपालसिंह के व्यक्तित्व के विषय में भी एक छोटा-सा

लेख लिखने का प्रयत्न करूँगा । उस बीच आप दो काम करें —१) डा विजयपालसिह के दोनो शोधप्रबन्धो पर विस्तृत लेख और अन्य पुस्तको पर समीक्षाएँ तैयार कराएँ । २) लगभग ३०-४० पृष्ठ मे किसी एक व्यक्ति से विस्तृत जीवन लिखाएँ । यह काम आप स्वय भी कर सकते है । उस लेख का शीर्षक हो सकता है — निष्ठा और सकल्प ।

मै दिल्ली से कुछ सैद्धान्तिक लेख भिजवाने का प्रयत्न करूँगा। रीतिकाव्य और काव्यशास्त्र के विशेषज्ञ विद्वानो से लेख प्राप्त करने का आग्रह करना चाहिए । ये लेख यदि पूर्व-प्रकाशित भी हो तो कोई हानि नही है । विभिन्न महाविद्यालयो मे एक-एक व्यक्ति को यह दायित्व सौप देना चाहिए कि अपने सहयोगियों से लेख एकत्र कर शीघ्र ही भिजवाने का प्रयत्न करे ।

शुभैषी
नगेन्द्र

डा. राजमल बोरा,
६, आनन्द नगर, टाउन हाल,
औरगाबाद - ४३१ ००१ (महाराष्ट्र)

प्रतिलिपि
प्रो. डा विजयपालसिह
अध्यक्ष - हिन्दी विभाग,
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५

० ०

दिल्ली-९
दिनाक ११ अप्रैल १९८१

प्रियवर,

आपके पत्र — दिनाक के लिए धन्यवाद । ग्रन्थ के लिए दो लेख अलग साधारण डाक से ही भेज दिए है । १०१ रुपये का चैक आपके नाम भेज रहा हूँ । कृपया प्राप्ति-सूचना तत्काल भेजे।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली - ११०००९
दिनाक १८-६-८१

प्रियवर,

आपके पत्र से समारोह विषयक प्रगति का समाचार मिला। दिल्ली मे जाते हुए आप — मेरे नाम जो सन्देश छोड गए थे, उससे यह जानकर सन्तोष हुआ था कि राजपाल एण्ड सन्स ने ग्रन्थ प्रकाशन का दायित्व स्वीकार कर लिया है। यह वास्तव मे उनका कर्तव्य है। इसीलिए हमने किसी अन्य प्रकाशक से इस बारे मे बातचीत करना उचित नहीं समझा। लेकिन बीस हजार रुपये की बात सुनकर आश्चर्य हुआ।

खैर, आप अपना काम करते जाइए। जो भी स्थिति होगी। उसके अनुसार किया जाएगा।

मैं दिल्ली से २-१ लेख भिजवाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। लोग अभी तक परीक्षा कार्य मे व्यस्त रहे है। सस्मरण भी मै जल्दी ही लिखकर भेजने की कोशिश करूँगा।

आशा है आप प्रसन्न है।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनाक १-८-८१

प्रियवर,

आपका पत्र दि. २७-७-८१ मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ६०० पृष्ठ की सामग्री प्राप्त हो गई है। मै इन दिनो अनेक प्रकार के साहित्यिक तथा सरकारी कामो मे उलझा रहा, इसलिए अभी संस्मरण नही लिख पाया। इधर कुछ दिन से ऑखो में थोडी तकलीफ है। फिर भी, शीघ्र ही अपना सस्मरण व्यक्त कर दूँगा।

प्रकाशन के विषय मे क्या निर्णय हुआ ? क्या २०,००० देकर राजपाल एण्ड सन्स ने ही प्रकाशन का अनुबन्ध किया जाएगा

या कुछ और व्यवस्था करने का विचार है । मेरी राय मे इतनी बडी रकम देकर राजपाल एण्ड सन्स से छपवाने की अपेक्षा किसी अन्य मध्यम श्रेणी के प्रकाशक से ही बात करनी चाहिए । डा विजयपालसिह का प्रभाव अब भी निश्शेष नही हुआ. इसलिए यह काम मुश्किल नहीं होगा । बाकी जैसा आप लोग ठीक समझे ।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनाक १२-९-८१

प्रियवर,

आपके पत्र यथासमय मिले । यह जानकर सन्तोप हुआ कि आपने अभीष्ट धनराशि एकत्र कर ली है । मेरा अनुमान है कि राजपाल एण्ड सन्स को २१००० रु (२०,००० ग्रन्थ, १००० स्मारिका के लिए) देने के बाद आयोजन आदि के लिए १०,००० रु की और व्यवस्था करनी हागी ।

२० x ३० / ८ आकार के ४०० मुद्रित पृष्ठो के लिए लगभग ५५०-६०० फुलस्केप टंकित पृष्ठो की सामग्री काफी होगी, जो शायद आपके पास आ चुकी है । इसलिए आप लेखों की पूरी तालिका पृष्ठसख्या सहित तैयार कर मेरे पास भेज दें, जिससे कि मै ग्राह्य और त्याज्य सामग्री का विश्लेषण कर सकूँ । लेखो का पुनरीक्षण और प्रूफ-शोधन आपको या आपके किसी अन्य सहयोगी को, जो इस कार्य मे दक्ष हो, करना होगा । मेरे लिए सभी लेखो का पुनरीक्षण करना सम्भव नही है ।

तालिका में लेख-शीर्षक, लेखक का नाम और पृष्ठ सख्या देना जरूरी है । इस बीच मे आप सभी लेखो का पुनगीक्षण आगम्भ कर दीजिए ।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनाक : २५-११-८१

पियवर,

आपका पत्र और सलग्न सामग्री मिली । धन्यवाद ।

'प्रधान सम्पादक' शीर्षक के अन्तर्गत प. जगन्नाथ तिवारी का नाम ऊपर मेरी जगह और मेरा नाम उनकी जगह होना चाहिए । वे सब से बडे है ओर मेरे भी गुरु रहे है । अगर फोल्डर छप गया हो तो ग्रन्थ मे यही क्रम रहना चाहिए ।

'राजपाल एण्ड सन्स' से बाकायदा अनुबन्ध कर लेना चाहिए जिससे आगे कोई कठिनाई न हो ।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनाक १-२-८२

प्रियवर,

आपका पत्र यथासमय मिल गया था । ग्रन्थ-प्रकाशन के कार्य की प्रगति से अवगत कराते रहे ।

शेष कुशल ।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनाक २९-३-८२

प्रियवर,

आपका पत्र और सलग्न तालिका आदि प्राप्त हुई । विषयक्रम ठीक है । शेष सामग्री के बारे मे अभी कोई कार्यवाही नही करनी चाहिए । पुनर्विचार का भी अब प्रश्न नहीं उठता । ग्रन्थ-प्रकाशन के बाद उसे क्षमा याचना के साथ लौटा दिया जाएगा । सौजन्य

की दृष्टि से आप चाहे तो ग्रन्थ की एक प्रति उन्हे भेट कर दें। पर इस पूरे प्रसग पर बाद मे ही विचार करना चाहिए।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनांक ५-५-८२

प्रियवर,

आपका पत्र दिनाक १-५-८२ मिला। सम्पादकीय आप ही लिखे और उसकी एक प्रति मेरे पास भेज दे।

शुभैषी
नगेन्द्र

० ०

दिल्ली-११० ००९
दिनांक - २५-५-८२

प्रियवर,

सम्पादकीय पर एक निगाह डालकर उसे लौटा रहा हूँ। ठीक है।

शुभैषी
नगेन्द्र

ग्रंथ तैयार हो गया। उसके लिए मुख्य अतिथि और तिथि के निर्णय की आवश्यकता थी। तदर्थ दिल्ली गया। डॉ नगेन्द्र के सहयोग से ही वह कार्य सभव था। मुझे साथ लेकर डॉ नगेन्द्र पं कमलापति त्रिपाठी के पास पहुँचे। वे बहुत वृद्ध हो गए थे। उनसे मिलना बडा कठिन था। प्रतीक्षा मे बहुत से काग्रेसी सदस्य जो विभिन्न प्रदेशों से आए हुए थे, बैठे हुए थे। उनसे पहले हमारा भीतर पहुँचकर मिलना सभव नहीं था किन्तु डॉ. नगेन्द्र ने चिट पर अपना नाम लिखकर भिजवाया तो पडितजी ने तुरन्त बुलवा लिया। डॉ नगेन्द्र मुझे साथ लेकर भीतर पहुँचे। पहले तो पण्डितजी के चरण-स्पर्श किए। बाद में पंडितजी से प्रार्थना

की गई। पण्डितजी ने अपनी अवस्था को दिखलाते हुए कहा — 'अब, मै कहीं नही जाता।' वह उनकी अपनी निजी विवशता थी। हम लोग बाहर आए। डॉ. नगेन्द्र ने उस समय डॉ. नूरुल-हसन के पास जाना उचित लगा। उन्हें रूस का राजदूत बना दिया गया था और शीघ्र ही उन्हें रूस पहुँचना था। डॉ. नगेन्द्र मुझे उनके बगले पर ले गए। डॉ. नूरुल हसन साहब तैयार हो गए। किन्तु उनका कहना था कि १५ सितम्बर १९८३ से पहले यह कार्यक्रम तैयार होना चाहिए। उनसे स्वीकृति लेकर हम लौट आए। उसके बाद डॉ. नगेन्द्र मुझे श्री वियोगी हरि के पास ले गए। वे तो डॉक्टर नगेन्द्र के आवास से निकट ही रहते थे। उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी और कार्यक्रम बन गया। बाद मे ईश्वरचन्द्रजी खण्डेलवाल से मिलकर निमत्रण-पत्र की सामग्री देकर मै औरंगाबाद लौट आया।

औरंगाबाद पहुँचने के बाद मे मैने निमत्रण-पत्र की प्रतीक्षा की। वे आए नही। अत मैने यही पर निमत्रण पत्र साइक्लोस्टाइल कर लिए और प्रतियाँ भेज दी। पत्रिकाएँ बाद मे पहुँची और तब तक विलम्ब हो चुका था। उस समय समारोह के आयोजन का काम मै अकेला नहीं कर सकता था। उस समय डॉ. धनराज मानधाने और मेरा छोटा पुत्र अनिल मेरे साथ दिल्ली आए। दिल्ली मे हम लोग फतेहपुरी की लक्ष्मीनारायण धर्मशाला मे ठहरे हुए थे। दो दिन पूर्व पहुँच गए थे क्योंकि हमें आयोजन की तैयारी करनी थी। डॉ. नगेन्द्र से मिलने सबेरे-सबेरे पहुँचे, उस समय वे आयोजन से सम्बन्धित प्रमुख सदस्यो को फोन कर रहे थे। उन्होंने स्नातकजी से बात की तो स्नातकजी बिगडे हुए थे। उनका क्रोध मुझ पर था। शिकायत यह थी कि उन्हे निमत्रण-पत्र व्यवस्थित नहीं मिला है। उनके क्रोध को शान्त करने के लिए डॉ. नगेन्द्र ने फोन मुझे दिया। मैंने बात की। बहुत गरम थे। मै कुछ कहूँ, इस बात को सुनने के लिए वे तैयार नहीं थे। मुझे डॉक्टर नगेन्द्र ने पहले ही बतलया दिया था कि मच पर बैठने और ग्रथ के विमोचन का काम आपको करना है — ऐसा कहना। इस पर वे शांत होंगे। तदनुसार मैंने प्रार्थना की और निवेदन किया तो वे मान गये और आने के लिए तैयार हो गए। दूसरे दिन सायकाल मे कार्यक्रम था। डॉक्टर साहब वाराणसी से आ गए थे। वाराणसी से कई लोग आए थे। डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय आए थे। डॉ. रावत भी पहुँच गए थे। मै सबेरे-सबेरे पुन: डॉ. नगेन्द्र के घर पर गया था। वे मेरे साथ व्यवस्था देखने हेतु राजपाल एण्ड सन्ज़ आए। वहाँ की सीढ़ियो पर चढे नही। मुझ से कहा कि ईश्वरचन्द्रजी को नीचे बुलवा लो।

ईश्वरचन्द्रजी को नीचे बुलवा लिया और कांस्टीट्यूशन क्लब मे यथासमय पहुँच क व्यवस्था करने के लिए कह दिया । मै, मानधाने और अनिल यथासमय पहुँच गए। ग्रंथ की प्रतियाँ वहाँ पर आ गई थी । अनिल और मानधाने व्यवस्था मे लगे हुए थे ।

यथासमय लोग आने लगे । मच पर बैठनेवालों में श्री वियोगी हरि, डॉ नूरुल हसन, डॉ विजयेन्द्र स्नातक आदि केन्द्र में थे । स्नातकजी के पास में डॉ. विजयपालसिंह थे । डॉ. नगेन्द्र किनारे पर बैठे हुए थे । मैं दूसरे किनारे पर खडा था । विश्वनाथजी (प्रकाशक) को बैठने के लिए प्रार्थना की । वे बैठे नही। योजना के अनुसार कार्यक्रम हुआ । मैंने आयोजन के कार्य का विवरण प्रस्तुत किया और इसे सफल बनानेवाले सभी सदस्यों के ऋण को स्वीकार कर सभी को धन्यवाद दिया ।

उक्त आयोजन मे दिल्ली विश्वविद्यालय के और स्थानीय कालेजों के प्राध्यापक थे । डॉ निर्मला जैन थी । डॉ. ओम्प्रकाश थे और कई लोग थे । मंच के वक्ताओ के भाषण हुए । ग्रंथ विमोचन हुआ । मैंने आरम्भ में कह दिया था कि सहयोग राशि प्रदान करनेवाले सभी अपना-अपना ग्रंथ ले सकते हैं । तदनुसार लगभग चालीस ग्रंथ वहीं पर वितरित हो गए । शेष प्रतियाँ मुझे ईश्वरचन्द्रजी ने औरंगाबाद भेज दी । सदस्यों की सख्या चार-सौ से कुछ ऊपर ही थी । उनको मैंने औरंगाबाद पहुँचने के बाद मे वितरित किया । रजिस्टर्ड डाक से सब को भेज दी ।

यहाँ पर डॉक्टर नगेन्द्र के सम्बन्ध मे कुछ कहना चाहता हूँ । वे अपने से बडों का सम्मान करना जानते हैं । उन्होंने स्नातकजी के क्रोध को शांत किया और मंच के केन्द्र में स्वय नही बैठे । काम तो सब उनका ही किया हुआ था। दिल्ली मे वह आयोजन डॉ. नगेन्द्र और विश्वनाथजी के सहयोग के बिना संभव नहीं था । विश्वनाथजी का काम ईश्वरचन्द्रजी करते थे । मै दोनो ओर पहुँचता था । इस आयोजन मे ही वे दोनों मिले किन्तु उस दिन भी बैठकर बात नही की । डॉ नगेन्द्र की तरह विश्वनाथजी भी सम्मान के भूखे नहीं थे । वे मंच पर बैठे ही नहीं । यों इस आयोजन का सारा खर्च राजपाल एण्ड सन्ज ने ही किया था । यह आयोजन १५ सितम्बर १९८३ को हो गया था । उसके बाद डॉ नूरुल हसन रुस चले गए थे । उनकी उपस्थिति से आयोजन का गौरव बढा ।

डा विजयपालसिंह जून १९८३ ई में सेवा-निवृत्त हो गए थे। कार्यक्रम उसी वर्ष सितम्बर में हुआ। दीपावली के बाद डॉक्टर साहब और चाची दोनों औरंगाबाद आए। घर पर ही ठहरे। चाची इस समय बहुत प्रसन्न थी। वाराणसी मे सदैव बीमार रहती थी। यहाँ पर पहुँचने के बाद अपने आपको अधिक स्वस्थ महसूस किया। यहाँ पर वे चिक्कलठाणा की फैक्ट्री में गई। अपने लिए कुछ स्टील के बर्तन सीधे फैक्ट्री मे (लक्ष्मी मेटल इंडस्ट्री) खरीदे। डॉ मानधाने भी आ गया था। बीड में समारोह रखने का निर्णय हुआ। मानधानेजी ने बीड के कालेज मे सारी व्यवस्था कर दी थी। उसी तरह लातूर में मेरे भाई तेजमल ने लाहोटी गार्डन मे सम्मान के आयोजन की व्यवस्था की थी। उस समय डॉ. भ. ह राजूरकर ने भी अपूर्व सहयोग दिया। राजूरकर साहब की गाडी से हम लोग डाक्टर साहब और चाची के साथ पहले बीड पहुँचे। बीड का कार्यक्रम सफल हुआ। बाद मे लातूर गए। वहाँ पर भी सारी व्यवस्था थी। लातूर के कार्यक्रम में डॉ. जनार्दन वाघमारे साहब थे। उन्ही के द्वारा डॉक्टर साहब का सम्मान किया गया। चाची का सम्मान भी किया। डॉ विजयपालसिंह-ग्रंथ का आयोजन रखना और सफलतापूर्वक सम्पन्न करने से मुझे डॉक्टर साहब का अखिल भारतीय स्तर पर व्यापक प्रभाव दिखलाई दिया और वह सब कार्य अपनी गति से हुआ है। कई नाम है, जो इस कार्य से प्रसन्न नहीं थे। मुझे पत्र भी लिखे हैं। उनमें कुछ नाम लिख रहा हूँ। डॉ रवीन्द्र भ्रमर प्रसन्न नहीं थे। किन्तु चूँकि आपातकालीन जयपुर की संगोष्ठी-शिविर में वे मेरे साथ सम्मिलित थे। अत उन्होंने पत्र लिखकर अपनी असहमति व्यक्त की।—इसी तरह मेरे हैदराबाद के गुरु डॉ. श्रीराम शर्मा ने भी मुझे बतलाया और पत्र मे अलग से टिप्पणी लिखी कि यह कार्य ठीक नहीं है। ऐसे पत्र लिखनेवालों में कुछ लोग तो मुझे चाहनेवालों में रहे हैं। मैं हैदराबाद के विभाग के सदस्यो से रुपये वसूल कर रहा था। प्राय. सभी ने सहयोग दिया। कुछ सदस्यो ने कहा— 'आप डॉ. विष्णुस्वरूप से रुपये नहीं ले सकोगे।' मैं अबिड रोड की गली मे उनके अपार्टमेंट में ऊपर की मंजिल पर पहुँचा। मिल गए। बातें हुई। अतत उन्होने रुपये दिये। डॉ. विष्णुस्वरूप से उस समय अन्तिम बार मिला। उसके बाद में उनसे मिलना नहीं हुआ। मैं उनसे पहली बार उस समय मिला था जब वे वाराणसी से पहली बार आए थे। मै उस समय एम ए. फाइनल का छात्र था। उस छात्रावस्था में और बाद में विवेकवर्धिनी कालेज में काम करते समय वे मेरे घर पर आते रहे है। वे प. विश्वनाथप्रसाद मिश्र के

छात्र थे । उन्होंने **कवि-समय** पर काम किया था । उनका प्रबन्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से छप गया था । मालूम हुआ कि उनकी श्रीमतीजी बाद में विदेश गई और पुनः हैदराबाद आई है । मिलना नहीं हुआ ।

मैंने जो कार्य किया वह अच्छा था या अच्छा नहीं था ? इस सम्बन्ध मे मुझे कुछ नहीं कहना है । मैंने जो निर्णय किया, उसे मैंने पूर्ण किया यही मुझे कहना है । काम को रोकनेवाले बहुत लोग होते हैं किन्तु जो काम करते जाता है, उसके सहायक भी उसे मिलते जाते है । मैंने तो देखा कि जो डॉक्टर साहब को बिलकुल नही चाहते, उन्होंने मुझे सहयोग दिया । उन्होंने आर्थिक सहयोग दिया किन्तु लिखा कि उनके नाम का उल्लेख कही न हो ।

डॉ तेलग साहब इस कार्य से प्रसन्न थे । उन्होंने ही इस कार्य की प्रेरणा दी थी । 'लाल कवि' पर उनके काव्यशास्त्र के ग्रथ **'विष्णु विलास' का नायक नायिका भेद** पर एक लेख लिखकर भी दिया । वह अभिनंदन ग्रथ मे प्रकाशित है । उन्होंने उक्त ग्रंथ का सम्पादन किया है । वह अप्रकाशित है । उक्त ग्रथ की टंकित प्रतिलिपि मेरे पास में है । उसे प्रकाशित करना है ।

□ □

7

मकान बनवाया

तिरुपति के प्राविडेण्ट फड के रुपये में कुछ और रुपये जोड़कर १९७१ ई मे, मैंने मनीषा कालोनी मे चार हजार स्क्वेअर फीट का प्लाट खरीद लिया। वह प्लाट मुझे मेरे साढू शामलालजी बम्ब के कारण प्राप्त हुआ। बम्ब साहब उस समय परभणी मे थे। परभणी की मित्र-मण्डली ने औरंगाबाद के कुछ सहयोगियों से सहयोग लेकर मनीषा कालोनी की जगह खरीद ली। उसके प्लाट बनाकर वितरित किये गये। परभणी के जामकर (कुछ समय महाराष्ट्र राज्य के मंत्री भी रहे) साहब के साथ मेरे साढू रहते थे। उस सम्पर्क के कारण जो प्लाट खाली रह गए थे, वे हमे मिले। पहले निर्णय हुआ कि एक ही प्लाट दोनों में लिया जाएगा। किन्तु बाद मे उन्होने स्वयं के लिए दूसरा प्लाट खरीद लिया। मेरा प्लाट ५ नम्बर वाला है। उनके प्लाट का नम्बर दो है। १९७१ ई. मे प्लाट खरीद लिया। मेरा प्लाट पहले अर्जुनराव दर्शनकार का था। उस समय दर्शनकार अम्बाजोगाई मे थे। उन्होंने बेच देना चाहा। वही मुझे मिल गया।

मनीषा हाउसिंग कोआपरेटिव सोसाइटी का निर्माण १९६६ ई. में हुआ । मैंने १९६९ ई. मे सम्पर्क किया । तिरुपति से फड के रुपये आने मे दो वर्ष निकल गये । इसीलिए १९७१ ई. में प्लाट मिल गया । तब तक सोसाइटी ने मुझे सहयोग दिया । उस समय केवल दो बगले बने हुए थे । बाकी सब प्लाट ही प्लाट थे। एक बंगला काशीनाथ चव्हाण का था, जो स्वयं सोसाइटी के सेक्रेटरी थे और दूसरा बगला सांगवीकर का था । सांगवीकर सोसाइटी के प्रेसिडेण्ट थे । इन दोनो बगलो के अतिरिक्त सब प्लाट ही प्लाट थे । मैं उस समय बगला बनवाने की स्थिति मे नही था । आरम्भ मे जो दो बगले बने, उन्हे बहुत तकलीफ उठानी पडी है । कालोनी मे मार्ग नही बने थे । बिजली की व्यवस्था नही थी । इसी तरह जल की व्यवस्था बहुत दूर से करनी पडी थी । पाइप-लाइन बिछाई नही गई थी । सब कुछ धीरे-धीरे हुआ । कालोनी की दूसरी ओर झोपड-पट्टी थी । कोर्ट के अहाते के बाहर सामने के भवन से लगकर झोपड़ियाँ बन गई थी और क्रमश. अतिक्रमण होता रहा है । इस कालोनी की भूमि पर अतिक्रमण के प्रयत्न उस समय मे हुए है । तदर्थ सोसायटी के सदस्यो की बैठकें होती और अतिक्रमण को रोकने के प्रयत्न हुए है । सोसाइटी की ओर से कहा जाता कि बगला जल्दी से बनवा लो ।

मैने आर्किटेक्ट के सहयोग से नक्शा बनवा लिया । इसे तैयार करने मे श्री बाहेकर ने काफी परिश्रम किया । उसमे कई परिवर्तन हुए है । लडके छोटे थे। स्कूल मे पढते थे । अपनी योजनानुरूप नक्शा तैयार हुआ तो उसे नगरपालिका मे प्रस्तुत किया । नियमानुसार स्वीकृति मिलने में दो-तीन वर्ष निकल गए । टाउन हॉल के सामने ही नगरपालिका का भवन होने पर भी समय लगा । अलफखॉ उस समय में नगरपालिका में अधिकारी थे । उन तक कागज पहुँचा तो मैं मिलने गया । उन्होंने तुरन्त स्वीकृति दी किन्तु स्वीकृत नक्शे को प्राप्त करने मे पुन. कुछ महीने लग गये । बाद मे काम शुरू हुआ ।

१९७६ ई. मे फाउण्डेशन का काम हुआ । उस समय मुन्नू (सुनिल) मैट्रिक हो गया था । ग्यारहवीं में कालेज मे पढने लगा था । पत्नी ने और मुन्नू ने दोनों ने ही उस समय में अधिक काम किया । अनिल भी दौडता था । वह नौवीं मे था । आनन्द नगर कालोनी के मकान वामन मिस्तरी ने बनवाए थे । उसीने हमारा काम किया । फाउण्डेशन के बाद काम रुक गया । उस समय तक कालोनी मे कुछ और बगले बन गये थे ।

मकान के काम को आगे बढाने के लिए धनराशि नही थी । काम कैसे होता ? चार वर्षो तक काम रूका रहा । HDFC से लोन लेने का प्रयत्न किया। तदर्थ आवश्यक प्रामाणिक और प्रमाणित कागज जुटाने में समय लगा । आज तो HDFC का कार्यालय औरंगाबाद मे है । उस समय उक्त कार्यालय मुंबई मे ही था । तदर्थ दो-तीन बार मुंबई गया । उस समय सुनिल मुंबई में MLA होस्टल मे (जामकर साहब के कमरे मे) रहता था । उसी के पास ठहरा । MLA होस्टल से लगकर HDFC का कार्यालय था । स्वीकृति मिल गई । इस बीच मैने घर पर ही दरवाजे और खिडकियों की चौखटें बनवा ली थीं । उसमें कुछ मित्रों ने सहयोग दिया । धनराज मानधाने ने भी सहयोग दिया था । यह सब काम मै यूनिवर्सिटी का नियमित कार्य करते हुए करता था । १९७८ ई में डी लिट्. हो गया था । उसके बाद मे डी लिट् के प्रबन्ध को भी प्रकाशित कर दिया था । १९७१ ई से १९७९ ई तक आठ वर्षो तक प्रकाशन काम करता रहा हूँ । प्रकाशन मे धनराशि लगती गई । १९७९ ई. के बाद में मकान की ओर ध्यान गया । प्रकाशन का कार्य बन्द कर दिया । दूसरी बात यह कि मकान का कार्य आरम्भ करते समय १९८० ई मे ही डॉ. विजयपालसिंह अभिनदन ग्रथ के कार्य का आरम्भ कर दिया ।

१९८०-तथा-१९८१ के दोनो वर्षों में मकान के कार्य में तेजी आ गई थी। और १९८१ का वर्ष तो अभिनन्दन-ग्रथ के कार्य का विशेष वर्ष था । दोनो काम साथ-साथ अपनी गति से चल रहे थे ।

नगरपालिकाओ मे काम जल्दी नही होता । एक-दो अनुभव लिख रहा हूँ। मै मकान के प्लान की स्वीकृति के लिए नियमित जाता था । कभी कोई अनुपस्थित रहता तो कभी कुछ और रहता । उन्हें छोड दे । स्वीकृति और हस्ताक्षर के बाद की बात लिख रहा हूँ । कार्यालय में प्लान लेने पहुँचा तो सम्बन्धित क्लर्क ने कहा — 'हॉ, साहब, आपका काम हो गया है । स्वीकृत प्लान इसी अलमारी में रखा है ।' बगल में बैठा हुआ दूसरा साथी कहता है, साहब को बाहर ले जाओ, बात कर लो । सम्बन्धित क्लर्क खडा हो गया। कहने लगा — 'बाहर चलिए, चाय पीकर आएगे ।' दोनो बाहर आ गए । मुझे भी उठकर बाहर जाना पडा। क्लर्क का साथी कहने लगा — 'कुछ दे दो ।' चाय पीने के बाद में लौटते लौटते मैने पचास रुपये दिये । तब जाकर क्लर्क ने प्रसन्नता सहित नक्शे की प्रतियॉ बाहर निकाल कर रख दीं । मैं लेने लगा, तो कहा — ठहरिये, इस पर ठप्पा (रबर स्टैम्प) लगना बाकी हैं । चपरासी को बुलाकर वे नक्शे ठप्पा लगाने के लिए

दिए । वह मुस्कुराने लगा । क्लर्क ने कहा — 'उसे भी कुछ दे दो ।' मैंने उसे दस रुपये दिए । तब जाकर नक्शा मिला । एक दूसरा अनुभव यह है कि पानी की व्यवस्था के लिए नियमानुसार कागजात तैयार करने मे काफी समय लगा । काम लगभग हो गया था किन्तु हस्ताक्षर नहीं हुए थे । कुछ काम रह गया था। मै कागजात लेकर अधिकारी की प्रतीक्षा मे बैठा हुआ था । इतने में परिचित छात्र खण्डेलवाल वहाँ आया। मुझे वहाँ बैठा हुआ देखकर पूछा — 'सर, क्या बात है ?' मैने कागजात दिखलाए। खण्डेलवाल ने कागजात ले लिए और पन्द्रह मिनट में फटाफट हस्ताक्षर ले आया। मुझे दे दिए । और कहा — 'कुछ काम हो तो मुझसे कहना ।' यहाँ तो सब ऐसे ही चलता है । सच तो यह है कि सरकारी कार्यालयों की चक्कर लगाने मे घण्टो बैठना पडता है । काम हो गया तो ठीक समझना चाहिए । जान-पहचान के अभाव में काम नही होता ।

तहसीलदार के कार्यालय में भी लगातार चक्कर काटता रहा हूँ । तहसीलदार के घर पर भी गया । नियमानुसार सीमेंट मिला ही नही । उन दिनों मे सीमेट मार्केट मे उपलब्ध नहीं था । श्रीमती इन्दिरा गाधी प्रधान मत्री थी । एशियाड गेम्स की तैयारी दिल्ली मे हो रही थी । तदर्थ महाराष्ट्र से सारा सीमेट दिल्ली जा रहा था । वहाँ खेल नगर बन रहा था । फ्लाय ओवर बन रहे थे । सडके बन रही थी । महाराष्ट्र के मुख्यमत्री अब्दुल रहमान अतुले थे । सडक से सीमेंट लेकर जाना अपराध था । विवश होकर मैने चूने की भट्टी लगवाई । चूने की मशीन की व्यवस्था की । फाउण्डेशन तो सीमेट में हुआ था । ऊपर की दीवारें चूने मे बन रही थी । HDFC की ओर से पहली किश्त मिल गई थी ।

ठीक ऐसे समय में व्यकट अम्बेकर ने मेरे लिए सीमेण्ट की व्यवस्था कर दी । आवश्यक ३० थैले सीमेण्ट सरकारी कीमत पर उसने घर तक पहुँचाने की व्यवस्था कर दी । लिटल का काम हो गया । अब छत (स्लैब) के लिए सीमेण्ट की व्यवस्था करनी थी । वह काम बाद मे मेरे साढू श्री शामलालजी बम्ब ने किया । उस समय वे औरंगाबाद रेलवे स्टेशन के निकट के क्वार्टर मे रहते थे। उनकी नियुक्ति रेलवे स्टेशन पर थी ।

उस समय साइट पर पहुँचकर काम देखने के लिए मेरे पास समय ही नही था । मेरी पत्नी सब काम करती थी । वह साइट पर बैठती । लाला मिस्तरी काम करता था । मैं सबेरे शाम पहुँचता । काम देखता और चला जाता था।

सुनिल उस समय मुबई मे था और बाद में आ गया तो सिकंदराबाद, मेरे भाई ललितकुमार बाफणा के पास चला गया । काम अनिल को ही करना पडा । वह अपनी माता की सहायता में था । काम हो रहा था ।

HDFC के आर्थिक सहयोग से (चालीस हजार से) काम पूरा नही होता था । वाराणसी से मेरे गुरु डॉ विजयपालसिंह ने दस हजार रुपये भिजवाए । कुछ रुपये प्रकाशको से मिले । प्राविडेण्ट फंड से लोन मिला । इस तरह सब के सहयोग से काम हो गया । जब स्लैब का काम हो रहा था तो मुन्नू यहाँ आया हुआ था । उसने स्लैब क काम का निरीक्षण किया है । उसकी देखरेख मे काम ठीक होता था । किन्तु वह पुन सिकदराबाद चला गया । फर्श का काम रुका हुआ था । मुन्नू ने उस समय सिकदराबाद से रुपये भेजे । वे प्लास्टर मे काम आए। तेजमल लातूर से आया । उसने पाँच हजार रुपये उस समय दिए । काम आगे बढता गया । यह सब १९८१ ई की बात है । बाद मे मैंने तेजमल के रुपये लौटाए । डॉक्टर साहब के रुपये भी वाराणसी भेज दिए। पी.एफ. के रुपये नही लौटाए । ३० जनवरी १९८२ ई को वास्तु-शान्ति की पूजा की । मुहूर्त था । इसीलिए पूजा कर ली । तेजमल आया था । बाकी सब घर के लोग थे । फर्श बिछी नही थी । दरवाजे खिडकियाँ लगी नहीं थी। अन्तिम कार्य के लिए फिर स्टेट बैंक ऑफ इडिया की छावनी शाखा से सोना रखकर लोन लिया और काम पूरा किया । फरवरी १९८२ ई. के अन्तिम सप्ताह में टाउन हॉल का मकान छोडकर नये मकान मे आ गया । शेष काम फिर बाद में होते रहे ।

मकान जिन दिनो मे बन रहा था, उन दिनो सुनिल सिकंदराबाद में था। इसीलिए सारा कार्य पत्नी और अनिल को करना पडा । घर का काम पूरा कर पत्नी साइट पर पहुँच जाती थी । यथासमय मैं पहुँचता था । यूनिवर्सिटी से सीधे साइट पर चला आता । साथ मे बैग रहती थी । साइट पर बैठकर अभिनदन-ग्रथ की आगत सामग्री को पढते रहता था । ठीक लगने पर उन लेखो, सस्मरणों आदि को टकित करने के लिए दे देता था ।

जब रहने के लिए आ गया तो सब को निमत्रित करना शेष रह गया था। फरवरी के दूसरे सप्ताह मे सब को निमत्रित करने की स्थिति मे नहीं था। जनवरी तीस को वास्तुपूजा हो गई थी । इसीलिए बाद में अपनी सुविधा से १४ अप्रैल १९८२ ई को सबको निमत्रित किया । वह दिन मुन्नू का जन्म-दिवस भी था। कार्यक्रम सफल हो गया । मुन्नू सिकदराबाद से आया था । और लोग भी आए थे।

अब अपना घर हो गया था । इस बीच मैंने डॉ. जगदीश गुप्त से पत्र-व्यवहार किया था । पूछा था कि मकान का क्या नाम रखू ? मैंने अपने पिता का नाम 'रतनलाल' बतलाया था । जगदीश गुप्त ने 'रत्नदीप' नाम का सुझाव दिया । उनके सुझाव को स्वीकार करते हुए अपने नये भवन का नाम 'रत्नदीप' रखा ।

☐ ☐

मार्निंग क्लब (सबेरे टहलने का क्लब)

नये भवन मे आने के बाद अपने नियम के अनुसार सबेरे घूमने निकलता था । प्रिंट ट्रेवल चौक पर पहुँचता और वहाँ से छावनी के मार्ग की ओर आगे बढ जाता था । प्रिंट ट्रेवल चौक तक छावनी की सीमाएँ हैं । छावनी का एक बगला प्रिंट ट्रेवल के चौक से लगा हुआ है । आगे की भूमि खाली मैदान है। आगे बढने पर खाम नदी का पुल है । पुल पार करने पर छावनी के बगले एक ओर हैं और दूसरी ओर होली-क्रॉस इग्लिश हाइस्कूल हैं । इसी स्कूल में बच्चे पढते रहे हैं । मै तो स्कूल से आगे नगर-नाके तक पहुँचता था । मैंने देखा कि सबेरे-सबेरे घूमनेवालों का दल बहुत बडा है । मुझे घूमते देखकर सदस्यों ने कहा मार्निंग-क्लब के सदस्य बन जाओ । सदस्य बन गया । उन सदस्यो के कुछ नियम थे । सभी सदस्य एक कालोनी के नही थे । अलग-अलग कालोनियो से आते थे। उनका मिलन स्थल प्रिंट ट्रेवल का चौक था । जाते समय सब साथ मे नही जा सकते थे । रास्ते मे जो मिल जाए, वह साथ हो जाता था । पहुंचने का स्थल निश्चित था । इसी तरह पहुँचने के स्थल मे लौटने का स्थल भी निश्चित था । छावनी मे मन्दिर था । मन्दिर पहुँचने के लिए मुख्य सडक से उतर कर भीतर के खुले मार्ग से जाना पडता था । मार्ग में छावनी के अधिकारियो के बगले थे । एलोरा मार्ग के निकट, भीतर की ओर वह मन्दिर था । जो लोग समय से पहले पहुँचते, वे मन्दिर के प्रवेश द्वार की मुडेरों पर बैठ जाते और अन्य साथियो की प्रतीक्षा करते थे । समय होते ही उपस्थित समुदाय मन्दिर में प्रवेश करने लगते। चप्पल-बूट खोलकर पैर धो लेते और आरती मे खडे हो जाते थे। आरती 'ओऽमू जय जयदीश हरे . स्वामी जय जगदीश हरे .' वाली होती । आरती समाप्त होने के बाद हम लोग प्रदक्षिणा करते ओर तब बूट-चप्पल पहनकर बाहर निकलते । यह मन्दिर प्रिंट ट्रेवल से डेढ़ कीलोमीटर होगा । प्रिंट ट्रेवल से मेरा मकान आधा कीलोमीटर है । इस तरह दो कीलोमीटर जाना और उतना ही लौटना था । यो चार कीलोमीटर घूमना हो जाता था ।

उत्साही सदस्य मंदिर के आगे जाते — एलोरा मार्ग पर जाते — और यथासमय मन्दिर लौट आते थे । साथियो का मिलन-स्थल मन्दिर होता । मन्दिर मे दस मिनट लगते ।

लौटते समय सवाद होता रहता था । सब समूह में चलते । कोई विलम्ब मे आता तो उसे साथ में लौटना पड़ता था । प्रिंट ट्रेवल के चौक पर पहुँचने का समय निश्चित था । शीतकाल मे ६ बजकर चालीस मिनट और गर्मियो मे साढे ६ बजे । मौसम के हिसाब से समय बदलते रहते थे । ६ बजकर चालीस मिनट पर प्रिंट ट्रेवल से सब लोग अपने अपने घर लौट जाते ।

मार्निंग क्लब के सदस्यो की सख्या सदैव बदलती रही है । सामान्य रूप मे प्रतिदिन उपस्थिति कम-से-कम बीस रहती । अधिकतम तीस-पैतीस की सख्या थी । क्लब मे प्राय सेवानिवृत्त सदस्यो की सख्या अधिक थी । व्यापारी वर्ग के सेठ लोग भी इनमे थे । वे गिने-चुने थे । मेरी तरह कुछ नई पीढी के सदस्य भी थे । कोई भी सदस्य चालीस-पैंतालीस वर्ष से कम नही था । सत्तर से अस्सी वर्ष के सदस्य भी थे । पचपन से पैंसठ की आयुवाले अधिक थे । सामान्य आयु साठ के लगभग थी । आयु के हिसाब से सदस्यो का दौड मे बटवारा होता था। २ अक्तूबर, गाधीजी के जन्म दिवस पर मन्दिर से प्रिंट ट्रेवल तक चलकर (बिना दौडे) पहुँचने कहा जाता । कितने मिनट में कौन पहले पहुँचता है, यह देखा जाता। तेज चलनेवालों में गणोरकर प्राय प्रथम आते । वे बारह मिनट में पहुँच जाते थे । दूसरे सदस्य पीछे से आते रहते थे । अन्त मे पहुँचनेवालो मे तालीकोटे और लाटकर रहते । बुजुर्ग व्यक्तियो मे आर बी देशपाण्डे थे । तीन देशपाण्डे थे । तीनो ही देशपाण्डे हमारी कालोनी से लगी समाधान कालोनी मे रहते है । विजय देशपाण्डे और रमेश देशपाण्डे एक ही प्लाट मे अलग-अलग बगले बनाकर रहते है । विजय देशपाण्डे यूनिवर्सिटी मे समाजशास्त्र विभाग मे प्राध्यापक थे । रमेश देशपाण्डे सरस्वती भुवन कालेज में विज्ञान के विभाग मे प्राध्यापक थे । तीसरे बुजुर्ग देशपाण्डे रामचन्द्र देशपाण्डे थे । वे कालेज ऑफ एज्यूकेशन से सेवानिवृत्त हो गए थे । डॉक्टरों की संख्या कम थी । इजिनिअरों की संख्या अधिक थी । इडस्ट्री के लोग भी थे । यो मार्निंग क्लब मे अलग-अलग क्षेत्रो मे काम करनेवाले थे । कलेक्टर, तहसीलदार भी थे । सेवानिवृत्त थे । कालेज के सेवानिवृत्त प्रिंसिपल थे । सदस्यों की दिनचर्याएँ और काम अलग-अलग होते हुए सबेरे सब साथ मे रहते । हँसते-हँसाते, संवाद करते हुए मण्डली चलती रहती थी । सेवानिवृत्त होने

के बाद जो लोग घर से बाहर नही निकलते, वे लोग भी सबेरे-सबेरे अपने साथियो से मिल लेते थे ।

मै इस मार्निग क्लब मे मार्च १९८२ ई मे जाइन हो गया था । उस समय पचासवॉ वर्ष चल रहा था । सेवानिवृत्त होने मे दस वर्ष बाकी थे । उस समय वाराणसी से डॉक्टर साहब (डॉ विजयपालसिह) आए हुए थे । सभवत रविवार का दिन था । सबेरे-सबेरे डॉक्टर साहब भी साथ मे थे । डॉक्टर साहब को अच्छा लगा । वे तो घूमने के मास्टर थे । प्रिंट ट्रेवल तक लौटने के बाद हम लोग प्रिंट ट्रेवल के निकट कार्तिक होटल मे गये । सब का नाश्ता हुआ । चाय दूध के बाद लौट गए । क्लब के सदस्यो ने डॉक्टर साहब का स्वागत किया । उन दिनो अभिनन्दन-ग्रथ का काम चल रहा था ।

मार्निग क्लब मे रविवार को 'मटकी' की पार्टी होती थी । प्रत्येक रविवार को होती थी, ऐसा तो नही था किन्तु जो व्यवस्था कर सकता था, वह घर पर सब सदस्यों को निमंत्रित करता था । 'मोट' को ही मराठी मे 'मटकी' कहते है। मोट को रात्रि मे भिगोकर रखते हैं । दूसरे दिन सबेरे उसको उबाल लेते है । मोट के साथ प्याज, नीबू, टमाटर, दही, सेव .आदि सामग्री रहती हैं । अंत मे चाय-काफी रहती है । इस मटकी के साथ खिलानेवाले मिठाई भी देते है । यह कार्यक्रम महीने में एक बार और कभी-कभी दो बार भी हो जाता है । मैं 'मटकी' खाने के लिए कई सदस्यों के घर पर पहुँचा हूँ । अपने घर पर भी मटकी का कार्यक्रम रखा है । जो लोग घर पर व्यवस्था नहीं कर पाते, वे होटल मे पार्टी दे देते है । ऐसा चलता रहा है । दूसरी बात यह कि मेल-जोल बढाने हेतु पिकनिक का कार्यक्रम भी होता रहा है । इसमे श्री और श्रीमतीजी दोनो को निमत्रण रहता। सब से रुपये लिए जाते ओर कार्यक्रम बनता । बस की व्यवस्था होती । प्राय पिकनिक का कार्यक्रम जब भी होता, उस समय बस डॉ हजारी के बगले पास यथासमय खडी हो जाती । डॉ. हजारी के बगले पर पहले चाय पार्टी होती और तब हम यात्रा के लिए प्रस्थान करते । मुझे दो यात्राओं का स्मरण है । एक तो पैठण की यात्रा, दूसरी चालीसगॉव के निकट पाटणा-देवी की यात्रा । पैठण की यात्रा मे इंजीनिअरों का पूरा सहयोग मिला है । जायकवाड़ी डैम पर काम करने वाले प्रमुख इंजीनिअरों का समूह हमारे साथ था । उन लोगों ने पैठण के गेस्ट रुमो में हमारी व्यवस्था की थी । गेस्ट रूमो के अहाते में सुन्दर गार्डन है। खाने पीने की पूरी व्यवस्था की गई थी । जायकवाडी का डैम उसी दिन मैंने पूरी तरह से देखा था । डैम की सड़क जो, नाथ सागर से लगकर है, जो पुल

की तरह है । उस सडक के एक ओर तो सागर है और दूसरी आर अतिरिक्त जल को छोड़ने की व्यवस्था है । अतिरिक्त जल गोदावरी के पात्र मे गिरता है और नदी के प्रवाह मे बह जाता है । इसे बाहर से देखना अलग है और उस पूरी व्यवस्था को देखना अलग बात है । प्रमुख इजीनिअर (श्री चिटगोपेकर) हमे साथ लेकर पुल के नीचे एक सिरे के द्वार की ओर ले गए । हम लोगों को साथ साथ लेकर चलते हुए सब कुछ समझाते रहे । बतलाते भी रहे । मेरा ध्यान समझने में कम और देखने मे अधिक था । मुझे तो मनुष्य के मस्तिष्क की शक्ति का परिणाम दिखलाई दिया । जल को छोडनेवाले स्थल और उन्हे व्यावहारिक रूप मे छोडने की व्यवस्था दिखलाई गई । हम लोग भीतर-ही-भीतर इस ओर के सिरे से उस ओर के सिरे तक देख आए । फिर उसी ओर से लौटकर बाहर आए। बाहर आने के बाद बस हमे सत एकनाथ के ऐतिहासिक आवास-स्थल पर ले गई । वह अब भक्तो का मिलन-स्थल था । घूम-फिर कर देखा । गोदावरी के घाटों पर गए । चक्रधर स्वामी के स्थल पर गये । पुराने खण्डहर देखे । कालेज के पास में ऊँचा स्तभ देखा । प्रतिष्ठान का इतिहास खण्डहरो मे आबद्ध है । खोजनेवालो को पुरानी ऐतिहासिक सामग्री मिलती है । पैठण न तो गॉव है और न ही पूरा नगर है । गोदावरी के तट पर इतिहास के अवशेषो का ऐतिहासिक स्थल है । इतिहासकार, वहाँ पहुँचते है और खोज कार्य जारी रखते हैं । हम लोगो ने अवशेषो से सम्बन्धित स्थल देखे । पैठण की पैठणी के कारखाने देखे। पैठणी की कला को जीवित रखनेवाले कलाकार आज भी वहाँ पर है । इस क्षेत्र मे डॉ मोरवंचीकर ने बहुत काम किया है । यूनिवर्सिटी में इतिहास विभाग के सदस्यो से मिलता रहा हूँ । उनके कारण भी पैठण बार-बार जाना हुआ है । उस दिन तो हम लोग पुन गेस्ट हाउस आ गए ।

उस यात्रा का अविस्मरणीय प्रसग लिख रहा हूँ । आयोजकों ने उस गेस्ट हाउस में सायंकाल में सास्कृतिक कार्यक्रम रखा । एक पुलिस विभाग का कलाकार था । वह संत एकनाथ के भारूड़ो को नाट्यमय पद्धति से प्रस्तुत करने मे समर्थ था । भारूड़ सुनाता, उसके गूढ रहस्य को मच पर उजागर कर देता । विशेष मच की आवश्यकता नही थी । एक पात्र का अभिनय था । सगीतमय पद्धति से भारूड उसने अभिनय के साथ प्रस्तुत किए । एकनाथ महाराज हम लोगों के बीच उस पात्र के माध्यम से उपस्थित हो गए । संत की आत्मा तक हमे पहुँचाने का उसने प्रयत्न किया और उसमें वह सफल रहा । उसके बाद मैंने भारूडो को

इस रूप मे नही सुना। इससे पूर्व १९७० ई. मे पुणे में भारतीय हिन्दी परिषद के अधिवेशन में परशुराम भाऊ महाविद्यालय (तिलक मार्ग पर) के मच पर भी मैंने कुछ भारूडो के प्रसग सुने थे। किन्तु पैठण मे जो सुना, उसकी बात कुछ और ही थी।

दूसरी यात्रा पाटणा-देवी की यात्रा थी। यात्रा लम्बी थी। चालीसगॉव के आगे धुलिया मार्ग पर घने जगल में, पर्वतों की घाटीवाला वह रमणीय स्थल था। पाटणा-देवी, वही पर विराजमान है। उस यात्रा की व्यवस्था हमारी कालोनी के ही श्री सूर्यवशी ने की थी। वे प्रात काल मे घूमने के लिए कम आते थे। किन्तु उनके परिचित-क्षेत्र का विस्तार था। उन्हे पाटणा-देवी के स्थल की पूरी जानकारी थी। धूलिया के मार्ग पर आगे बढते ही बांई ओर मुड जाना पडा। हम लोग जगल मे पहुँच गये। बस के जाने-आने का मार्ग बना हुआ था। वहाँ तो वन-भोजन हुआ। रसोई की सामग्री साथ में थी। रसोइया भी साथ में था। सभवत खान-पान की व्यवस्था श्री शान्तिलाल मुथियान और श्री राजेन्द्र मुणोत ने की थी। उस यात्रा में महिलाएँ थीं। बच्चे थे और हम सब लोग थे। मिल कार्नर, कोतवालपुरा के पुराने पडोसी डॉ काशीनाथ जोशी अपनी पत्नी और बच्चो के साथ मे थे। सब लोग उस स्थल पर पहुँचे है जहॉ पहाडी से नीचे जल की धारा बहती है। वर्षा ऋतु थी। हरियाली थी। मार्ग चलकर बनाना पडता था। एक दूसरे का हाथ पकड कर चलते थे। डॉ. जोशी के बच्चो के नाम शैलेश और मोना थे। श्रीमती जोशी होलीक्रास स्कूल में बच्चो को पढ़ाती थी। शैलेश, मोना से परिचय था। सब स्नान कर रहे थे। शैलेश को नहाते देखकर जोशी साहब ने कहा, 'नहा लो, देखो बच्चा नहा रहा है। उनके प्रोत्साहन के कारण, संभलते-संभलते मैंने स्नान कर लिया। बच्चो की तरह उछलना-कूदना संभव नही था। रास्ता बीहड़ था। तुलसी का दोहा लिखता हूँ —

हरित भूमि, तृण संकुल, समुझि परहि नहिं पथ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते लुप्त होहिं सद् ग्रथ॥

मैं तृण सकुलों से गुजरते हुए बाहर आया। अन्य साथियों के साथ भोजन-स्थल पर पहुँच गया। वह स्थान ऐसा था, कि कहीं पर भी बैठ जाओ प्रकृति का दर्शन होता था। तपस्वियो का स्थान था। कुछ बाबा लोग वहाँ पर पाटणा देवी के स्थान पर विराजमान थे। उनके सान्निध्य में बैठे रहे। स्थिर होकर पूरी बात सुन नहीं सका। साथियों से मिलने और बात करने में समय निकल गया।

मुझे तो अम्बाजोगाई की बूटीनाथ की घाटी याद आ गई। उस घाटी मे कभी नीचे उतर कर नहीं गया। मुकुंदराज की ऊचाई पर से दूर से ही देखा है।

क्लब के सदस्यो मे जिन्दादिली रही है। मैं स्वयं निजाम के काल को बचपन मे देख चुका हूँ। ऐसी स्थिति मे मुझसे बुजुर्ग मण्डली अधिक होने के कारण प्राय सभी उर्दू पढे हुए थे। शेर-शायरी मे अभिरूचि रखनेवाले अधिक थे। कुछ तो जेबो मे गजले लिखी हुई छोटी-सी नोटबुक रखते थे। जहाँ दस मिनट बैठने का मौका मिलता तो कुछ-न-कुछ सुनाते रहते थे। नवाबों की तबियत के लोग थे। आज तो उनमे से कुछ लोग नही रहे। इतनी बात सच है कि वाकिंग क्लब के सदस्यो का जीवन — उदासी का जीवन नही रहा। शरीर बूढा हो जाता है किन्तु मन बूढा नहीं होता। उत्साह मे कमी नहीं होती। एक बार जो इस क्लब मे आ जाता था, वह इस क्लब का सदस्य बना रहना चाहता था। कोई विवशता हो तो अलग बात है। मुझे इस क्लब ने जीने की प्रेरणा दी है।

रामचन्द्र बलवन्त देशपाण्डे क्लब के बुजुर्ग सदस्य थे। १९१२ ई. मे जन्म हुआ। औरंगाबाद के कालेज ऑफ एज्यूकेशन से सेवानिवृत्त हुए। उसके बाद उन्हे मौलाना आजाद कालेज मे काम मिल गया। जकेरिया साहब की उन पर बड़ी मर्जी थी। अनुशासन-प्रिय व्यक्ति रहे। घडी के काण्टों का ध्यान क्लब में भी रखते। उनकी घडी पर सब विश्वास रखते। क्लब के सदस्यों में उनका सम्मान सभी करते थे। उनका छोटा नाम 'आर.बी. सर' था। देशपाण्डे कोई कहता ही नही। उनके छोटे भाई का नाम **लक्ष्मण बलवन्त देशपाण्डे** था। वे एल.बी. देशपाण्डे कहलाते थे। एल बी देशपाण्डे — उस्मानिया विश्वविद्यालय के कंट्रोलर ऑफ एक्जामिनेशनस् (Controller of Examinations) थे। मेरे बी.ए. और एम ए. के मार्कशीटों पर उन्हीं के हस्ताक्षर हैं। वे अन्त तक हैदराबाद मे रहे। अनुशासन-प्रिय व्यक्तियो को मै पसन्द करता हूँ। इसीलिए प्राय मैं उनके साथ रहता था। उनकी घड़ी का पालन मै भी करता था। 'आर बी. सर' सबसे पहले आनेवालों में थे। वे प्राय· मन्दिर में पहले पहुँचते थे। खुली सडक रहती। गणोरकर भी पहुँचते। मैं भी ब्रिंट ट्रेवल से उनके साथ रहता और मन्दिर से आगे उनके साथ जाता था। हम लोग लौटकर मन्दिर आते तब तक मण्डली पहुँच जाती थी। नियमानुसार लौट जाते थे। उन दिनो में खाम नदी पर, होलीक्रास स्कूल के समीप एक ही पुल बना हुआ था। उस पुल पर से गुजरना कठिन

था । जानेवाले और आनेवाले भारी वाहन जब गुजरने लगते तो पैदल चलनेवालो को तकलीफ होती थी । किनारे-किनारे पुल पार करना पडता । 'आर बी सर' अपने साथ **मार्निंग स्टिक** रखते थे । उनकी बेटी लंदन मे डाक्टर है । अपनी बेटी के पास लदन भी गए । बेटी ने उन्हें एक बढ़िया स्टिक दी थी । किन्तु वे उसका उपयोग नहीं करते । कभी-कभी इच्छा हुई तो लेकर आते । उनके पास अनुभवो का पिटारा था । प्राय चुप रहते किन्तु अवसर मिलने पर बोलते थे ।

१९८८ ई.-१९८९ ई. तक ठीक चलता रहा । १९८९ का वर्ष, बहुत व्यस्तता का रहा । उस वर्ष इलाहाबाद जाते समय सौम्य हृदयाघात हुआ । मनमाड पर ट्रेन मे बैठते समय हुआ । राजूरकर साहब साथ मे थे । मैं कलकत्ता की एक सप्ताह की यात्रा से लौटा था । और पुन इलाहाबाद जा रहा था । ट्रेन मे वैसे ही लेट गया । टी.टी. ने देखा तो कहा कि गाडी तो अब भुसावल पर ठहरेगी। डाक्टर वही पर मिलेगा । उसने भुसावल को फोन कर दिया था । भुसावल पर गाडी के ठहरते ही डाक्टर आया । उसने प्रथमोपचार किया और गोलियाँ दी । आगे यात्रा करने की अनुमति नहीं दी । लौट आया । लौटते ही सीधे युनिवर्सिटी गया । डॉक्टर के पास नही गया । दूसरे दिन डॉ भागवत के पास गया । डॉक्टर ने रेलवे के डाक्टर की रिपोर्ट देखी । पत्नी से कहा कि इन्हें रिक्शे में घर ले जाएँ । पैदल न चलने दे । **हाउस रेस्ट** के लिए कहा । गोलियाँ दी । इस बीमारी के कारण क्लब छूट गया । घर पर रहता । यूनिवर्सिटी जाने की मनाई थी । घर-पर बैठे-बैठे उन्ही दिनों मे (१९९०-१९९१ ई. मे) **भारत की भाषाएँ** पुस्तक लिखता रहा । उसके साथ-साथ **'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की जीवनी का'** काम भी जारी था । अंतत. १९९२ ई में पुणे के रुबी अस्पताल मे मेरी बाय-पास सर्जरी हुई । सितम्बर-अक्तूबर १९९२ ई. पुणे में था । दशहरे के बाद लौट आया। कमज़ोरी थी । दो-तीन महीने के बाद कुछ ठीक होने के बाद पुन घूमने निकलने लगा । सदस्य मिलने लगे । किन्तु मै उनके साथ मन्दिर तक नही जा सकता था । धीरे-धीरे होली क्रास स्कूल तक और बाद में नगर नाके तक जाता था। पुराना उत्साह सदस्यों में भी नहीं था । आते-आते नमस्कार हो जाता था । धीरे-धीरे मैं फिर 'आर बी. सर' के समय का ध्यान रखते हुए उनके साथ रहने लगा। नगर नाके के पास के मोड पर भीतर की ओर एक पुल पर सदस्य बैठ जाते थे । मैं भी वहाँ तक पहुँचकर बैठता था । मन्दिर तक पहुँचना सभी ने छोड दिया था । कुछ उत्साही सदस्य अकेले ही दूर तक जाते थे । उनमें गणोरकर

थे। वे रोज मिलते। बात नही होती। केवल नमस्कार होता। सदस्यो की संख्या १९९० ई. के बाद मे कम हो गई।

'आर.बी. सर' थक गए थे। नगर नाके के बाद मे हम लोगो ने होली-क्रॉस तक अपने को सीमित कर लिया। स्कूल के बाहर की पुलिया पर बैठने लगे। हम लोग अब चार-पॉच सदस्य थे। 'आर.बी. सर', तालीकोटे, प्रभाकरराव कुलकर्णी और एक सदस्य थे (नाम भूल रहा हूँ) — पॉचवे सदस्य कभी-कभी आते। हम चार नियमित थे। इस समय तक खाम नदी पर जाने-आने के लिए दो पुल हो गए थे। इनकम टैक्स का कार्यालय खाम नदी के किनारे पर होली क्रास स्कूल के पार्श्व मे बन गया था। उनके क्वार्टर भी बने थे। कार्य जारी था। होलीक्रास स्कूल का भी कार्य जारी था। गेट के पास की पुलिया हटा दी गई। बैठने के लिए जगह नही रही। आगे बढ़कर कम्पाउण्ड वाल के अगले सिरे पर पत्थरों के ढेर पर जगह बनाकर बैठ जाते थे। इस समय हम चार सदस्य थे। बाद मे इनकम टैक्स कार्यालय के अन्तिम सिरे तक पहुँच कर मन्दिर के चबूतरे पर बैठने लगे। तालीकोटे साहब कुछ विलम्ब से आते,... आ जाते थे। प्रभाकरराव कुलकर्णी साहब अधिक नियमित थे। इन दिनो मे कुछ सदस्य सिद्धार्थ गार्डन में जाने लगे थे। 'आर.बी. सर' कभी नही गए। वे हमारे साथ थे। जब बहुत थक गए तो खाम नदी के पुल तक पहुँचकर लौट जाते थे और प्रिंट ट्रेवल के पास के छावनी के बगले की पुलिया पर बैठ जाते थे। वहाँ पर पुन सब का मिलन होता था। जानेवाले भी वहाँ पर लौटकर बैठते थे। नियमित समय पर लौटते थे। 'आर.बी. सर' के कारण प्रिंट ट्रेवल का वह पुलिया हमारा मिलन स्थल हो गया। बजाज की गाड़ियाँ वालूज उसी मार्ग से गुजरती थी। इसीलिए मैं गाडियाँ गुजरने से पूर्व सडक पार करना चाहता था। इसीलिए, पुलिया पर अधिक न बैठकर मै तुरन्त उठ जाता था। बाद में 'आर.बी. सर' घूमने के लिए उस पुलिया तक ही आने लगे। हम तीनो ने साथ नही छोडा। तालीकोटे और कुलकर्णी साहब इनकम टैक्स कार्यालय के मन्दिर तक मेरे साथ चलते थे। लौटकर पुलिया पर बैठते और वे मिल जाते थे।

'आर.बी. सर' — नियमित गीता पढते थे। गीता की विशेष-विशेष कक्षाओं मे जाते। इसी तरह कुलकर्णी साहब नित्य भागवत पढते थे। मैंने भी घर पर गीता का पाठ पढ़ना शुरू किया। यात्रा में भी गीता साथ मे रखता था। जब 'आर.बी. सर' ने डाक्टर के कहने से घूमना बंद कर दिया तो उन्हे मिलने घर

पर जाना पड़ता , घर में ही टहलते । हमारी कालोनी के शिवमन्दिर तक जाते और लौट आते । अवसर मिलने पर घर जाता तो जिन्दादिली से बात करते । बाहर कुर्सियाँ डाल कर बैठते । उनकी पत्नी भी वृद्ध हो गई थी । वह भी सवेरे घूमने निकलती थी । स्वस्थ थी और 'आर.बी. सर' की सेवा करती । एक बार घर गया तो उन्होंने पूर्णाकृति का अपना फोटो दिखलाया । उनका नगर में सम्मान किया गया था और वह फोटो उन्हें उस समय भेंट में दिया था । उनके भाई लक्ष्मण देशपाण्डे के पुत्र बैंगलोर में रहते थे । काम्प्यूटर के सम्बन्ध में देश-विदेश में हुई प्रगति से अवगत करते रहते थे । मैं किसी कारण वश सिकंदराबाद गया था। १९९८ ई. की बात है । लौटा तो मालूम हुआ — 'आर.बी. सर' नहीं रहे। घर पर मिलने गया तो उनकी पत्नी के साथ लंदन से आई हुई बेटी भी मिली। बतलाया कि सबेरे-सबेरे चाय पीने के लिए कुर्सी पर आराम से बैठे । चाय पी ली । बाद में कुर्सी पर ही लुढ़क गए । किसी को तकलीफ नहीं दी । सहज ही चले गये । उनके निधन के बाद मार्निंग क्लब के दो सदस्य ही मेरे साथ रहे । तालीकोटे और कुलकर्णी । तालीकोटेजी का पूरा नाम पाण्डुरंग तालीकोटे है । १९२५ ई. के है । १९९९ ई. तक वे घूमने आते रहे । वे BHU के छात्र रहे है । अर्थशास्त्र में वहीं से एम.ए. किया । वाराणसी के प्रसंग सुनाते । वे उस समय पढ़ते थे जब डॉ. राधाकृष्णन् वाइस-चांसलर थे । निजाम के जमाने में आरम्भ में उन्हें तहसीलदार की नौकरी मिली । बढ़ते बढ़ते डेप्युटी कलेक्टर हो गए । उसी पद से सेवानिवृत्त हो गए । समर्थनगर में बंगला बनवाया । सिद्धार्थ गार्डन उनके लिए निकट था । कहने पर भी माने नहीं । सिद्धार्थ गार्डन जाने लगे । कुलकर्णी साहब अब अकेले रह गए थे । वे १९२७ ई. के है । इंजीनिअर रहे हैं । उनका बंगला भी समर्थनगर में है । वे नियमित थे । उनका बचपन सिकंदराबाद में गुजरा है । सिकंदराबाद में जनरल बाजार की गली के मन्दिर के पास रहते थे । उनके परिवार के सदस्य आज भी सिकंदराबाद-हैदराबाद में है । वे भी थक गए । तालीकोटे के बाद में वर्ष-दो वर्ष तक दो हजार ईसवी के वर्ष तक उन्होंने साथ दिया । वे कभी-कभी साथियों से मिलने सिद्धार्थ गार्डन चले जाते थे । मैं कभी नहीं गया। दो हजार ई. के बाद २००१ ई तथा २००२ ई. के छ-सात मास तक मैं अकेले ही घूमता रहा । प्रिंट ट्रेवल की पुलिया पर बैठकर लौट आता था । किसी तरह २००२ ई. वर्ष पूरा हुआ । इस वर्ष (२००३ ई.) मेरा भी घूमना बन्द हो गया। घर पर ही रहता हूँ । एक बार तालीकोटे साहब से मिलने गया था । अब फोन से बात कर लेते है । कुलकर्णी साहब भी बहुत थक गए । ६ फरवरी २००३

ई. को ७०वाँ वर्ष पूरा होने के कारण बच्चो ने दिवस मनाया । उस समारोह मे कुलकर्णी साहब आए थे । उनका पुत्र उन्हे लेकर आया । उसके बाद भी उनसे मिलने गया हूँ । अब तो फोन से ही बात कर लेते है ।

□ □

कोलकाता (कलकत्ता) यात्रा

कोलकाता की यात्रा डॉ. बैजनाथ चतुर्वेदीजी के साथ मे १९५५-५६ मे की थी । उस समय मैं बी.ए. फाइनल का छात्र था । उसके बाद की यात्रा १९८९ ई. की दीपावली के बाद नवम्बर मे हुई । प्रधान रूप से मुझे एशियाटिक सोसाइटी का ग्रंथालय तथा नेशनल लाइब्रेरी देखना था । वहाँ पर मै दो विद्वानो से परिचित था । आचार्य कल्याणमलजी लोढा और दूसरे आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री । दोनों को ही मैंने आगमन की सूचना दे दी थी । उनकी ओर से सकारात्मक उत्तर भी मिले ।

यात्रा के अपने कष्ट होते है किन्तु उसके लाभ अधिक है । अकेले तो मैंने बहुत यात्रा की किन्तु पत्नी और बच्चो के साथ मे लेकर भी मैंने यात्राएँ की है। कलकत्ता की यात्रा मे पत्नी और बेटी नमिता दोनो साथ मे थे । हावडा उतरना था । वहाँ पर कैसी व्यवस्था होगी ? कहाँ ठहरेगे ? चिन्ताएँ थी । परिवार भी साथ में था । हावडा पर गाडी पूरी खाली हो जाती है । भीड बहुत होती है। प्लेटफार्म से गुजरना लोगो से टकराते हुए गुजरना पडता था । जैसे-तैसे सामान लेकर हम लोग आगे बढने लगे । बाहर निकलने के गेट के पास एक सज्जन कागज का बैनर लिए खडा था । उस पर लिखा था — 'Welcome Dr. Rajmal Bora !' मैंने उससे कहा — 'मै राजमल बोरा हूँ ।' आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री की ओर से भेजा हुआ व्यक्ति था । मैंने शास्त्रीजी को आगमन की तिथि गाडी का समय सब लिख दिया था । तदनुसार उन्होंने स्वागत हेतु उस व्यक्ति को भेजा था । हम लोग स्टेशन से बाहर आए । हावडा पर टैक्सी खड़ी मिलती है किन्तु भीड़ बहुत होती है । पुलिस-व्यवस्था होती है । हमे लाईन में खडा कर दिया। नम्बर आते ही हम लोग टैक्सी में बैठे और सीधे चले । हावडा-ब्रिज से गुजरे। चौरंगी सडक पर आए और वहाँ से शेक्सपिअर सरणी मे **भारतीय भाषा परिषद** के भवन पर पहुँचे । वहाँ पर तीसरी मंजिल पर गेस्ट हाउस मे हमारे ठहरने की व्यवस्था थी । चढने-उतरने के लिए लिफ्ट की व्यवस्था थी । उस व्यक्ति ने हमारे रहने की व्यवस्था कर दी ।

उस समय न तो शास्त्रीजी से मिलना हुआ और न ही लोढाजी से । भारतीय भाषा परिषद के कार्यालय से लोढ़ाजी का घर कैसे पहुँचे पूछ लिया । निर्देशानुसार हम लोग सिटी बस मे बैठकर देशप्रिय पार्क गए । पहले वेस्ट मे गए । पुन. ईस्ट मे सडक लाघ कर गए । घर मिल गया । घर पर ही थे । उन्ही दिनो उनके पुत्र का निधन हो गया था । दुखी थे । श्रीमती लिली लोढा भी मिली । पत्नी का, नमिता का परिचय हुआ । पारिवारिक स्तर पर मिले । उस समय लोढाजी भारतीय हिन्दी परिषद के अध्यक्ष थे, — सभापती थे । मै उपसभापति था । उस दिन हम लौट गए । वे 'क्रोध'-आदि मनोवेगो पर कुछ लिख रहे थे । हमे लौटते देखकर बोले — 'मैं आ रहा हूँ ।' हमारे 'भारतीय भाषा परिषद' मे लौटने के बाद में वे उसी दिन आए । पत्नी और नमिता को छोडकर मैं उनके साथ अकेला ही गया । एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी मे ले गए । वहाँ परिचय करवा दिया । भीतर उसकी ग्रंथ-सपदा देखी । विशाल ग्रथालय है । चौरंगी रोड से नजदीक ही है । लौटकर उन्होने वह इस्टिट्यूट भी दिखलाया, जिसमे इनसाइक्लोपीड़िया का सम्पादन हो रहा था । मैंने वहाँ पर कुछ सामग्री भेजी थी । वह स्वीकृत भी हुई । सम्पादक से मिला । उसके बाद लोढाजी चले गए । मुझे लौटकर, लौटने के लिए टिकटो का आरक्षण करना था । लौटते ही सेक्सपियर सरणी के रोड पर अचानक रावतजी मिल गए । चकित हो गया । प्रसन्नता भी हुई । उसी मोड मे एक ओर मेरा आवास था और दूसरी ओर रावतजी ठहरे हुए थे । आगरा के पुराने मित्र के घर पर ठहरे हुए थे । उनका आवास देखा । फिर लौटकर उन्हें अपने आवास पर ले गया । वह सयोग था कि वे कलकत्ता मे मिल गए । ऊपरी मजिल पर आए । बैठे । बात हुई । मालूम हुआ कि वे विजिटिंग प्रोफेसर के रूप मे शान्तिनिकेतन गए थे । तीन महीने पत्नी के साथ वहीं पर थे । प्रो. रामसिंह तोमरजी के निमत्रण पर गए थे । वहाँ से दिव्य-प्रबन्ध का ८ भागों का सेट लेकर आए थे । कुछ और काम भी किया । नम्मू भी सब से मिलकर प्रसन्न हुई । चाची मिली । पत्नी अपनी बहनजी से मिली । हम सब का निर्णय हुआ कि बस के द्वारा कलकत्ता-भ्रमण कर ले उसके लिए आरक्षण आवश्यक था । दूसरे दिन जाने का निर्णय हुआ। रावतजी के आवास पर पहुँच कर उनके साथी को टिकट आरक्षण करवाने कहा। हम सब के टिकट बुक हो गए । दूसरे दिन सबेरे नौ बजे डलहौजी स्क्वेअर पर पहुँचना था ।

यथासमय हम लोग डलहौजी स्क्वेअर पहुँच गए । कलकत्ता का वह भाग मुबई के फोर्ट एरिया सदृश है । चौडी और साफसुथरी सडके तथा ऊचे-ऊचे भवन । सजा हुआ, आधुनिक पद्धति का यूरोपीय ढग का मार्केट है । हम जब पहुँचे तो मार्केट खुला नही था । हम लोग तो नौ बजे से पहले पहुँच गए थे । पर्यटक के रूप में हम लोग कलकत्ता देख रहे थे । दिनभर हम लोग साथ में रहे । रावतजी बतियाते रहे । महिलाएँ भी साथ-साथ थीं । नम्मू प्रसन्न थी । किस रास्ते से बस गई ? कौनसा स्थान पहले देखा ? ठीक से स्मरण नही । किन्तु जिन महत्त्वपूर्ण स्थानों पर हम गए, उनके नाम लिख रहा हूँ । हम लोग विक्टोरिया मेमोरियल गए । सगमरमर की भव्य इमारत है । लगा कि ताजमहल के सदृश इमारत बनाने का प्रयत्न हुआ है । ताज का स्मरण करने पर इमारत कुछ और हो नजर आती है । यो स्वतत्र रूप में देखें तो इमारत सुदर है । इग्लैड का वास्तु-शिल्प है । आकार और आकृति पर विदेशी छाप है । यूरोप की एक इमारत भारत में देखने मिली । इमारत भव्य है । घूमकर इमारत देखी और यथासमय बस में बैठ गये। उस इमारत के चारो ओर खुला मैदान है । ताजमहल की तरह गार्डन नही है और न प्रवेश द्वार है । उस इमारत के सामने से जो सडक जाती है, वह चौरगी को जाती है । चौरंगी वहाँ से पैदल जाने का रास्ता है । चौरगी की दूसरी ओर बस्ती है और चौरगी पर दूर तक चले जाओ तो निव मार्केट है । चौरगी सडक के इस ओर मैदान खाली है । कोई इमारत नहा है । विक्टोरिया मेमोरियल से सडक की दूसरी ओर जाए तो ईडन गार्डन है — खेल का बडा मैदान है । क्रिकेट के मैच इसी ईडन गार्डन पर होते है । ईडन गार्डन से आगे, उसी क्रम मे झू (Zoo) है । उसे झूआलाजिकल गार्डन कहना चाहिए ।

हमारी बस झू (Zoo) के पास ठहर गई । वहाँ पर हमें एक घण्टे से कुछ अधिक समय दिया गया था । घूम-फिर कर देख रहे थे । 'झू' बहुत बडा है। प्राणी हैं । कृत्रिम वन का वातावरण है, उसमे वन्य प्राणी स्वतंत्र रूप मे विचरण कर सकते हे । सब जगह पहुँचना और पूरा देखना चाहे तो एक दिन भी काफी नही होता । शारीरिक क्षमता को देखते हुए घूमना था और समय रहते लौटना था । हम लोग, बस के गाइड से दूर नहीं जाते । यथा सभव साथ में रहते हुए सब देखा । हाँ, नम्मू दौड़-दौड़ कर देखती थी । वह प्रसन्न थी । झू के सामने ही सडक की दूसरी ओर (National Library) राष्ट्रीय पुस्तकालय था । हम लोग पुस्तकालय मे भी गए । ग्रंथालय के चारों ओर गार्डन है । विशाल भवन है ।

अहाता बहुत बडा है । हमारी बस मुख्य भवन के सामने खडी हो गई । हमे बहुत कम समय दिया गया । भीतर गए । सीढियॉ चढकर जाना पडा । ऊपर भव्य हाल मे पहुँचे । उसमे कार्यालय के सदस्य थे । इमारत विशाल थी । ब्रिटिश पद्धति की इमारत थी । वह इमारत पहले गवर्नर जनरल का आवास स्थान था । वारन हेस्टिगज से लेकर डलहौजी ही नही, उसके बाद के गवर्नर जनरल भी वही पर रहते थे । कलकत्ता ही भारत की राजधानी थी । ईस्ट इडिया कम्पनी का शासन इसी स्थान से होता था । दिल्ली पहुँचने तक और शासन बदलने तक — ईस्ट इडिया कम्पनी का शासन इसी स्थान से होता था । दिल्ली पहुँचने तक और शासन बदलने तक — ईस्ट इडिया कम्पनी का शासन समाप्त कर सीधे लण्डन के राजघराने से शासन को जोडने तक — यह इमारत राजधानी रही है । भारत स्वतत्र होने पर इसी इमारत को राष्ट्रीय ग्रथालय का रूप मिला । मै उसी ग्रथालय मे काम करने के लिए आया था ।

जहॉ तक मुझे याद है, हम लोग वहॉ से सीधे बोटानिकल गार्डन गए । कलकत्ता का यह विशाल गार्डन है और गगा के तट से लगा हुआ है । १९५८ ई (दिसम्बर मे) जब यहाँ आया था, उस समय चतुर्वेदीजी ने हमे बोट मे बैठाया था । गगा तट पर उतर कर हम लोग इसी गार्डन मे आए थे । अब तो बस हमे सीधे उस वटवृक्ष के पास ले गई जो गार्डन का विशेष पेड़ था । पहले जब गए थे, उस समय फेन्सिग नही थी । वृक्ष खुला था । वृक्ष के चारों ओर घूमा जा सकता था किन्तु अब फेन्सिग के कारण घूमना सभव नही था । बाहर से खडे रहकर ही देखा जा सकता था । हमारे पास इतना समय नहीं था । निश्चित अवधि मे ठहरकर हमने प्रस्थान किया । वट-वृक्ष के मूल रूप को पहचानना कठिन था । उसका घेरा विशाल था । और वही दर्शनीय वृक्ष था । उसकी रक्षा पर्यटन विभाग कर रहा था । उसके बाद मे हम लोग कहॉ-कहॉ गए ? क्या-क्या देखा ? स्मरण नही । इतना याद है कि हावडा ब्रिज से गुजर कर कलकत्ता छोड दिया। हावडा ब्रिज की दूसरी और हावडा — पुराना कलकत्ता — है । प्राचीन नगरी है। यह प्राचीन नगरी भी गगाजी के तट पर है । इस ओर की सडकें चौडी नही है । इमारते प्राचीन पद्धति की है । हम लोग जैन मन्दिर गए । मन्दिर का शिल्प प्राचीन है । घूम-फिर कर देखा । नक्काशी और कारीगरी है । भव्य आगन है। लगता है, वहॉ से हम रामकृष्ण परमहस तथा विवेकानन्द के स्थान पर (बेलूर मठ) गए । गंगाजी के तट पर बना हुआ यह मठ है । रामकृष्ण परमहस तथा विवेकानन्द के स्मृति-स्थल देखे । परमहस के भव्य हाल मे बैठे । शान्त वातावरण

है बैठने और ध्यान करने को जी चाहता है। पत्थर की इमारते है। प्रागण भी विशाल है। गगातट पर घाट की सीढियॉ बनी हुई है। क्षेत्र व्यापक है। गगाजी की अपनी शोभा हे। उस चित्त प्रसन्न करनेवाले दृश्य को निहारने मे सुख मिलता है। यथासमय हम लौट गये।

वस्तुत हम लोग औरगाबाद से ३१ अक्तूबर १८८९ ई. को निकले थे। कलकत्ता जानेवाली हावडा मेल हमे मनमाड पर रात्रि मे दो बजे मिलती है। यो हम १ नवम्बर को रात्रि मे दो बजे (तारीख बदल गई थी) ट्रेन मे बैठ गए। २ नवम्बर को सबेरे-सबेरे हावडा पहुँचे। इस यात्रा मे बहुत काम करना था। पृथ्वीराजरासो — पर काम करते समय राष्ट्रीय पुस्तकालय तथा एशियाटिक सोसाइटी की सामग्री देखी नही थी। इसी तरह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से सम्बन्धित सामग्री भी देखनी थी। क्या क्या देखना है ? सब लिखकर लाया था। यह काम मैने तीसरे दिन ४ नवम्बर से आरम्भ किया।

राष्ट्रीय ग्रथालय मैंने देख लिया था। प्रधान रूप से मुझे पृथ्वीराजरासो — से सम्बन्धित तथा आचार्य रामचद्र शुक्ल से सम्बन्धित पुस्तके देखनी थी। पत्नी और नमिता को कहॉ छोडे, यह प्रश्न था। मेरी छोटी पुत्रवधू की सहेली कलकत्ता मे रहती थी। उसका पता उसने दिया था। नाम था 'प्रिया'। प्रिया की माताजी, औरगाबाद के गवर्नमेण्ट कालेज के प्राचार्य थत्ते साहब की पुत्री थी। थत्ते साहब तो रहे नही किन्तु उनका एक मात्र पुत्र औरगाबाद की यूनिवर्सिटी की प्रेस में काम करता था। यह सब बाद मे मालूम हुआ। नमिता के पास पता था। प्रिया के पिता का क्वार्टर राष्ट्रीय ग्रथालय के अहाते में था। हम लोग राष्ट्रीय ग्रथालय पहुँचे। वहॉ पर वह क्वार्टर खोज लिया। 'प्रिया' और उसकी माताजी मिल गई। पत्नी और नमिता को वही छोडकर मै सीधे ग्रंथालय मे गया। ग्रथालय में 'हिन्दी विभाग मे पहुँचा। प्रत्येक विषय के लिए अलग-अलग अधिकारी नियुक्त है। ग्रथालय के हिन्दी विभाग के अधिकारी से परिचय हुआ। उसका पूरा नाम भूल रहा हूँ। नाम द्विवेदी ही था। द्विवेदीजी मेरे नाम से परिचित जान पडे। मेरी कुछ पुस्तके ग्रथालय मे थीं। इसीलिए नाम जानते थे। मुझे घूम फिर कर हिन्दी की पुस्तकें दिखलाई। वांछित विषयो की पुस्तकों का रैक दिखला दिया। दिन भर वही बैठकर काम किया। मैने पृथ्वीराजरासो की मुद्रित प्रतियॉ देखी। हस्तलिखित नही देख पाया। इसी तरह आचार्य रामचंद्र शुक्ल से सम्बन्धित पुस्तके देखीं। पुस्तकें खोज कर एक स्थान पर एकत्रित रूप में रख दी। बैठकर उन पर काम करना था। पृथ्वीराजरासो से सम्बन्धित लगभग बीस पुस्तकें मिली। इसी तरह

शुक्लजी से सम्बन्धित कुछ पुराने सस्करण मिले । १९३० ई मे प्रकाशित **विचार-वीथी** थी । भारतेन्दु साहित्य (१९२९ ई.) / १९३५ ई. का रामचन्द्र शुक्ल का भाषण / कुछ और पुस्तके थीं । विशेष रूप मे श्यामसुन्दरदास की आत्मकथा (१९४१ ई) मिली । मदन मोहन मालवीय से सम्बन्धित दो पुस्तके देखी — महामना मालवीय (ब्रजमोहन व्यास) और महामना मालवीय (डॉ ईश्वरप्रसाद वर्मा) / नाम पते लिख लिए । पुस्तको की सूची तैयार कर ली । कुछ अन्य विषयो की पुस्तके भी देखीं । पहला दिन तो पुस्तकें देखने और क्रम लगाने मे गया । एक-दो पुस्तके पढी भी । कुछ लिखा भी । लौट आया । नम्मू से मिला । देखा कि वह तो 'प्रिया' से काफी घुल-मिल गई । वही पर भोजन हुआ । 'प्रिया' पुत्रवधू के साथ B Com हो गई थी और इस समय C A की तैयारी कर रही थी । वह अपने समय से जाती और लौट आती । प्रिया के पिताजी से मिलना हुआ । वे प्रिंसिपल थत्ते के दामाद थे । पहले सिकदराबाद मे थे और इस समय ट्रासफर होने के कारण कलकत्ता मे थे । 'प्रिया' के मामा औरगाबाद मे थे । सच तो यह है कि मै एक चिन्ता से मुक्त हुआ । स्वतत्र रूप से कुछ काम कर सकता था । मुझे पुन ग्रंथालय में आना ही था । उस दिन हम लोग लौट गए ।

मुझे कलकत्ता के हिन्दी विभाग (विश्वविद्यालय के) में जाना था । आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री भारतीय भाषा परिषद में आए थे, उस समय मै प्रो लोढ़ाजी के घर पर गया हुआ था और जब वे लोढाजी के घर पर पहुँचे तो हम निकल गए थे । वे उन दिनो मे बहुत व्यस्त थे । भारतीय जनता पार्टी का काम कर रहे थे । संभवत हम लोग दूसरे दिन प्रो लोढाजी के घर गये । उनके घर पर हमें भोजन करना था । पारिवारिक भोजन हुआ । उस समय नम्मू का विवाह नहीं हुआ था । बाद मे (१९९३ ई मे) विवाह हुआ तो मुबई के लोढ़ा परिवार मे हुआ । नम्मू को और पत्नी को वहाँ का मार्किट देखना था । कुछ खरीदना था। लोढाजी की पत्नी के साथ वे दोनो मार्किट गई । हम लोग बैठकर साहित्यिक चर्चा करने लगे । प्रो. लोढाजी को प्राचीन वाड्मय का अच्छा ज्ञान है । प्राकृत की पुस्तकें भी उन्होने पढी है । मनोविकारों पर उन्होने कुछ लिखा भी है । वह पढकर सुनाया । आवश्यकता होने पर ग्रथालय चले जाते हैं और सदर्भ खोज लेते हैं । उनके साथ पत्र-व्यवहार १९८३ ई से है किन्तु मिलना तो उससे पूर्व हुआ है । औरगाबाद के विभाग मे उनके तीन व्याख्यान कामायनी पर हुए हैं । उनके लम्बे-लम्बे साहित्यिक पत्र मुझे मिले हैं । प्राचीन वाड्मय मै भी पढ़ता रहा हूँ,

किन्तु उतनी गहराई मुझ मे नही है। हमारा समय बीत गया और पता नही चला। नम्मू और पत्नी लौट आए। उस समय तक प्रो लोढाजी का कोई परिचित व्यक्ति वहाँ आया था। कुछ टकित करके ले आया था। उसे उन्होंने रोक लिया। और हमसे कहा — 'इसके साथ आप मेट्रो मे काली का मन्दिर चले जाएँ। वह आपको दिखाकर लौट आएगा।' हम लोग उसके साथ मेट्रो चले गए। पहली बार मेट्रो से यात्रा की। १९५६ ई मे जब कलकत्ता आया था, उस समय ट्राम मे बैठा था। इस बार मेट्रो में यात्रा की। काली का मन्दिर तक गए। मन्दिर देखा। कलकत्ता की घनी आबादीवाला वह स्थान है। कलकत्ते का पुराना भाग है। हम गए भी और आए भी। जब लौट आए तो नम्मू ने खरीदी हुई साड़ियाँ दिखलाई। श्रीमती लोढा से वे दोनो ही प्रसन्न थी। लौटकर आने के बाद रावतजी से मिलना हुआ। उन्हे मैने अपना वृत्त सुनाया। वे भी किसी कार्यक्रम में व्यस्त थे। किन्तु उन्हे सभवत मेट्रो में बैठने का अवसर नही मिला। कोई साथ लेकर घूमनेवाला नहीं मिला। प्रो. लोढाजी पर कुछ नाराज हो गए। मेरा तो अभी काम हुआ नही था। लौटने का आरक्षण कर लिया था। कलकत्ता में हमें दस दिन रहना पडा। तीन-चार दिन तो निकल गए। किस क्रम से हम कहाँ-कहाँ गए, यह सब याद नही। हर बार नई जगह जाने के लिए पूछताछ करना पडता था।

हम पुन राष्ट्रीय ग्रंथालय गए। पहले टैक्सी मे बैठने मे डर लगता था। आदत नहीं थी। अब बैठने लगे। तुरन्त ग्रथालय पहुँच जाते थे। अब स्थान मे परिचय हो गया था। नम्मू और पत्नी को 'प्रिया' के घर पर छोडकर मै ग्रथालय मे दिन भर काम करता रहा। ग्रंथालय छोडने को जी नहीं चाहता। इच्छानुसार पूरा ग्रथालय घूम कर नही देख सका। किसी रैक के पास खडे रहकर पुस्तकें देखने के लिए समय ही नही था। जल्दी से जाल समेटना था। अपना ही काम करना था। एकत्रित की हुई पुस्तको मे से कुछ के नोट लिख लिए। कुछ पुस्तको पर निशान लगा लिए। दूसरे दिन भी ऐसा ही किया। तीसरे दिन मुझे जीराक्स करवाना था। उसकी व्यवस्था वहाँ पर है। मै जीराक्स विभाग में पहुँचा। सामग्री दी। वहाँ पर लम्बी प्रतीक्षा थी। पूरा दिन गया। काम हो गया। जब तक जीराक्स का काम होता रहा तब तक ग्रंथालय घूम फिर कर देखता रहा। द्विवेदीजी से बातचीत हुई। उन्होंने अपनी पुस्तक दी।

लौटा तो नमिता प्रसन्न थी। प्रिया के साथ मार्केट जाकर आए थे। भारतीय भाषा परिषद पहुँचने तक थक जाता था। घर लौटने की इच्छा हो गई। अभी

दो/तीन दिन बाकी थे । रावतजी सभवत तब तक लौट गए थे । मुझे कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में जाना था । १९५६ ई. मे गया था । उस समय लालता प्रसादजी थे । किसी से परिचय नही था । पूछते-पूछते पहुँच गया । महानगर के मध्य भाग मे विश्वविद्यालय है । गोल-गोल सीढिया चढकर ऊपर विभाग मे गए । इमारत बहुत पुरानी है । विभाग मे शम्भुसिहजी थे । और भी सदस्य थे। सब के नाम याद नहीं । विभाग में एक व्याख्यान दिया । पत्नी और नम्मू बाहर हाल मे बेठे रहे । नीचे उतर आए । हमे लौटना था'' द्वार से बाहर निकलते ही भीड-भाड वाली सडक थी । वहाँ से आगे बढ जाओ तो बड़ा बाजार पहुँच सकते थे । वहाँ पर खाने पीने की व्यवस्था हो सकती है । किन्तु हम गए नही। बडा बाजार के द्वार तक पहुँच कर भी लौट गए । मद्रास मे जैसे सावकार पेट है, वैसे ही कलकत्ता में बडा बाजार का बडा नाम हे । हम लोग तो नये कलकत्ता मे (कनाट प्लेस) में रहे । चाँदनी चौक गए ही नहीं । लौटने के बाद मे भी जाना सभव नही हुआ ।

खाने-पीने की तकलीफ थी । शेक्सपिअर सरणी के पास खाने लायक शाकाहारी कोई होटल नहीं थी । आस पास घूम कर देखा तो हमारे खाने लायक कुछ मिलता नहीं था । सब जगह मछली की गंध आती और हम लोग बाहर आ जाते । एक मात्र मद्रासी होटल ढग की मिली । वहीं जाकर इटली-साभर तथा वोडा खा लेते और काफी पी लेते । नारियल मिलते । उसका पानी पी लेते । रात्रि मे सो जाते । थके हुए रहते थे । हमारी मजिल से ऊपर मच था और वहाँ पर कार्यक्रम रात्रि मे चलता रहता । ऊपर जाने की इच्छा नही होती। लेटे लेटे ही सुन लेते थे । सगीत का कार्यक्रम चलता रहता था । उसी भवन में प्रभाकर माचवेजी रहे, बालशोरि रेड्डी रहे और बाद मे प्रभाकर श्रोत्रीयजी भी रहे । किन्तु हम लोग जब वहाँ पर गए तो, वहाँ पर कोई नही था । नीचे कार्यालय मे डॉ. कन्हैयालाल ओझा थे । वृद्ध हो गए थे । उनसे बात होती । छत पर पहुँच कर ऊपर से कलकत्ता देखते । भवनो के बीच-बीच मे छोटे छोटे तालाब दिखलाई देते । जहाँ गगाजी अपने चरम रूप मे है, वहाँ पानी की समस्या नही हो सकती ।

आरक्षण की तिथि आ गई । भारतीय भाषा परिषद के बिल का भुगतान कर हम लोग लौट गए ।

□ □

8

बीमारी ने घेर लिया

कलकत्ता से लौटा तो थका हुआ था । हाथ-पाँवो मे दर्द होने लगा था। शरीर मे खिंचाव था । विभाग मे ढेरो काम था । विभाग की एक पुस्तक को पूर्ण करना और प्रेस कापी तैयार कर दिल्ली भेजना था । वह काम करता रहा। उन दिनो स्कूटर (बजाज १५०) चलाता था । इलाहाबाद मे भारतीय हिन्दी परिषद की मीटिंग रखी गई थी । हम दोनो को निमत्रण मिले थे । मै परिषद का उपसभापति था और राजूरकर साहब कार्यकारिणी के सदस्य थे । औरगाबाद अधिवेशन का हिसाब-किताब बाकी था । हमारा पहुँचना आवश्यक था । १३ दिसम्बर १९८९ ई को मीटिग थी । हम दोनो ने इलाहाबाद का आरक्षण किया । महानगरी से जाना था । मनमाड़ से दिसम्बर १२ को सबेरे पाँच बजे की गाडी से जाना था। ११ दिसम्बर को यूनिवर्सिटी से पाँच बजे लौट आया । प्रेस कापी उसी दिन दिल्ली भेजी थी । और भी काम करते हुए इलाहाबाद जाने की तैयारी की । रात मे

ग्यारह बजे की पैसेंजर से मनमाड जाना था। राजूरकर साहब स्टेशन पर मिल गए। वेटिंग रूम मे बैठे रहे। गाडी आई नहीं। कारण मालूम नहीं। दूसरी गाडी रात मे दो बजे थी। घर जाकर पुन लौटना ठीक नही था। राजूरकर साहब संभवत: घर लौट गए। मै बैठ गया। वे पुन आए। दो बजे की गाडी में बहुत भीड थी। मुश्किल से चढे। बैठने के लिए जगह नही मिली। जो जगह मिली, उस पर राजूरकर साहब बैठ गए। खडे-खडे ज्यो-त्यो मनमाड पहुँच गए।

मनमाड पर उतरे, उस समय साढेचार बजे थे। सबेरे का समय था। पॉच बजे हमारी ट्रेन थी। दिसम्बर का मास था। जाड़ा अपने उत्कर्ष पर था। कॉपते-कॉपते ही दो नम्बर के प्लेटफार्म पर पहुँच गए। कुली के साथ कॉपते हुए दौडना पडा। वेटिंग रूम मे बैठे। गाडी ठीक समय पर आ गई। कुली सामान लेकर हमारे आरक्षण के डिब्बे तक आया। मै भीतर से स्वेटर पहना हुआ था। ऊपर से कोट था। फिर भी कॅप-कॅपी थी। सामान भीतर रखते ही हम दोनो क्रमश गाडी में बैठने लगे। राजूरकर साहब आगे निकल गए और अपनी बर्थ पर बैठ गए। कुली भीतर नहीं आया। वही से उसको बिदाकर भीतर जाने लगा। गाडी हिल गई। चलने लगी। उसी समय बिजली का धक्का लगे, उस तरह से शरीर झनझना गया। पास खडे दूसरे यात्री ने सामान उठाया। बर्थ तक कॉपते हुए जाकर बैठ गया। वैसे ही बैठ गया। सामान व्यवस्थित नही कर सका। राजूरकर साहब की बर्थ कुछ दूरी पर थी। वे भी थके हुए थे। रात्री का जागरण था। मेरी कॅप-कॅपी बन्द नही हुई। टी टी. आया। उसने मेरी हालत देखी। कहा, गाडी तो भूसावल पर ठहरेगी। ८ बजे सबेरे पहुँचेगे। मै फोन करता हूँ। भूसावल पर डॉक्टर आ जाएगा। अब तो कुछ हो नही सकता। वैसे ही बैठा रहा। गाड़ी वैसे अपनी गति से चलने लगी थी। जैसे-तैसे थोडी चेतना आने पर अपना सामान ठीक किया। बैग व्यवस्थित की। चादर बिछा ली। ओढने का निकाल कर ठीक से ओढ कर बैठ गया। सो नहीं सका। राजूरकर साहब आए। देखकर गए। टी.टी. ने उन्हे समझा दिया। वे चले गए। मै चुपचाप रहा। गाडी के चलते रहने पर धीरे धीरे आँख बन्द होने लगी। तन्द्रा-सी स्थिति हुई। वह जागते हुए सोना था। थोडा आराम मिला। शरीर मे स्थिरता आई। ऐसे ही झकोले खाते रहा। गाड़ी बहुत तेजी से दौड़ रही थी। आठ बजे सबेरे भूसावल पहुँच गई। वहाँ पर गाडी पन्द्रह मिनट ठहरती है। डिब्बे के ठीक सामने डाक्टर आया।

उसने जाँच की। कागज पर रिपोर्ट लिख दी। अपने पास से कुछ गोलियाँ दीं। फिर कहा कि — आगे यात्रा न करें। भूसावल मे दवाखाने मे एडमिट हो जाओ। हम लोगों ने यात्रा स्थगित कर दी। कुली हमारा सामान लेकर वेटिंग रूम तक आया। मुझे भूख लग गई थी। बैठ गया। बैग मे पूडियाँ निकाली। दो पूडियाँ खा ली। कुछ चेतना आई। राजूरकर साहब ने अपना टिकट निकाल कर दिया। कहा — 'टिकट लौटाकर आओ। मै यहीं पर बैठता हूँ।' वैसे ही टिकट लौटाने गया। दादरा चढ़ना पडा, पुन उतरना पडा। काउंटर पर गया। टिकट लौटा दिया। भूसावल से औरंगाबाद दो टिकट भी ले लिए। अब तो जो गाडी मिले, उसमे लौटना था। दादरा पुन चढ गया। पुन: उतरा और यथास्थान बैठ गया। वहीं पर बैठकर, स्टेशन का दूध पी लिया। हम लोग मनमाड की गाडी मे बैठ गए। जगह मिल गई। सभवत. पैसेंजर थी। जलगाँव पर बडे-बडे बेर मिले। गदराए और मीठे थे। जाली की थैली मे पैक किए हुए थे। मैंने बेर खरीद लिए। बैठे-बैठे बेर खाए। स्वादिष्ट थे। भूख भी वैसी थी। तुष्ट हुआ। हवा में थोडी गरमी आ गई थी। जाडा कम हो गया था। मनमाड आए और वहाँ से औरगाबाद पहुँचे। घर पहुँच गया। सब कुछ बतलाया। कहा — 'डॉक्टर को दिखलाना है।' उस दिन तो थका हुआ था। डॉक्टर के पास नहीं जा सका। दूसरे दिन सबेरे १३ दिसम्बर को नियमानुसार स्कूटर पर बैठकर यूनिवर्सिटी गया। नियमानुसार पाँच बजे लौट आया। सायंकाल मे छ. बजे के आस-पास पत्नी के साथ बजाज अस्पताल मे गया। डॉ भागवत को दिखलाया। उन्हे रेलवे के डॉक्टर की रिपोर्ट दिखलाई। डॉक्टर ने देख लिया। कुछ कहा नही। पत्नी से कहा — 'इन्हें पैदल घर पर न ले जाएँ। रिक्शे मे जाएँ। दो सप्ताह के लिए 'हाउस रेस्ट' अर्थात् घर से बाहर न जाएँ — घर पर आराम करें' — कहा। कुछ नियमित गोलियाँ दीं। तीन बार दिन में लेनी थीं। डॉक्टर ने फिर आने के लिए कहा था। रिक्शे से आना और वैसे ही लौटना। मै घर पहुँच गया। यूनिवर्सिटी जाना बन्द हो गया। १३ दिसम्बर १९८९ ई. को स्कूटर से यूनिवर्सिटी से घर लौटा था। उसके बाद स्कूटर चलाना बन्द कर दिया। १९७२ से १९८९ ई तक लगभग सत्रह वर्षों तक मैंने स्कूटर का उपयोग किया है। डॉक्टर के प्रमाणित करने के कारण मुझे मेडीकल छुट्टी मिल गई। दूसरी बार डॉक्टर के पास गए तो डॉक्टर ने धीमे से समझा कर कहा कि 'माइल्ड हार्ट अटैक था।' घबराने की बात नही है। रेस्ट लेने से ठीक हो जाएगा। शूगर टेस्ट करवाया। उसकी

गोलियाँ अलग से लेने लगा । ब्लड-प्रेशर के कारण उसकी गोलियाँ अलग । घर पर रहने की आदत नही थी । जबरन घर पर रहना पडा । क्या करता ? सेवा-निवृत्त होने से पहले यह स्थिति हो गई । बिस्तर पर आदमी कितने दिन सो सकता है ? घूमना-फिरना बन्द हो गया । सबेरे टहलने नही जा सकता था। उस समय दो-तीन विषयों पर एक साथ काम चल रहा था । उस ओर ध्यान केन्द्रीत किया । १९८९, दिसम्बर से रिटायर होने तक के अन्तिम वर्ष (४ फरवरी १९९३ तक के वर्ष) वाचन और लेखन मे बीते है । मै पूर्ववत् काम करने की स्थिति मे नही रहा । अकेले यात्रा करना बन्द कर दिया । हाउस रेस्ट मे — तीन महीने तो एक प्रकार से घर मे कैद था । लोग आते, मिलकर चले जाते । विभाग से लोग आए । देखकर गए । डॉ श्याम वर्मा स्वय कैंसर से बीमार होने पर भी देखने आए । उनका आत्मबल देखकर चकित रह गया । मौत की गोद में रहकर हँसकर जीने की प्रेरणा देनेवाले व्यक्ति है । घर आए तो बोले — 'आप यूनिवर्सिटी नहीं जा रहे है — क्या बात है ? मुझे मालूम ही नही। शागा ने फोन पर बतलाया कि आप घर पर है । मै चला आया ।' वे स्वय डॉक्टर है । बीमार आदमी से बात ऐसी करते है कि वह चिन्तामुक्त हो जाए । अपनी कथा, सुनाई । बोले — 'मैं डॉक्टर को दिखलाने पूना गया। बस स्टेण्ड पर चक्कर आ गई । वही लेट गया । चेतना आई तो उठकर बस मे बैठा और पहुँच गया । उनकी बीमारी मे उनके साथ मे कोई नही रहता । डॉक्टर को दिखलाना हो तो अकेले जाते । दवाइयाँ लेते और नियमित अपना काम करते । उन्होने होमियोपेथी के 'गोल्डन ड्राप्स' लेने कहा । जर्मन की दवा है । किन्तु अब भारत मे भी वे ड्राप्स मिलते है । नाम है 'Tonicard' टॉनीकार्ड । उसके ड्राप्स (बूँदे) पानी मे डालकर पीने के लिए कहा । वे ड्रॉप्स अब तक पी रहा हूँ । एक तो यह डॉक्टर है, जो बीमार से बात करता है और आपकी तकलीफे सुनकर निदान बतलाता है। दूसरे, अस्पताल मे ऐसे डॉक्टर हैं जिनके पास बात करने के लिए समय नही है । घण्टो से बैठने पर डॉक्टर मिलता है । जॉच करता है । आवश्यक टिप्पणी के रूप मे निदान बतला देता है । उसमे डॉ. भागवत (हृदयरोग के विशेषज्ञ) तो ऐसे है, जो बहुत कम बोलते है । उनकी औरंगाबाद मे ख्याति है । उनसे मैंने कहा — 'रात मे नीद नही आती।' उन्होंने नीद लेने की पद्धति समझा दी — कहा — सीधे (शवासन की मुद्रा मे) लेट जाओ । आँखे बंद कर लो । नाक सीधी, ऊपर रहनी चाहिए । साँस लेते रहें । चित्त शान्त रहे । चलायमान न होकर

चुपचाप पड़े रहे । नींद आ जाएगी ।' मैंने प्रयत्न किया । नींद आने लगी । आरम्भ के दो-तीन महीने (हाउस रेस्ट के महीने) डॉ. भागवत के निर्देशन में गुज़रे । बाद में यूनिवर्सिटी जाने लगा । किन्तु अब स्कूटर पर नहीं जाता था । बस से जाता था और उसीसे लौटता था । पांच बजे तक बैठना बन्द कर दिया । दोपहर में दो-ढाई बजे तक घर लौट आता था । दो पीरियड्स लेता था । एक घण्टा एम.फिल का और दूसरा घण्टा एम.ए. (भाषा विज्ञान का) का । ऐसे ही चल रहा था। डॉक्टर भागवत ने मेरा केस डॉक्टर एकबोटे को सौंप दिया । शुगर, ब्लड प्रेशर वे देखने लगे । उनके निर्देशन में गोलियाँ लेने लगा ।

□ □

नमिता का विवाह

१९९० से १९९२ ई. के लगभग तीन वर्ष के काल में मेरी सब से बड़ी चिन्ता नमिता के लिए वर खोजने की थी । न चाहने पर भी यात्राएँ करनी पड़ी। यद्यपि ये यात्राएँ मैं अकेला नहीं करता था । कोई-न-कोई साथ में रहता था किन्तु यात्राएँ तो यात्राएँ ही थी । यात्राओं में थक गया था । डॉक्टर कहते आराम करो . किन्तु आराम कैसे करूँ ? यूनिवर्सिटी नियमित जाता था । स्कूटर चलाना छोड़ दिया था । बस से जाता और बस से लौटता । घर से नौ बजे निकलता और पुन लौट आने तक दो-ढाई बज जाते । अब सायकाल के पाँच बजे तक नहीं बैठता था । विभाग में भी काम चल रहे थे । प्रतिदिन दो घण्टे पढ़ाता ही था। इन दिनों में दो पुस्तकों पर काम चल रहा था । पुस्तकों के प्रकाशन की चिन्ता थी । प्रत्येक पुस्तक के लेखन-प्रकाशन की अपनी कहानी है । साइंस इंस्टीट्यूट के प्राध्यापक श्री ओक मेरे पास आए । कहने लगे **निपट-निरंजन की बानी** पुस्तक सम्पादित कर दो । मैंने अपनी विवशताएँ उनको समझा दी । सारी सामग्री टेबल पर ला दोगे और दौड़ धूप — आवश्यकतानुसार आप करेंगे तो मैं काम को हाथ लगाऊँगा । उन्होंने स्वीकार किया । सारी सामग्री मिल गई ।

□ □

निपट-निरंजन की बानी

निपट-निरंजन की बानी की जो पाण्डुलिपि थी, वह एक प्रकार से सग्रह की गई थी । लिखनेवाला एक व्यक्ति नहीं था । जैसे सुना और याद आया, वह सब लिख लिया गया था । कागज़ों के दो बड़े बण्डल थे । एक लगभग दो सौ साल पुराना हो गया । और दूसरा लगभग — अधिक से अधिक सौ साल

पुराना । इतनी बात सच है कि निपट-निरंजन की बानी का वाचन चलता रहा है । वस्तुत औरंगजेब के काल की रचना है किन्तु उस काल तक पहुँचनेवाली प्रति नहीं मिलती । डॉ भालचन्द्र तेलंग ने भी कुछ काम किया था । वे तो अब नहीं थे । किन्तु उनकी पुस्तक **औरंगाबाद की हिन्दी सन्त वाणी** मुझे मिल गई थी । निपट-निरंजन पर उनकी ३० पृष्ठो की भूमिका — जीवन परिचय ओर सन्त वाणी से सम्बन्धित है । मैंने उससे सहायता ली है । उन्होने अन्य सन्तो का परिचय भी और उनकी सन्त वाणी के नामो के साथ दिए हैं । औरंगाबाद मे **एकनाथ संशोधन** शोध सस्थान है । उसके साथ श्री ओक का सम्पर्क था। मैंने उनकी सहायता मे पुस्तक छपवाई । श्री ओक तदर्थ दिल्ली गए । वाणी प्रकाशन को अनुदान की राशि दी । उस राशि के बदले ५०० प्रतियाँ उक्त सस्था को मिली। पुस्तक छप गई ।

मैं किसी ऐसे व्यक्ति की खोज मे था, जो निपट-निरजन की वाणी सुनाता है, जिसे पारम्पारिक रूप से वह वाणी याद है । मुझे किसी ने बूढे नाई का नाम बतलाया । सद्गुरे उसका नाम था । शाहगज मे उसकी दुकान थी । वह तो बूढा हो गया था । उसका पौत्र दुकान देख रहा था । दुकान पर उसके पौत्र से मिला। मैंने कहा — 'मैं तुम्हारे दादा से मिलना चाहता हूँ ।' वह मुझे अपने घर ले गया। जिनसी के पास के चौरस्ते की गली मे जाना पडा । मिट्टी का घर था । पुरानी पद्धति का मकान था । पत्थर की सीढियो पर से ऊपर ले गया । सद्गुरे मिल गए । मिचमिची ऑखे थी । वृद्धावस्था का अपना रूप था । उस समय अस्सी वर्ष से कुछ ऊपर ही होगे । मैंने कहा — 'मैं निपट बाबा की बानी सुनने आया हूँ ।' बहुत खुश हो गए । उनके कठ में निपट बाबा की बानी थी । कवित्त-सवैये सुनाए । गाकर, लय में सहज गति से चुटकियाँ बजाते हुए सुनाए । सुनाते समय उनकी प्रसन्न मुद्रा देखते बनती थी । सन्तों की बानी जन-जीवन में फैली हुई है । उसने लोकवाड्मय का रूप ले लिया है । मेरे सुनने की इच्छा जारी रही । किन्तु कुछ समय बात भी करनी थी । उन्होंने पुरानी पोथियो का सग्रह दिखलाया । मानपुरी की पाण्डुलिपियाँ दिखलाई । अन्य सन्तों की बानियाँ भी उनके पास मे थीं । बुढापे में भी उनमें जीवनी शक्ति थी । आत्मबल था । सतो की बानी ने उन्हें प्रसन्न रखा है । मै लौट आया ।

बाद मे मेरी बहुत इच्छा हुई कि विभाग में उन्हें बुलाकर उनके मुख से **निपट-निरंजन की बानी** सबको सुनाई जाए । मेरी क्षमताएँ उस समय सीमित

हो गई थी । इसीलिए यह आयोजन सभव नही हुआ । मै भी दूसरी वार उनसे मिल नही सका ।

□ □

मुनि मिश्रीलाल की आत्मकथा

विश्वविद्यालय के पीछे गणेश नगर है । विश्वविद्यालय से वेगमपुग की ओर नाला पार करके आएँ तो बेगमपुरा की सड़क मिल जाती है । यह सडक एक ओर मकई गेट तक जाती है और दूसरी ओर औरगाबाद की गुफाओं तक जाती है । इसी सडक पर **गणेश नगर** है, जो ठीक विश्वविद्यालय के मुख्य भवन से पीछे है । विश्वविद्यालय के मुख्य भवन के सामने स्वर्ण महल है । गणेश भवन से लगा हुआ निपट-निरजन का स्थान है । उसके आगे साइस का इस्टीट्यूट है। गणेश नगर विशाल है । इसके निर्माण के लिए मुनि मिश्रीलालजी को विपुल धनराशि लगातार मिलती रही है । नगर से बाहर होने पर भी दर्शनार्थियो का ताता लगा रहता है । बाहर से आनेवालों को कमरे मिल जाते है । चौबीस घण्टें चौका लगा हुआ है । भोजन भी मिल जाता है । मुनि श्री ने अपने गुरु — गुरुगणेशलालजी की सगमरमर की मूर्ति बनवाई और उसे चबूतरे पर स्थापित करवाई । उसका विरोध बहुत हुआ किन्तु मुनिजी के सामने गणेश नगर के क्षेत्र मे — किसी ने कुछ नही कहा । मुनिजी को चाहनेवालों की संख्या अधिक थी । उनकी छत्र-छाया मे बैठनेवाले उनसे कुछ नही कहते । उनकी जीवनी लिखवाने के प्रयत्न हुए । दान-दाताओ की कमी नही थी । एक जीवनी लिखी भी गई और पुण्य-तिथि के अवसर पर उसका विमोचन भी हुआ । बापजी (मुनिश्री को हम लोग बापजी कहते थे) प्रसन्न नही थे । उन्होंने मुझसे कहा । मैने कहा कि लिखूँगा किन्तु आपको स्वय बैठकर बतलाना होगा । वे तैयार हो गए । उस समय मै स्कूटर चलाता था । सबेरे एक घण्टा पहले पहुँच जाता । जो कुछ वे सुनाते, उसे यथावत् उन्ही के वाक्यों मे (प्रथम पुरुष मे) लिख लेता था। इस कार्य मे डॉ पारसमल बोरा (पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन विभाग, मराठवाडा विश्वविद्यालय) ने मेरा सहयोग दिया है । इस क्रम मे लिखने के कारण समय काफी लगा । फुटकल पन्नों पर, कुछ नोट बुक पर लिखता रहा। जब सब कुछ लिख लिया तो मैंने घर बैठकर उसे पुन और व्यवस्थित आकार देने का प्रयत्न किया । मुझे प्रशस्ति परक कुछ भी लिखना नही था । मैंने बापजी के वाक्यों में कोई परिवर्तन नही किया । वर्तनी को ठीक कर दिया । वक्ता के कथनो को श्रोता ने लिखा — बस इतना ही । जब पुस्तक पूरी हुई तो मैंने पुस्तक

का नाम रखा मुनि मिश्रीलाल की आत्मकथा बीमारी के दिनो मे कुछ काम शेष रहा था । १९९० ई मे मैने स्कूटर चलाना बन्द कर दिया था । अत जब आवश्यकता होती चला जाता । काम पूरा हो गया था । सेठ लोग छपवाने की व्यवस्था करने के लिए तैयार हो गए । मैंने श्रम से लिखी हुई पुस्तक किसी को नही दी । परिवार के लोगो मे, कुछ अपनी ओर से धनराशि लगा कर पुस्तक छापने के लिए श्री अशोक महेश्वरी को दी । उस समय श्री अशोक महेश्वरी राधाकृष्ण प्रकाशन मे बैठते थ । उन्होंने वॉछित राशि मिलने पर पुस्तक छाप दी। 'भूलोक' प्रकाशन के नाम से छापी । पुस्तक की डमी कापी मिलते ही बापजी को पढने के लिए दी । उन्होंने पूरी पुस्तक अभिरुचि के साथ पढी । उन्हें लगा कि इस पुस्तक में मैं स्वय हूँ। उन्हीं के शब्दो मे होने के कारण — भाषा सरल होने के कारण भी — उन्हे ठीक लगा । १९९२ ई. मे उन्हे पुस्तक मिल गई थी। सारी प्रतियॉ आने में समय लगा । पुस्तक मे रंगीन चित्र भी हैं ।

बीमारी की अवस्था मे (१९८९, दिसम्बर के बाद) मै यह सब काम कर रहा था । डाक्टरी चेक-अप जारी था । गोलियॉ शुरू हो गई थी । शूगर, ब्लड प्रेशर की गोलियॉ तो आजीवन आरम्भ हो गई थी । न चाहने पर भी नमिता के लिए वर खोजने के लिए जाना ही पडता था । प्राय सुनिल को और कभी-कभी अनिल को साथ लेकर यात्रा करता । अकेले कभी नही गया । तेजमल (भाई) को, केशरचदजी (भाई) को साथ लेकर यात्राएं की । पूना और नाशिक में बहुत प्रयत्न किये । बम्बई भी मैं दो-तीन बार गया । यो मै चिन्तित रहने लगा । रिटायरमेण्ट के दिवस समीप थे । बाद मे मैने **टाइम्स ऑफ इण्डिया** मे विज्ञापन दिए । उससे काफी पत्र मिले । लडको का परिचय भी मिला । जाकर देखने की ताकत नही रही । टाइम्स ऑफ इडिया — के कारण जो पत्र मिलते उनमें उत्सुकता बहुत रहती । इस तारीख को मिलिए — बाद मे लडका अमरीका जा रहा है । दूर-दूर के लडके । न जान, न पहचान ? क्या करें ? बम्बई से एक बायोडाटा आया । पत्र भी था । बच्चो को दिखलाया । सुनिल से कहा — 'लडका देखकर आओ ।' तैयार नही हुआ । अनिल भी तैयार नही हुआ । सुनिल अपने व्यवसाय के कार्य से बम्बई जा रहा था । मैंने कहा — 'जा ही रहे हो तो लड़का देखकर आओ ।' वह तैयार हो गया । उसने लडके का घर खोज लिया । लडका देखा । परिवार देखा । उदयपुर के रहनेवाले थे । मुबई में बस गए थे । लडका C A हो गया था । सामनेवाले ने (लडके के पिता ने) सुनिल की बहुत आवभगत

की । मुनिल को जल्दी मे छोडा ही नहीं । सुनिल आया तो उसने रिपोर्ट अच्छी दी । किन्तु कहा कि मुख पर जन्म-निशानी है । बात वैसे ही रह गई । पूना में लडका देखा । नागपुर सुनिल गया और हैदराबाद भी गया । बोलारम मे लडका था । हमारे प्रयत्न जारी थे । अब तो मै यात्रा करने की स्थिति में नही था । बच्चे ही जाते थे । अनिल के साढू भडारीजी मुबई मे डाक्टर थे । १९९२ ई बम्बई मे दंगा हुआ था । आपरेशन में व्यस्त रहते थे। कैम्प लगाकर सेवाकार्य करते रहते थे । अनिल साढू के पास मुबई गया और दोनों मिलकर लडके को देख आए । भडारीजी ने कहा — 'कोई बीमारी नही, जन्म निशानी है ।' और सब कुछ ठीक था । भण्डारीजी ने लडका पसन्द कर लिया । अनिल को भी सब ठीक लगा । आने के बाद उसने जो कुछ बतलाया, उससे सम्पर्क करने की इच्छा हुई । इस बीच मैंने भाई केशरचन्दजी (कलमवाले) के साथ पूना, बारामती की यात्रा की थी । पूना मे एक लडका था । पूनावाले तैयार हो गए। मै लौट आया । मुबई से सम्पर्क कर लडके के पिता को भी बुलवाया । सुनिल नागपुर तथा सिकंदराबाद जाकर आया । वहाँ पर सिकदराबादवाले (बोलारम मे रहते थे) तैयार हो गए । यो एक साथ तीन-चार जगह सम्पर्क जारी थे । इनमे पूनावाले पहले आए । कार मे सारा परिवार आया । उनकी आवभगत मे दिन गुजरा । पूनावाले के कोई सम्बन्धी यहाँ बजाज फैक्ट्री के निकट की कालोनी मे रहते थे। वे भी प्रयत्न में थे । पूनावाले लगभग तैयार थे । घरवालों को लडका ठीक नही लगा । इसीलिए मैंने निश्चित रूप मे उत्तर नहीं दिया । वे लोग जब चले गये तो निराश होकर मैं लेट गया । दूसरे ही दिन सबेरे बम्बईवाले पहुंचे। अकेले ही थे । मैंने उनकी विशेष सेवा नही की । पहले दिन का थका हुआ था । कुछ नया लाना या मगाना भी नही था । वैसे ही आवभगत की । लड़की को बुलवाया । उन्होने लडकी से विशेष कुछ नही पूछा । आवाज सुनने के लिए दो चार सामान्य प्रश्न पूछे । नम्मू ने ठीक उत्तर दिए । उन्हें लडकी पसन्द आ गई। वे तैयारी से ही आए थे । उन्होने लडके का फोटो दिया । हमे ठीक लगा । मुनिल और अनिल पहले ही देख आए थे । मैं उन्हे गणेशनगर ले गया । बापजी को परिचय दिया और प्रयोजन बतलाया । उनकी मंगलीक लेकर लौट आया । फिर सायकाल मे उनके साथ सिद्धार्थ गार्डन गया । घण्टा वहाँ पर गुजारा । उनसे जो बातचीत हुई — वह मुझे ठीक लगी । फिर भी नये व्यक्ति से परिचय था । और जानकारी लेना था । तदर्थ मुझे स्वय बम्बई जाना आवश्यक था । वे चले

गये दूसरे दिन सबेरे बम्बई से फोन आया कि लडका देखने के लिए पधारे। हुकूम करे। मैंने कहा — 'घर में पूछकर उत्तर देता हूँ।' बात की तो पत्नी ने कहा — 'लडके को यहीं पर बुलवा लो। हम सब देख लेंगे।' तदनुसार मैंने निवेदन किया। उन्होंने लडका भेजना स्वीकार किया। लडके के साथ तीन कॅवारी बहने आई और चौथी बडी बहन उदयपुर से हवाई जहाज से अपने पति के साथ आई। दिनभर सब हिलमिल कर रहे। नम्मू के साथ दिन भर रहे। हम सब को लडका ठीक लगा। यथासमय वे सब चले गए।

दूसरे दिन पुन फोन की घण्टी बजी। श्रीमान रोशनलालजी बोल रहे थे। उन्होंने सीधे प्रस्ताव रखा और साफ शब्दों में कहा — 'हुकुम करो' (उदयपुर की दरबारी भाषा) वास्तव मे वे उदयपुर के थे। उनका मूल गॉव हल्दीघाटी के पास का गाँव खमनौर था। मेवाड के थे और खास मेवाडी भाषा का व्यवहार करते थे। मुझे उनके 'हुकुम करो' — प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार करना कठिन लगा। मैंने नकारात्मक उत्तर नही दिया। कहा कि सब की राय लेकर उत्तर देता हूँ। मेरी ऐसी स्थिति थी कि न हॉ कह पा रहा था और नकारना तो चाहता नही था। किन्तु रोशनलालजी तो मेवाड के रहे हो किन्तु इस समय पूरे बम्बई के थे। वे पीछा करना जानते थे। वे लोग निश्चय कर लेते है तो तुरन्त उत्तर चाहते हैं। मै हॉ करने से पूर्व दृढ निश्चय के लिए किसी से परामर्श लेना चाहता था। मैं तुरन्त दौडा-दौडा बापजी (मुनि मिश्रीलालजी) के पास गया। बापजी को पूरा समाचार दिया और बतलाया कि 'हाँ कह दूँ क्या ?' मुझे एक बार तो घर देख लेना चाहिए। बापजी बोले — 'हॉ, कह दो। सब ठीक होगा।' फिर पूछा — 'मै देखने के लिए कब जाऊँ ?' बोले — '१८ अगस्त को जाना।' मैंने पूछा — 'सगाई की तिथि बतलाएँ ?' बोले — '**२३ अगस्त १९९२ ई.**।' यह सब मै ९ या १० अगस्त को पूछ रहा था। बापजी ने बम्बई जाने की तिथि एक सप्ताह बाद की बतलाई। उससे पहले जा भी नही सकते। चुपचाप चला आया। बम्बई से पुन रोशनलालजी का फोन आया। निर्णय और तिथि पूछी। मैंने सकारात्मक उत्तर दिया और **२३ अगस्त १९९२ ई.** तिथि बतला दी। पुन. बोले — 'मैंने विले पार्ले में एक फ्लैट खरीद लिया है। उसकी वास्तु-शान्ति (गृहप्रवेश) की तिथि भी बापजी से पूछकर बतलाएँ ?' मैंने सकारात्मक उत्तर दिया। मेरा तो निर्णय, बिना देखे ही हो गया। अब तो औपचारिक रूप में मात्र जाना था। इस बीच सिकंदराबाद से कान्ता का फोन आया। बोली — 'बोलारमवाले आकर

बैठे है । उन्हे क्या उत्तर दूँ ? बम्बई में बात पक्की हो जाने के कारण मैंने उत्तर टाल दिया । न हाँ कहा, न ना कहा । इसी प्रकार के दो-तीन फोन आए । मैंने कोई सकारात्मक उत्तर नही दिया । मै निश्चयपूर्वक यह भी कहने की स्थिति में नही था कि बम्बई में सम्बन्ध पक्का हो गया है । पुन बापजी से मिलने गणेश नगर पहुँचा — वास्तुशान्ति का मुहूर्त पूछा । उन्होंने वही तिथि बतलाई — २३ अगस्त १९९२ । मैंने फोन द्वारा तिथि की पुष्टि कर दी । और यह भी निर्णय हो गया कि सगाई बम्बई मे ही होगी । मै तैयारी मे लग गया । दोनों लडकों के सहयोग से काम होने लगा । पत्रिका छाप दी और सम्बन्धियों को भेज दी । तेजमल को भी समाचार भेज दिया । औरंगाबाद में सगाई होती तो सभवत परिवार के लोग अधिक आते । १८ अगस्त को हम दोनों ही बम्बई गए । घर देख लिया । अब तो रोशनलालजी ब्याही हो गए थे । उनके बडे भाई मिले । दोनो की दुकाने देखी । व्यवसाय देखा । बडे भाई के तीनो लडके C.A. थ । और अपना-अपना कार्य कर रहे थे । उन तीन भाइयो को देखकर कँवरसाहब ने भी C.A. कर लिया था। कँवरसाहब की दो बहनो का ब्याह उदयपुर मे हो गया था । तीन बहनो का ब्याह अभी होना था । सब कुछ देखकर हम लौट आए । २० अगस्त को लौट आए। पुन २१ अगस्त को तैयारी के साथ जाना था । यात्राओं से थक गया था । किन्तु यात्रा पर जाना आवश्यक था । काम तो सब सुनिल और अनिल कर रहे थे । मुझे केवल उपस्थित रहना था । मुबई में, चेम्बूर में मेरी पत्नी के भाई रहते थे । मदनलालजी मडलेचा थे । अब तो वे नहीं थे किन्तु उनकी पत्नी अपने पुत्र के साथ चेम्बूर मे उसी मकान मे रहती थी । मैंने नाशिक को समाचार भेज दिया था । चन्दूलालजी (नमिता के मामाजी) बम्बई पहुँच गए थे और अपने भाई के घर पर चेम्बूर मे थे । नम्मू के मामीजी भी नाशिक से आए थे । उस समय कलम से नेमीचदजी (नमिता के मामाजी) भी चेम्बूर में उसी दिन थे । हम सब लोग एक दिन पहले २२ को विले पार्ले पहुँचे । एक फ्लैट मे, जो पूरा खाली था । ब्यायजी के बडे भाई का था — हमें ठहराया गया । मैं वहाँ से सीधे चेम्बूर पहुँचा और दोनों भाइयों से (चन्दूलालजी और नेमीचंदजी) मिला । दोनों भाई भी प्रसन्न थे । उस दिन दोनो लडके सुनिल और अनिल कँवर साहब के साथ बम्बई के मार्किट में घूमते रहे । कँवरसाहब के लिए उनकी पसंद से ड्रेस और आवश्यक सामान खरीदते रहे । दूसरे दिन सबेरे चेम्बूर से मामाओं का परिवार विले पार्ले मे था । समय पर पहुँच गया । आने पर दोनो मामाओं ने सारा काम संभाल

लिया तेजमल भी आ गया था । नाशिक से दोनो पति-पत्नी आए थे । यो नन्नू के मामा के घर के सदस्य समय पर उपस्थित थे । नया फ्लेट जहाँ पर कार्यक्रम होना था — वह तीसरी मंजिल पर था । फ्लैट तो बढ़िया था । चढ़कर जाना पडा । यथासमय वास्तुशान्ति और सगाई का कार्यक्रम हुआ । कार्यक्रम मे बम्बई के मेवाडी लोग अधिक थे । ब्यायजी के पाँच भाई है । एक भाई खमनौर-उदयपुर मे अपनी माँ के पास मे रहता है । बाकी चारो बम्बई मे ही थे । सब उपस्थित थे । कुछ बुजुर्ग लोग मेवाडी पगडी पहने हुए बैठे थ । कार्यक्रम सफलता से सम्पन्न हुआ । भोजन के लिए पुन फ्लैट से नीचे उतरना पडा । निकट ही दूसरी ओर किसी हाल मे सारी व्यवस्था थी । ब्यायजी की व्यवस्था थी । सब कुछ उत्तम था । हम लोग लौट आए । यो नमिता की सगाई सम्पन्न हो गई ।

□ □

भोपाल जाने का निमंत्रण

सीतामऊ की ओर से इन्ही दिनो में पत्र मिला । महाराजकुमार डॉक्टर रघुबीरसिंह का ग्रथ छपना था । ग्रथ के सम्पादक मण्डल म मेरा नाम था । सम्पादक मण्डल की बैठक भोपाल मे रविवार, ६ सितम्बर १९९२ ई को रखी गई थी । मै बम्बई से लौटा ही था और डॉ मनोहरसिह राणावत का पत्र मिला था । उक्त बैठक पोलिस ऑफीसर्स मेस मे आयोजित होनेवाली थी । श्री कृष्णसिह राठौड भोपाल में पोलिस विभाग में बडे अधिकारी थे । वे महाराजकुमार के ज्येष्ठ पुत्र है । सोचने-विचारने के लिए समय नहीं था । मुझे अकेले ही भोपाल जाना था । मैंने टू-टायर ए.सी. का ५ सितम्बर १९९२ ई का आरक्षण कर लिया । तदनुसार सुनिल के साथ यथासमय स्टेशन पहुँचा । सुनिल ने मुझे गाडी मे यथास्थान बैठा दिया। गाडी छूटने में दस मिनट बाकी थे । मुझे अचानक छाती में तकलीफ महसूस हुई । कुछ कॉप गया था । मनमाड सदृश यह दूसरा अनुभव था मुन्नू से (सुनिल से) कहा — 'मुन्नू, मुझे तकलीफ हो रही है । अकेले जाने की हिम्मत नहीं है ।' — मुन्नू ने सारा सामान उतार लिया । मै भी उतर गया । टिकट लौटाकर, जो राशि मिली, ले लिया । घर आ गया । घर पर लौटने के बाद पहले तो डॉ. एकबोटे के पास गया । उन्होंने मात्र शूगर और ब्लड प्रेशर चेकिंग की । वैसे ही लौट आया । हमारे पड़ोसी श्री विजय तावडे (नानासाहब तावडे के पुत्र) ने डॉ. सतीश रोपलेकर से सम्पर्क करने कहा । तदनुसार सुनिल ने फोन किया। बाद में मुझे रोपलेकर ने एडमिट कर लिया । दो-तीन दिन के बाद पुन घर आया।

घर पर चित्त लगा ही नही । पुन रोपलेकर के पास एडमिट हो गया । दो-तीन दिन के बाद पुन घर आया । घर पर चित्त लगा ही नहीं । पुन रोपलेकर के पास एडमिट होना पडा । यो सितम्बर का दूसरा सप्ताह हो गया । रोपलेकर का कहना रहा कि पूना मे रूबी अस्पताल जाना होगा । वहाँ पर पहले एनजिओग्राफी (Angiography) करनी होगी । डॉक्टर ने कहा — 'मै स्वय पूना लेकर जाऊगा । डॉक्टर स्वय गाडी ड्राइव करते है । उनके साथ हम लोग १८ सितम्बर १९९२ ई. को पूना गए । पत्नी, अनिल और नमिता सब साथ मे थे । रूबी (Ruby Hospital) अस्पताल के पास के होटल मे रात गुजारी । रास्ते में और रात मे भी रोपलेकर का उपचार जारी था । दूसरे दिन सबेरे ही डाक्टर हमे अस्पताल ले गया । स्ट्रेचर मगवाया । उस पर मुझे लिटाया गया । सीधे 'Interactive Unit Centre' मे ले जाया गया । वहाँ पर उपचार शुरू हो गया । औपचारिक कार्य अनिल करता रहा । केस (Case) डॉ. जगदीश हिरेमठ कारडिओलोजिस्ट के पास थी । उसकी देखरेख मे सारे प्राथमिक उपचार होते रहे । १९ सितम्बर को एडमिट हुआ । और तीसरे ही दिन अर्थात २१ सितम्बर को एनजिओग्राफी हुई । उस दिन मुझे एनजिओग्राफी की फिल्म भी दिखलाई । मैं लेटे-लेटे सब कुछ देख रहा था । रगों मे खून कहाँ रुकता है । कौनसी रग का मार्ग रूक गया है, उसका पूरा चित्र ऑखों से सजग अवस्था में देख रहा था । शरीर का उतना ही भाग उन्होंने अचेत कर दिया था, जहाँ पर उन्हे जॉच करनी थी । रिपोर्ट देखने के बाद डॉ चटर्जी ने कहा कि आपरेशन शीघ्र करना होगा । तदनुसार २५ सितम्बर १९९२ ई को आपरेशन की तिथि का निर्णय हुआ । आपरेशन स्वय डॉ. चटर्जी करनेवाले थे । वे मुझे समय-समय पर कहते रहते कि घबराना नही । आपरेशन मै करूँगा । सब कुछ ठीक होगा । डॉक्टर के मृदुवचन रोगी को बहुत बडा दिलासा देते हैं ।

अब तो पूना में ही रहना था । रुपयो की व्यवस्था करनी थी । पूना में भी रहने की व्यवस्था अलग से करनी थी । अस्पताल मे मेरे कमरे में केवल एक व्यक्ति के लिए ही अनुमति थी । देखने के लिए आनेवालों का ताता लगा हुआ था । अनिल का साथ देने के लिए तेजमल का लडका सतीश वहीं पर था । उसी तरह कलमवाले भाई केशरचदजी का लड़का प्रदीप भी वही पर था । अनिल को राशि एकत्रित करने हेतु औरंगाबाद भेजा गया । मेरे साढू श्री शामलालजी बम्ब की दोनों लड़कियाँ सरोज और निर्मला पूना मे ही थे । आरम्भ मे उनके घर से भोजन आता रहा । किन्तु एक दिन की बात नहीं थी — इसीलिए प्रदीप

ने पूना रेलवे स्टेशन के समीप एक कमरे की व्यवस्था कर दी । उस कमरे मे गैस थी और रसोई की अन्य सामग्री (पात्र आदि) भी थी । सब कुछ सामान्य किराये पर उपलब्ध था । और फिर वहाँ से अस्पताल आधा किलोमीटर मात्र था । नम्मू उस कमरें में रहती । रसोई बनाती । अस्पताल ले आती । अनिल बाहर का सारा काम करता । पत्नी मेरे पास रहती । आवश्यकतानुसार वह चली भी जाती तो कोई दूसरा पास मे रहता ।

आपरेशन की तिथि का समाचार सब जगह दे दिया गया था । कई लोग बाहर से आए । बम्बई से नये ब्याही श्री रोशनलालजी आए । तेजमल आया। तेजमल की बहू आई । काकीजी (फूलचंद काकाजी की पत्नी) आए । उसी तरह और लोग भी आते रहे । अपना चौका था । नम्मू सब देख रही थी । कोई तकलीफ नही हुई । सुनिल-अनिल दोनो भाइयों ने सारी व्यवस्था कर दी थी । मुझसे कुछ पूछना आवश्यक ही नही था । सुनिल औरंगाबाद मे रहकर घर की व्यवस्था देखता और अनिल मेरे साथ मे था । अपनी माँ से सब पूछ लेते थे।

उस अवस्था में कितने लोग आए ? मै कह नहीं सकता । मैं तो डॉक्टरो की देखरेख मे था । दॉतो के डाक्टर ने दॉतो की जॉच की और लगभग छ-सात दॉत जड से निकाल दिए । इनफेक्शन से बचने के लिए, उन्होंने यह सब किया । हजाम आया । उसने हाथ-पॉव एवं शरीर के अन्य भागो के बाल निकाल दिए । पूरी सफाई हो गई । दिन मे चार बार खून निकाला जाता । उसकी जॉच होती । इसी तरह ECG भी चार-पॉच बार देखा जाता । एक दिन पहले भूखा रखा गया । यो भी आवश्यकतानुसार ग्लूकोज दिया जाता था । मेरे दोनो हाथ सूइयों से घिरे हुए थे । इसमें कितने छेद किए गए कहना मुश्किल है । एक इजेक्शन हो तो कोई बात की जाए ? एक डॉक्टर आता, फिर दूसरा । क्रम से सब रिपोर्ट देखते । मै चाहे बोल न पाऊँ ? किन्तु सचेत था और सब समझता था । चटर्जी डॉक्टर बीच-बीच में आकर मुझे देख जाते । रिपोर्ट देख जाते । कुछ निर्देशन भी नर्सों को दे देते । यो २३ और २४ सितम्बर आपरेशन की पूर्व तैयारी के दिन थे । २५ सितम्बर १९९२ ई. आपरेशन का दिवस था । मुझे ICU (विशेष कक्ष) से स्ट्रेचर पर लिटाकर आपरेशन थिएटर में ले जाया गया । ले जाते समय मुझे देखने के लिए परिवार के सदस्य, बाहर से आए हुए सम्बन्धी और परिचित परिजन क्रम से खडे थे । न मैं उनसे बात कर सका और न ही वे मेरे निकट आ सके । उनके सामने से स्ट्रैचर ऑपरेशन थिएटर में चला गया । चटर्जी डॉक्टर

मेरा साहस बढा रहा था । न जाने डाक्टरो के दल को देखकर मेरा आत्मबल बढ गया । मैने डॉक्टरों को अपना शरीर सौप दिया । आपरेशन के पूर्व मुझे अचेत किया गया । बाद मे क्या हुआ ? मुझे कुछ मालूम नही । मै तन्द्रावस्था मे था। आवाज सुनता । हलचल का अनुभव होता । यह सब तन्द्रावस्था मे स्वप्न मे देखने सदृश था । चेतना मे मैंने कुछ अनुभव नही किया । आपरेशन के अवसर पर खून की बोतले मँगा कर रखी गई थी । मुझे जिस नम्बर का खून आवश्यक था, उस नम्बर का खून कई लोगों ने दिया । घूम-फिर कर लडके आवश्यकता से अधिक खून ले आए थे । किन्तु उनके उपयोग की आवश्यकता नहीं हुई ।

मेरी चेतना लौटी तब मैं दूसरे कक्ष मे था । मुझे व्यवस्थित रूप में आराम से लिटाया गया था । मेरे पलग के पास खिडकी लगी हुई थी । हवा का झोका आता तो अच्छा लगता । मैंने देखा कि और लोग भी (सम रोगी) दूर-दूर लेटे हुए है । भूलोक से दूसरे लोक में जाकर फिर से इस लोक में आगमन हो गया था । परिवार के सदस्यो को भी भीतर आने और मिलने की अनुमति नही थी। बाहर ही पूछ लिया जाता था । बम्बई से कॅवरसाहब आए थे । डॉक्टर से विशेष अनुमति प्राप्त कर उन्हे विशेष वस्त्रों के आवरण मे भीतर आने की अनुमति मिली। वे आए । देखकर चले गए । पत्नी, लडके, नम्मू कोई नहीं आया । दूसरे दिन मराठवाडा विश्वविद्यालय के मेरे विभाग के सहयोगी अध्यापक जीप लेकर पहुँचे। कितने थे ? कौन-कौन थे ? मालूम नही । अष्टेकर साहब उनमे थे । उन्हे भीतर आने की अनुमति नही मिली । वे लोग बाहर की खिडकी के पास मुझे देखने के लिए पहुँचे । खिड़की के पास हलचल देखी । मैंने उस ओर लेटे लेटे ही हाथ हिला दिया । केवल अष्टेकर साहब की आवाज सुनाई दी । सब लोग मेरी चेतना को देखकर चले गए ।

उस कक्ष में मुझे तीन दिन रखा गया । नर्स मुझे बाथरूम तक ले जाती और वहाँ से पुन. पलग तक लौटा लाती । व्यक्ति के लेटने की भी सीमा होती है । सीमा पार हो जाए तो नई परिस्थिति से समझौता करना पडता है । किन्तु शारीरिक पीडा को क्या कहा जाए ? आपरेशन के टॉके वैसे ही थे । इन तीन दिनो मे मुझे खाने के लिए कुछ नही दिया गया । केवल ग्लूकोज आवश्यकतानुसार दिया जाता था । मै उठकर बैठ नहीं सकता था । नर्स आती । दवाखाने के कपडे बदल देती । बिस्तर की चादरे बदलती । साफ सफाई होती । शरीर को गीले कपडे मे पौछ देती । स्नान नही कर सकता था । अपने बिस्तर पर उठकर बैठ

भी नही सकता था और फिर बाहर के — परिवार के — सदस्य से मिलने की अनुमति नही थी । २५ को आपरेशन हुआ । उसके बाद उतीस सितम्बर को चौथे दिन मुझे उस कक्ष से मुक्ति मिली । मुझे ऊपर का कक्ष मिला । इन्ही तीन-चार दिनो मे स्थानीय और बाहर से मुझे देखने के लिए बहुत लोग आए । वे सब बाहर से खिडकी में से ही मुझे देखकर लौट जाते । कौन आया और गया — यह सब पत्नी को मालूम था । उस समय तक स्टेशन के पास का कमरा पद्रह दिन के लिए ले लिया गया । मै जब ऊपर के कक्ष मे पहुँचा, उस समय तक व्यवस्था हो गई थी । पत्नी मेरे कक्ष मे बैठने लगी । कुछ खाने की अनुमति भी मिली। चेतना पूरी तरह लौट आई थी । लेटे लेटे कमर का कुछ भाग रगड जाने के कारण छिल गया था । जख्म हो गया था । मरहम लगवाया गया । अब उठकर बैठ सकता था । डॉक्टर देख कर जाता था । लोग आते तो उनसे बात कर सकता था । लगता अंधेरी गुफा से फिर बाहर आ गया । प्रकाश देखकर प्रसन्नता होती । हवा अच्छी लगती । पूना विश्वविद्यालय से डॉ सुरेन्द्र बागलिगे आए । मिलकर गए । अब भी मै पूरी बात करने की स्थिति मे नही था । ऊपर आने के बाद धीमे-धीमे क्यो न हो, जो प्रगति हुई, उससे डॉक्टर सतुष्ट थे । आपरेशन के सातवें दिन मैं खडा रहने लगा था । मै नर्स के निर्देशन पर खडा हो गया था। नर्स बिस्तर बदल रही थी । इतने में डॉक्टर चटर्जी आए । उन्होंने मेरी छाती देखी। वैसे ही खडे-खडे अपने हाथ से सब टाँके निकाल दिए । छाती के बाद मे पैरो के टाँके भी निकाल दिये । कहा — 'धीरे धीरे चलने का प्रयत्न करो । अब आप बिल्कुल ठीक हो ।' यो मै ठीक हो रहा था । नम्मू मेरी अभिरुचि की सामग्री ले आती । मै पूरी तरह खा नही सकता था । मुँह मे टेस्ट ही नहीं था । खाने की इच्छा नही होती । पत्नी खिलाने में मजबूत थी । कुछ खा ही लेता । ग्लूकोज देना बन्द कर दिया गया था । मैं उठकर बाहर गैलरी मे कुरसी पर बैठने लगा। बाहर का दृश्य बहुत अच्छा लगता । कमरे में चलने भी लगा था । बाथरूम जाने लगा । लगा — 'जिन्दगी लौट आई है ।' खून अब भी तीन चार बार नर्स आकर इजेक्शन से निकाल कर ले जाती । ECG भी उसी तरह लिया जाता । डॉक्टर की दिनचर्या वैसी ही जारी थी । उसी जाँच के आधार पर गोलियाँ दी जाती । मुझे समझाया जाता कि कौनसी गोली कब लेनी है ? मुझ पर नर्से विश्वास नही करती । अपने हाथो से गोलियाँ समय-समय पर खाने के लिए देती।

इन्ही दिनों मे जो कुछ हुआ — वह सब पत्नी ही अधिक जानती है । वही सबसे मिलकर बात करती थी । मुझे उन सब के नाम भी मालूम नही. जो मिलने

आकर गये। पूना जसे नगर मे इतने परिजन हैं जो पारिवारिक सदस्यो सदृश ही है और मिलकर गये है। प्रदीप के परिवार के लोग मिलकर गए। प्रदीप ने तो मेरी बहुत सेवा की। तेजमल का लडका सतीश भी था और घर के लड़के तो थे ही।

मै कमरे से बाहर की गैलरी मे कुरसी पर बैठा हुआ देख रहा था। दशहरे की तैयारी मे लोग लगे थे। अस्पताल में भी त्यौहार मनाया जाता है। पुष्प ही पुष्प देखे। तोरण मालाएँ देखी। वाहन सजे हुए देखे। अस्पताल मे सदैव रहनेवालो मे भी त्यौहार की चेतना को अनुभव किया। गैलरी में कुछ घूमने लगा था।

शुगर की जॉच करने और खान-पान पर ध्यान रखने के लिए एक महिला डॉक्टर आती थी। उसने एक चार्ट बनाकर दिया था। उस पर खान-पान के पदार्थो के नाम — सकारात्मक (क्या खाए जाएँ) और नकारात्मक (क्या न खाएँ) लिखकर दिये थे। उसके बाद वह मुझसे चलने का अभ्यास करवाने लगी। सीढ़ियॉ चढने-उतरने के लिए कहती। मै तदनुसार अभ्यास कर रहा था। दशहरे की रात मे मुझे भयावने सपने आए। घबरा गया। उठकर बैठ गया। आवाजे सुनाई दे रही थीं। मै मार्ग भटक गया था और परेशान था। पत्नी ने उठकर लाइट का स्विच आन किया। देखा, कुछ नहीं है। नर्स भी आकर गई। मैंने पुन सोने का प्रयत्न किया। लाइट रहने दी। यो वह रात कुछ परेशानी में बीती। पत्नी को घर से कुछ समाचार मिले। उसने बतलाया नही। चुप रही। मुझसे उतनी ही बात करती, जितनी आवश्यक हो।

सात या आठ अक्तूबर को डॉक्टर हिरेमठ मिले। कहा — 'अब घर जा सकते हो।' डॉक्टर चटर्जी से भी मिल लो। डॉ चटर्जी ने कहा — अस्पताल मे अधिक रहना ठीक नही है। अस्पताल का वातावरण निरोगी को भी रोगी बना देता है। जाने की तैयारी मे रहो। इस बीच उन्होंने सारे टेस्ट कर लिए। डॉक्टरी रिपोर्ट लिखनी शेष थी। मै अब भी इतना कमजोर था कि यात्रा करने की स्थिति मे नहीं था। पूना में भी किसी के यहाँ पर ठहरने की इच्छा नही थी। डॉक्टर का कहना रहा कि ट्रेन से या बस से जाना उचित नही है। प्लेटफॉर्म पर, बस स्टैड पर इनफेक्शन का डर रहता है। अच्छा यही हे कि कार से जाओ। अस्पताल मे ही कार मे बैठ जाओ और कार सीधी घर तक ले जाएगी। रास्ते में चाहे तो आधा घण्टे का विराम कर सकते हो। यही उत्तम मार्ग था।

९ अक्तूबर को स्नान किया तो जाँघ के भीतर के जख्म में पीप हो गया था। उसको डॉक्टर देख नहीं सका था। १० अक्तूबर को लौटना था। डॉक्टर चटर्जी को सूचना दी गई। १० तारीख को सबेरे-सबेरे वह आया। नर्सों ने उसे ठीक ठीक बतलाया नही था। उसने जख्म उघाड कर देखी। कोई बात नही। ठीक हो जाएगी। मैं ड्रेसिंग कर देता हूँ। उसने नर्सों से अपना सारा सामान मगवा लिया। पहले तो उसने सारा पस (पीप) निकाल दिया। बाद मे उसे साफ कर दवा लगवा दी और पट्टी ऐसी मजबूत लगवाई कि उसका सहज मे खुलना सभव नहीं था। फिर कहा — 'इसे खोलना मत। किसी सर्जन से ही पट्टी खुलवाना और नियमित ड्रेसिंग करवाना। ठीक हो जाएगा।' उस डाक्टर ने नियमित गोलियाँ लेने के लिए कहा। गोलियों के नाम और समय लिखकर चिट पकड़ा दी। कहा — 'एक महीने के बाद आकर चेकिंग करवाना।' डॉक्टर के निर्देशानुसार उसी दिन हम लोग कार द्वारा औरगाबाद जाने की तैयारी मे थे। सब कुछ समेट लिया गया था। गाडी पोर्टेट में आ गई थी। मै गाडी के समीप सब के साथ पहुँच गया था। नम्मू थी, पत्नी थी। अनिल सारी व्यवस्था कर रहा था। मुझे हाथ पकड़कर गाडी में बैठाया। मै गाडी में बैठ गया। इतने में मैंने देखा, सिकदराबादवाले व्यायजी (अनिल के श्वसुर श्री भवरीलालजी कोठारी) सामने खडे हैं। वे मुझे देखने आए। मैंने अभिवादन किया। बैठा रहा। उठकर नीचे नही आया। हमारी गाडी निकल गई। रास्ते में 'सुपा' के आगमन से पूर्व छोटे से स्टाप पर गाडी रोकी गई। नम्मू नीचे उतरी। कुछ दूर गई थी। झाडी से कुत्ता दौडा-दौडा आया और उसने नम्मू को काट लिया। दाँत गड गए थे। पैर को काटा था। कुत्ता तो भाग आया। नम्मू चिल्लाते-चिल्लाते आई। आगे 'सुपा' के स्टाप पर डाक्टर को देखा गया। इंजेक्शन लेना आवश्यक था। उसने प्राथमिक उपचार किया। वहाँ से बाद मे हम लोग अहमदनगर आ गए। निर्मला के घर पर गए। कुन्दन की बहू थी। और लोग भी थे। वहाँ दूध रोटी खाई। आवश्यक गोलियाँ लीं और आधे घण्टे के भीतर ही पुन गाडी में बैठ गये। उसके बाद तो सीधे घर पर आ गए।

घर में प्रवेश करते ही, मैं सीधे दीवान पर जाकर बैठा। भीतर से दिशा दौडे-दौडे आई। मुझसे लिपट गई। उसने अपने दादा को बहुत दिन बाद पुन देखा था। वह लगभग दो वर्ष की थी। वह मांडी पर लेटना चाहती थी। माडी

पर जख्म-पट्टी थी, इसीलिए मैंने उसे लेटने नहीं दिया । वह रोने लगी । मैंने उसे समझाया कि माडी पर जख्म है, इसीलिए । चुप हो गई । दूसरी माडी पर आई और पूछा — यहाँ तो जख्म नहीं है ?' मैंने कहा — नहीं ।' वह लेट गई। बच्चों के इस आकर्षण को मै भूल नहीं सकता । वे रोते है और समझ जाए तो तुरन्त चुप भी हो जाते हैं ।

घर पहुँचने पर भी डॉक्टरों से पीछा नहीं छूटा । कालोनी मे डॉ. जोशी थे। उनको बुलाकर जॉघ की जख्म दिखलाना चाहा । उन्होंने जख्म खोलकर देखी तो घबरा गया । पुन वैसे ही बन्द कर दिया । कहने लगा — जख्म तीन इच लम्बी है और डेढ इच गहरी है । इसे सर्जन को ही दिखलाना चाहिए । डॉ. बोरगांवकर सर्जन सडक के पार, औरगाबाद होटल से लगी गली मे थे। निकट ही थे । किन्तु मै पैदल जाने की स्थिति में नहीं था । उनके पास वाहन से पहुँचे। डॉक्टर ने ड्रेसिंग की ओर दो दिन के बाद पुन दिखलाने कहा । मै लौट आया। फिर शूगर के डॉक्टर इदूरकर को बुलवाया । उन्होंने शूगर की जॉच की और इंसूलिन लेने कहा । इसूलिन लिए बिना जख्म जल्दी ठीक नहीं होगी। डॉक्टर ने इसूलिन दिया । बाद में उसने अनिल को समझा दिया कि कितना इंसूलिन कब-कब देना है ? अनिल तद्नुसार इसूलिन देता रहा । वह इंजेक्शन देना सीख गया । यह क्रम दो-ढाई महीने तक चला । दूसरे दिन, कभी तीसर दिन सर्जन के पास पहुँचता। वह जख्म की ड्रेसिग करता और कहता — 'जख्म स्वस्थ है। ठीक हो रहे हो ।' यों बाद मे वह एक सप्ताह का अन्तराल देने लगा । बाद मे जख्म ठीक हो गई । उपजार जारी थे । एक बार पूना जाकर डॉक्टर चटर्जी को दिखलाना आवश्यक था । मैं ठीक एक महीने के बाद तो पूना नहीं जा सका। यहीं पर डॉ. रोपलेकर, डॉ बोरगांवकर के सम्पर्क में रहा । प्रगति होती रही । इसी बीच, लौट आने के एक सप्ताह के भीतर ही उदयपुर से ब्यावर्जी श्री रोशनलालजी आए। सुनिल को साथ लेकर लातूर जाना चाहते थे । मैंने पत्नी से पूछा — 'क्यों क्या बात है ।' तब उसने बतलाया कि तेजमल की लडकी का निधन ठीक दशहरे की रात्रि मे हुआ है । समाचार पूना में ही मिल गया था । चूंकि आप बीमार थे । ऑपरेशन से उठकर आए हुए थे । इसीलिए वे उदयपुर से सीधे हवाई जहाज से आए । सुनिल के साथ लातूर जाकर आनेवाले हैं ।

अनिल ने नम्मू को कुत्ते काटने का इजेक्शन दिलवाया । वह ठीक हो गई। इसी बीच दिल्ली से राजकमल प्रकाशन के श्री अशोक महेश्वरी आए । स्टेशन

से फोन किया निदेशानुसार घर पर पहुंचे । मिले । बात हुई । मै लेटा हुआ ही था ।

यो स्थानीय लोग, विभाग के सदस्य मिलने आते थे । जख्म ठीक होने तक इसुलिन जारी था । बाद मे डॉक्टर इदूरकर ने गोलियाँ दी । शूगर की गोलियाँ लेने लगा । जनवरी मे यूनिवर्सिटी जाने लगा था । ४ फरवरी तक काम करना था । उसी दिन सेवा निवृत्त होना था । बस से चला जाता और बस से ही लौटता था ।

बीमारी मे उठा तो नम्मू का विवाह सिर पर था । ब्यायजी के फोन की घंटी खनखनाते रहती थी । काम तो सब लडके (सुनिल-अनिल) करते रहते थ। किन्तु बात मुझे करनी पडती थी । मेरे यहाँ पहुँचने पर बापजी स्वय मुझे देखने के लिए घर चले आए । यों सुनिल गणेश नगर गया और बापजी को लेकर आया । वे एकांतरा (एक दिन उपवास — एक दिन पारणा — फिर वही क्रम) करते थे । मेरी बडी बहन बदामबाई भी, आज भी अस्सी वर्ष से कुछ ऊपर ही होने पर एकांतरा नियमित करती है । बीच-बीच मे बेला-तेला भी कर लेती है । बापजी भी तपस्वी हैं । उनको सिद्धियाँ प्राप्त है । उनकी अपनी साधना पद्धति है । रास्ते मे भी उनके माला जपने का समय हो जाए तो रास्ते में ही कही बैठकर माला जप लेते है । जिस दिन वह घर पर मुझे देखने आए । परिवार के लोग, सब प्रसन्न थे । घर पर ही उन्होने दीवान पर बैठकर (गद्दी-तकिए सब हटा दिए गए थे) उन्होने माला का जाप किया । मगलीक दी । बाद मे चले गए । उनको पहुँचाने के लिए सुनिल और अनिल दोनों गये थे । पुस्तक की डेढ हजार प्रतियाँ उस समय तक गणेश नगर पहुँचा दी गई थी । श्री अशोक महेश्वरी ने ही छापी थी ।

नम्मू के विवाह कि तिथि का निर्णय बापजी से पूछकर किया गया । उन्होंने सात फरवरी १९९३ ई. की तिथि दी । तदनुसार उसी तिथि को टकसाली मे विवाह हुआ । बरात बम्बई से आई । उस विवाह में मेरे गुरु डॉ विजयपालसिंह, वाराणसी से और हैदराबाद से मेरे सहपाठी मित्र और अध्यापक डॉ भीमसेनजी निर्मल भी आए थे । वस्तुत: विवाह का सारा काम सुनिल-अनिल ने, दोनों भाइयों ने मिलकर किया है । तेजमल भी आ गया था । लातूर से प्राय सभी सदस्य आए थे । परिवार के और लोग भी आए । सब के नाम कहाँ लिखूँ ? मै तो चाहकर भी सबसे मिलकर बात नही कर सका हूँ । विभाग से सदस्य और मित्रगण उपस्थित

थे । ब्यायर्जी की योजना से सब काम हुआ । मै तो डॉक्टर साहब और डॉ भीमसेनजी निर्मल के साथ मे था । डॉक्टर साहब बारात आने के पूर्व आए और बारात की विदाई तक उपस्थित रहे । बाद मे चले गए । भीमसेनजी निर्मल भी यथासमय चले गए ।

यों मै चार फरवरी १९९३ को सेवा निवृत्त हुआ और सात फरवरी १९९३ ई. को नम्मू का विवाह सम्पन्न हुआ । मुझे छुट्टी लेनी ही नही थी । अवकाश ही अवकाश था । १९८९ ई से १९९३ ई के ये चार वर्ष बीमारी में और कार्य की व्यस्तता में बीते । पारिवारिक सदस्यो के बीच अधिक गुजरे । यात्राएँ प्राय नही हुई । जो हुई वे नम्मू के वर की खोज हेतु हुई और बीमारी के कारण हुई। मुझे इतने लोगों का स्नेह मिला कि उन्हे स्मरण करना कठिन है । उस स्नेह के कारण आज भी जी रहा हूँ । ऑपरेशन को ग्यारह वर्ष हो गए । बारहवाँ वर्ष चल रहा है । यह मेरा अतिरिक्त जीवन है । इसे बोनस लाइफ भी कह सकता हूँ । वरदान के रूप मे मुझे स्नेहीजन मिले है, जिन्होंने मुझे नया जीवन दिया है ।

□ □

9

बृहत् शोध परियोजना
(सोलहवीं शती का भारतीय साहित्य)

सेवानिवृत्त होने के बाद मे मैंने नियमानुसार बी ए मराठवाडा विश्वविद्यालय मे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को 'बृहत् शोध परियोजना' भेजी। वह वापिस लौट आई क्योंकि जिस प्रोफार्मे पर वह परियोजना भेजी गई, वह प्रोफार्मा बदल गया था। नया प्रोफार्मा UGC ने भिजवाया। उस पर पुनः आवेदन पत्र भिजवाया। वह स्वीकृत हुई। परियोजना स्वीकृत होने की तिथि ३१-५-१९९४ ई. है। उस समय से ३०-५-१९९७ ई तक कार्य पूरा करना था। तीन वर्ष के लिए ही परियोजना स्वीकृत थी। किन्तु कार्य उक्त अवधि मे पूरा नही हो सका। पुन दो वर्ष कार्य पूरा करने के लिए मिले। मैंने १९९९ ई. मे काम पूरा कर दिया। तीन पुस्तके लिखी —

१) भारतीय साहित्य सोलहवीं शताब्दी (सम्पादित)

२) कृष्णदेवराय (सोलहवीं शताब्दी के सम्राट)

३) अकबर (सास्कृतिक एव साहित्यिक चिंतन)

ये पुस्तके मैंने विभाग के माध्यम से यू.जी.सी. को भिजवाई । १९ जून १९९९ ई. को पुस्तके प्रस्तुत की । उस समय विभाग के पदेन अध्यक्ष डॉ. नंदकिशोर शर्मा थे । उन्ही के हस्ताक्षर से पुस्तकें यथासमय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को भेज दी गई । विश्वविद्यालय की ओर से भी मुझे २५ जून १९९९ ई. का पत्र मिला कि पुस्तके UGC को भेज दी गई है ।

□ □

शोध परियोजना का स्वरूप

परियोजना स्वीकृत होने से एक वर्ष पूर्व ही मैंने कार्य आरम्भ कर दिया था । मैंने भारतीय साहित्य पर एक बृहत निबन्ध लिखा था । दिल्ली गया तो उसे डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी को साहित्य अकादमी के कार्यालय में देकर आया था । चौधुरीजी उस समय साहित्य अकादमी मे सचिव थे । वे डॉक्टर नगेन्द्र के साथ औरगाबाद आए थे । हैदराबाद में वे पहले दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की शाखा मे हिन्दी के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष थे । उन्होंने मेरा निबन्ध रख लिया । बाद में उसे उन्होंने 'समकालीन भारतीय साहित्य' के सम्पादक गिरधर राठी को दे दिया । उस सम्य तुरन्त में तो कुछ हुआ नही । १९९५ ई. मे दिल्ली गया, उस समय राठीजी से मिलना नहीं हुआ था । इतनी बात सच है कि, कि राठीजी ने मेरा लेख गभीरतापूर्वक पढा और विस्तृत पत्र लिखा । मैंने उत्तर दिया । पुन उनका उत्तर मिला । वह सारा पत्र व्यवहार मैंने अपने ग्रथ मे (सम्पादित) दिया है । मै स्वय **भारतीय साहित्य की पहचान** के प्रयत्न मे था ।

भारतीय साहित्य के रूप में केवल सस्कृत साहित्य को विदेशी विद्वानों ने मान्यता दी । भारतीय भाषाओं एवं भारतीय साहित्य को — अन्य आधुनिक भाषाओ के साहित्य को — मान्यता प्राप्त नहीं थी । भारतीय भाषाओ के ... ... ब्रिटिश काल में अपनी भाषाएँ और उनके साहित्य को मान्यता प्राप्त करवाने के लिए बहुत जूझना पडा है । उसकी लम्बी कहानी है । इसमें उपनिवेशवादी चिन्तन भी है। स्वतंत्र भारत का स्वरूप हर्षवर्ध्दन के काल तक का ही प्राय समझा जाता रहा है । उस समय तक संस्कृत भाषा में जो वाङ्मय लिखा गया है, उसी वाङ्मय की पहचान भारतीय वाङ्मय के रूप मे हो रही है । आचार्य शुक्ल स्वय हिन्दी साहित्य के इतिहास मे लिखते है —

> ''इस काल खड के बीच हिन्दी लेखकों की तारीफ मे प्राय यही कहा सुना जाता रहा कि वे सस्कृत बहुत अच्छी जानते है, वे अरवी-फारसी के पूरे विद्वान है, वे अँग्रेजी के अच्छे पण्डित है। यह कहने की आवश्यकता नही थी कि ये हिन्दी वहुत अच्छी जानते है।''
>
> (हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल, नोवा सस्करण, पृ ४८८)

हिन्दी भी जाननेवाले है, इस ओर ध्यान ही नही था। वस्तुत इस स्थिति मे भारत के स्वतत्र होने के बाद प्रयत्न हुआ है। भारत की प्राय सभी आधुनिक भाषाओ की स्थिति लगभग यही रही है। भारतीय भाषाओ की प्रतिष्ठा बढेगी तो भारतीय साहित्य की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। भारतीय साहित्य मात्र भारत की किसी एक भाषा का साहित्य नही है। इसमे भारत की सभी आधुनिक भाषाओ का समाहार है।

मेरा काम आधुनिक काल का नही है। वह सोलहवी शताव्दी का है। इससे पहले मैने सत्रहवीं एव अठरहवी शताब्दी के वीरकाव्यो पर काम किया। सोलहवी शताब्दी मे और भी पीछे जाना था। मैने सोलहवी शताब्दी के इतिहास की पुस्तके एकत्रित की। उनमें भी मैने अपना ध्यान अकबर और कृष्णदेवराय पर ध्यान केन्द्रित किया। अकबर का जितना नाम है, उतना कृष्णदेवराव का नही है। कृष्णदेवराय विजयनगर के सम्राट हैं। वे सोलहवीं शताब्दी में भारत के एकमात्र सम्राट थे। उस समय बाबर नया नया आया था। हुमायूं के समय मे कृष्णदेवराय का निधन हुआ। बाद में अकबर प्रतिष्ठित हुआ। दक्षिण भारत का इतिहास उस रूप में नही लिखा गया, जिस रूप मे मुगलवश का इतिहास लिखा गया है। विदेश से आनेवालो मे पोर्तुगीज पहले आए है। पोर्तुगीजो के आगमन के समय मे विजयनगर मे राजा थे। मुगल बादशाह गोलकोण्डा के आगे दक्षिण मे नही बढ सके। विजयनगर के राजाओं पर पोर्तुगीजो ने लिखा है। अँग्रेजी मे जो पुस्तक छपी है, उसका नाम है — 'A Forgotten Empire - by Robert Sevell। फरगाटन इम्पायर का तात्पर्य ही यह है कि साम्राज्य के इतिहास को भूला दिया गया है और यह स्थिति आज भी है। हिन्दी मे आज भी **विजयनगर के साम्राज्य** पर एक भी पुस्तक नही है। मैंने 'कृष्णदेवराय' पर इसीलिए परिचयात्मक पुस्तक '**संस्कृति और साहित्य**' को केन्द्र मे रखकर लिखी है। इसी तरह **अकबर** पर भी स्वतत्र

पुस्तक लिखी। इन पुस्तको की कुछ सामग्री पत्रिकाओं मे छपी है। पुस्तकें अप्रकाशित है। मैने राजनीतिक इतिहास कम और सास्कृतिक और साहित्यिक इतिहास अधिक लिखा है। यही मेरा विषय रहा है।

□ □

भारत दर्शन

हम यात्रा करते है। यात्रा के प्रयोजन अलग-अलग होते हैं। किसी स्थान से गुजरते हुए भी हम उस स्थान को देख नही पाते। प्रयोजन से ही व्यक्ति सम्पर्क करता है। ठहर कर देखता है। मैने यात्राएँ बहुत की और अकेले अधिक की किन्तु प्रयोजन के प्रति ध्यान रहने के कारण देखना-जानना चाहकर भी नही देखा। भारत की विभिन्न भाषाओ और उनके साहित्य की ओर ध्यान नही था। मैं चाहता तो तेलुगु और तमिल सीख सकता था किन्तु अपने ही कारणो से तिरुपति मे लगभग एक दशक रहकर भी तेलुगु तथा तमिल ठीक से सीख नही सका। मै जिस स्ट्रीट मे रहता था — वह नाथमुनि स्ट्रीट तमिल भाषियो की थी। प्राय सभी आयगार लोग मेरे पडोसी थे। चाहता और प्रयत्न करता तो तमिल बोलना सीख सकता था। हॉ, तेलुगु सीख गया। तिरुपति की सामान्य भाषा तेलुगु है। तमिल भाषी भी तेलुगु का व्यवहार करता है। हिन्दी को वहाँ — 'तुरक माटला' 'तुर्को की भाषा' कहा जाता है। वहाँ के मुस्लिम तेलुगु तथा तमिल का व्यवहार करते है। मेरी पत्नी तो तेलुगु का व्यवहार कर लेती है। वह आज भी तेलुगु का व्यवहार कर सकती है। मै अपनी पत्नी के सदृश भी तेलुगु नही सीख पाया। तिरुपति मे मैने अँग्रेजी की पुस्तके अधिक पढी। अँग्रेजी का जो भय था, वह दूर हो गया। दूसरे, मैने सस्कृत भाषा — अध्यापक रखकर सीखी। मराठी तो आती ही थी। हिन्दी पढता-पढाता था। उर्दू बचपन में ही निजाम के शासनकाल मे मैट्रिक तक पढी थी। उर्दू माध्यम से ही मैट्रिक उत्तीर्ण हुआ। मै — उर्दू, हिन्दी, मराठी, अँग्रेजी, सस्कृत तथा तेलुगु भाषाएँ जानता हूँ। तेलुगु भाषा समझ लेता हूँ और व्यावहारिक रूप मे बाजार मे बोल लेता हूँ। विद्वानों के बीच बैठकर तेलुगु का व्यवहार नहीं कर सकता। तिरुपति मे, मै 'Hindu' हिन्दू समाचार पत्र नियमित पढता था। वह वहाँ सबेरे-सबेरे घर पर मिल जाता था। जो कुछ मैंने उन वर्षों में जाना है, पढा है, उससे दक्षिण भारत का स्वरूप समझने मे सहायता मिली। तिरुपति — रायलसीमा का सब से बडा नगर है और तीर्थ स्थान है।

श्री वकटेश्वर वहाँ विराजमान है। शिक्षा सस्थाएँ भी वहाँ पर है । वहाँ Music College है। सस्कृत भाषा का Oriental College है । दर्शन और शास्त्र पढाए जाते है । वही की संस्थाओं मे सस्कृत माध्यम है । सस्कृत का केन्द्रीय विद्यापीठ अलग है । विश्वविद्यालय का सस्कृत विभाग अलग है । कला और सगीत के आयोजन समय-समय पर होते रहते हैं । उनमे गया हूँ । भाषाओ को श्रवण किया है । भाषा-ज्ञान के अभाव मे दर्शक और श्रोता अधिक रहा हू । सुब्बू रेडियार, (तमिल विभाग के अध्यक्ष) मेरे अच्छे मित्र रहे है । उनके घर पर और विभाग मे मिलना होता रहा है । हमारे सवाद की भाषा अँग्रेजी रहती । न मैं तमिल बोल सकता था न वे हिन्दी बोल सकते थे । मैने अनुभव किया कि अँग्रेजी बोलने से व्यावहारिक सम्बन्ध तो स्थापित हो जाता हैं किन्तु वह सम्बन्ध नही हो सकता जो भाषाओ को जानने के बाद हो सकता है । भाषा-ज्ञान के लिए पुस्तकें पढने की अपेक्षा लोक-सम्पर्क अधिक आवश्यक है । 'भाषा' सुनना ठीक रहता है । इस नाते मैने धीरे धीरे भारत की भाषाओ और उनसे सम्बन्धित साहित्य की ओर ध्यान दिया । यों मैं भारत के अनेक विश्वविद्यालयो मे गया हूँ किन्तु केवल हिन्दी विभागों मे गया हूँ । अन्य भाषाओं क विभागों मे नहीं गया । इसीलिए इस दृष्टि से पुन यात्रा करना आवश्यक समझा और यात्राएँ कीं । १९९४ ई. मे योजना स्वीकृत हुई और बाद मे १९९५ ई से यात्राओ के क्रम का आरम्भ हुआ। ये यात्राएँ १९९९ ई. तक — परियोजना की पुस्तके प्रस्तुत करने तक चलती रही है ।

१९८९ ई में पहली बार हार्ट अटैक हुआ । तब से मैंने अकेले यात्रा बन्द कर दी । कही भी जाता तो पत्नी साथ में रहती थीं । उसकी सुख-सुविधा तथा अपने प्रयोजन के अनुसार यात्राएँ की है । मेरी यात्राएँ एक प्रकार से पारिवारिक स्वरूप की रही है । पारिवारिक स्वरूप का ध्यान रखते हुए डाक्टर के नियमो का पालन करते हुए यात्राएँ हुई है । जहाँ की यात्रा मैंने पहले अकेले मे की है, वहाँ पर पुन गया हूँ । प्रयोजन बदल गया है । दो बातो की ओर विशेष ध्यान दिया । प्रदेश घूम कर देखना । पर्यटक बनकर घूमना । महत्त्वपूर्ण स्थल देखना । विश्वविद्यालयो के भाषाओ के विभाग मे जाकर विद्वानो से — प्रोफेसरो से सम्पर्क करना । विश्वविद्यालयो के प्रकाशन विभागो को देखकर अपने विषय की पुस्तके खरीदना ...आदि आदि ।

□ □

उदयपुर (९ मई १९९५ ई. से २१ मई १९९५ ई.)

बीमारी के बाद मेरी यह पहली लम्बी यात्रा है । इस यात्रा मे पत्नी तो साथ मे थी ही । दिशा का पॉचवॉ वर्ष चल रहा था और दिव्या दूसरे वर्ष मे थी । लम्बी यात्रा — इसीलिए कि मीटर गेज ट्रेन थी । औरंगाबाद से पूरना और पूरना से फिर चित्तौड गढ तक मीनाक्षी एक्सप्रेस से जाना था । आरक्षण जाने-आने का सबका हो गया था । उदयपुर मे पहली बार नमिता के घर पर ठहरा। मेरा तो उदयपुर देखा हुआ था । विद्वान मित्रो से मिलना था । किसी को साथ लेकर मै अपना काम करता रहा । परिवार के लोग घूम फिर कर देख रहे थे। उदयपुर मैंने पहले ही पैदल घूम फिर कर देखा है । आस-पास के प्रदेश देखने का अवसर नहीं मिला । वह अब मिला । नमिता के परिवार मे दो विशेष कार्यक्रम थे । एक तो उसके पुत्र का (चिराग का) झडूला (प्रथम बार बाल काटना) था और दूसरा कँवर साहब की दादी जो खमनौर मे रहती थी, उसने पौत्र के मुख का दर्शन कर लिया — पड़पोता देख लिया इसीलिए उसे **'सोने की सीढी'** को स्पर्श करना था । इस कार्यक्रम मे हम सब लोग पहले नाकोडाजी गए । झडूले का कार्यक्रम नाकोड़ाजी मे था । तदर्थ ब्यायजी ने विशेष बस की व्यवस्था की थी । उदयपुर से नाकोडाजी एक रात की यात्रा थी । नाकोडा जोधपुर के निकट है । जैसलमेर भी वहाँ से निकट ही है । बोरुंदा भी निकट है । राजस्थान का रेगिस्तान नाकोडाजी के आसपास है । दक्षिण से उत्तर-पश्चिम की यात्रा थी, वह। अरावली की घाटियो मे से हमारी बस गई । उदयपुर, गुजरात से निकट है । आबू पर्वत अरावली का पर्यटन स्थल है । मैं नहीं गया । किन्तु अरावली की घाटियों से गुजर कर रेगिस्तान में प्रवेश किया है । नाकोडाजी मे मन्दिर के आसपास धर्मशालाएँ बनी हुई हैं । दूर-दूर से यात्री आते है । वहाँ ठहरते है । पूजा करते हैं । दान देते है । मन्दिर की ओर से सब को भोजन दिनचर्या के क्रम में दिया जाता है। हमारा भोजन वहीं पर हुआ । चिराग — का झडूले का कार्यक्रम हुआ । उसीके लिए इतनी लम्बी यात्रा हुई थी । कँवर साहब भी अपने नियम से अवसर निकाल कर नाकोडाजी जाते-आते रहते हैं । परिवार के लोगो की श्रद्धा है । नम्पू भी कँवर साहब के साथ जाते रहती है । नाकोडाजी में रेगिस्तान की गर्मी है । पैदल चलना, धूप में से गुजरना तकलीफदायक है । मन्दिर में जूते पहन कर जा नहीं सकते । पैदल चलकर मन्दिर में पहुँचने के लिए, धूप के चटखो से बचने के लिए पॉवडे बिछाए हुए है । वे पॉवडे भी गरम हो जाते है । चटखे तो बैठते

ही है मन्दिर का परिसर सुन्दर है मन्दिर मे भाड रहती है । समय-समय पर पूजा होती है । घूम-फिर कर क्षेत्र को देखना चाहो तो देख नहीं सकते । चटखनेवाली गरमी में बाहर निकलना, वैसे ही मुश्किल है । वहाँ से निकट बोरूंदा मे मेरी फूफेरी बहन रहती है । वह तो नही रही किन्तु उसके लडके रहते है । अनिल और सतीश बोरुदा जाकर आए । गरमी मे गए और आए । रेगिस्तान के गॉव की कल्पना नाकोडजी मे रहकर की । मन्दिर का क्षेत्र तो ठीक है । आधुनिक सुविधाएँ है किन्तु मन्दिर के क्षेत्र से बाहर तो पूरा रेगिस्तान है ।

नाकोडाजी से लौटने समय दिन की यात्रा थी । इसीलिए बस मे बैठे-बैठे सब कुछ देखने मिला । यात्रा लम्बी ही थी । रास्ते में कई मन्दिर और पर्यटकां के लिए रमणीय स्थल हैं । मन्दिरो मे ठहरते हुए और देखते हुए ही हम लौट आए हैं । अरावली की घाटियो के क्षेत्र में पहुँचते ही रेगिस्तान की गरमी से कुछ राहत मिली । ब्यायजी ने खाने-पीने की व्यवस्था सब जगह की थी । उनका हुकूम शब्द अवसर मिलते ही सुनने मिलता । हुकूम करो — का तात्पर्य, फरमाओ, आदेश करो सदृश है । एकदम आदेश (Order) नही है । शासकीय आदेश नही. अपितु स्नेह का आदेश है । उदयपुर के निकट पहुँचते-पहुँचते हमारी बस चोरास्ते पर रुक गई । सीधे जाओ तो उदयपुर है । दाहिनी और गॉव हैं । यह वही गॉव है, जहाँ महाराणा प्रताप रहे है । उनका राज्याभिषेक वही पर हुआ है । बाई ओर जाओ तो हल्दीघाटी है । सामने उदयपुर है । बस से नीचे हम उतरे ही नही । वहाँ पर बेसन से बना विशेष पदार्थ नमकीन है । (नाम भूल रहा हूँ .. ...) गरम-गरम मिल रहे थे । सब को भूख लगी थी । लोगों ने खूब खाए। वहाँ से हम उदयपुर मे पचवटी कालोनी मे पहुँच गए । चेतक सर्कल से लगी हुई कालोनी है । बगले ही बगले है । उन्ही में व्यायजी का निजी बगला है ।

दूसरे दिन परिवार के सदस्यो के साथ 'खमनौर' गए । नाकोड़ाजी की यात्रा में तेजमल का लड़का सतीश आया था और उसकी बहू भी आई थी । नाकोडाजी से अनिल के साथ में सतीश भी बोरुदा जाकर आया था । खमनौर की यात्रा में भी हम सब साथ मे थे ।

खमनौर से आगे रास्ता नाथद्वारा जाता है । नाथद्वारा से आगे कांकरौली है। कांकरौली रेलवे स्टेशन है । वहाँ पर जोधपुर जानेवाली ट्रेन ठहरती है । खमनौर छोटा सा गॉव होने पर भी वहॉ के मकान अच्छे है । दुमजले मकान वहाँ पर

है। बाजार है। मकानो की बनावट पुराने ढग की है। जिस मकान में कँवर साहब की दादी रहती थी। उस मकान को ब्यायजी ने ठीक करवाया था। पत्थर की सीढियाँ ऊपर की मंजिल पर जाने के लिए बनी थी। दो सीढियो की एक सीढी थी। चढना मुश्किल था किन्तु मैंने देखा कि कँवर साहब की दादी कमर मे घडा भर पानी लेकर सहज मे सीढियाँ चढ़ जाती थी। दाल-बाटी की रसोई थी, चूरमे के लड्डू थे। जीमने के लिए ऊपर जाना पडा। हम लोग पास के दूसरे मकान मे ठहरे हुए थे।

ब्यायजी को सोने की सीढी का कार्यक्रम करना था। अपनी माँ को लेकर ब्यायजी पुन उदयपुर लौटे। हम सब भी लौट आए। उदयपुर लौट आते समय हल्दी घाटी से गुजरना पडा। सडक घाटी मे से थी। दोनों ओर पहाडी थी। मुझे इतिहास याद आ गया। यों मार्ग में हमने चेतक का स्थान देखा। सडक की दूसरी ओर प्रदर्शनी थी। महाराणा प्रताप का स्मृति-स्थल था। घूम-फिर कर चित्र आदि देखे। पर्यटकों के लिए आवश्यक जानकारी उपलब्ध थी। महाराणा प्रताप पर छपी हुई पुस्तकें भी थी। मैंने एक छोटी पुस्तक खरीदी। हम लोग उदयपुर आ गये।

सोने की सीढी का कार्यक्रम आयोजित था। उस ओर का दायित्व पत्नी सभाल रही थी। अनिल और मनीश दोनों भाग-दौड करनेवाले थे। मैं तो साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ गया। वहाँ पर पहले डॉ. देवीलाल पालीवाल निदेशक थे। उस समय डॉ देव कोठारी निदेशक थे। वे मद्रास गए थे। दूसरे, जो वहाँ उपस्थित थे, उनसे मिला। डॉ पालीवालजी का पता पूछा। मिल गया। उस समय डॉ. भोलाशंकर व्यास मिल गए। उनके साथ बात हुई। वाराणसी में हिन्दी के प्रोफेसर थे। सेवानिवृत्त थे। उन्होंने प्राकृत-पैंगलम का सम्पादन दो भागों मे किया। उनकी और भी पुस्तके है। इस भेट के बाद मे वे वाराणसी में भी लका की सडक पर मिले। मुझे उन्होंने उस समय रोका। हम दोनो थे। काफी पिलाई। बाद मे घर का पता दिया। सकटमोचन के निकट उनका बगला है। मैंने उन्हे डॉक्टर साहब के साथ BHU के कैम्पस मे घूमते हुए भी देखा है। सभवत वे उस समय किसी कार्य से उदयपुर आए हो। मिलना हो गया उसी समय मै डॉ देवीलाल पालीवाल से मिलने गया। सरदारपुरा मे उनका मकान मिला। आयु मे वे मुझ से बड़े है। उन्होंने इतिहास पर और विशेष रूप से मेवाड़ के इतिहास पर काफी पुस्तके लिखीं। डिगल भाषा मे महाराणा प्रताप पर कवियो ने जो काव्य

लिखे है या फुटकल रचनाए लिखी है, उनका सकलन उन्होंने किया है । पुस्तक का नाम है — **'डिंगल में वीररस'** । उन्होंने और भी कई पुस्तकें लिखी है । **सगतरासो** का सपादन उन्होने किया है । मैंने उनकी पुस्तके पढी है । वे उस समय भी काम कर रहे थे । शक्तिसिह पर स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी जो बाद मे उन्होंने भेजी । मैंने अपनी शोध-परियोजना मे उनका आलेख डिंगल (भाषा से सम्बन्धित आलेख) सम्मिलित किया है । डिंगल काव्य के गिने-चुने विद्वानो मे से वे है । उन्हें मैंने आयोजित कार्यक्रम में निमत्रित किया । वे आए । उनके साथ ऐतिहासिक विषयो पर चर्चा हुई ।

उदयपुर में मै डॉ. ब्रजमोहन जावलिया से भी मिलने गया । राजमहल के निकट आर्यसमाज की गली है । उसी मे देलवाडा हाउस मे वे रहते है । सेवानिवृत्त हो गए थे । नरोत्तम स्वामीजी के शिष्य है । राजस्थान के कृषको के औजारो की शब्दावली का कोष उन्होंने सचित्र तैयार किया है । ग्रामीण व्यवहार की भाषा से वे खूब परिचित हैं । उनका प्रबन्ध विशाल है । किसी प्रकाशक ने नही छापा। अंतत वह साहित्य अकादमी, दिल्ली से छपा है । विलम्ब से छपा किन्तु अच्छी जगह से छपा । जावलियाजी ने सृजनात्मक रचनाएँ भी राजस्थानी में लिखी है। राजस्थान का पोथीखाना उनकी देखभाल मे था । बाद में जयपुर के राजमहल के पुस्तकालय मे काम करते रहे । वे अपने अनुभव सुनाते रहे । उनके पत्र अब भी मिलते रहते है ।

उदयपुर विश्वविद्यालय के आलमशाह खान से मिलना नही हुआ । डॉ. रामगोपाल शर्मा, दिनेश और डॉ. नवलकिशोर से मिलना हुआ । डॉ. नवलकिशोर हिरण मगरी मे रहते है ।

सोने की सीढी का कार्यक्रम हुआ । ब्यायजी का सारा परिवार एकत्रित था। सतीश और अनिल परिवार तथा बच्चों को लेकर उदयपुर घूम-फिर कर देख रहे थे । केशरियाजी जाने का निर्णय हुआ । परिवार के सदस्यों के साथ केशरियाजी जाकर आया । बचपन में फूफाजी के साथ केशरियाजी गया था । स्मृति धुंधली हो गई थी । पुन देखा तो सब याद आ गया । लौटने का आरक्षण चित्तौड़ से मीनाक्षी एक्सप्रेस से था । उदयपुर से चित्तौड बस द्वारा गये । ब्यायजी बस में बैठाने आए थे । यथासमय हमें ट्रेन मिल गई । २१ मई १९९५ ई. को हम लोग औरंगाबाद पहुँच गये ।

□ □

हैदराबाद-बैंगलौर-मैसूर की यात्रा
(६ सितम्बर १९९५ से २१ सितम्बर १९९५ ई.)

इस यात्रा का प्रयोजन 'कृष्णदेवराय' पुस्तक के लिए सामग्री एकत्रित करना था। दूसरा प्रयोजन दक्षिण भारत के इतिहास की — विशेष रूप से सोलहवी शताब्दी के इतिहास की — पुस्तको की खोज करना था। विद्वानों से मिलना था। पहले हम लोग सिकंदराबाद गये। ८ सितम्बर १९९५ ई. को सबेरे-सबेरे डॉ. बैजनाथ चतुर्वेदीजी से मिला। बगला भाषा और साहित्य पर उनसे बात हुई। कलकत्ता के कई अनुभव और चुटकुले उन्होने सुनाए। बाद में 'बंगला साहित्य का इतिहास' — पुस्तक उन्होंने मुझे दी। कहा — 'ले जाओ, पढकर लौटा देना।' मै पुस्तक ले आया। कल्याणी दासगुप्ता की वह पुस्तक थी। इलाहाबाद के प्रकाशक ने उसे छापी थी। मैंने तुरन्त उस पुस्तक का आदेश भेज दिया। यथासमय वह पुस्तक औरंगाबाद में वी.पी.पी. से आ गई। मैंने चतुर्वेदीजी की पुस्तक रजिस्टर्ड डाक से भेज दी। उन्होंने एक दो पुस्तकों के नाम और बतलाए। वे मुझे नहीं मिली।

हैदराबाद मे डॉ. भीमसेनजी निर्मल से मिलने गया। उनसे मैंने तेलुगु भाषा और साहित्य पर चर्चा की। उस साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकें तेलुगु मे थी। बाद मे उन्होंने तेलुगु मे ही सोलहवी शताब्दी के तेलुगु साहित्य से सम्बन्धित कुछ पुस्तके भेज दी। बैंगलौर तथा मैसूर विश्वविद्यालयो के विद्वानों के नाम और पते दिए। उन्होंने मुझ से अधिक दक्षिण भारत की यात्राएँ की हैं और वे दक्षिण भारत की भाषाओ से परिचित भी है। हैदराबाद में ही डॉ. चक्रवर्ती और श्री मुनीन्द्रजी से भी मिलने गया। दो दिन हैदराबाद मे रहने के बाद १२ सितम्बर को सबेरे बैंगलौर पहुँच गया। बैंगलोर मे मेरी फुफेरी बहन शेषाद्रिपुरम् मे रहती है। उसके घर पर ही हम ठहरे। वह पत्नी को 'मासीजी' कहती है और मुझे भाई। सिकंदराबाद में मैं उनके घर में ही पडोसी की तरह रहता था। यो कहने के लिए अलग थे। पत्नी तो अपनी बहन (मेरी भूवा) के पास ही रहती। बैंगलोर में मैं इसीलिए निश्चिन्त था। मै अकेले ही घूम कर अपना काम करता था। पत्नी को साथ मे ले जाने की आवश्यकता नही थी। बैंगलौर मे डॉ. नागप्पा से मिलने गया। उनका पता मेरे गुरु डॉ. रामनिरंजन पाण्डेय ने मुझे दिया था। डॉ. नागप्पाजी ८/१०, बुल टेम्पल रोड़, शंकरपुरम्, बैंगलोर-४ मे रहते थे। वे उस समय ८३ वर्ष के थे। उनके घर का सामने का प्रांगण बहुत बडा था। बंगला ही था, वह। धर्मीचंद (सुशीला का — बहन का लडका) मुझे छोडने आया था। मैं बैठा रहा।

मैंने अपने विषय की बात की वे उस विषय के ज्ञाता थे। उन्होंने कुछ विद्वानो के नाम और पते दिए। उनकी पुस्तको के नाम दिये। धारवाड़ विश्वविद्यालय के सेवानिवृत्त इतिहास विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष डॉ. जी एस दीक्षित, उस समय मल्लेश्वरम् में रहते थे। उनका पता दिया। मैं सुशीला के लडके को लेकर मल्लेश्वरम् गया। ऊपर की मजिल पर गया। मिला। बात की। बातचीत का माध्यम अँग्रेजी ही था। वे काफी वृद्ध हो गए थे। किन्तु आरामकुर्सी पर बैठकर काम कर रहे थे। कुरसी पर उन्होने बोर्ड रख लिया था। लिखा जा सकता था। उनको काम करते हुए देखकर ही लौट आया। उन्होंने मुझे Mythil Society Library का पता दिया और कहा — राजशेखर से मिलो। नृपतुग रोड पर वह पुस्तकालय है। मै नृपतुग रोड पर उस पुस्तकालय मे गया। वस्तुत नृपतुंग का नाम अमोघवर्ष (प्रथम) था। वह राष्ट्रकूट नरेश गोविंद तृतीय का पुत्र था। राष्ट्रकूट नरेशो में अमोघवर्ष का शासन काल (८१५ ई. से ८७८ ई. तक) लगभग ६३ वर्ष तक रहा है। इसी नरेश को नृपतुंग भी कहा गया है। उसी के नाम से बैंगलौर मे 'नृपतुग रोड' है। वह कन्नड भाषा प्रेमी नरेश था। 'कविराज मार्ग' — कन्नड भाषा का छद अलकार शास्त्रीय ग्रथ उसी का रचा गया है। ऐसी मान्यता है। कुछ विद्वान उसके आश्रय मे रहनेवाले किसी अन्य विद्वान का रचा हुआ बतलाते हैं। जो भी हो। इतनी बात सच है कि 'कविराज मार्ग' को कन्नड में वही मान्यता प्राप्त है जो तमिल मे 'तोलकाप्पियम्' को प्राप्त है। वह कन्नड का आदिग्रथ भी है। नौवीं शताब्दी मे कन्नड़ भाषा में यह ग्रथ रचा गया। राष्ट्रकूट-नरेशो में नृपतुंग का शासनकाल सबसे अधिक काल तक रहा है। नृपतुग का नाम अमोघवर्ष (प्रथम) या किन्तु उसकी प्रशस्ति मे जिन उपाधियो का उल्लेख होता है, वे है — 'नृपतुग, शर्ववर्म, अतिशय-धवल, महाराज शण्ड, वीरनारायण, श्रीवल्लभ, वल्लभराय' आदि है। उसकी विरुदावली लम्बी है। सब से अधिक ख्याति 'नृपतुग' नाम को मिली है। मिथिल सोसाइटी के ग्रथालय से परिचित होने मे, खोजकर पुस्तके देखने में, मेरा वह दिन बीत गया। लौटते समय मैंने यह निर्णय किया कि यहाँ पर पुन: आऊँगा और अध्ययन करूँगा।

दूसरे दिन सबेरे मैसूर जाना था। मैसूर के मार्ग पर मडिया (जिला) है। वहाँ पर साध्वी शान्ति सुधाजी का चातुर्मास था। पत्नी उनका दर्शन करना चाहती थी। इसीलिए हम लोग सबेरे ट्रेन से पहले मडिया गये। धर्मीचंद हमे पहुँचाने स्टेशन पर आया। नाश्ते के लिए गरम-गरम इडली और वोंड ले आया। हम

लोग यथासमय मंडिया पहुच गय । वहाँ पर जनार्दन स्वामी टेम्पल रोड पर जैन स्थानक था । साध्वी शाति सुधाजी हमे वहाँ देखकर बहुत प्रसन्न हुई । उन्हे विश्वास नही हुआ कि हम भी वहाँ पर पहुँच सकते हैं । पत्नी को मैने वही पर छोड़ दिया । अकेले ही मैसूर गया । मैसूर वहाँ से निकट ही था । मैसूर मे सबसे पहले यूनिवर्सिटी गया । विभाग मे डॉ तिप्पेस्वामी मिल गये । उन्होने मेरे व्याख्यान का आयोजन किया । एक व्याख्यान दिया । विभाग मे और भी लोग थे । सब से परिचय हुआ । लौटते समय डॉ एम एम कृष्णमूर्ति मे मिलने उनके निवासस्थान पर गया । वे 16th मेन, ७१८, सरस्वतीपुरम् मे रहते थे । सरस्वतीपुरम् यूनिवर्सिटी के निकट की कालोनी है । वे मिल गये । सेवानिवृत्त हो चुके थे । सिकदराबाद मे उनका सम्मान हुआ था । जैन स्थानक मे उन्हे **'आनन्द ऋषि पुरस्कार'** प्रदान किया गया । हिन्दी मे उन्होंने उपन्यास भी लिखा है । ऐतिहासिक उपन्यास है। कन्नड भाषा के साहित्य और भाषा का परिचय देनेवाली शोधपरक निबन्धो की पुस्तक **समाराधन** (१९८१ ई में प्रकाशित) पुस्तक भी उन्होंने लिखी है । उसमें तीन शोध निबन्ध हैं — १) बसव और कबीर २) अपभ्रंश साहित्य की कर्नाटक को देन और ३) हिन्दी मे द्राविड शब्द । इस पुस्तक की भूमिका डॉ. नागप्पाजी ने लिखी है । उस समय कृष्णमूर्तिजी से मिलकर ही मै लौट आया । क्योंकि मुझे मंडिया लौटना था । मंडिया मे रात गुजारी । दूसरे दिन साध्वी शाति सुधाजी से मगलीक लेकर हम दोनो मैसूर गए । पहले एम एम कृष्णमूर्ति के पास गए। बाद मे वे हमे विजयनगर साम्राज्य का इतिहास जानने हेतु डॉ. बी आर गोपाल (इतिहास के विद्वान) के घर ले गए । वे उसी कालोनी मे 4th मेन, ३८ नम्बर के बगले में रहते थे । हमारा परिचय करवाने के बाद डॉ. एम एस कृष्णमूर्ति चले गए । उस समय डॉ बी आर गोपाल की बेटी वहाँ आई हुई थी । दामाद भी उपस्थित थे । उसमे वे कुछ देर व्यस्त रहे । उनके चले जाने के बाद में हम लोगों ने बात की । श्रीमती गोपाल ने हमारा स्वागत किया । मै उनके अध्ययन का कक्ष देखना चाहता था । वे मुझे ऊपर के कक्ष में ले गए । पुस्तके ही पुस्तके थी । टेबल कुर्सी लगी थी । कुछ काम चल रहा था । विशेष बात यह कि उन्होंने **विजयनगर साम्राज्य का इतिहास** लिखनेवाले लेखक एम एम शर्मा का परिचय दिया । उन्होंने बड़े परिश्रम से वह इतिहास लिखा है । उक्त लेखक से डॉ बी आर. गोपाल परिचित थे । पारिवारिक सम्बन्ध था । मैंने उक्त पुस्तक का नाम लिख लिया । औरगाबाद आने के बाद मैंने उन पुस्तको का आदेश भेजा।

VPP से मुझे दोनो वाल्यूम मिल गए । पुस्तक का नाम है — History of the Vijayanagar Empire Part I & II - by M M Sharma । पुस्तके मुझे मुंबई से प्रकाशक ने भेजी । यों मै विजयनगर के राजाओ के इतिहास पर पुस्तके एकत्रित करता रहा ।

उसी दिन हम लोग मैसूर से बैगलौर आ गए । बैंगलौर मे पुन कहीं नही गया । दो दिन तक बैठकर नृपतुग रोड के पुस्तकालय मे काम करता रहा। जो सामग्री मिली, उन्हें नोट करता गया । उसके बाद सिकंदराबाद होता हुआ पुन औरगाबाद लौट आया ।

□ □

अहमदाबाद (७-१०-१९९५ से १६-१०-१९९५)

रानीवाल मेरे पूर्वजो का गॉव है । वहाँ पर अन्त तक रहनेवालों मे नेमीचंदजी बोरा थे । वे रानीवाल में रहे किन्तु उनके तीनों लडके अहमदाबाद में आकर बस गये । उन तीनो लडकों मे धर्मीचंदजी बोरा सब से बडे थे । उनसे मेरी भेट चेन्नई मे १९९१ ई मे हुई थी । नम्मू के लिए लडके की खोज में चेन्नई गया था । बाद में धर्मीचंदजी बोरा औरंगाबाद भी आए । यो मेरा उस परिवार से परिचय हो गया था । मै चाहकर भी, और जोधपुर तक जाकर भी, रानीवाल नहीं जा सका और अब तो रानीवाल मे कोई नही था । मेरे अहमदाबाद पहुँचने से पूर्व ही नेमीचंदजी बोरा का निधन हो गया था । हम लोग जब अहमदाबाद पहुँचे तब उस बात को कुछ सप्ताह ही बीते थे । तीनो भाइयो की माताजी वही पर थीं । वे मिलीं। उनके तीन पुत्रों में धर्मीचदजी तथा गौतमचदजी साथ-साथ रहते थे। मिट्ठालालजी अलग रहते थे। माताजी धर्मीचदजी के साथ रहती थी। अहमदाबाद पहुँचने के लिए पहले मुबई गया । नम्मू के पास दिन भर था । अहमदाबाद की ट्रेन बाम्बे सेंट्रल से सायंकाल मे थी । कॅवरसाहब ने हमें ट्रेन में बैठा दिया । धर्मीचदजी का फोन नम्बर था। सबेरे सबेरे पॉच बजे हम लोग अहमदाबाद स्टेशन पहुँच गये। अंधेरा था। घर का पता मालूम नही था। मैने फोन किया। गौतमचदजी ने घर का पता दिया और मार्गदर्शन किया । तदनुसार हम सिविल अस्पताल के पीछे के मार्ग पर पहुँच गए । शाही बाग उस क्षेत्र का नाम है । अलक नन्दा मदाकिनी सोसाइटी के गेट पर पहुँच गए। भीतर सब फ्लैट थे। F-61 में धर्मीचदजी गौतमचदजी दोनों भाई रहते थे । उस स्थान पर हमें कोई कठिनाई नहीं हुई । वही पर एक सप्ताह ठहर गये । पत्नी को साथ लेकर घूमने की आवश्यकता नही

थी । मै अकेले ही विश्वविद्यालय गया । विभाग मे गया । डॉ. रघुवीर चौधरी से मिला । वे उस समय हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष थे । डॉ. रजना अरगडे से मिला । वे हिन्दी विभाग में थी । औरंगाबाद आकर गई थी । घर पर भी आई थीं । रंजना अरगडे ने शमशेरसिंह कवि पर पुस्तक दी । अशोक वाजपेयी द्वारा सम्पादित शमशेर बहादुरसिंह की चुनी हुई कविताओं पर वह पुस्तक थी । नाम था 'टूटी हुई बिखरी हुई' । ११-१०-१९९५ को मै विभाग मे था। वह दिन विश्वविद्यालय मे ही गया । मुझे डॉ. भोलाभाई पटेल को मिलना था। उनका पता लेकर लौटा । मै उसी दिन वहाँ के प्राकृत विभाग मे गया । उस विभाग में श्री के. आर. चन्द्र अध्यक्ष रहे है । उनसे तो मिलना नही हुआ किन्तु विभाग के और सदस्य रहे हैं । उनसे ज्ञात हुआ कि श्री एच. सी. भायाणी से मिलना चाहिए । उनके घर का पता लिख लिया । गुजरात विश्वविद्यालय के सामने एल. डी. इस्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी — अलग शोध संस्थान है । उसका पता प्राकृत विभागवालों ने दिया । पूछते-पूछते मैं उक्त शोध-सस्थान मे गया। वहाँ पर श्री एच. सी. भायाणी नहीं मिले । वे घर पर ही मिलेगे, ऐसा मालूम हुआ । मैंने शोध-संस्थान के प्रकाशन विभाग से प्राकृत भाषा सम्बन्धी पुस्तके खरीदी । अपभ्रश की रचनाएँ खरीदी । प्राचीन गुर्जर भाषा के काव्यों का संचय खरीदा । पुस्तके खरीदने के बाद सीधे घर पर लौट आया ।

दूसरे दिन पुन विश्वविद्यालय गया । पत्नी साथ में थी । पूछते-पूछते प्रोफेसर भोलाभाई पटेल के घर पर गया । पत्नी भी साथ मे थी । भोलाभाई पटेल मिले। सोलहवी शताब्दी के साहित्य पर उनसे चर्चा हुई । गुजराती भाषा के विशेष कवियों का परिचय उन्होंने दिया । कुछ प्रमुख कवियों पर उनके पास पुस्तके थीं । उनमे से मेरे काम की दो-तीन पुस्तकें दी । रतनपोल के निकट पुस्तके मिल जाएगी। मैंने सब पते लिख लिए । मैं गुजराती पुस्तकें पढ सकता था और समझ भी लेता था । लिखने और बोलने का अभ्यास नहीं था । उस समय भोलाभाई पटेल बिडला फाउण्डेशन की शोध-परियोजना पर काम कर रहे थे । प्रेमचद के उपन्यासों के समकालीन गुजराती उपन्यासो पर उनका काम जारी था । उक्त शोध परियोजना पूर्ण हुई और पुस्तक भी छपी । वह पुस्तक उन्होंने मुझे भेजी भी ।

प्रोफेसर भोलाभाई पटेल के बाद हम लोग सीधे एच. सी. भायाणी के घर पर गए । उस समय तक तीन बज गए थे । स्वतत्र बंगला था । खुला आगन था । खुले आगन से लगा हुआ वराण्डा था । उसमे झूला लगा था । हमें देखकर उठ खड़े हुए । भीतर अध्ययन कक्ष में ले गए । लगता कि निरन्तर कार्य जारी

है । प्रो. भायाणीजी ने प्राचीन ग्रंथो का सम्पादन किया है और वे प्राय एल डी इंस्टीट्यूट, ऑफ इंडोलोजी संस्थान से छपी है । सनत्कुमार चरिय (नेमिनाथ चरिय का एक अंश) का सम्पादन उन्होने किया है । वह अपभ्रंश काव्य है । इसी तरह प्राचीन गुर्जर काव्य का सम्पादन भी उन्होने किया है । उनकी और भी पुस्तके है । सब से परिचित होना एक दिन मे संभव नही था । उनकी साधना और तपस्या को देखकर मै नतमस्तक हो गया । प्राकृत भाषा के प्रति मेरी अभिरूचि को देखकर उन्होंने मुझे प्राकृत विद्या का एक अंक (वर्ष ७, अंक ३, अक्तूबर-दिसम्बर १९९५ ई) दिया । उक्त त्रैमासिक दिल्ली में छपता है । इसी तरह उन्होने हेमचंद्राचार्य की नवम जन्मशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित (उसी वर्ष १९९५ ई) 'अनुसधान' का विशेषाक दिया । इसका सम्पादन स्वय हरिवल्लभ भायाणीजीने किया है ।

वस्तुत अहमदाबाद के एल. डी. इंस्टीट्यूट से कई पुस्तके खरीदी है । उनमे से भर्तृहरि का **वाक्यपदीय** (गुजराती टीका सहित) / **विमलसूरि का पउम चरियम भाग १, भाग २** / डॉ भोलाशंकर व्यास द्वारा सम्पादित **'प्राकृत प्रैगंलम्'** के दोनो भाग प्रमुख है । बाद मे मैने आचार्य हेमचन्द्र की उपलब्ध पुस्तके भी खरीदी। मुझे प्राकृत भाषा पर काम करना था, इसीलिए पुस्तके खरीदता रहा ।

प्राकृत भाषा के विद्वानो मे मै एकमात्र भायाणीजी से ही मिला । उनके सान्निध्य मे रहकर प्राकृत भाषा और साहित्य सीखना चाहा । उनके दर्शन ही हुए । उनकी साधना और तपस्या देखी । अहमदाबाद से लौटने के बाद उनसे पत्र-व्यवहार किया। किन्तु उनसे मिलने नही जा सका । औरंगाबाद मे मेरे मित्र श्री धर्मेन्द्र मास्तर ने बतलाया कि भायाणीजी अब नही रहे ।

यो मेरे दो-दिन विश्वविद्यालय और उस परिसर के शोध-संस्थान देखने मे बीत गए। अहमदाबाद घूमकर देखना था। तदर्थ पत्नी को अहमदाबाद नगर घूमकर दिखलाने बस के दो टिकट लिए। पर्यटको के साथ पर्यटक बनकर पूरा दिन अहमदाबाद के विशेष विशेष स्थल देखे । मन्दिर देखे । म्यूजियम देखे । पुरानी इमारते देखी। उनमे एक विशेष बावली देखी । पानी बहुत नीचे था । चारो ओर दो-तीन मंजिल की सीढियॉ है । वहॉ के उद्यान देखे । विशेष रूप से साबरमती नदी के तट पर महात्मा गाधी का आश्रम देखा । लगता है, आश्रम जैसा का तैसा है, मात्र गाधीजी नही है । उनका कक्ष, उनके बैठने की जगह, प्रार्थना की जगह सब कुछ है । आनेवालों की वहॉ व्यवस्था भी रही है । गाधीजी याद आ जाते है ।

मेरे भाई सिकदराबाद की बडी भूवा के सब से छोटे पुत्र रोशनलालजी कोठारी, वही शाही बाग मे रहते है । पता पूछकर मै मिलने गया । धर्मीचदजी साथ मे आए । आदेश्वर अपार्टमेण्टस् मे ऊपर सातवी मजिल पर उनका फ्लैट था । इसमे पूर्व वे बेगमपेट हैदराबाद मे थे और उससे पहले बुलेटिन बगला मे थे । कुछ वर्ष सिकदराबाद मे नेहरूनगर पूर्व (मारडपल्ली पूर्व) मे किराये से रहते थे । उनकी सब से छोटी बेटी का ब्याह अहमदाबाद मे हुआ । इसीलिए वे वहाँ रहने लगे थे । हम लोग गये तो ऊपर नहीं जा सके । बिजली नही थी । लिफ्ट काम नही कर रही थी । बिजली आने पर हम ऊपर मिलने गए । भौजाई साहब मिले । उनसे बात हुई । रोशन भाईसाहब से मिलने दूसरी बार गया । उस समय वे मिल गये। बहुत प्रसन्न हुए । दूसरी बार हम दोनो गए थे । वे जिस फ्लैट मे रहते थे, वह उस बिल्डिग के सब से ऊपर का माला था । तीन बेड रूम, बैठक, रसोई घर और भोजन कक्ष उस फ्लैट मे थे । उन दोनो के लिए वह बहुत बडा फ्लैट था। उसके बाद मे अहमदाबाद जाना-आना नही हुआ ।

धर्मीचदजी से छोटे भाई मिट्ठालालजी अलग रहते थे । वे शाही बाग मे ही दूसरे मकान मे रहते थे । उनके घर भी गया । इसी तरह साबरमती नदी के किनारे की कालोनी में मदनलालजी बोरा रहते थे । यो बोरा परिवार के चार घर अहमदाबाद में थे । एक दिन मदनलालजी बोरा सायकाल मे आए । अपनी गाडी मे हमे अपने घर ले गए । आधुनिक और सम्पन्न परिवार है । उनके घर से आज भी पत्र-व्यवहार जारी है । रानीवाल के कस्तूरचदजी के परिवार का वह विस्तार था। हमारे परिवार का दो-सौ वर्षो का इतिहास ज्ञात है । हम लोग अलग-अलग प्रदेशो मे रहते है किन्तु जब भी मिले और एक दूसरे के घर पर रहने का अवसर मिला तो मुझे परिवार की मूल भाषा मे विशेष अन्तर नही दिखलाई दिया । प्रदेश भेद को पहचाना जा सकता था । धर्मीचद की वृद्धा माताजी से बात करो तो मुझे मेरे दादाजी याद आ गए । अहमदाबाद में प्राय सभी भाइयो का व्यवसाय Finance फायनास (लेन-देन) का था ।

लौटने से पहले एक दिन हम लोग गाधी नगर गए । अक्षयधाम मन्दिर देखने गए । उस समय अहमदाबाद की पर्यटक सेवा की बस अक्षयधाम नही जाती थी । इसका कारण अक्षयधाम मन्दिर देखने के बाद मालूम हुआ । वह स्वामी नारायण का मन्दिर था । उस मन्दिर को एक घण्टे में देखना सभव नहीं था । उसको देखने मे पूरा एक दिन तो कम-से-कम चाहिए । मन्दिर का प्रागण विशाल

है केन्द्र मे मन्दिर की ऊंची पीठिका है। नीचे चारो ओर अलग अलग प्रदर्शन के कक्ष है। हर कक्ष मे इतिहास-पुराण को किसी-न-किसी माध्यम से साका रूप मे प्रस्तुत किया है। उन्हें समझाने और बतलाने के लिए प्रत्येक कक्ष मे कोई-न-कोई गाइड है। वह क्रमश आनेवालो को समझाता है। पंक्तिबद्ध सबको एक कक्ष से दूसरे कक्ष मे छोडा जाता है। प्रवेश मार्ग अलग है और बाहर निकलने का मार्ग अलग है। दर्शको को अनुशासन-बद्ध होकर चलना पडता है। आध्यात्मिक चिंतन के कक्ष उसमे हैं। ग्रह-नक्षत्रो को समझानेवाले प्रात्यक्षिक कक्ष भी उसमे हैं। उसमें प्रकाश और छाया के माध्यम से ब्रह्माण्ड का बोध सबको हो सकता है। ब्रह्माण्ड की गतिविधियाँ बतलाई जाती है। इसीलिए मन्दिर में यह सब देखने के लिए प्रवेश शुल्क है। छोटे-बच्चो के साथ वह सब देखना सभव नहीं है। समय भी बहुत लग जाता है। अक्षयधाम देखने मे चार-पाँच घण्टे लग जात हैं। पूरी परिक्रमा होती है।

अहमदाबाद और गांधीनगर के बीच साबरमती नदी है। नदी दोनो नगरों को अलग करती है। गाधीनगर, नया बसा हुआ नगर है। सभी सरकारी कार्यालय और इमारतें गाधीनगर मे है। विधान सभी वही पर है। गाधीनगर, नया अहमदाबाद है।

अक्षयधाम देखने में हम थक गए। बाहर आकर प्रांगण मे बैठकर कुछ आराम किया। कुछ पेट-पूजा हुई। वहाँ से लौटकर हमने यथासमय मुबई की ट्रेन पकडी नम्मू के घर पर पहुँच गए। मुबई लौट आने के बाद दिन भर आराम किया। सायकाल मे कँवरसाहब ने हमे औरंगाबाद की ट्रेन मे — देवगिरि एक्सप्रेस — बैठा दिया। हम लोग यथासमय घर लौट गए।

□ □

दिल्ली (३१-१०-१९९५ से ११-११-९५)

हम दोनों नई दिल्ली स्टेशन से सीधे करौल बाग गये। वहाँ अजमलखाँ पार्क है। पार्क के पीछे की ओर **प्रेमभवन** स्थानक है। सीधे वही गये। हमे रहने के लिए कमरा मिल गया। २३ अक्तूबर १९९५ ई को दीपावली थी। दीपावली के ठीक एक सप्ताह बाद हमने यह यात्रा की। चातुर्मास समाप्त नही हुआ था। एक सप्ताह शेष था। इसीलिए चातुर्मास की पूरी व्यवस्था 'प्रेमभवन' में थी। जैन साध्वियो मे कृपाश्रीजी और निधिश्रीजी से मेरा परिचय हो गया था। जब से पत्नी के साथ यात्रा करने लगा, तब से दिल्ली मे जैन स्थानको मे ठहरने लगा।

पत्नी दिनभर स्थानक मे रह सकती थी । मै अकेले ही अपने काम पर जाता और सायकाल मे पुन करौल बाग लौट आता । १९९५ ई की इस यात्रा का प्रयोजन शोध-परियोजना के लिए सामग्री सकलन था । आवश्यक पुस्तके खरीदना था । उस यात्रा मे दिल्ली के दो वयोवृद्ध विद्वान् और साहित्य-सृजन मे लगे हुए चिन्तको से मिलना बहुत लाभप्रद रहा । वे हैं — डॉ रामविलास शर्मा और दूसरे है श्री विष्णु प्रभाकर ।

डॉ. रामविलास शर्मा : दिल्ली के श्री (डॉक्टर) सुधीन्द्रकुमार औरंगाबाद मे घर पर आए थे । उनके कारण डॉ. हरिवश अनेजा का परिचय हुआ । कादम्बरी प्रकाशन उनका अपना है । जवाहर नगर में उनकी पुस्तको की दुकान है । उन्होंने मेरी पुस्तक 'हिन्दी आलोचना की पहचान' (१९९४ ई.) छापी है । जवाहर नगर उनकी दुकान पर गया था । वही पर डॉ सुधीन्द्रकुमार मिल गए । सुधीन्द्रजी जनकपुरी मे रहते है । जनकपुरी से विकासनगर नजदीक है । मैने कहा — कल मै विकासनगर जाऊँगा । ग्यारह साढ़े-ग्यारह तक डॉ रामविलास के घर पहुँच जाऊँगा । वहाँ पर दोपहर मे एक बजे तक आ जाएँ तो मै जनकपुरी आपके साथ आऊँगा । योजना बन गई । दिल्ली मे तो प्रकाशकों और लेखको से परिचय हो जाए तो वे मेहरबान हो जाते है और आवागमन मे सहायक रहते है । यथासमय ५ नवम्बर १९९५ ई. को डॉक्टर रामविलास शर्मा के घर पहुँच गया । वे बहुत प्रसन्न हुए । उनसे मैने भाषा विज्ञान और सोलहवी शती के भारतीय साहित्य विषय पर बात की। उस समय उनसे दिनचर्या पूछी तो उन्होने बतलाई । जब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रतिष्ठान की पत्रिका के लिए श्रीमती कुसुम चतुर्वेदी ने (डॉ. रामविलास शर्मा विशेषाक के लिए) लेख मागा तो मैने इस साक्षात्कार के विवरण के साथ मे दिनचर्या भी भेजी । उक्त अक मे उसका प्रकाशन हुआ है । दिनचर्या तो मैने जैसे वे कहते गए, वैसे मै लिखता गया किन्तु जो चर्चा हुई तथा अन्य-अन्य विषयो पर बात हुई। वह मैने उसी दिन **प्रमभवन** में रात मे बैठकर लिख ली । डॉ रामविलास शर्मा का कहना रहा कि सोलहवी शताब्दी के भारतीय साहित्य का परिचय भाषाओ पर स्वतन्त्र अध्याय बनाकर देना चाहिए । उनकी बात को मैने ध्यान मे रखकर ही सोलहवीं शताब्दी की भारतीय भाषाओ के सर्वेक्षण पर एक अध्याय लिखा। उस समय की बीस भाषाओं पर अध्याय लिखे । उक्त चर्चा के आधार पर योजनाएँ तो बहुत बनाई किन्तु समय-सीमा को ध्यान मे रखते हुए काम पूरा करना पड़ा। लेखन के केन्द्र मे डॉ रामविलास शर्मा रहे हैं । उनके साथ बात करने से मुझे

उनकी अध्ययन और लेखन-पद्धति का बोध हुआ। विचारों से मस्तिष्क घिरा रहता है, तब तक ही लिखकर विचारों को मुक्त अभिव्यक्ति देना उचित रहता है। किसी विषय पर योजना बनाकर काम करना हो तो, दूसरे विषय की पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिए। पढ़ना, मनन करना, सामग्री को पचाना आवश्यक है। एक क्रम में विचार धारा चलेगी तो लेखन में सुविधा होगी। पढ़ी हुई और उपयोगी सामग्री हस्तामलक होनी चाहिए। उस स्थिति में ही यथासमय उनका उपयोग सभव है। दूसरा लेखन नहीं करना चाहिए। बीच में कुछ दूसरा लिखने लग जाएँ तो विचारों का क्रम टूट जाता है और उन विचारों को पटरी पर लाने में समय लगता है। डॉ. रामविलास शर्मा फुटकल लेखन के पक्ष में नहीं। इसीलिए बाद में मैंने फुटकल लेखन बन्द कर दिया। जिन विषयों पर काम करता था, उससे सम्बन्धित जो लिख लिया जाता उन्हे ही पत्रिकाओं को भेजता था। छप जाए तो ठीक और न छपे तो कोई चिन्ता नहीं। इस पर भी मेरे काफी लेख विलम्ब से क्यों न हो, छपे है। मैं पत्रिकाओं को भेजकर भूल जाता था। बाद में अचानक वह लेख छपा हुआ देखता।

सच तो यह है कि उनके साथ बात करने में काफी समय हो गया। मैंने डॉक्टर साहब से कहा कि मुझे डॉ. सुधीन्द्रकुमार से बात करना है। मैंने फोन किया और कहा कि मैं यहाँ पर आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जनकपुरी से वे तुरन्त स्कूटर पर आ गए। उनके आने के बाद डॉक्टर साहब से बिदा लेकर मैं लौट गया।

डॉक्टर सुधीन्द्रकुमार के घर पर बैठकर, उनके पिताजी से परिचय हुआ। परिवार के और लोग भी थे। भोजन हुआ। सुधीन्द्रकुमार विशेष रूप से रीतिकालीन साहित्य के विद्वान है। दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को पत्रों के माध्यम से चलानेवाले विभाग में काम करते है। 'कारस्पोंडेंस कोर्स' का काम करते है। तदर्थ उन्होंने मुझसे भी कवि भूषण, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा हम्मीर काव्य पर कुछ लिखवाए है। उनके नियमानुसार मैंने पाठ लिखकर भेजे हैं। यों वे सृजनात्मक लेखन भी करते हैं। उपन्यास लिखते है। नाटक लिखते है। उनकी पुस्तके कादम्बरी प्रकाशन ने छापी है। हिन्दी अकादमी, दिल्ली से भी उनका सम्पर्क है। वे उन दिनों रीतिकाल की किसी योजना को पूर्ण करने में व्यस्त थे। वे औरंगाबाद आने की योजना बना रहे थे। आ नहीं सके। जनकपुरी से मैं सीधे करौल बाग लौट आया और अपना कार्य करता रहा।

श्री विष्णु प्रभाकर उन दिनों मे श्री विष्णु प्रभाकर कुण्डेवालान गली में रहते थे। वह गली अजमेरी गेट मे भीतर जाओ तो सीधे हाथ की ओर है। गली लम्बी है। दो-तीन मोड़ से मुड़कर जाने पर सामने ही प्रवेशद्वार है। भीतर खुला आंगन है। सीधी ओर सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने पर पहला ही बड़ा कमरा श्री विष्णु प्रभाकर का है। वही पर उनकी बैठक है। सात नवम्बर १९९५ को उनके पास पहुँचा था। मिल गये। मैं उस दिन लम्बी बातचीत की योजना मे पहुँचा था। उस बातचीत में कुछ व्यक्तिगत बातचीत भी थी। बोलने में अधिक उन्मुक्त और सहज हैं। उन्होंने अपनी दिनचर्या बतलाई। उसकी टिप्पणियाँ लिख लीं। १९८० ई. मे उनकी पत्नी का देहावसान हो गया था। उसके बाद उनका सबेरे का घूमना बन्द हो गया। पहले अजमेरी गेट से राजघाट तक सबेरे पाँच बजे तक नियमित जाते थे। उनके पास पुस्तकें बहुत रही है। लगभग बीस हजार पुस्तकें उन्होंने अलग-अलग ग्रंथालयों को दे दी हैं। दो लड़के हैं। लड़कियाँ हैं। दामाद प्रिंसिपल है। महाराणा प्रताप एन्क्लेव वाला बंगला है किन्तु किराये मे दिया हुआ है। किरायेदार घर छोड़ता नहीं है। प्रयत्न जारी है। उस समय की परेशानी बतला रहे थे। कोई तो का विस्तार (Extention) अर्द्धनारीश्वर है। 'अर्द्धनारीश्वर' की प्रति उन्होंने मुझे दी है। आवारा मसीहा के बाद मे इस रचना को विशेष ख्याति मिली। उस उपन्यास का तेलुगु अनुवाद मेरी छात्रा डॉ. सी. वसन्ता ने किया है। उक्त अनुवाद साहित्य एकेडेमी दिल्ली से छप गया है। बतलाया कि कर्ण-कुन्ती को आधार बनाकर नाटक लिख रहे है। उनका एक लड़का नागपुर में रहता है। आत्मकथा लिखने की योजना है। १९८० ई. तक का वृत्त लिख लिया है। उसी में १००० (एक हजार) पृष्ठ हो गए। काम कुछ आगे नहीं बढ़ा है। सभवत: अब पूर्ण हो। उनके विचार से शंकराचार्य के बाद मे कोई मौलिक चिन्तक नहीं हुआ। प्राचीन वाङ्मय मे गहरी आस्था व्यक्त करते है। सोलहवीं शती पर कुछ बात हुई। उनके पास व्यावहारिक सूचनाओं का भण्डार है। पूरे मसिजीवी है। दो-तीन लड़कियाँ आती थीं। साढ़े-पाँच बजे से १ बजे तक पढ़ना-लिखना जारी रहता है। अब चार घण्टे के लिए एक लड़की आती है। स्नान दोपहर में करते हैं। उसके बाद भोजन होता है। डाक बाद मे देखते है। ५ बजे काफी हाउस जाते हैं। ८ बजे तक लौटते है। दैनिक हिसाब लिखते है। समाचार सुनते है। ग्यारह बजे तक सो जाते हैं। उसके बाद भी उनसे मिला हूँ। अब तो वे महाराणा प्रताप एन्क्लेव के बंगले में चले गये। अजमेरी गेट के पास की गली छोड़ दी। उस बंगले पर भी मिलने गया किन्तु उस तरह की

उन्मुक्त बातचीत का अवसर मुझे नही मिला । पत्र-व्यवहार जारी ह । उनक पत्र नियमित मिलते रहते है ।

साध्वी कृपाश्रीजी . करौल बाग के 'प्रेमभवन' मे उस समय साध्वी कृपाश्रीजी का चातुर्मास था । प्रतिदिन सबेरे साढे आठ बजे व्याख्यान होता और साढे नो बजे तक चलता था । जाडे का मौसम था । ठण्ड मे हम सबेरे उठ जाते और तेयार होकर यथासमय व्याख्यान मे बैठ जाते थे । कृपाश्रीजी का व्याख्यान सुनते और उसके बाद मै तो दस-साढे दस बजे तक अपने काम से निकल जाता और सायकाल मे लौटता । पत्नी वही रह जाती । कृपाश्रीजी के साथ साध्वी निधिश्रीजी भी व्याख्यान देती थी । उनके गुरु साध्वी केसरकँवरजी ने उन्हे प्रशिक्षण दिया था। वे अब वृद्ध हो गई थी । पहले जब गुडमण्डी के वीरनगर में ठहरे थे तो उस समय केसरकँवरजी के व्याख्यान मैंने सुने है । इस समय वे घण्टा घर के कोल्हापुर हाउस के स्थानक मे थी । हम लोग जब भी चले आते तो उनके दर्शन करने अवश्य जाते । कृपाश्रीजी के समूह मे इस समय विमलाश्रीजी और उज्ज्वलाश्रीजी थे । १९९५ ई मे कृपाश्रीजी को दीक्षा लिए हुए १३ वर्ष पूरे हो गए थे । वह मेरी बडी बहन बदामबाई (मौसेरी बहन) की बेटी है । जालना के निकट दाभाडी गॉव की है । उस समय बडी बहन समूह के साथ अपने पौत्र चदन और तीन बेटियो, दो दामादो के साथ कृपाश्रीजी के दर्शन हेतु प्रेमभवन पहुँच गई थी । तपस्वी बहन से मिलना हुआ । तपस्वी इसीलिए कह रहा हूँ कि वह एकान्तरा करती है। अर्थात् एक दिन उपवास दूसरे दिन पारणा । पुन उपवास और फिर पारणा। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है । तपस्या ने उनका शरीर क्षीण कर दिया है किन्तु तप का तेज दिखलाई देता है । चेहरे पर चमक है । आज भी अस्सी से कुछ ऊपर होने पर भी उनकी साधना जारी है और वर्ष में एक बार सपरिवार बेटी से मिलने चली आती है । उस समय पानीपत मे आचार्य देवेन्द्र मुनि का चातुर्मास था । बडी बहन के साथ जो समूह आया उनकी इच्छा हुई कि पानीपत जाकर आचार्यश्री के दर्शन करे । सब लोग पानीपत गए । मुझे भी चलने कहा । अपने काम के कारण मैं तो नही गया । किन्तु पत्नी गई । पानीपत देख आई और आचार्यश्री के दर्शन भी हो गए ।

कृपाश्रीजी बडी बहन की आठवी और अन्तिम बेटी है । सातो के विवाह हो गए । आठवी ने विवाह नही किया । बैंगलौर मे केसरकँवरजी के पास दीक्षा ली । सारा परिवार बैगलौर गया था । आठ बहनो मे एक भाई है — बसन्तीलाल गोलेच्छा । मैंने सारे परिवार को एकत्रित रूप में देखा नही। बसन्तीलाल के पुत्र

चन्दन के ब्याह मे गया था, उस समय सातों बहने और सातो दामाद एक साथ उपस्थित थे। सब को क्रम से देखा। फिर भी पूरी पहचान कहाँ हुई ? नाम भी याद नहीं है। एक बेटी औरंगाबाद मे है। नाम है — सरिता। वह और दामाद घर पर आते हैं। उनसे अच्छा परिचय है। बडी बहन का विवाह १९४१ ई मे हुआ। १९४२ ई. मे मेरे मासाजी का देहावसान हो गया। मै उस समय नौ-दस वर्ष का था। आज जब भी बहन से मिलता हूँ, बचपन याद आ जाता है। उनके बहाने मासीजी और नानीजी का स्मरण भी हो जाता है।

कृपाश्रीजी का मै मामा हूँ। उनसे अलग बैठकर बात होती रही है। वे योजनाबद्ध पुस्तके लिखती रही है और उनका प्रकाशन भी हुआ है। उनकी प्रस्तावनाएँ मैंने लिखी है। मैंने उन्हे कुछ मेरी पुस्तके दी है। रजनीश की पुस्तके वे खूब पढती रही है। उनके व्याख्यानों मे रजनीश का प्रभाव दिखलाई देता था। विषय उनका अपना होता है किन्तु विश्लेषण और विवेचन की पद्धति रजनीश की है। रजनीश ने उन्हे वक्ता बना दिया। धाराप्रवाह और सहज रूप मे कुशल वक्ता के रूप मे बोलती है। इसीलिए दिल्ली में उनका नाम हो गया है। रजनीश के व्याख्यान तो मैंने सुने नही किन्तु साध्वी कृपाश्रीजी के व्याख्यान सुनकर रजनीश के व्याख्यानो की कल्पना कर सकता हूँ।

मैं सब से पहले कृपाश्रीजी से जयपुर मे मिला था। उस समय केसरकँवरजी का चातुर्मास जयपुर में था। उस समय उनके साथ मे कितनी साध्वियाँ थी, स्मरण नही किन्तु साध्वी सरोजश्रीजी वहाँ थी और कृपाश्रीजी, निधिश्रीजी भी वही पर थी। बात यह है कि साध्वी सरोजश्रीजी की Ph.D की मौखिकी लेने मुझे बम्बई विश्वविद्यालय से पत्र मिल गया था। मै परीक्षक था। उनके गाइड डॉ विनोद गोदरे थे। यथासमय हम दोनो जयपुर पहुँच गए थे। जिस दिन सबेरे जयपुर पहुँचे तो स्टेशन पर ही मालूम हुआ कि शहर मे दगा हो गया है। कोई ऑटो रिक्शा अजमेरी गेट की सडक से और पुराने चौपडो के शहर मे जाने के लिए तैयार नही थे। मैंने कहा — अब तो आ गए है, लौटगे नही। विश्वविद्यालय शहर से बाहर था। इसीलिए ऑटोद्वारा ही हम लोग विश्वविद्यालय पहुँच गये। गेस्ट हाउस मे सामान रखवाया। डॉ नरेन्द्र भानावत से सम्पर्क किया। उनके कहने पर गेस्ट हाउस मे हमें कमरा मिल गया। डॉ नरेन्द्र भानावत भी मिले। वे उस समय हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे। बाद मे हम लोग स्थानक गये। केसरकँवरजी के दर्शन किये। डॉ विनोद गोदरे आए नहीं। उन्हें जयपुर के समाचार मिल गए थे। वे बम्बई से आए नहीं। ऐसी स्थिति मे मौखिकी की चिन्ता थी।

स्थानक मे मौखिकी लेना उचित नही था । दूसरे दिन रविवार था । विश्वविद्यालय की छुट्टी थी । फिर भी डॉ नरेन्द्र भानावत के सहयोग से विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे मौखिकी की व्यवस्था हो गई । साध्वी सरोजश्रीजी को विश्वविद्यालय मे पहुँचने के लिए कहा गया । हिन्दी विभाग मे पॉच छ प्राध्यापक भी पहुँच गये । डॉ रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ उनमे थे । डॉ सत्येन्द्रजी के परिवार के थे । यथासमय साध्वीजी पहुँच गई । विभाग मे और लोगो के सामने मौखिकी सम्पन्न हुई । रिपोर्ट लिख दी गई और वह मैंने डॉ. नरेन्द्र भानावतजी को दे दी । उन्होने विभाग की ओर से उक्त रिपोर्ट बम्बई विश्वविद्यालय को भेज दी । यथासमय सरोजश्रीजी को पी-एच डी की उपाधि मिल गई । इस तरह की मौखिकी का यह मेरा पहला अनुभव था । डॉ. विनोद गोदरे की अनुपस्थिति मे मौखिकी हुई । उस समय जयपुर मे हम कही नहीं गए । हम दोनो का एअर टिकट (जयपुर से औरगाबाद) बुक हो गया था । हम दोनो यथासमय औरगाबाद लौट आए । डॉ नरेन्द्र भानावत के सहयोग और स्नेह को मै भूल नहीं सकता । जयपुर मे जब हम स्टेशन से गेस्ट हाउस मे ठहरने के बाद केसरकॅवरजी से मिलने स्थानक पर गए तो मालूम हुआ है कि बहन और बहनोई दोनो आए थे जिस गाडी से हम लोग आए थे। उसके बाद की गाडी से वे लौट गए । मिलना नहीं हुआ । उस समय बहनोई साहब थे । किन्तु अब तो प्रेमभवन में पुन मिलना ही नही हुआ बल्कि चार-पॉच दिन का साहचर्य भी मिला । बहन से बात करता हूँ तो भाव-विह्वल हो जाता हूँ । वह मुझे अपना छोटा भाई समझकर प्यार से बात करती है । मुझसे बडा अब परिवार मे कोई नही है, जो मुझे प्यार से सम्बोधित करे ।

डॉ नगेन्द्र : डॉ नगेन्द्र से मिलने के लिए मै ३ नवम्बर को ही पहुँचा था । वे पहले माडल टाउनवाले मकान मे रहते थे। इस समय वे पीतमपुरा में अपने निजी आवास मे रहने लगे थे । उनका पता था — १३४, वैशाली पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४। उनका नया आवास मुझे इससे पूर्व जब दिल्ली आया था तो डॉ शशिभूषण सिहल ने मुझे बतलाया था । सिहल साहब मुख्य सडक के इस पार रहते है । और डॉ नगेन्द्र उस पार रहते है । डॉ. रामविलास शर्मा से मिलने मे, बातचीत मे, प्रश्न पूछने में भय नहीं लगता था । हमारी बातचीत मे वे उतने उन्मुक्त नहीं थे। कब, क्या कह दे ? मै उनके क्रोध को माडल टाउन में देख चुका हूँ । वे जितनी जल्दी गरम हो जाते, उतनी ही जल्दी शांत हो जाते और पुन सहज रूप मे बातचीत करने लगते । डॉ. विजयपालसिह अभिनदन ग्रंथ के अवसर पर तो नियमित उनसे मिलना हुआ है । उनकी कार्यपद्धति, अध्ययन पद्धति को मैंने बहुत ध्यान से देखा।

बात करने से कम और उनके साहचर्य मे रहने से अधिक मैने सीखा है । जब भी जाओ अध्ययन मे तल्लीन मिलते रहे है । उनके घर पर उस दिन पहुँचना उनके पास अन्तिम बार मिलना हुआ । घर पहुँचा तो बाहर कुर्सी डाले बैठे हुए मिले। मैने अपनी बात कही । सोलहवी शताब्दी की परियोजना की चर्चा की। सुन लिया। बोले क्या चाहते हो ? मैने कहा — 'मुझे आपकी ओर से प्रमाण-पत्र चाहिए ।' उठ गए । भीतर गए । खडे रह गए । ऊंचा टेबल था । बाहर से मै देख सकता था । खडे-खडे लिख रहे थे । बाहर आए और प्रमाण-पत्र दे दिया । उस समय उनकी अवस्था ८० वर्ष की थी । उस अवस्था मे भी वे अपना काम कर रहे थे । अधिक देर न कर उनका आशीर्वाद लेकर लौट आया। उनका आशीर्वाद मुझे सदैव मिला है । बाद मे मैने उन्हे पुन एक बार देखा । १९९८ ई मे नेशनल पब्लिशिग हाउस के कार्यालय मे । उस समय सुरेन्द्रजी को उन्होंने बुलवाया । मै भी चला आया । गाडी मे बैठे बैठे सुरेन्द्रजी से बात की। मैने चरण छू लिए और चला आया । अपनी साधना मे अन्त तक लगे रहे ।

दिल्ली तो मै कई बार गया किन्तु हर बार प्रयोजन अलग-अलग रहता । पहले से सोचकर निकलता कि इस बार किन-किन से मिलना है और किन-किन से क्या बात करनी है । प्रकाशको से मिलता रहता था । दरियागज जाता और मलिक साहब, सुरेन्द्र मलिक से ही नही अपितु अशोक माहेश्वरी, अरुण माहेश्वरी से मिलता । कश्मीरी गेट जाता और विश्वनाथजी से मिलता । सयोग से प्रकाशको से मिलनेवाले अन्य लेखको से भेट हो जाती । उनसे बात होती । प्रकाशक क्या छापना चाहते है ? हमे क्या लिखना चाहिए ? यह सब मालूम होता । पत्र-व्यवहार करने मे सुविधा होती । दिल्ली जितनी बार गया हूँ, उतनी बार किसी दूसरे नगर मे नही गया । फिर भी वह महानगर मेरी पकड़ में नही आया । प काशीराम शर्मा के पास शाहदरा मे ठहरता तो पैदल घूमता था । उनके पास रहते हुए, उनके साहचर्य मे बहुत सीखा । हार्ट का आपरेशन होने से पूर्व तो पैदल घूमता ही था और अकेले ही जाता था किन्तु बाद मे भी पत्नी के साथ जाने लगा तो जैन स्थानको में रहने लगा । इसीमें कृपाश्रीजी और अन्य साध्वियों से परिचय हुआ । कृपाश्रीजी दिल्ली से बाहर निकलती ही नहीं । गुडमण्डी का स्थानक छोड दे तो सदर बाजार के स्थानक मे चली जाती । दिल्ली मे लगभग सौ स्थानक होगे । कुछ ऊपर भी होंगे । सत-साध्वी यदि सब स्थानको मे चातुर्मास हेतु क्रम मे जाएँ तो उसे दिल्ली महानगर से बाहर आने की आवश्यकता नही । मैने दस-बारह स्थानक देखे हैं. उनमे, वीरनगर, गुडमण्डी, घण्टा घर के पास कोल्हापुर हाउस

के निकट, सदर बाजार, डेरावाला का स्थानक, अशोक विहार का स्थानक, पश्चिम विहार का स्थानक, चॉंदनी चौक का स्थानक, करौल बाग का प्रेमभवन, जमना पार का स्थानक, गुजरात अपार्टमेण्ट का स्थानक, इनमे से कुछ स्थानको मे बार-बार जाता रहा हूं । इस नाते कुछ पढता भी रहा हूँ । स्थानको के आकर्षण से ही पत्नी दिल्ली आने के लिए तैयार होती थी । उक्त यात्रा को समाप्त कर हम लोग ११ नवम्बर १९९५ को औरगाबाद पहुँच गए ।

□ □

पूना यात्रा (२८-५-१९९६ से ३०-५-९६)

दिल्ली से लौटने के बाद कुछ काम करता रहा । मुझे दक्षिण भारत की यात्रा करनी थी । विशेष रूप से मद्रास जाना था । किन्तु बीच मे ही यू.जी सी UGC की ओर से पत्र मिला कि पुणे विश्वविद्यालय में परीक्षा हेतु पहुँचना है । इटरविव होगा । कितना काम हो गया है ? दिखलाना आवश्यक था । पूना गया । गेस्ट हाउस के सारे कमरे बुक हो गए थे । एक सज्जन के लिए जो कमरा आरक्षित था, उसमे वे आए नही थे । वह कमरा मुझे मिल गया । बाद मे मैने देखा कि मेरे ही कमरे मे डॉ कर्णसिंह चौहान आए । उन्हे कोई कमरा मिला नही । विवश होकर उन्हे मेरे कमरे में भेजा गया । मै डॉ. कर्णसिंह चौहान को पहचानता था। वे दिल्ली मे आए थे । टैगोर टाउन (माडल टाउन के समीप) मे रहते थे । डॉ. नगेन्द्र के पास पहुँचता तो उनसे मिलने चला जाता । इन्द्रनाथ चौधुरी भी टैगोर टाउन में रहते थे । डॉ कर्णसिंह चौहान से पहली बार मिलना जयपुर में १९७६ ई मे (आपतकालीन सगोष्ठी मे) हुआ । दो सप्ताह का शिबिर डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने आयोजित किया था । उस समय की सगोष्ठियो मे बहुत लोग उपस्थित थे । मुझे सब याद आ गया । डॉ. कर्णसिंह चौहान भी मेरी तरह इटरविव के लिए आए थे । इस बीच वे कहीं विदेश चले गए हों, इससे पुन· सम्पर्क नही हो सका। उनसे मिलकर प्रसन्नता हुई । रात हो गई थी । बहुत बाते नही हुई। सबेरे उठकर यथासमय हिन्दी विभाग मे पहुँचना था । हम लोग पहुँच गए । दो विद्वान् परीक्षक के रूप में पहुँच गए थे। दिल्ली से डॉ नित्यानद शर्मा और हैदराबाद से डॉ भीमसेनजी निर्मल । दोनों से विषय पर बातचीत हो गई । अपने कार्य का विवरण प्रस्तुत किया । आगामी कार्य की योजना भी बतलाई । औरों के इंटरविव हुए। हिन्दी के लगभग आठ-दस लोग थे । सब को जानता नही था । कुछ परिचित नाम थे किन्तु कभी सम्पर्क नहीं हुआ । वहॉ से बाहर आते ही मैं तो लौट गया नगर में कहीं नही गया । उस समय अकेले ही यात्रा की थी ।

□ □

मथुरा, नई दिल्ली तथा चूरू (३-८-१९९६ से १७-८-९६)

प काशीरामजी शर्मा ने दिल्ली छोड दी थी। वे अब सपरिवार चूरू चले गये थे। उनका लडका जो पहले दिल्ली मे चाँदनी चौक के स्टुडिओ मे काम करता था, वह भी चूरू पहुँच गया था। उनके साहचर्य मे रहकर काम करने की इच्छा थी। व्याकरण और प्राचीन वाङ्मय में उनकी गति रही है। उनके साथ मे रहना आवश्यक समझ कर चूरू जाने की योजना बनाई। तदर्थ दिल्ली से चूरू को जाना था। दूसरी बात यह कि मैंने मथुरा ठीक से देखा नही था। डॉ चन्द्रभान रावत के पत्र निरन्तर मिलते रहते थे। वे औरंगाबाद भी आए है और हैदराबाद मे भी मिलते रहे है। सच तो यह है कि तिरुपति मे मेरे लेखन कार्य मे मुझे उनसे सहयोग मिलता रहा है। उनसे मिलना आवश्यक था। नई दिल्ली का आरक्षण कर लिया। उस समय प्राय कर्नाटक एक्स्प्रेस से दिल्ली जाता था। तदर्थ मनमाड जाना पडता था। नई दिल्ली का आरक्षण ३ अगस्त १९९६ ई को हो गया। विचार था कि नई दिल्ली से पहले मथुरा में ब्रेकजर्नी करेगे और दूसरे दिन पुन दिल्ली चले जाएगे। उस हिसाब मे मैंने रावतजी को आगमन की तिथि और गाडी का नाम और समय लिख दिया। बाद मे मुझे मालूम हुआ कि गाडी मथुरा मे ठहरती नही। इसीलिए हम लोग आगरा केट ही उतर गये। और वहाँ से दूसरी गाडी द्वारा मथुरा पहुँचे। स्टेशन पर कोई नही मिला। रावतजी ही नही उनकी पत्नी (चाची) भी हमसे मिलने के लिए उत्सुक थी। विशेष कारण यह था कि मेरे साथ मे पत्नी भी थी। दोनो आपस मे मिलना चाहते थे। कलकत्ता मे १९८९ ई. मे हम लोग मिले थे। उसके बाद तो मात्र पत्र-व्यवहार ही होता रहा। मिलना नही हुआ। फिर मुझे लोहवन देखना था। रावतजी की बैठक देखनी थी। उनका पुस्तकालय देखना था। बैठकर चर्चा करनी थी। उन्मुक्त भाव से घर पर मिलना था। रावतजी स्टेशन पर पहुँचे थे। उन्होने मथुरा में हमारे लिए किसी होटल मे कमरा भी बुक किया था। किन्तु जब हम नही पहुँचे तो निराश होकर लौट गये। उनकी पत्नी भी निराश हो गई। घर पर लौटे नही। हम लोग जमना पार कर लोहबन मे उनके आवास पर पहुँच गए। ताला लगा था। पडोस के लडके ने आकर ताला खोला और हमे बैठाया। दो घण्टे बाद रावतजी और उनकी पत्नी आई। मिलकर सब प्रसन्न हुए। कहने लगे, मथुरा मे व्यवस्था कर रखी है। मैंने कहा — 'मै तो घर पर रहने आया हूँ। यहाँ सब आराम है।' चाची अस्वस्थ थी। आँखें ठीक नही थी। रसोई घर मे काम करने की स्थिति में नही थी। जैसे-तैसे जीवन चल रहा था। बैठक से लगा हुआ

गवतजी का अध्ययन कक्ष था। उस कक्ष से लगा और एक बडा कक्ष था। पुम्तके ही पुस्तके थी। नौकर-चाकर कोई नही था। पुस्तको पर धूल हो गई थी। रावतजी भी क्या करे। उस समय उनकी अवस्था ७२ वर्ष की थी। पहले जैसा उत्माह नही था। उनकी दिनचर्या गॉव जैसी ही थी। विषय पर ठीक मे बात नही हो सकी। ब्रजभाषा — के मुख्य गॅंव मे था और ब्रजभूमि को जानना था। उस दृष्टि से मथुरा की यह यात्रा लाभप्रद रही। मै अकेले तो मथुरा घूम कर देख नही सका। उनका साथ रहने से मथुरा-वृंदावन-गोकुल के दर्शन हो गए। उस दिन तो हम उनके आवास पर ही रहे। दूसरे दिन हम लोग गवतजी के साथ मथुरा गये। होली गेट के पास दूध-जलेबी का सेवन किया। मथुरा के मन्दिर देखे। द्वारका मन्दिर भी गए। जमना किनारे नही जा सके। लौटकर पुन उनके साथ ही बस से वृन्दावन गए। वृदावन मे श्रीरंगजी के महन्त सताणमूजी ने वृन्दावन मे हमे कमरा दे दिया और भोजन की व्यवस्था कर दी। दिन भर घूम कर वृदावन के मन्दिर देखे। शिक्षा संस्थाएँ देखीं। वहॉ शोध का कार्य भी होता है। मथुरा मे वृंदावन कुछ नया और अधिक साफ है। भक्तो की भीड है। भजन-कीर्तन होता रहता है। रावतजी जहॉ-जहॉ ले गए, वहॉ-वहॉ हम गए। रात मे वृंदावन मे ही सो गए। दूसरे दिन मथुरा लौट आए। पुन गोकुल गए। गोकुल जाते समय जमना पार करना पड़ा, लोहबन से आगे जाना पडा। वृदावन और गोकुल मे बहुत दूरी है। गोकुल मे यशोदा थी। कृष्ण वही पर बडे हुए। कृष्णजी का झूला है। शिशु रूप वहीं का है। हमारे पीछे पण्डे पड गए थे किन्तु रावतजी साथ मे होने के कारण हमे कोई कष्ट नही हुआ। गोकुल मे बाल्यावस्था के प्रसगो के स्मृति-स्थल हैं। गोकुल वृदावन की अपेक्षा प्राचीन है। वृदावन वस्तुत चैतन्य सम्प्रदाय से सम्बद्ध है और गोकुल वल्लभ सम्प्रदाय का केन्द्र है। गोकुल में वल्लभ सम्प्रदाय का मन्दिर है। आरती के समय हम पहुँच गये थे। रावतजी को वहॉ के पूजारी पहचानते है। उनके कारण प्रसाद मिला। कुछ प्रसाद हम खरीद कर ले आए। लौटते समय वे हमें पूजारी के घर पर भी ले गए। उन्हे वहॉ अतिरिक्त प्रसाद मिल गया।

यो हम लोग ४ अगस्त से ७ अगस्त १९९६ तक मथुरा मे थे। रावतजी के साहचर्य के कारण सब कुछ देखना मात्र हुआ। शोध-सस्थान का ग्रंथालय मात्र देखा। बैठकर कुछ देखना नही हुआ। सताणमजी का मदिर दक्षिण के मन्दिरो के सदृश विशाल है। उतना बडा मन्दिर वृदावन मे दूसरा नही है। उस मन्दिर को देखकर तिरुपति याद आ गया।

चूरू (पंडित काशीराम शर्मा) :

७ अगस्त को मथुरा से प्रस्थान कर हम लोग दिल्ली पहुँचे । आठ और नौ दो दिन दिल्ली मे रहे । वहाँ से सराय दिल्ली स्टेशन से चूरू गए । १० अगस्त को प्रस्थान कर सबेरे सबेरे ११ अगस्त को चूरू पहुँच गए । चूरू में पं. काशीरामजी के घर पर ठहर गए । स्टेशन से घर बहुत दूर नहीं था । वहाँ पर हम दो दिन घर पर ही रहे । सबेरे घूमने निकल जाते । सायकाल मे शहर मे ले गए । वहाँ की शिक्षा-सस्था मे ले गए । वहाँ के अधिकारी से परिचय करवाया । पुरानी पद्धति की बैठक है । ग्रथ-सम्पदा है । नगर का स्वरूप देखा । मुझे तो बैठकर बात करनी थी । घर पर चर्चा होती रही । उस समय उनकी पुस्तक **'हिन्दी व्याकरण मीमांसा'** छप कर आ गई थी । उसकी प्रति मुझे औरगाबाद मे ही मिल गई थी। अशोक महेश्वरी ने मुझे भेज दी थी । व्याकरण-मीमासा तो हो गई । अब व्याकरण लिखना था । वे व्याकरण को ग्रामर से अलग मानते है । कामताप्रसाद ने जो कुछ लिखा, वह ग्रामर है — नाम भले ही 'हिन्दी व्याकरण' हो किन्तु वे उसे 'हिन्दी ग्रामर' ही कहते रहे हैं । प किशोरीदास वाजपेयी ने अपनी पुस्तक का नाम **'शब्दानुशासन'** रखा, वह अधिक ठीक है । इस दृष्टि से देखें तो पडितजी ने पाणिनि की अष्टाध्यायी सदृश **हिन्दी अष्टाध्यायी** की योजना बनाई । लिखना आरम्भ कर दिया था । पहले अध्याय के जो पृष्ठ लिख लिए थे, उसे उन्होंने सुनाया भी । मै तुरन्त मे ठीक से समझ नही पाया । मै जो कुछ समझ सका उसका सक्षेप इतना है कि पाणिनि का व्याकरण **भाषा विज्ञान** और **ग्रामर** एक है । और वह एक होना चाहिए । उसमे शब्दानुशासन की व्यवस्था का उद्घाटन ठीक ठीक होना चाहिए । वस्तुत उन्होंने **'हिन्दी व्याकरण मीमांसा'** में हिन्दी मे लिखे गए तीन व्याकरण-ग्रंथों की तुलनात्मक मीमासा की है । वस्तुत अब उन्हें सकारात्मक रूप में — स्थापनाओं के रूप मे — लिखना था । हिन्दी भाषा की प्रकृति को पहचानकर उसके मानक स्वरूप को उजागर करना था । इसी प्रयास मे उन्होंने लिखना आरम्भ कर दिया था । वह क्रम नियमित बना नही रहा । उनके पास ग्रथालय नहीं था । **'हिन्दी व्याकरण मीमांसा'** के लिए भी उन्हे पुस्तके भेजनी पड़ी । स्वय अशोक महेश्वरी ने वाछित पुस्तकें उन्हें भेजी । पहले वह पुस्तक 'प्रकर' मे छपी और बाद मे राधाकृष्ण प्रकाशन से पुस्तक रूप मे छपी। अशोक महेश्वरी ने तो प किशोरीदास वाजपेयी से भी पुस्तकें माँग कर छापीं। प काशीराम शर्मा भी इसी तरह पुरानी परम्परा के सस्कृत के विद्वानो मे से है।

जब तक उनको पहचाननेवाला न मिले उनके कार्य को गति कौन दिलाएगा ? यदि प्रकाशक उनके द्वार पर खडा हो तो वे खूब काम कर सकते हैं। उन्होने जो पुस्तके लिखी, उनकी छपाई वे अपनी पद्धति से छपवाना चाहते है। उनके 'रतनरासो' की भूमिका तो छप गई किन्तु 'पाठ' नही छपा। वे 'पाठ' मे विशेष ध्वनि चिह्न चाहते थे, उसकी व्यवस्था प्रकाशक नही कर सका और काम रूका पडा है। खिडिया जगा की **वचनिका** का पाठ छप गया और उसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन से बहुत पहले हुआ था। उनकी 'रामचरित्र' पुस्तक भी इसी तरह राजकमल से ही छपी है। उनके प्रकाशन मे महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह थे। महाराजकुमार पडितजी के गुणो को और उनकी कार्य पद्धति को जानते थे। उन्होंने उनसे पुस्तके लिखवाई और छपवाई भी हैं। नटनागर शोध-सस्थान की स्थापना हो जाने के बाद सीतामऊ की सगोष्ठी मे उन्हे आमत्रित किया और उनका सम्मान भी किया है। यों पडितजी को बहुत काम करना है। हिन्दी व्याकरण पर काम उस समय आरम्भ तो हो गया था किन्तु पूरा नही हुआ। कार्य जारी है। इस सम्बन्ध मे मैं उन्हें लिखता रहा हूँ। मैं इतना मानता हूँ कि व्याकरण पर उनका मौलिक चिन्तन है। पडितजी के साथ सस्कृत वाड्मय पर, डिगल पर, अधिक बाते हुई हैं। डिगल-पिगल को वे खूब जानते हैं। **डिंगल भाषा** पर उनका लेख अपनी परियोजनावाले ग्रथ (सोलहवी शती का भारतीय साहित्य) मे मैंने सम्मिलित किया है। छदो के अनुशासन को वे पहचान लेते है और छदो का पाठ उसी अनुशासन से वाचन करते हैं। अनुशासन की त्रुटियो को जानते है। पाण्डुलिपि की अशुद्धियों को, नकल करनवालों की भूले बतलाते है। बहुत-सी पाण्डुलिपियो मे नकल करनेवालो की भूले रह ही जाती है। कही अक्षरो का दोष है, तो कही मात्राओ का दोष है। वे अशुद्ध पाठ को पढकर शुद्ध उच्चारण कर लेते है। उनके कारण, उनके पास बैठकर धारणोजवाली — (पृथ्वीराजरासो की) प्रति का ठीक पाठ लिखने का प्रयत्न किया है। किन्तु वे तो अपने पाठ पर उच्चारण के विशेष चिह्न वैसे ही लगवाना चाहते रहे हैं, जैसे वेदो के उच्चारण के लिए स्वराघात, बलाघात और समाहार के चिह्न लगे रहते है। भाषाओ के अनुशासन मे वे उच्चरण को अधिक महत्त्व देते है। पृथ्वीराजरासो — के तीनो भाग अभी प्रेस में है। छप रहे है। पहला भाग तो तीन-चार महीनो मे (इस पुस्तक के छपने से पूर्व ही) आ जाएगा। तदर्थ पडितजी के पत्र नियमित मिलते रहते है। उनसे कुछ सीखना हो तो उनके साहचर्य मे रहना आवश्यक है। दिल्ली

मे जब तक रहते थे, वे अधिक सुलभ थे । अव तो उन्हे मिलने के लिए विशेष यात्रा आवश्यक है । इसी प्रयोजन से जैसे जम्मू गया वैसे ही चूरू पहुँचा था। चूरू से पुन दिल्ली आये । और दिल्ली मे अपना काम किया । नियमानुसार हम लोग १७ अगस्त १९९६ को औरगाबाद पहुँच गये । १५ अगस्त को दिल्ली मे थे । उस दिन छुट्टी रहती है । दिल्ली मे मार्किट बन्द था । कुछ काम नही हुआ। १६ अगस्त को दोपहर मे गाडी थी । मभवत उस दिन कुछ विशेष कार्यक्रम था। आवागमन की कठिनाई थी । किसी तरह वीरनगर मे हम लोग नई दिल्ली स्टेशन पहुँच गए थे । और फिर गाडी मिल गई ।

□ □

मद्रास (चेन्नई) एवं तिरुपति (२८-९-९६ से १६-१०-९६)

मद्रास इससे पूर्व कई बार गया हूँ । तिरुपति जाने से पूर्व इंटरविव के लिए सब से पहले १९५९ ई मे मद्रास गया था । किन्तु इस बार शोध कार्य के लिए जाना था । मद्रास मे दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा है, वह त्यागराजनगर मे है । सीधे मद्रास ही गए । सिकदराबाद मे डॉ. निर्मलजी से मिलकर मैने मद्रास के विद्वानो के पते लिख लिए थे । इसीलिए सम्पर्क करने मे कोई कठिनाई नही हुई । सिकदराबाद से मद्रास पहुँचते ही हम लोग दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा गए । वहाँ डॉ रामानायडू नही मिला । डॉ. जैन और डॉ एस वसन्ता दोनो ही नही थे । जैनजी का पता मेरे पास मे था । जैसे-तैसे हमें एक कमरा मिल गया । कोई व्यवस्था नहीं थी । डॉ रामानायडू का पता मिल गया था । वह मावलम् मे रहता था । मेरे पास भाई प्यारेलालजी बोरा का पता था । उनका आवास पल्लावरम् मे था । वह मीनाबकम् (एअर पोर्ट) से और आगे है । मद्रास सेन्ट्रल स्टेशन के सामने लोकल ट्रेन का स्टेशन अलग है । वहाँ से लोकल द्वारा हम लोग पल्लावरम् पहुँच गए । पल्लावरम् मे खोजने पर मसजिद गली मे प्यारेलालजी का घर मिल गया । हमे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए । उनके तीन लडके हैं — उत्तम, महावीर और आनन्द । स्वय प्यारेलालजी सपरिवार औरगाबाद हमारे घर पर आए थे । यों तो पहली बार तो मैं १९९१ ई मे सुनिल के साथ उनकी लड़की के ब्याह मे गया था । उस दिन मद्रास मे राजीव गांधी की हत्या के कारण शोक था । महानगर बन्द था । बडी कठिनाई से पल्लावरम् पहुँचा था । मेरा भाई तेजमल भी लातूर से सपरिवार आया था । विवाह मे बाजे नही बजे । सडक लाधकर सामने के मकान में बरात पहुँची और विवाह हो गया । उस समय रानीवालवाले

धर्मीचदजी भी मिले । वे गनीवाल छोड़कर अहमदाबाद मे रहने लगे थे । सब से परिचय हो गया । उस समय कहीं जाना-आना नहीं हुआ । विवाह सम्पन्न होते ही मैं और सुनिल सीधे बैंगलौर लौट गए । वहाँ से सिकंदराबाद होते हुए पुन औरंगाबाद आए । वस्तुत मैं अपनी लडकी नमिता के लिए वर की खोज मे था । सुनिल, मेरे साथ इसीलिए आया था । किन्तु अब तो मै यह निर्णय करके आया था कि मद्रास यूनिवर्सिटी जाऊँगा और विद्वानो से मिलूंगा । महावीर मेरे साथ त्यागराजनगर आया । सारा सामान लेकर पल्लावरम् मे ठहर गए । मद्रास में स्थिर होने में हमारा एक दिन निकल गया ।

योजनानुसार मै दूसरे दिन से काम करने के लिए तैयार हो गया । परिचय मे और स्थिर होने मे समय निकल गया । रात मे उत्तम मुझे अपने आवास पर ले गया । वह अपनी पत्नी के साथ दूसरे मकान में रहता है । यों सब एक ही हैं । भोजन के लिए उत्तम पिताजी के घर पर पहुँचता है । महावीर का भी विवाह हो गया है । वह मूल घर पर ही रहता है । भाई प्यारेलालजी की माताजी भी हैं । यों परिवार के सभी सदस्यो मे मेल है । उत्तम मूल दुकान पर बैठता है। महावीर की दुकान अलग है । आनन्द भाइयो की सहायता करता है । पल्लावरम् की दुकानो के साथ-साथ सावकार पेट मे भी (Mint Street) उनकी दुकान है। सावकार पेट मद्रास सेंट्रल स्टेशन से लगा हुआ मार्किट है । उसका पुराना नाम मिंट स्ट्रीट है । मिंट स्ट्रीट का प्रयोग कम हो गया है सावकार पेट का प्रचलन अधिक है । सावकार पेट से लगा हुआ चायना बाज़ार है । बहुत प्रसिद्ध है । ये सब मद्रास सेंट्रल के पास में है । सबसे पहले जब मद्रास पहुँचा था । तब भवरलालजी सेठिया के पास ही ठहरा था । वे सावकार पेट मे ही रहते है । उनके साथ घूमकर चायना बाज़ार देखा तथा इंटरविव के लिए यूनिवर्सिटी गया था । सायंकाल मे मरीना बीच भी गया था । इस समय वे नहीं थे । उनके पुत्र का भी निधन हो गया था । पत्र-व्यवहार जारी था ।

मेरा सम्पर्क फोन द्वारा डॉ. रामानायडू से हो गया था । डॉ. रामानायडू ने कहा कि ईस्ट मांबलम् पर लोकल द्वारा पहुँच जाओ । वह वहाँ प्रतीक्षा करेगा। मेरे साथ भाई प्यारेलालजी आए । मांबलम् (ईस्ट) स्टेशन पर रामानायडू मिल गये। उस दिन प्यारेलालजी दिन भर मेरे साथ में थे । रामानायडू भी उस दिन मेरे साथ मे था । हम लोग सब से पहले यूनिवर्सिटी गए ।

यूनिवर्सिटी म हिन्दी विभाग मे गए । वहाँ पर न डॉ. शकरराजू नायडू थे और न ही डॉ. गणेशन् थे । डॉ. शकरराजू नायडू थे । उनका आवास यूनिवर्सिटी मे निकट ही था । जाना नहीं हुआ । हिन्दी विभाग मे तिरुपति विश्वविद्यालय का छात्र पहुँच गया था । वही अध्यक्ष था । उससे बात हुई । किसी दूसरे सदस्य से मिलना नही हुआ । वहाँ से हम लोग तमिल विभाग मे गए । वहाँ पर डॉ. पोन् कोदडागमन् (Dr Pon Kothandiaman) मिल गए । उनसे भाषा विज्ञान पर खूब बाते हुई । वे तमिल भाषा और साहित्य दोनो के विद्वान् है । हमसे बहुत देर तक बाते करते रहे । उन्होने अपनी एक पुस्तक भी दी । 'A Comparative Study of Tamil and Japanese' — पुस्तक का नाम है । उन्होंने शब्दसमूह तथा व्याकरणिक रूपो का तुलनात्मक अध्ययन उक्त पुस्तक में किया है । भाषाओ के मूल स्रोतो को पहचानने का प्रयत्न पुस्तक मे है । वस्तुत तमिल भाषा पूर्व के देशों मे दूर-दूर तक पहुँची है । और पूर्व के देशो की भाषाओं का प्रभाव तमिल पर है । जापानी भाषा, पूर्व की भाषा है । पुस्तक मे ऐतिहासिक खोज नही है। भाषाओ के मूल उत्स तक पहुँचने का प्रयत्न है । यदि हम पाँच-दस मिनट बाद मे पहुँचते तो हमारी भेंट नही होती । वहाँ से हम लोग सीधे प्रकाशन विभाग में गए । वहाँ पर डॉ. शकरराजू नायडू तथा डॉ. गणेशन् की उपलब्ध पुस्तकों के साथ-साथ तमिल भाषा पर लिखी इंग्लिश पुस्तकें भी खरीदी । पुस्तकों का ढेर लेकर हम चले । यूनिवर्सिटी से बाहर आने पर सडक लांघ जाओ तो अन्नादुरै का स्मृति-स्थल है । बहुत सुन्दर है । शिल्प उत्तम है । आसपास का क्षेत्र गार्डन सदृश है । बैठने को जी चाहता है और उसके सामने तो समुद्र है । मरीना बीच वही से शुरू हो जाता है और उस बीच के सामने मुख्य सडक है । वहाँ से मुझे के. एम. रामनाथन् के पास जाना था । रामानायडू के साथ ही हम जा सकते थे । वह बीमार था । इसीलिए उसके साथ जाना आवश्यक था । उसके घर जाने से पूर्व रामानायडू हमे अपने घर ले गया । वह ईस्ट माबलम् मे केनाल बैक रोड, CIT नगर में रहता है । वहाँ पर उसने मकान बना लिया था । हम उसके घर गए । मकान अच्छा था । बगले सदृश था । सब सुविधाएँ थीं । उसका एक पुत्र है । कहीं बाहर गया हुआ था । उसने अपना प्रकाशित शोध-प्रबन्ध दिया । वहाँ से हम लोग डॉ. बालशौरि रेड्डी के घर पर गए । वडिवेलपुरम् में २७ नम्बर का उनका आवास है । रेड्डी साहब घर पर मिल गए । उनसे तिरुपति मे पहले मिलना हुआ है । उनके साथ पत्र-व्यवहार जारी रहा है । तेलुगु साहित्य पर उनकी

लिखी पुस्तके, उनसे खरीद ली । वे उपन्यासकार है । चन्दामामा (हिन्दी मे) के सम्पादक रह चुके है । उनका काफी नाम है । उनकी साधना जारी हे । इसमे ही हमारा काफी समय हो गया । फिर तो हम सीधे रामानायडू के साथ अन्नानगर गए । रामनाथन् केन्द्रीय विद्यालय का प्रिंसिपल था और क्वार्टर मे रहता था । बीमार था । मिल गया । चाहकर भी उस अवस्था मे अधिक बाते नही हुई । मात्र मिलना हुआ । जो कुछ जाना, वह रामानायडू ने ही बतलाया था । वहाँ से हम सीधे पल्लावरम् पहुँचे । अन्नानगर से पल्लावरम् पहुँचने मे एक घण्टा लग गया । रामानायडू भी माबलम् अपने घर चला गया । उस दिन प्यारेलालजी दिन-भर मेरे साथ थे।

दूसरे दिन मै अकेले ही गया । मुझे तीन विद्वानो से मिलना था । डॉ शेषन, डॉ शौरिराजन और श्री पी. के. बालसुब्रह्मण्यम् । तीनो के पते ठीक से मालूम कर लिए थे। डॉ. शेषन औरंगाबाद आये थे । उनसे परिचय था और उनकी पुस्तक **'तमिल साहित्य एक झाँकी'** मैंने खरीद ली थी । उनका आवास के के नगर (वेस्ट) मे, ११ रामस्वामी रोड पर था । मकान का नाम गुरुकृपा था । सब से पहले के के नगर (वेस्ट) मे गया । वहाँ पर गली खोज ली और घर पर पहुँच गया। डॉ शेषन मिल गये । बहुत प्रसन्न हुए । दक्षिण के हिन्दी विद्वान् के रूप मे उनकी ख्याति है । **दक्षिण समाचार** हैदराबाद मे उनकी लेखमाला **'तमिल भक्ति साहित्य'** पर छपती रहती है । उनसे काफी देर तक बाते होती रही । उनको कोई अच्छा प्रकाशक नही मिला । फिर भी उनके लेख पत्रिकाओ मे छपते रहे है । **'तमिल साहित्य एक झाँकी'** पुस्तक उन्होंने स्वय छापी है । उत्तर भारत के विद्वानो से उनका सम्पर्क बना हुआ हे । मैंने उनसे सोलहवी शती के तमिल साहित्य पर लेख लिखवाया है । उसे अपनी परियोजना के ग्रथ में सम्मिलित किया है । इसी तरह बालशौरि रेड्डी से भी तेलुगु साहित्य (१६वी शताब्दी) पर लेख लिखवाया और उसे भी ग्रथ मे सम्मिलित किया है ।

श्री शौरिराजन पद्माशेषाद्रिपुर स्कूल के सामने की स्ट्रीट में २९३ नम्बर के मकान मे रहते हैं और उस स्थान पर पैदल जा सकते हैं । डॉ शेषन ने कैसे जाना बतला दिया । तदनुसार मैं श्री शौरिराजन के आवास पर पहुँचा । अध्ययन मे लगे हुए मिले । उठकर आए और भीतर अपने अध्ययन कक्ष में ले गए । **समकालीन भारतीय साहित्य** के अको का ढेर सामने ही था । साहित्य अकादमी से उनके द्वारा अनूदित पुस्तकें छपी हैं । उत्साही है । उस परिचय के बाद मै उनसे पत्र-व्यवहार जारी रहा है । मुझे **तोल्काप्पियम्** की आवश्यकता थी । तमिल

पे मै पढ नही सकता था । उसका अग्रेजी अनुवाद पढना चाहता था । उमका पता लगाकर लिखने के लिए कहा था । तोल्काप्पियम् अग्रेजी मे उपलब्ध है । उसकी सूचना उन्होने बाद मे मुझे भेजी । Tholkappiym - By Dr S Ilakkuvanai डॉ एस इलक्कुवनार ने उक्त पुस्तक मे सम्पादन और अनुवाद का काम किया है । इसके साथ साथ अपनी टिप्पणियाँ भी लिखी हैं । उक्त पुस्तक श्री शौरिराजन ने प्राप्त कर मुझे भेज दी । उमका मूल्य पाँच सौ रुपया था । वह सब मैंने उन्हे भेज दिया । उसकी सूचना मैंने पं काशीरामजी शर्मा को भेजी थी । इस सम्बन्ध मे जो पत्र मुझे उनसे मिले है, वे मैंने 'भारत के भाषा परिवार' मे छापे है । मेरे लिखने के बाद उन्होंने अपने तमिल गुरु को पत्र लिखकर पुस्तक के अन्य सस्करण की प्रति प्राप्त कर ली । उसका अनुवाद उन्होंने पूरा कर लिया है । अस्सी पार कर चुके है किन्तु उनका उत्साह देखिए । उनका १७ दिसम्बर २००३ का पत्र कल २२ दिसम्बर २००३ को मिला है । पत्र उद्धृत कर रहा हूँ—

C-२२, नाबार्ड विहार,
सेंट जेवियर्स कालेज कॉर्नर,
एलिस ब्रिज, अहमदाबाद ३८०००६
दि १४-१२-२००३

बधुवर,

७-४ को चूरू से यहाँ पहुँच कर दूसरे ही दिन उन सब मित्रों को पत्र लिखे थे जिनको यहाँ आ जाने की सूचना देना आवश्यक था । आपको भी लिखा था । अस्तु ;

आपके एक पत्र से विदित हुआ कि भाषाओं का पारिवारिक वर्गीकरण वाली आपकी पुस्तक छप गई है और नये वर्ष में प्रकाशित होगी । प्रसन्नता की बात है । आपकी सभी पुस्तकें प्रकाशित देखने की सदा इच्छा रहती है । तोलूकाप्पियम् के विषय में पहले विचार किया था कि तीनो अधिकारों का अनुवाद साथ ही प्रकाशित करें । इलक्कुवनारजी के अग्रेजी अनुवाद की पुस्तक प्राप्त करने के लिए दिल्ली के कुछ मित्रो को लिखा था परन्तु नहीं मिल पाई । अत अब निर्णय कर लिया है कि दो अधिकारो और पैंतीस-चालीस पृष्ठ के साथ प्रकाशित करवा दें । अत कम्प्यूटर टाइप के लिए सामग्री दे दी है । टाइप हो चुकने पर तीन फोटों प्रतियाँ बनाकर

भाई ब्रजकिशोरजी को भेज दूंगा । जीवनकाल मे छपी देख लू तो अच्छा लगेगा । **रतनरासो** का मूल भाग जोधपुर महाराज की संस्था को भेज दिया था । पहले जल्दी कहा करते थे । अब कुछ नही कर रहे । मैंने तो उनकी आशा छोड दी है ।

आशा है पूर्ण स्वस्थ है । मैं ठीक हूँ । फर्वरी तक यही रहूँगा ।

भवदीय

काशीराम

इन पंक्तियो के लिखते-लिखते पत्र मिला है । इसीलिए उद्धृत कर दिया। अहमदाबाद में वे अपने पुत्र के पास रहते है ।

शौरिराजन से परिचय का लाभ मुझे मिला है । उनकी उदारता कहिए कि पुस्तक सीधे भेज दी । रुपये मैंने बाद मे भेजे । वी पी पी नहीं की । **भारत के भाषा परिवार** पुस्तक मे तोलकाप्पियम् पर एक अध्याय है और प काशीरामजी शर्मा के इस सम्बन्ध मे लिखे पत्र भी है ।

शौरिराजन के बाद मे श्री पी के बालसुब्रह्मण्यम् के घर पर गया । उनका आवास वहाँ से निकट ६९वी स्ट्रीट मे था । शौरिराजन ने साहित्य अकादमी से प्रकाशित तमिल उपन्यास की हिन्दी मे अनूदित पुस्तक दी । उन्होने श्री पी के. बालसुब्रह्मण्यम् के घर पर कैसे पहुँचे, यह भी बतला दिया । घर पर मिल गये । तमिल भाषा और साहित्य के विद्वान् है और 'समकालीन भारतीय साहित्य' मे उनकी अनूदित रचनाएँ छपती रही हैं । वे वृद्ध हो गए थे । उनसे बात की। काफी समय हो गया था । दूसरी ओर जाने की योजना भी नही थी। मैं लौट आया ।

मद्रास विश्वविद्यालय में खरीदी हुई पुस्तकें अधिक थी । उन्हे यात्रा मे साथ रखना कठिन था । इसीलिए प्यारेलालजी भाईसाहब के घर पर बैठकर मैंने पैकिग कर दी । तीन या चार बण्डल हो गए । रजिस्टर्ड डाक से मैंने पल्लावरम् के डाकघर से पुस्तके घर पर भेज दी ।

डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन का आवास पल्लावरम् मे ही था । उनसे मिलने हम दोनो को जाना था । महावीर हमे उनके घर ले गया । १३ नम्बर का मकान, शक्तिनगर में था । रेलवे स्टेशन के यो रेल की पटरियो के समानान्तर के बगले

इन हुए थ । हम लोग आसानी से पहुँच गये । महावीर के पास ऑटो था । वह चलाना जानता था । इसीलिए ले आया ।

जैनजी मिले । श्रीमती जैन मिली । उन्हे तीन लडके हैं । तीनो का ब्याह कर दिया है किन्तु घर पर उनके साथ कोई नहीं रहता । जैनजी १९२५ ई. के है । उस समय (१९९६ ई मे) वे ७१ वर्ष के थे । बहुत स्पष्ट वक्ता है, स्वाभिमानी है और कवि भी है । रामानायडू उनके चुटकुले सुनाता था । विभाग में उनकी मैत्री किससे रही हो, मै नही जानता । उन्होंने कविता सग्रह छापे है । मुझे दिए और डाक द्वारा भिजवाए है । जैन धर्म पर कुछ पुस्तकें भेजी । मै पुस्तकें भेजता रहा हूँ । प्राप्ति सूचना तो भेजते ही किन्तु अपनी प्रतिक्रिया भी लिखकर भेजते रहे हैं । पत्रो के द्वारा आज भी सम्पर्क बना हुआ है । जैनजी की पत्नी बीमार रहती है । उस समय ठीक थीं । वे उस समय सक्रिय थे और अपनी योजना से कुछ लिख रहे थे । हम लोग लौट आए ।

संभवत. उसी दिन प्यारेलालजी हमें परिवार के भाइयों को मिलाने ले गए। रानीवाल के बोरा परिवार के दस-ग्यारह घर वहाँ पर हैं । दूर-दूर रहते है । पल्लावरम् तो अन्तिम सिरे पर है । दूसरे भाई लोग महानगर के विभिन्न मुहल्लों में रहते है। सब से मिलना चाहो तो पूरा एक दिन लग जाएगा । प्यारेलालजी ने इसीलिए हम लोगो के लिए स्वतत्र ऑटो दिनभर के लिए मँगवा लिया । मेरा किसी से भी परिचय नहीं था । एक लम्बी परिक्रमा कर के हम लोग सायकाल में लौट आए । कस्तूरचंदजी (कोलचदजी) के परिवार का वह विस्तार था । वहीं पर रहने के कारण वे लोग आपस मे एक दूसरे को जानते थे और सम्बन्ध बना हुआ था । मैने आत्मकथा के पहले भाग मे आरम्भ में पूर्वजो का जो विवरण दिया है, वह सब प्यारेलालजी से प्राप्त सामग्री के आधार पर दिया है । मेरी इच्छा रानीवाल जाने की थी किन्तु जैतारण के निकट से जोधपुर तक तो तीन-चार बार चला गया । किन्तु ठहर कर जैतारण और रानीवाल नही गया । मै तो अपने लक्ष्य को ध्यान मे रखकर काम करता था । घूमने-फिरने के लिए समय कहाँ था । अब इच्छा हुई तो जाने की स्थिति मे नहीं रहा । रानीवाल के परिवार के अन्त तक रहनेवालो मे श्री नेमीचंदजी और उनके तीन पुत्र रहे हैं और वे अब अहमदाबाद मे रहते हैं । नेमीचदजी तो नहीं रहे । उनके तीनो पुत्र अहमदाबाद मे है । अहमदाबाद मे उनके घर पर भी एक सप्ताह रहकर आया हूँ । अहमदाबादवाले

धर्मीचद और मद्राम से प्यारेलालजी दोनो ही औरंगाबाद आकर गए है । उनके माथ पत्र-व्यवहार भी जारी है ।

मद्रास महानगर घूम कर देखने की इच्छा थी । तदर्थ महानगर भ्रमण की बस मद्रास सेंट्रल स्टेशन के पास से जाती है । उसके दो टिकट हमने आरक्षित कर लिए । दूसरे दिन यथासमय हम लोग सबेरे-सबेरे मद्रास सेंट्रल लोकल ट्रेन द्वारा पहुँच गए । पर्यटको के माथ पर्यटक बनकर हम भी यात्रा करने निकले । हमारी यह यात्रा सुखद थी । हमारी बस शीघ्र ही माउण्ड रोड पार करते हुए मद्रास बीच के पास पहुँच गई । समुद्र के किनारे-किनारे की समानान्तर सडक से गुजरने लगी । लगता है दिखानेवाले सभी प्रमुख स्थल समुद्र के किनारे पर है । सडक के पार की झाडियों के बीच समुद्र का बीच — मैदान की तरह फैला हुआ साफ दिखलाई देता था । मद्रास जो पहुँचता है वह बीच अवश्य देखता है । मरीना बीच तो प्रसिद्ध है ही । इसी तरह यूनिवर्सिटी के सामने अन्नादुरै का स्मृतिस्थल सुन्दर है। हम तो मरीना बीच से आगे दक्षिण की ओर दौड रहे थे । समुद्र के किनारे-किनारे चल रहे थे । हमारी बस कहाँ-कहाँ ठहरी और हमने क्या-क्या देखा ? सब कुछ ठीक से याद नहीं है । महाबलीपुरम् गए । प्राचीन शिल्प देखा । साँपो का स्थल देखा । मिट्टी के घड़ों मे साँप रखे हुए है । उनके अनेक रूप है । देखने के लिए गेट पर काऊंटर लगा है । टिकट लेकर भीतर जाना पडता है । आगे पर्यटको के आकर्षण का केन्द्र गोल्डन बीच है । वहाँ पर पिक्चर की शूटिंग चलती रहती है । विस्तृत क्षेत्र है । समुद्र के किनारे पहुँच कर लौटने में एक घण्टा लग जाता है । और बसवाले ने उम स्थल पर एक घण्टा ही दिया था। दौडते-दौड़ते समुद्र किनारे गए । काफी पी और लौट गए । हम तो समय पर पहुँच गए । एक दम्पति पीछे रह गया । समय पर न पहुँच पाने के कारण प्रतीक्षा की । समय अधिक हो गया । बस निकल गई । बाद मे दो-तीन स्टाप गुजरने के बाद पीछे से आनेवाली बस में बैठकर आए और पुन सम्मिलित हो गए । दोपहर तक हम लोग पक्षी तीर्थ पहुँच गए । हम लोग सीढ़ियाँ चढकर ऊपर नही गए । एक घण्टे का समय दिया था । हमने भोजन वही पर किया । जानेवाले सीढियाँ चढकर ऊपर गए । पक्षियों का वह विरामस्थल है । गाइड सब कथाएँ सुना रहा था । कुछ समझ मे आया, कुछ देखकर अनुमान करते रहे । पक्षी तीर्थ के और आगे हम नही गए । वही से दूसरे मार्ग से लौटने लगे । इस समय हम सीधे काँची जा रहे थे । काँची में शिवकाँची और वैष्णवकाँची दो विशाल मन्दिर

ह । दोनो के प्रागण और मन्दिरो के रूप अलग-अलग है । दक्षिण मे कॉंची तीर्थ बहुत प्रसिद्ध है । हम तो गाइड के पीछे-पीछे दौड रहे थे । न जाने चलने ओर कुछ-कुछ दौडने की शक्ति कैसे मिली ? ध्यान गाइड पर था और जो वह दिखा रहा था, हम देख रहे थे । पर्यटको को समझ मे आए, अग्रेजी और हिन्दी दोनो भाषाओं मे बोले जा रहा था । सब कुछ देखने के बाद चार बजे के आस पास साडियो के बाजार गए । खरीदी के लिए बस ने समय दिया । पर्यटको ने मनपसन्द साडियॉ खरीदी । पत्नी ने एक साडी खरीदी । उसे वह आज भी पहनती है । उसे दोनो बहुओ के लिए साडियाँ खरीदनी थी । इतन रुपये पास मे नही थे । हम लोग लौट गए । वहॉ से हम सीधे सायंकाल के ६ बजे तक राजीव गाधी के स्मृति-स्थल पर पेराम्बूर पहुँचे । राजीव गाधी की हत्या उसी स्थल पर हुई थी । आज वह पर्यटको के देखने का स्थल हो गया है । मद्रास महानगर से बाहर ही वह स्थान है । मद्रास के दक्षिणी छोर पर उसे कह सकते है । वहॉं से हम पुन अपने स्थल मद्रास सेंट्रल के बस अड्डे पर पहुँचे और लोकल द्वारा पल्लावरम् घर पर पहुँच गए । सबेरे नौ बजे से सायकाल मे सात बजे तक हम लोग पर्यटकों की बस में घूमते रहे । काफी थक गए थे ।

तिरुपति

मद्रास मे हमे तिरुपति जाना था । पत्नी ने कहा — 'कॉंची मे दो साड़ियॉ ओर खरीदनी है ।' अत दूसरे दिन पत्नी उत्तम के साथ पुन कॉंची गई और वाछित साडियॉ ले आई । उसके बाद में दूसरे दिन उत्तम ही हमे मद्रास सेट्रल ले गया। तिरुपति की सप्तगिरि ट्रेन में बैठा दिया । टिकट्ट भी ले आया । सब कुछ यथासमय हुआ । बीच मे जो खाली समय मिला, उसमें महावीर हमे मरीना बीच लेकर गया । दो घण्टे बीच पर गुजारे । चौपाटी जैसी भीड' मरीना बीच पर रहती है। पल्लावरम् मे महावीर मुझे अपनी दुकान पर भी ले गया । वह भी अलग से व्यवसाय करता है । महावीर औरंगाबाद पत्नी के साथ आया था ।

सप्तगिरि एक्स्प्रेस मद्रास और तिरुपति के बीच चलती है । सुविधाजनक है। सीटिग की व्यवस्था है । उसमे बर्थ नही है । वह दिन मे चलती है । चार-पॉच घण्टो की यात्रा है । हम लोग तिरुपति पहुँच गए ।

तिरुपति में हम सीधे डा. रामबाबू शर्मा के निवास स्थान पर गये । उन्होने अपना निजी बगला बनवा लिया था । यूनिवर्सिटी से चन्द्रगिरि मार्ग पर रेलवे गेट से बाहर एक ओर विद्यानगर है और दूसरी ओर ठीक उसके सामने की सोसाइटी

म जो कालोनी है उसमे ग्यारह नम्बर का बगला शर्माजी का हे . शहर से बहुत बाहर हे । कालोनी खुले मे है । और काफी बगले उस ओर बन गये है । घर पर मिल गये । वहीं पर ठहर गया । ऊपर की मंजिल पर गेस्ट के लिए कमरा बना हुआ है । उसीमे ठहर गये । दूसरे दिन पहले तो पहाड पर श्री वेकटेश्वर के दर्शन हेतु गए । गए और दर्शन करने के बाद लौट आए । पहले की अपेक्षा भीड काफी थी । अक्तूबर मास था । इस महीने मे भीड अपेक्षाकृत अधिक रहती है । पूरा एक दिन गया । सोचकर आया था कि यूनिवर्सिटी के सस्कृत विभाग मे जाऊँगा तथा ग्रथालय मे प्रकाशन विभाग मे पुस्तकें देखूगा । दूसरे दिन हिन्दी विभाग मे पहले गया । पुराने छात्र सभी प्राध्यापक, प्रोफेसर हो गए थे । उनमे डॉ दस्तगिरि रेड्डी, डॉ. टी. आर. शर्मा और डॉ शिवराम रेड्डी के नाम याद हे। सभी मिले उनमे से डॉ शिवराम रेड्डी को साथ लेकर ग्रथालय गया । प्रकाशन विभाग, ग्रथालय मे था । भाषा विज्ञान से सम्बन्धित तथा तेलुगु भाषा और साहित्य से सम्बन्धित पुस्तके खरीदी । उनमे श्री पंडित सी. पी ब्राउन की उपलब्ध सभी पुस्तकें खरीद ली । उनकी Literary Biography विशेष पुस्तक थी । उक्त पुस्तक मे काल्डवेल द्वारा सी पी ब्राउन पर लिखा हुआ सस्मरण भी छपा है। वास्तव मे डॉ जी एन रेड्डी (तेलुगु विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष) वाइस चासलर हो गए थे । उन्होंने सी. पी ब्राउन के कार्य को महत्त्वपूर्ण माना ओर सभी का प्रकाशन किया । बाद मे मैंने इन पुस्तको का उपयोग किया । जो लिखा है, वह पहले पत्रिकाओं में और बाद में पुस्तक में भी छपा है । एक पुस्तक — 'Historical Grammar of Telugu With Special Reference to Old Telugu 200 B C to 1000 A D' विशेष थी । इसके लेखक का नाम Konda Mahadev Shastry था । तेलुगु भाषा का परिचय देनेवाली और पुस्तकें भी खरीदी । वहाँ से सस्कृत विभाग मे गया । पूरा स्टाफ बदल गया था । सस्कृत भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करनेवाली एक पुस्तक खरीदी । संस्कृत विभाग से बाद में मै केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ में पहुँचा । वहाँ पर किसी से विशेष परिचय नही था । सब लोग नये थे । वहाँ के ग्रथालय में अपने विषय की पुस्तके देखता रहा । जो अच्छी लगी, उनके नाम, पते लिख लिए । उपलब्ध पुस्तके बाद मे खरीद ली। दिनभर काम करने के बाद वहाँ से सीधे नगर में आ गए । हमें सिकदराबाद लौटना था । आरक्षण हो गया था । नगर मे श्री शान्तिलालजी जैन के घर पर गए । वही पर भोजन किया । उन्होने हमें स्टेशन पहुँचाने की व्यवस्था कर दी । हम लोग दूसरे दिन सबेरे सिकदराबाद पहुँच गये ।

सिकदराबाद

सिकदगबाद तो बहुत बार गया हूँ । वहाँ पर रहा भी हूँ । किन्तु उस्मानिया विश्वविद्यालय बहुत दिनो के बाद मे गया । हिन्दी विभाग मे उस समय डॉ लीला ज्योति थीं । डॉ टी. मोहनसिंह आर्ट्स कालेज के प्रिसिपल हो गये थे । विभाग के सदस्यों से मिलकर डॉ रामकृष्ण रेड्डी से मिलने भाषा विज्ञान विभाग मे गया। डॉ रेड्डी उस समय तेलुगु विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार हो गए थे । उनकी पत्नी विभाग मे प्रोफेसर एव अध्यक्ष थी । विभाग मे एक मात्र सदस्य अरुणकुमार शर्मा मिले । उनसे बात करने से मालूम हुआ कि वे कल्पना के प्रधान सम्पादक और सस्कृत विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष **डॉ. आर्येन्द्र शर्मा** के पुत्र है । मै डॉ आर्येन्द्र शर्मा का कुछ विशेष परिचय चाहता था । बतलाया कि उनका निधन १९८८ ई मे हुआ । उनकी प्रसिद्ध पुस्तक का नाम 'A Basic Grammar of Modern Hindi' है । उसके दो सस्करण छप गए है । प्रथम सस्करण १९५८ ई में छपा । पुन १९७२ ई. मे दूसरा सस्करण छपा । पुस्तक का प्रकाशन Ministry of Education, Govt of India New Delhi से हुआ है । लौटकर फिर डॉ चक्रवर्ती, डॉ. भीमसेनजी निर्मल, डॉ बैजनाथ चतुर्वेदी से मिला हूँ । डॉ बैजनाथ चतुर्वेदी तो मेरे गुरु रहे है । किन्तु उनसे मै उन्मुक्त रूप मे बात करता रहा हूँ । वे औरगाबाद भी आए और विभाग मे मिलकर जाते थे । वृद्ध हो गए थे । पत्नी के साथ यात्रा करने लगे थे । **संकल्य** पत्रिका के सम्पादक थे । वे हैदराबाद हिन्दी अकादमी के अध्यक्ष थे ।

डॉ अरुणकुमार शर्मा से मिलना तो हुआ किन्तु **भाषा विज्ञान** पर उनसे विशेष चर्चा नही हुई । बाद मे १ अक्तूबर १९९९ ई. को उनसे बात करने के लिए गया तो विभाग मे मिले नही । मालूम हुआ कि कुछ दिन पूर्व अगस्त १९९९ ई में उनका निधन हो गया । घर का फोन नम्बर उन्होंने दिया था । फोन पर श्रीमतीजी से बात हुई । उन्होंने ही समाचार की पुष्टि की ।

तिरुपति मे डॉ. जनार्दनराव चेलेर मिले नहीं थे । वे हैदराबाद मे रहने लगे थे । उस समय वे मलकपेट के एस बी एच कालोनी मे रहने लगे थे ।

सिकंदराबाद से हम लोग १७ अक्तूबर १९९६ ई को सबेरे औरंगाबाद पहुँच गए ।

□ □

गोवा, धारवाड़, हम्पी (२६-१-१९९७ से ६-२-१९९७ ई.)

गोवा कभी गया नहीं था । डॉ. रोहिताश्व से हैदराबाद मे परिचय हो गया था । वह औरंगाबाद भी आकर गया । वह उस समय गोवा विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग का अध्यक्ष था । उसे मैंने पत्र लिख दिया था । वह डॉ. श्रीराम शर्मा का शिष्य है । १८ जनवरी १९९७ का उसका पत्र मिला । उसमे कैसे पहुँचना, वह सब लिख दिया था । तदनुसार मैंने २६ जनवरी का आरक्षण किया । गोवा एक्स्प्रेस नई दिल्ली से मनमाड, अहमदनगर होते हुए गोवा की ओर जाती है । तदनुसार हम दोनो बस द्वारा अहमदनगर पहुँच गए । वहाँ पर यथासमय गोवा एक्स्प्रेस मिल गई । पूरा दिन ट्रेन में ही गुजरा । रात्रि मे दो-ढाई बजे हम लोग लोढा उतरे । पूरी गाडी वहीं पर खाली होती है । धारवाड, हुबली के लिए दूसरी ट्रेन लोढा पर उसी समय मिल जाती है । बहुत से यात्री उस ट्रेन से निकल गये । जाडे के दिन थे । ठंड बहुत थी । कॉप रहे थे । रेलवे स्टेशन मे कुली की सहायता से बस स्टाप पर पहुँच गए । पणजी की बस वही पर मिल सकती थी। वहाँ पर यात्रियो के लिए कोई सुविधा नहीं थी । सामान्य स्टाप था । वही पर शेड के नीचे बैठ गए । सबेरे ६ बजे बस मिलनेवाली थी । दिल्ली से सैलानी आए हुए थे । वे भी वहाँ पर बस की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे । रात का अन्तिम प्रहर ठिठुरते हुए बीता । सबेरे बस मिली । ढाई-तीन घण्टे बस की यात्रा थी। बस घने जगल से गुजरती हुई ९ बजे तक पणजी के मुख्य बस अड्डे पर पहुँच गई। वहाँ पर यूनिवर्सिटी की बस की प्रतीक्षा करता रहा । यूनिवर्सिटी की पुलिया के पास हम लोग उतर गये । वहाँ पर यूनिवर्सिटी के एक सज्जन मिले । उन्हें बतलाया कि विभाग मे डॉ. रोहिताश्व हो तो भिजवाएँ । मैं यहाँ प्रतीक्षा कर रहा हूँ । डॉ. रोहिताश्व आ गए । वहाँ से हम लोग गेस्ट हाउस गए । वहाँ पर कमरा मिल गया । २७ जनवरी को २ बजे हम लोगों को कमरा मिला । तैयार होकर हम लोग विभाग मे पहुँचे । विभाग के सदस्यो के नाम याद नहीं है । मैंने डॉ. रोहिताश्व से कहा कि South Goa Town बस के दो टिकट मिल जाएँ तो हम एक दिन गोवा देख लेगे । टिकट २८ को दूसरे दिन मिल सकता था । अतः यात्रा का आरक्षण २९ जनवरी का किया । २७ जनवरी को सायंकाल मे हम लोग डोनपावले देखने गये । डोनपावले समुद्र के किनारे पर है । पानी गहरा है। बीच नही है । ऊँची पहाडी है । पहाडी से समुद्र का पानी टकराते रहता है । घूमने-फिरने का स्थल है । समुद्र के किनारे तक सडक बनी हुई है । बैठने के

लिए स्थान बन हुए ह । एक ओर ऊची पहाडी की चट्टाने और दूसरी ओर अथाह सागर है । सागर की लहरे चट्टानो को टकराती रहती है। उसे हम देख सकते है । इसी डोनपावले की एक पहाडी पर डॉ रोहिताश्व का आवास है । डॉ रोहिताश्व के निर्देशानुसार ही हम लोग डोनपावले पहुँचे थे । डोनपावले से लौटकर डॉ रोहिताश्व के घर पर जाना था । अधेरा होने लगा था । हम लोग पैदल ही मुख्य सडक पर आ गए । उस मार्ग से कुछ दूरी पर डोनपावले के मार्ग के समानान्तर दूसरा मार्ग था । डोनपावले का मार्ग ऊँचाई पर नहीं था । मुख्य सडक के नीचे उतरनेवाले मार्ग पर डोनपावले था । डॉ रोहिताश्व का घर ऊचाई पर था । हमे सीढ़ियो पर चढकर ऊपर जाना पडा । ऊपर चढ़ने में मै थक गया । फिर धीरे धीरे ढलान पर उतरना पडा । डॉ. रोहिताश्व घर पर अकेला ही था । मिल गया । अकेला ही रहता था । पत्नी हैदराबाद मे थी । बच्चे भी हैदराबाद मे थे । पत्नी हैदराबाद मे अध्यापिका थी । नौकरी — छोडकर आ नही सकती थी । उस समय डॉ. रोहिताश्व अपनी लड़की के लिए वर की खोज मे थे । उनसे बात हुई । वहाँ से हम लोग ढलान से पुन· ऊपर चढे और बाद में सीढियों से उतरकर मुख्य सडक पर पहुँच गए । अधेरा हो गया था । बस स्टैण्ड पर बस की प्रतीक्षा में थे । बहुत देर के बाद बस आई । अंधेरे मे पैरो के पास का पत्थर दिखलाई नहीं दिया । एकदम नीचे गिर गया । बाँए घुटने मे चोट लगी । खून बहने लगा । वैसे ही बसवालो ने मेरी सहायता की और मुझे बस मे बैठा दिया । हम लोग गेस्ट हाउस के निकट उतर गए । गेस्ट हाउस के कुछ और सदस्य भी उतर गये । मुझसे कहा कि गेस्ट हाउस में डॉक्टर है। डॉक्टर मिल गया । उसने जख्म की ड्रेसिंग की । रक्त का बहना बन्द हो गया । जख्म पर पावडर डाला और पाउडर की छोटी बोतल मुझे दे दी और कहा कि इससे जख्म ठीक हो जाएगी । और सचमुच दूसरे ही दिन ठीक हो गई ।

२८ जनवरी को विभाग मे गया । गोवा-दर्शन के दो टिकट मुझे मिल गये। डॉ रोहिताश्व को उसी दिन यात्रा पर निकलना था । अपने समय से वे चले गये । हिन्दी विभाग में उस समय डॉ रोहिताश्व के सहयोगी सदस्य डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र थे । उन्होंने ही गोवा-दर्शन का टिकट दिया था । उन्होनें बस कहाँ मिलेगी, यह बतला दिया था । विभाग से हम लोग पहले मराठी विभाग में गये । वहाँ पर श्रीधर रंगनाथ कुलकर्णी मिले । विभाग बडा था । वहाँ पर देर तक मराठी भाषा और साहित्य पर चर्चा हुई । उस विभाग मे मैंने कुछ पुस्तको के नाम लिख

लिए। १. **मराठी भाषा और गामतक बोली** — अ. का. प्रियोळकर (पुणे विद्यापीठ प्रकाशन) / २. Formation of Kokni Languages - By Dr. S. M. Katre। अ. का. प्रियोळकर की एक और पुस्तक का नाम बतलाया — **हिन्दुस्तानचे टोन दरवाजे**। उक्त पुस्तक के सम्बन्ध में कहा गया कि मलयालम लिपि, कन्नड लिपि और देवनागरी लिपि की जानकारी है। पुस्तक में पूर्वाग्रह अधिक है। विदेशी विचारधारा का समर्थन करनेवाली पुस्तक है। डॉ. ग. ब. ग्रामोपाध्ये की पुस्तक **भाषा विचार आणि मराठी भाषा** (व्हीनस प्रकाशन, पुणे) का नाम भी बतलाया। ग्रामोपाध्ये की पुस्तक उपलब्ध थी। औरंगाबाद लौटने पर मैंने ग्रामोपाध्ये की उक्त पुस्तक खरीद ली। प्रतिमा प्रकाशन, पुणे ने मुझे पुस्तक भेज दी। उस समय वहाँ पर वयोवृद्ध विद्वान् **भारद्वाज** थे। कहा कि उनसे मिलना ठीक होगा। वे उस समय ८६ वर्ष के थे। उनका पता बतलाया — डॉ. पांडुरंग पिसुर्लेकर रोड, कुडईकर नगर, पणजी, गोवा ४०३००१। सभी पुस्तकों के नाम मिले। उन पुस्तकों पर चर्चा भी हुई।

मराठी विभाग के बाद मे हम लोग कोंकणी विभाग मे गए। कोंकणी का स्वतंत्र विभाग गोवा विश्वविद्यालय मे था। उस समय उक्त विभाग मे **प्रोफेसर (डॉ.) ओलिवीन्यु गोमिश्** (Professor (Dr.) Olivinho Gomes) अध्यक्ष थे। विभाग मे मिल गये। उन्होंने कोंकणी भाषा मे पुस्तकें भी लिखी है। उनमे मैंने दो पुस्तकें खरीद ली। वे हैं — **कोंकणी सरस्पतिचो इतिहास** और दूसरी पुस्तक का नाम है **कोंकणी रामायण**। प्रथम पुस्तक कोंकणी साहित्य का इतिहास है। **कोंकणी रामायण** के रचयिता का नाम अज्ञात है। वह लोक मे प्रचलित श्रुति के माध्यम से प्रचलित रहा है। उसका लेखन सर्वप्रथम पोर्तुगीज लिपि मे हुआ। लिखनेवालो ने मूल पाण्डुलिपि मे लिखा है — अनामिक (कृष्णदास शामा आणि सांगाती ?)। इसका सपादन डॉ. गोमिश् ने किया है। सोलहवी शती से पूर्व की **रामायण** है। सोलहवों शती मे उसे सर्वप्रथम पोर्तुगीज लिपि मे लिखा गया है। उक्त मूल प्रति लिस्बन में है। डॉ. गोमिश् ने पोर्तुगीज लिपि को देवनागरी लिपि मे सपादित किया और स्वय प्रकाशित करवाया। लिप्यतरण के लिए गोमिश् लिस्बन गये थे। गोवा विश्वविद्यालय को **कोंकणी** मे **गोंय विद्यापीठ** कहा जाता है। पता है — ताळगाव तळपार, गोंय। **कोंकणी भाषा** महाराष्ट्र के कोंकण प्रदेश (पश्चिमी समुद्र तट) की भाषा है और गोवा कोंकण प्रदेश का अन्तिम छोर है। गोवा से दक्षिण में मैंगलोर है, जो कन्नड प्रदेश है। और दक्षिण मे कालिकट

और उससे आगे केरल प्रदेश है, वहाँ पर मलयालम भाषा है। मलयालम तमिल से जिस प्रकार जुडी है, वैसे ही कोकणी से मराठी जुडी है। कोकणी सीधी कन्नड से भी जुडी है। विशेष बात यह है कि पोर्तुगीजो ने कोकणी भाषा सीखी और उसे अपनी लिपि मे लिखना शुरू कर दिया। देवनागरी में बाद मे लिप्यंतरण हुआ है। भारत में प्रेस का आरम्भ गोवा से होता है और कोकणी की पुस्तके भारत की अन्य भाषाओ से पहले प्रकाशित हुई हैं। और कोकणी मे पुस्तके लिखनेवाले पहले सब क्रिश्चन रहे है। उनकी भाषाओ के उच्चारण ने कोकणी भाषा के उच्चारण को प्रभावित किया है। कोकणी के माध्यम से द्रविड और आर्य भाषाओ के मिश्रण तथा अलगाव को पहचाना जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से गोवा पोर्तुगीजो का रहा है, इसीलिए अंग्रेजी भाषा वहाँ पोर्तुगीज भाषा के बाद मे पहुँची है। यो गोवा की सस्कृति कोकणी भाषा से जुडी हुई है। मराठी का भौगोलिक प्रसार गोवा में होने पर भी उसे महाराष्ट्र में जोडने मे राजनीतिक दृष्टि से सफलता नही मिली। महाराष्ट्र के नक्शे मे गोवा को दिखलाया जाता है। मुंबई, नागपुर, पुणे और औरंगाबाद के साथ पणजी का उल्लेख इसी नाते किया जाता है और स्वय गोवा विश्वविद्यालय मे मराठी का समृद्ध विभाग है। दूसरे दिन हम लोग २९ जनवरी को सबेरे सबेरे यथासमय बस अड्डे पर पहुँच गए। बस मे गाइड था। वह हमे सब समझा रहा था। क्रम मे हमने कौन-कौन से स्थल देखे, अब याद नही है। कही पर स्थिरता से बैठकर या ठहर कर देखना नहीं हुआ। मन्दिर दिखलाए। चर्च दिखलाए। चर्चो की सख्या अधिक थी। मन्दिर भी उनसे कम नही होंगे किन्तु उनको सम्मिलित न किया गया हो। हम तो भारत भूमि का दर्शन कर रहे थे। पश्चिमी तट के दक्षिणी भाग को देख रहे थे। गोवा की ग्रामीण सस्कृति को समझाने के लिए एक कृत्रिम ग्राम तैयार किया गया था — **'Village Goa'** कहा गया। उस मे उस प्रदेश के विविध व्यवसाय करनेवाले मूर्त सजीव-सदृश्य प्रतीति करानेवाले व्यक्ति दिखलाए गए। पुरुष भी और स्त्रियाँ दिखलाए गए। गाँवो के मार्ग, पहाडी प्रभाव, सब कुछ देखा। पौधे भी दिखलाए। सब कुछ सुन्दर था। यो जगल से गुजरना, पहाडी देखना — अपने आप में आकर्षण के स्थल है। बस मे बैठकर देखने से ही मनोरजन हो जाता है। प्रकृति की गोद से दूर रहने के कारण नगरवासी इनका आनन्द नही ले सकते। गोवा — प्रकृति के भण्डार से भरपूर है। देखने मे इतने तल्लीन रहे कि गाइड की बाते सुनने की इच्छा नही रही। बात सुनने से तो अच्छा देखना रहा है। देखते

देखते हम लोगों ने समुद्र का तट दूर से देखा । मरीना बीच जैसा बीच नही था किन्तु बीच ही था । वहॉ से सीधे पणजी पहुँच गए और गेस्ट हाउस लौट आए । थक गए थे ।

गेस्ट हाउस से बाहर सबेरे शाम घूम फिर कर देखा है । गेस्ट हाउस के पीछे समुद्र है किन्तु गेस्ट हाउस पहाडी पर ऊंचा होने के कारण समुद्र दिखलाई नही देता । गेस्ट हाउस के पीछे घना जगल है । झाडी है । भीतर से समुद्र के किनारे तक कोई मार्ग नही है । गेस्ट हाउस के समानान्तर और कई बगले बने हुए है । सडक समुद्र के समानान्तर ढलान पर चलती है । बंगले पहाडी पर है। आगे बढो तो समुद्र के किनारे डोनपावलेवाला मार्ग मिलता है । गोवा का वही आकर्षक स्थल है । डोनपावले से आगे भी समुद्र है । बस अड्डे से पहले-पहले जहॉ टूरिस्ट की होटले है, उन होटलो के सामने फिर समुद्र दिखलाई देने लगता है । समुद्र दूर ही है किन्तु ढलान पर पहुँचने पर दिखलाई देता है । उतर कर घूमना चाहा किन्तु समय कहॉ ? ३० जनवरी को हमे लौटना था । तैयारी मे थे । वहॉ से धारवाड जाना था ।

धारवाड़

पणजी से बस द्वारा हम सीधे धारवाड गये । धारवाड़ मे हम लोग सीधे यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस मे गए । यूनिवर्सिटी को पहले ही गेस्ट हाउस मे कमरे के आरक्षण के लिए लिख दिया था । इसीलिए हमे एक कमरा मिल गया । वहॉ पर विभाग मे डॉ टी आर. भट्ट, डॉ शरेशचन्द्र चुलकीमठ, और डॉ. वन्दना थे । तीनो से अच्छा परिचय था । पहले डॉ चन्दूलाल दुबेजी थे । वे सेवानिवृत्त हो गए थे । बाद मे वहीं पर धारवाड मे ही दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास की कर्नाटक शाखा में काम करने लगे थे । वे मिले नही । इससे पहले आया था तब मिले थे । धारवाड, हुबली से निकट है । हुबली नगर धारवाड से बडा है । रेलवे का जक्शन भी हुबली है । हुबली और धारवाड दोनो के बीच स्थानीय बस सेवा उपलब्ध है । यूनिवर्सिटी में हुबली से भी छात्र बस द्वारा आते हैं । हुबली-धारवाड वस्तुत हैदराबाद-सिकदराबाद की तरह एक ही है । धारवाड में भी यूनिवर्सिटी नगर से बाहर है । आसपास खुला क्षेत्र है । यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस और प्रोफेसरो के बंगले पहाडी पर बने हुए है । चढाई है । नीचे उतरने पर यूनिवर्सिटी की सडकें है । आर्ट्स बिल्डिग अलग है । उसीमें हिन्दी विभाग है । कन्नड भाषा और साहित्य के लिए स्वतत्र बिल्डिग है । विभाग मे

गया । डॉ. टी आर. भट्ट के सहयोग से यूनिवर्सिटी के प्रकाशन विभाग से कुछ पुस्तके खरीदी । मुझे इतिहास विभाग के प्रोफेसर से मिलना था । विजयनगर साम्राज्य का इतिहास जानना चाहता था । तदर्थ सामग्री एकत्रित कर रहा था । डॉ श्रीनिवास रित्ती इतिहास विभाग मे रहे है । उस समय सेवानिवृत्त हो गए । उनके बगले पर गया । पुस्तको के नाम लिख लिए । विशेष पुस्तक जो देखने मे आई वह A Forgotten Empire थी । वह विजयनगर के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तक थी । Robert Sewell की लिखी हुई थी । उसका नाम पता सब लिख लिया। बाद में मैंने उक्त पुस्तक दिल्ली से मगवा ली । डॉ. बी. आर. गोपाल के पास बहुत सामग्री थी । वह मैने मेसूर में देखी थी । डॉ. श्रीनिवास रित्ती के ग्रथालय मे कृष्णदेवराय पर स्वतत्र पुस्तक थी । इसी तरह Source of Vijayanagar Hisotry - एस कृष्णास्वामी अयंगार की पुस्तक थी । मैने दो पुस्तकों का चयन किया और उनको उसी समय जीराक्स करवा लिया । सामग्री मिल गई । औरगाबाद मे इंग्लिश विभाग में डॉ. अमूर थे । उनमे अच्छा परिचय था । सेवानिवृत्त होने के बाद धारवाड में रहने लगे थे । डॉ. श्रीनिवास रित्ती के पडोस मे रहते थे । उस समय वे बैंगलौर गए हुए थे । उनका लडका बैगलौर में रहने लगा था । डॉ. बी. आर गोपाल (मैसूर मे) और डॉ श्रीनिवास रित्ती (धारवाड मे) — दोनों ने विजयनगर के इतिहास पर काफी जानकारी दी । वहीं पर मालूम हुआ कि भार्गवी शिवय्या ने कृष्णदेवराय पर स्वतत्र कार्य किया है । Ph.D. का शोध-प्रबन्ध लिखा है । हैदराबाद के एक विद्वान् का परिचय धारवाड में ही मिला । पता है — प्रो. बी. रामास्वामी, १६-२-७०१/७, आनन्द नगर, निव मलकपेट हैदराबाद ५०००३६ है । यह पता डॉ जी एस दीक्षित ने दिया था ।

धारवाड़ मे डॉ. टी. आर. भट्ट और डॉ. शरेशचन्द्र दोनों ने अपने बगले बना लिए थे । दोनों के घर पर गया । उनके यहाँ भोजन भी हुआ । दूसरे दिन कन्नड भवन मे गया । Linguistic और Literature — भाषा और साहित्य दोनो से सम्बन्धित भवन था । कृष्णदेवराय के साहित्यिक व्यक्तित्व और उनके लेखन से परिचय मिला । कृष्णदेवराय ने कन्नड और तेलुगु दोनो भाषाओं को प्रोत्साहन दिया है । तेलुगु मे स्वय लिखते थे । दरबार मे दोनो भाषाओ के विद्वान् और कवि थे । कृष्णदेवराय बाबर के समकालीन थे । बाबर जब भारत आया था तो उसे इस बात का ज्ञान था कि उसके समय में दो राजा बलवान है । दक्षिण भारत मे प्रथम क्रमांक पर, कृष्णदेवराय हैं और दूसरा नाम उत्तर भारत में राणा सग्रामसिंह

(राणा सागा) है । विजयनगर साम्राज्य ने मुगलो को दक्षिण म आने मे रोका हे । औरगजेब गोलकोण्डा तक ही पहुँचा था । बीजापुर और गोलकोण्डा से आगे मुगल बादशाह गए ही नही और बाद मे विदेशी आ गए । विजयनगर साम्राज्य पर हिन्दी मे पुस्तके नही है । मैने सामग्री तो एकत्रित की किन्तु राजनीतिक इतिहास लिख नही सका । भाषा और साहित्य पर आवश्यकतानुसार लिखा है। एक बार हम्पी गया था किन्तु उससे पूरी जानकारी नही मिली । धारवाड के बाद मे हम्पी जाने की योजना थी । हमारा आरक्षण हुबली से सिकदराबाद हो गया था । २ फरवरी १९९७ का आरक्षण था । हमें उसी गाडी से जाना था । इसीलिए विभाग से किसी को भेजकर सूचना दे दी थी कि बोर्डिंग होसपेट से करेगे । टिकट पर लिखवा लिया । दो दिन तक धारवाड मे रहने के बाद १ फरवरी १९९७ को हम लोग होसपेट चले गए । रात मे होसपेट मे होटल सुदर्शन मे ठहरे । दूसरे दिन २ फरवरी १९९७ को रात में दस बजे हमारी गाडी थी । सुदर्शन होटल के पास ही बडा टूरिस्ट होटल था । वहाँ पर रेस्टारट था । सबेरे तैयार होकर होटल में पहुँचे और दो टिकट टूरिस्ट बस के हम्पी के लिए खरीद लिए । वहाँ पर कई विदेशी पर्यटक ठहरे हुए थे । उस टूरिस्ट होटल मे विदेशी महिला के साथ भारतीय पुरुष दिखलाई दिया । पूछने पर पता चला कि डॉ इन्दुप्रकाश पाण्डेय हे । वे वहाँ पर अपनी जर्मन पत्नी के साथ मे थे । फ्राकफुर्ट के पास खालवाख मे रहते थे । अब भारत मे, गगादर्शन अपार्टमैण्टम्, डॉ साधुवेल हरिद्वार २४९ २१० मे रहते है । लौटकर पुन. हरिद्वार जानेवाले है । ऐसे कई लोग उस बस मे थे । बूढे लोगो की सख्या अधिक थी ।

होसपेट का अर्थ नया नगर है । कन्नड में होस का अर्थ नया ही है । मैंने अनुभव किया कि कन्नड भाषा मे हकार (ह्) का प्रचलन दक्षिण की अन्य भाषाओं की तुलना में अधिक है । इसी तरह गकार (ग्) भी अधिक है । पुराना नगर तो विजयनगर है, उसी को हम्पी कहा गया है । हम्पी मे विजयनगर की राजधानी के खण्डहर है । खण्डहर देखने ही हम लोग जा रहे थे । तुगभद्रा नदी के किनारे बसा हुआ नगर है । सोलहवीं-सत्रहवी शताब्दी के वे अवशेष है । यो इस नगरी का इतिहास रामायण के काल तक पहुँचता है । आधुनिक इतिहास भी तुगलक के काल से मिलता है । बलवान राज्य देवगिरि के बरबाद होने पर दूसरा प्रबल राज्य विजयनगर का रहा है । और इस राज्य ने पोर्तुगीजो से सामना किया है। अग्रेज तो बाद मे आए है ।

हम्पी

गाइड लोग पूरी जानकारी नही देते। बस द्वारा हम लोग हम्पी पहुँचे। गाइड लोग स्थानो के नाम बतलाते है। पर्यटक का ध्यान सुनने की अपेक्षा देखने की ओर अधिक रहता है। विशेष अध्ययन करनेवालों को रूक कर देखना अपेक्षित रहता है। किन्तु यह सभव नही होता। गाइड भी क्या करे ? मैं पहले जब हम्पी गया था। उस समय मैने पैदल गाइड किया था। वह दिन भर मेरे साथ घूमता रहा। उस समय के दृश्य मुझे अधिक याद है। बस पहले हम्पी के मुख्य मदिर की ओर जाती है। मन्दिर का प्रागण विशाल है। प्रवेशद्वार के सामने की सडक पर दोनो ओर बाजार है। बस स्टैण्ड है। हम्पी का मुख्य बस स्टैण्ड यही पर है। पहाडियो से घिरा हुआ मैदानी स्थल है। तुगभद्रा नदी उत्तर मे है। वह पश्चिम से पूर्व ओर मोड खाते हुए बहती है। नदी की दूसरी ओर के तट पर कुछ ही दूरी पर ऋष्यमूक पर्वत है। उसकी गुफाएँ भी है। पर्यटको को दूर से ही सब कुछ देखना है। यह ऋष्यमूक पर्वत वही है, जहाँ सुग्रीव रहता था। किष्किधा मे बलि का राज्य था। राम, सुग्रीव से ऋष्यमूक पर्वत पर मिले थे। हनुमान से भेट हुई थी। उसी ने दोस्ती करवाई। रामायण काल के अवशेष है। पर्वत माला है। बीच मे तुगभद्रा नदी बहती है। हम्पी वस्तुत नदी के किनारे-किनारे पश्चिम से पूर्व की ओर बसा हुआ है। होसपेट हम्पी का दक्षिणी छोर है। हम्पी समाप्त होने पर भी छ. सात किलोमीटर घूमकर होसपेट आना पडता है। तुगभद्रा का डैम बना हुआ है। बहुत विशाल है। वह होसपेट के पश्चिम मे है। जब हम बस मे लौटते है, तब उस डेम के पास बस रुकती है। नीचे उतर कर दूर से ही हम डैम देखते है। पुल पर से गुजरने की अनुमति नही मिलती। एक ओर सागर सदृश जल है और दूसरी ओर ढलान है। सडक पर से दूसरी ओर का बगीचा दिखलाई देता है। नीचे उतर कर घूमनेवाले घूम सकते है। सीढियाँ बनी हुई है। बस वहाँ ठहरती नही है। हरिद्वारवाले उसी डैम के पास उतर गए थे। उनके लिए बस रोकी गई। हम लोग बाद मे कमलापुरम् गये म्यूजियम आदि देखे और होसपेट लौट आए।

वस्तुत तुंगभद्रा नदी के तट पर पश्चिमी छोर पर मुख्य मन्दिर है। वहाँ देखने के लिए समय दिया जाता है। गाइड मन्दिर के भीतर ले जाता है और विशेष विशेष स्थल दिखलाता है। सूर्य की किरणे मन्दिर मे कैसे पहुँचती हे, उस स्थल को लोग बारी-बारी से देखते है। कई कक्ष बने हुए है। मन्दिर के

परकोटे के भीतर ही सब कुछ है । पूरा मन्दिर आधा घण्टे मे घूम कर देखा नही जा सकता । मन्दिर के परकोटे से बाहर तीनो ओर ऊँची पहाडी है और पहाडी पर जैनो के मन्दिरो के अवशेष है । वे स्थल दिखलाए नही जाते । मन्दिर का स्वरूप दक्षिण भारत के मन्दिरों जैसे है । उक्त मन्दिर से कुछ ही दूरी पर दक्षिण मे गणेशजी का देवालय है । उस देवालय के सामने मातग पर्वत है । ऋष्यमूक पर्वत नदी के उस पार है और मातंग पर्वत इस पार है । गणेश देवालय के निकट ही कृष्ण देवालय है । बालकृष्ण की छवि देखी जा सकती है । वही पर बडवीलिगम् है और उग्रनरसिह का रूप भी है । निकट-निकट सब मन्दिर क्रम से बने हुए है । कुछ नीचे उतर आएँ तो दक्षिण पूर्व मे वीरभद्र देवालय है । पाताल मन्दिर है । वहाँ से नीचे सीस्टर स्टोन है । पत्थर के आकारो को देखने से लगता है, दो बहने झुकी हुई हैं । प्राकृतिक आकार है । उसी को सीस्टर-स्टोन कहा गया है । बसवाले उसे दिखलाते नही । पहुँचनेवाले भागकर दूर से देख लेते है । पाताल मन्दिर भी सब लोग नहीं जाते । वहाँ कुण्ड हैं । मुख्य मन्दिर वीरभद्र देवालय ही है । उसे सब देखते है ।

नदी के किनारे-किनारे पूर्व की ओर राजतुलाद्वार है । तुलादान करते समय उस तुला का उपयोग किया जाता था । उक्त तुला पत्थर की बनी है । तुला दिखलाई जाती है । ठीक नदी के तट पर पुरन्धरदास का मडप बना हुआ है । वही पर बैठकर वह साधना करता था । तुलाद्वार से लौटो तो छोटे छोटे कई देवालय है । उनमे वराह देवालय, कोदण्डराम देवालय हैं । वराह देवालय और अच्युत देवालय के बीच में मुख्य बाजार के अवशेष है । उसे सूले बाजार कहा जाता है । हम्पी का प्राचीन बाजार वही है । उस बाजार से दक्षिण मे सीधे चले आने पर हम राजमहल की ओर बढते हैं । विजयनगर साम्राज्य के राजाओं का स्थान यही पर है । रानियो के आवास है, स्नानघर है । दरबार हैं । महल के सामने विशाल प्रांगण है । गजशाला है । घुडशाला है । गजशाला विशेष रूप से दिखलाई जाती है । रानियो का स्नानघर भी दिखलाया जाता है । कमल महल है, वाचटावर है । हजारी राम देवालय है । पूर्व की ओर जो मार्ग जाता है, उस ओर हम नही जाते । वह मार्ग कम्पिलिनगर की ओर जाता है । कम्पिली भी पहले राजधानी रही है । विजयनगर को हम्पी क्यों कहा जाता है ? समझ नहीं सका हूँ । आगरा के निकट जैसे फतेपुर सीकरी (अकबर की राजधानी) है, वैसे ही तुंगभद्रा के किनारे यह हम्पी है । रामायण काल मे यहाँ पम्पा सरोवर रहा है । अब वह सरोवर

नही रहा है । पम्पा का हो हम्पा ओर हम्पी नाम चला आ रहा हो । राजधानी का उन्नत रूप कृष्णदेवराय के समय मे ही था । तेलुगु और कन्नड दोनो भाषाओ का सगम स्थान भी यहाँ रहा है । कृष्णदेवराय तो स्वय तेलुगु का कवि था । उसके अष्ट दिग्गजो मे दोनो भाषाओ के विद्वान् रहे है । हम्पी को समृद्धि कृष्णदेवराय के समय में मिली । सोलहवी शताब्दी के प्रथम तीन दशाब्दियो मे (१५००-१५३० ई) वह था । किन्तु हम्पी स्थान के देवालय और वह विशाल मन्दिर चालुक्यो के समय तक के है । प्राचीन तो वह रामायण काल तक पहुँचनेवाला स्थान है। कोनसा भवन कब बना इसकी खोज आवश्यक है ।

हम लोग तो सब कुछ देखकर सोचते-विचारते होसपेट पहुँच गये । हमे गाडी पकडनी थी । सिकंदराबाद का डिब्बा गाडी मे सब से पीछे था । कुली ने हमे ठीक स्थान पर बैठा दिया । हम लोग दूसरे दिन सबेरे तीन फरवरी को सिकंदराबाद पहुँच गए । वहाँ पर मुझे मलकपेट मे प्रोफेसर रामास्वामी के पास जाना था । मलकपेट में ही मोतीलालजी मास्टर साहब रहते थे । उनके पुत्र का नाम महावीर था । सेवानिवृत्त होने के बाद वही पर रहने लगे थे । मोतीलालजी मास्टर साहब पुराने मलकपेट मे — आनन्द नगर — मे रहते थे । पहले उनसे मिला । बहुत प्रसन्न हुए । चक्रवर्ती का घर भी वहाँ से निकट सैदावाद-कूर्मगुडा में था । उससे मिलकर फिर निव मलकपेट मे प्रो रामास्वामी से मिलने गया । गलियों मे भटकने के बाद मकान मिल गया । वृद्ध ने स्वागत किया । बात की । मैंने धारवाड का सदर्भ दिया । उन्हे सब याद था । उनके पास बैठकर काम करे तो काफी जानकारी मिल सकती है । इम समय उन्होंने काम करना छोड दिया था । भोजन करने के लिए विवश किया । व्यवहार सद्भावपूर्ण था । बाद मे उन्होने औरंगाबाद के पते पर पत्र भी लिखा ।

मैंने अनुभव किया कि दक्षिण भारत के इतिहास पर तेलुगु तथा कन्नड भाषाओ मे विपुल सामग्री उपलब्ध है । मैं तो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से कुछ जान सका हूँ । हिन्दी मे यह सब लिखा हुआ नहीं है । काम बहुत बाकी है । दूसरे दिन पुन चतुर्वेदीजी के पास गया । अगिका और वज्जिका बोलियो की पुस्तके दिखलाई। वे सब खरीद ली । किसान पुत्र की आत्मकथा उन दिनो छप रही थी । चक्रवर्ती उस समय वह देख रहा था । बाद मे उन्होंने वह पुस्तक मुझे भेज दी ।

यथासमय सब से मिलने के बाद ६ फरवरी को सबेरे औरगाबाद पहुँच गये।

☐ ☐

भुवनेश्वर (१-१०-१९९८ से ११-१०-१९९८)

दिल्ली मे डॉ. रमाकान्त रथ से साहित्य अकादमी मे मिलना हुआ। डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी सेवानिवृत्त हो चुके थे। उडिया भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् है। वे उस समय उपाध्यक्ष थे। कार्यालय मे स्वागत-कक्ष मे पूछने पर कहा कि डॉ रमाकान्त रथ कार्यालय मे हैं, मिल लीजिए। भीतर गया। बात हुई। उडिया साहित्य और भाषा के सम्बन्ध मे जानना चाहता था। भुवनेश्वर जाने की इच्छा व्यक्त की। पूछा कि वहाँ पर किस-किस से मिले और क्या क्या जानकारी कहाँ-कहाँ मिलेगी। डॉ रमाकान्त रथ ने अपने भुवनेश्वर के आवास का पता दिया — डॉ रमाकान्त रथ, ए-५०, खारवेला नगर, भुवनेश्वर ७५१ ००१। इसी तरह उन्होंने ओरिसा साहित्य अकादमी के सेक्रेटरी का पता दिया। वे श्री आर के मिश्रा है और म्यूजियम की बिल्डिंग में मिल सकते हैं। श्री शकरलाल पुरोहित का पता दिया और कहा कि उडिया साहित्य की कुछ रचनाओ का उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया है। उडिया में जगन्नाथदास के भागवत के सम्बन्ध में कुछ बतलाया। मायाधर मानसिह की 'History of Oriya Literature' पुस्तक का उल्लेख किया। डॉ हरेकृष्ण मेहताब की पुस्तक 'History of Oriya' का भी परिचय दिया। भर्तृहरि महताब का पता भी दिया, जो उस समय 'प्रजातत्र' के सम्पादक रहे है, प्रजातत्र प्रेस, कटक मे रहते है। यो उन्होंने सक्षेप मे सामान्य परिचय दिया। इससे ही मैंने भुवनेश्वर जाने का निर्णय किया।

यह मुझे ठीक से याद नहीं कि डॉ. सुधाशु कुमार नायक से सम्पर्क कैसे हुआ। मैं सोलहवी शताब्दी के उडिया साहित्य पर आलेख चाहता था। इस नाते मे पत्र-व्यवहार हुआ। उन्होंने आलेख भेजा, जो ग्रंथ मे छप रहा है। भुवनेश्वर जाने से पहले मैंने अपनी यात्रा की योजना से उन्हे अवगत किया। तदनुसार आरक्षण किया। कोणार्क एक्सप्रेस सिकदराबाद से सीधे भुवनेश्वर जाती है। उसीसे आरक्षण किया। १ अक्तूबर १९९८ ई. को हम दोनों ने औरगाबाद छोड दिया। २ अक्तूबर को सिकदराबाद पर कोणार्क एक्सप्रेस यथासमय मिल गई। लम्बी यात्रा है। ३ अक्तूबर को ठीक समय पर डॉ सुधाशु कुमार नायक स्टेशन पर हमारे डिब्बे के पास उपस्थित मिले। उन्होंने हमारे लिए होटल मे कमरा बुक कर दिया था। वे हमें होटल में ले गए। पहले तो हमें कोणार्क तथा जगन्नाथपुरी जाना था। तदर्थ उन्होंने हमारा बस का आरक्षण करवा दिया। पहले दिन तो हम कहीं नही जा सके। यात्रा की थकान भी थी। दूसरे दिन सुधाशु कुमार ने हमें निश्चित

बस मे बैठा दिया । उडीसा की यात्रा इससे पहले भी १९५५ ई दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे की थी । उस समय मैं बी ए. का छात्र था । हमारे भूगोल के प्रोफेसर डॉ बैजनाथ चतुर्वेदी थे । उस समय हम लोग कटक मे ठहरे थे । कटक ही प्राचीन नगरी है और आज भी कटक को ही प्रसिद्धि प्राप्त है । भुवनेश्वर तो मन्दिरों का शहर है और आसपास की पहाडियो मे प्राचीन काल के शिलालेख है । मन्दिर तो है ही । कटक से चतुर्वेदीजी हमें मन्दिर दिखलाने भुवनेश्वर ले आए थे । किन्तु आज तो भुवनेश्वर अधिक प्रसिद्ध हो गया है । कटक और भुवनेश्वर मे अधिक दूरी नही है । दोनो नगर वैसे ही जुड़े हुए हैं, जैसे धारवाड़ और हुबली जुडे हुए है । इस बार कटक जाने की इच्छा थी किन्तु जा नहीं सके। एक दिन कोणार्क और जगन्नाथदास का मंदिर (पुरी) देखने मे गया । हम लोग जैसे ही भुवनेश्वर से बाहर निकले, पहले कोणार्क मन्दिर देखने गए । कोणार्क का मन्दिर सूर्य का मन्दिर है । रथ के पहिए हैं । विशाल आकार के पहिए है। सूर्य सबेरे पूर्व में उदित होता है और पश्चिम की ओर रथ पर बैठकर यात्रा करता है । उस परिकल्पना को विशाल आकार मे परिणत किया गया है । मन्दिर का प्रागण विशाल है । क्षेत्र व्यापक है । पर्यटकों की भीड रहती है । हमे एक घण्टे का समय दिया गया था । घूम फिर कर आसपास का क्षेत्र भी देखा । मन्दिर के प्रागण से लगकर बाजार है । कोणार्क के मन्दिर की प्रतिकृतियाँ अलग अलग रूपों मे मिलती है । समुद्र से प्राप्त सीपियों और शखो के अलग-अलग आकार के खिलौने और मालाएँ तथा और भी कई वस्तुएँ पर्यटको को आकर्षित करने के लिए दुकानों पर रखी हुई है । जिनकी दुकाने नही है, वे लोग भी सडक के किनारे अपनी विक्रय की वस्तुएँ फैलाकर बैठे हुए है । हम लोग तो जल्दी-जल्दी देखकर बस मे आकर बैठ गए । वहाँ से सीधे पुरी गये । पुरी में मन्दिर देखने के लिए और पुन पुरी की बीच (समुद्र का किनारा) देखने के लिए काफी समय दिया जाता है । मन्दिर के सामने की सड़क बहुत चौडी है । उसी सडक से जगन्नाथजी का रथ चलता है । प्रवेश द्वार पर भीड़ रहती है । हमारा गाइड साथ मे था । वह हमे मन्दिर के भीतर ले गया । पुरोहितों का दल बैठा रहता है । दैनिक दिनचर्या को देखनेवाले तथा पूजा-पाठ का विधि-विधान वे सब करते है । मन्दिर विशाल है । उसका शिल्प प्राचीन है । लकडी का काम अधिक है। दक्षिण के मन्दिरों की तरह पत्थरो का काम नहीं है । मूल विग्रह भी लकडी के बने हुए है । भीतर बडा मडप है । उसीमे से जाना पडता है । मंडप के सामने

के विशाल खुले कक्ष मे पुरोहित बैठे रहत है । हमने नियमानुसार दूर से ही दर्शन किया । वहाँ से हम सब लोग पैदल ही समुद्र तट पर गए । समुद्र बहुत निकट है । चौपाटी के बीच की तरह समुद्र का विस्तार है । रेती का मैदान है । उसे साफ रखने का प्रयत्न होता है फिर भी यात्रियों की भीड के कारण गदगी फैल जाती है । नियमित व्यवस्था नहीं है । वहॉ बैठना और समुद्र की तरगो को देखना सुखद है । बगाल की खाडी है, वह । वहॉ से लौटकर हम पुन भुवनेश्वर चले। चिलका झील हम नही गये । जानेवाले पर्यटक चिलका झील जाते है । विशाल झील है । वह भी पर्यटको का आकर्षक स्थल है । लौटते समय भुवनेश्वर आने से कुछ पहले मार्किट है । ओडिसा की हस्तकलाओ के वस्त्र वहॉ पर मिलते हे । पर्यटको को खरीदी के लिए समय दिया जाता है । वहॉ पर कुछ छत्रियॉ और हैण्ड बॅगो की खरीदी की । लौट गए ।

दूसरे दिन सुधाशु कुमार नायक सबेरे सबेरे पहुँच गये । उन्होंने हमारे लिए टैक्सी की व्यवस्था कर दी । दिन भर टैक्सी हमारे साथ रहेगी और भुवनेश्वर नगर मात्र की यह यात्रा होगी । हमें नगर से बाहर जाना नहीं था । फिर दिन भर स्वय सुधांशु कुमार नायक हमारे साथ में थे । टैक्सी आई । उसमे शकरलाल पुरोहित भी आए । शंकरलाल पुरोहित का परिचय मुझे दिल्ली मे रमाकान्त रथ ने दिया था । उन्होंने उडिया साहित्य की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया है । अनुवादक के रूप मे उनकी ख्याति है । क्रम से हम लोग कहॉ-कहॉ गए । यह बतलाना मुश्किल हैं । जो स्मरण है, वह लिख रहा हूँ । पहले तो किसी होटल में गए। चाय-काफी ली । उसके बाद हम लोग सभवत नदन-कानन गये । उससे पहले कुछ और देखा हो तो स्मरण नही । नंदन-कानन का क्षेत्र बहुत बडा । राष्ट्रीय स्तर का है । उसमे वन्य प्राणियो के सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था है । पैदल घूम कर ही देखना पडता है । कुछ प्राणियो को देखा । विशेष रूप से सफेद बाघ देखे । उनके लिए खुली जगह है । विचरण करते हैं । चारो ओर से विशाल बाड लगी हुई है । दिखलाई देते है । वह कतार लम्बी है । हम लोग जा नही सके । पूरा नदन-कानन घूम कर देखो तो एक दिन भी काफी नहीं होगा । हम तो दो घण्टे मे कितना देख सकेगे ? दूसरे मार्ग से लौटते समय पेड-पौधे देखते आए । वहॉ के रमणीय स्थल तालाब के किनारे पहुँच कर वहॉ पर्यटकों को बैठने के लिए आसन बने हुए है, वही बैठ गए । बहुत ही रमणीय स्थल है । सामने पहाड़ी के दूसरे सिरे तक पानी का विस्तार है । वहॉ पर रस्सी का पुल बना

हुआ है । झूले मे बैठकर लोग तालाब के दूसरे सिरे तक जाते है, वहाँ हम गए नही । कुछ देर बेठकर निहारने की इच्छा रही । वही पर देखते रहे । इसीमे दोपहर हो गई । सुधाशु कुमार हमें वहाँ से भुवनेश्वर के मन्दिर देखने ले गए । एक ही स्थान पर विविध मन्दिर है । उन मन्दिरो को देखने के लिए लोग बहुत पहले कटक से आते रहे है । अब तो भुवनेश्वर राजधानी हे । पर्यटकों की बसे मन्दिरो तक आज भी आती है । कोणार्क में तो मात्र विशाल सूर्य का मन्दिर है किन्तु भुवनेश्वर तो मन्दिरो का शहर है । मन्दिर बहुत प्राचीन है । उनका शिल्प भी विशेष है । शिखर नुकीले नही है । अपितु वृत्ताकार मे है । वृत्ताकार शिखरोवाले मन्दिर भुवनेश्वर में ही है । ऊँचे-ऊँचे है । एक ही प्रकार के शिल्पों के मन्दिर क्रम से पास-पास बने हुए है । प्राचीन धरोहर है । इसीलिए देखनेवाले पर्यटक यही पर पहुँचते है । मन्दिरों का चक्कर काटते, घूम कर देखते-देखते काफी समय बीत गया । उन मन्दिरो के निकट की गली मे डॉ. सुधाशु कुमार का आवास था । वे हमे अपने घर ले गए । भोजन की पूर्ण व्यवस्था थी । हमने भोजन किया ।

अनन्तर डॉ. सुधाशु कुमार नायक हमें म्यूजियम ले गए । उसका उल्लेख डॉ रमाकान्त रथ ने किया था । ओडिसा साहित्य अकादमी के सेक्रेटरी श्री आर के मिश्री वही पर रहते थे । हम लोग तो म्यूजियम देखते रहे । किसी से मिलना नही हुआ । एक ओर से प्रवेश और दूसरी ओर से बाहर निकलने की व्यवस्था । ओडिआ सस्कृति को दर्शानेवाली विविध वस्तुएँ, अलग-अलग कक्षों मे थी । उन कक्षो मे प्रवेश का द्वार अलग और बाहर निकलने का द्वार अलग । पूरी प्रदर्शनी देखना हमारे लिए सभव नही था । ऊपर की मजिल पर गए । कुछ कक्षो को ध्यान से देखा । कलाओ के विविध नमूने प्रदर्शित थे । मुझे कुछ पुस्तके खरीदनी थी । पत्नी को घूम कर देखने कहा । मै नीचे आ गया और म्यूजियम के प्रकाशन के विक्रयवाले कक्ष मे पहुँच गया । दस-बारह पुस्तकें जो मुझे पसद आई, खरीद ली । बौद्ध संस्कृति, प्राचीन इतिहास, भाषा और साहित्य से सम्बन्धित पुस्तके जो भी उपलब्ध थीं, वे सब ले लीं । उनमें सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की पुस्तक भी थी । सब पुस्तको के नाम नही लिख रहा हूँ ।

पुस्तकें खरीदकर बाहर निकलते-निकलते काफी समय हो गया । उसके बाद सुधाशु कुमार नायक भुवनेश्वर के निकट की गुफाओ को देखने ले गए । वहाँ पर शिलालेख भी थे । श्री शकरलाल पुरोहित सभवत भोजन के बाद चले गए

थे म्यूज़ियम देखने हमारे साथ मे नही थे । हम लोग गुफाओ को देखने के लिए पहाडी की तलहटी पर ठहरे । बस स्टैण्ड वहीं पर था । हमे पहाडी चढना था। अजता की गुफाएँ देखने के लिए भी पहाडी पर चढना पडता है । किन्तु यहाँ पर ऊंचाई अधिक — थी । जैसे-तैसे ऊपर चढ गए । गुफाएँ बडी-बडी थी । उनकी गहराई थी और चौडाई भी । मनुष्य आसानी मे गुफाओ मे घूम फिर सकता है। गुफाएँ बौद्ध काल के अवशेष थे । भिक्षु वहाँ ठहरते थे । गुफाएँ क्रम से ऊपर से नीचे तक थी । जाने के लिए सीढियाँ थीं । गुफाएँ फैली हुई थी । एक दूसरे से लगकर नहीं थी । गुफाएँ देखते-देखते हम नीचे उतर आए । ऊपर से हमे सामने की ऊँची पहाडी दिखलाई दे रही थी । वहाँ कोई हिन्दुओ का तीर्थ बना हुआ है । उस ओर जानेवालो की सख्या अधिक हो । इसे ओर तो प्राचीन इतिहास के समझनेवाले लोग और पर्यटक अधिक आते है । स्थानीय लोग उस पहाडी पर के मन्दिर में जाते हों । हम लोग उस पहाडी पर नहीं गए । नीचे सडक पर आने से पूर्व रास्ते मे कुछ ऊँचाई पर सडक थी । उसके किनारे शिलालेख थे । पुरातत्त्व विभाग ने उन अभिलेखो के प्रदर्शन की व्यवस्था की थी । ब्राह्मी लिपि में अशोककालीन अभिलेख थे । क्रम से लगे हुए थे । देखकर हम नीचे के मार्ग पर चले आए । वहाँ हमें बतलाया गया कि पुरी का मार्ग कुछ ही दूरी पर है । उस मार्ग पर तीन चार किलोमीटर पर वह मार्किट हो जहाँ हमने कुछ हस्तकलाओ की वस्तुएँ खरीदी थी । पत्नी को मालूम हुआ तो कहा कि उस मार्किट तक चलना है । कुछ खरीदना है । पत्नी के आग्रह को टैक्सी ड्राइवर मान गया । वह हमें उस मार्किट तक ले गया । मैं तो बैठा रहा । पत्नी ने कुछ आवश्यक वस्तुएँ बच्चो के लिए खरीदी । वहाँ से हम लोग सीधे होटल पर पहुँच गए । सायकाल के सात बज गए थे ।

दूसरे दिन भुवनेश्वर विश्वविद्यालय देखने जाना था । वहाँ से सुधाशु कुमार नायक के कालेज मे पहुँचना था । हिन्दी का समृद्ध, हिन्दी विभाग उसी कॉलेज मे था । वहाँ पर सुधांशु कुमार मिलनेवाले थे और फिर उनके मार्गदर्शन मे आगे का कार्यक्रम था । हम लोग सबेरे सबेरे बस से यूनिवर्सिटी के स्टाप पर उतर गए । उक्त विश्वविद्यालय नगर से बाहर था । हमें सडक लाघ कर विश्वविद्यालय के क्षेत्र में प्रवेश करना पडा । सामने जो भवन दिखलाई दिया । हम लोग उसी मे गए । पता चला कि इतिहास विभाग है । संभवत उस दिन विश्वविद्यालय को छुट्टी थी । छात्रो की भीड नही थी । प्रोफेसर गण अपने-अपने कक्ष मे काम

कर रहे थे । इतिहास विभाग, ऊपर की मंजिल पर था । प्रोफेसर साहब मिल गये । अकेले काम कर रहे थे । हमारा स्वागत किया । बात की । विभाग का परिचय दिया । हिन्दी विभाग विश्वविद्यालय मे नही था । उन्होने अपने कुछ आलेखो की अनुमुद्रित प्रतियॉ दी और क्षेत्र का परिचय दिया । मैंने प्रमाण-पत्र चाहा तो स्वय टाईप करके प्रमाण-पत्र दिया । इतिहास मे मेरी अभिरुचि थी । वहीं बैठ गया । प्रोफेसर साहब ने काफी मगवाई । उसके बाद हम लोग वहॉ से नीचे आए। दूर-दूर तक अलग-अलग विभागो के भवन बने हुए थे । किसी से परिचय नही था । इसीलिए जो कुछ दूर मे देख सका, वह देख लिया और लौट गया । डॉ सुधाशु कुमार नायक का कालेज वहॉ से निकट था । उपलब्ध वाहन से हम लोग यथासमय कालेज पहुँच गए । कुछ छात्र पहुँच गए थे । डॉ नायक की व्यवस्था थी । एम ए की कक्षाऍ वही पर होती थी । छात्र दूसरे कालेजो से आते हो। वह तो महिला महाविद्यालय था । एक घण्टे का कार्यक्रम हुआ । छात्रों के सामने व्याख्यान दिया । संख्या अधिक नहीं थी । कुछ छात्र और छात्राऍ विशेष अभिरुचि रखनेवाले भी थे । उडिया विभाग की महिला मिली । वह हिन्दी भाषा मे अभिरुचि रखती थीं । उनकी पुस्तको का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । नाम है — **'प्रतिभा शतपथी'** । कार्यक्रम समाप्त होने के बाद हमे अपने आवास पर ले गई । मारुति कार से हम लोग गए । स्वय ड्राइव करती थीं । फ्लैट में रहती थी । हम सब उसकी बैठकवाले कक्ष मे गए । लिखने-पढने का शौक रहा है। अपनी एक पुस्तक **'शबरी'** भेट में दी । उसका हिन्दी अनुवाद श्रीनिवास उद्‌गाता ने किया है । प्रकाशन दिल्ली से, वाणी प्रकाशन से १९९६ ई मे हुआ है । एक ओर हिन्दी मे अनूदित कृति **'समय नहीं हैं'** । इसका प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली से हुआ है । कई पुरस्कार मिले हैं । उनके साहित्यिक जीवन का परिचय मिला । उस समय वह, राज्य सरकार के शिक्षा विभाग मे उडिया भाषा और साहित्य के रीडर पद पर कार्यरत थीं । उसके बाद हम लोग लौट रहे थे । पत्नी ने कुछ छात्राओ से बात की थी और भुवनेश्वर का बाजार देखने की इच्छा व्यक्त की । वह छात्रा सभवत वहॉ से लौटते समय मिलीं । उसे लेकर पत्नी तो मार्किट चली गई । मै साथ में नही था । फिर हम लोग मिल गए । भुवनेश्वर का वस्त्रोद्योग प्रसिद्ध है । पत्नी ने सभवत कुछ वस्त्र खरीद लिए । सायंकाल का समय नगर घूमने मे गया । दूसरे दिन ८ अक्तूबर को डॉ. सुधांशु कुमार हिन्दी विभाग के सेवानिवृत्त प्रोफेसर डॉ तारिणी चरणदास 'चिदानंद' के आवास पर ले गए । वे

कटक के रेवेशा कालेज मे हिन्दी के प्रोफेसर थे । इस समय भुवनेश्वर मे रहने लगे थे । उस समय लगभग ७० वर्ष के थे । BHU के छात्र थे । चिदानद उपनाम से उसी समय मे लिखना आरम्भ किया । उनकी कई पुस्तके प्रकाशित हुई है। उस समय उन्होंने अपनी एक पुस्तक 'उडिया साहित्य की उपलब्धियाँ' भेट मे दी। हमारी यह भेट ८ अक्तूबर को हुई । घूमने-घामने मे थक गए थे । स्थल तो बहुत थे । घण्टो बैठकर काम किया जा सकता है । तीन-चार दिन मे झलक मात्र मिलती है । किसी के साथ बैठकर बात पूरी नही होती । पत्नी अपना समय निकाल कर जो खरीदना होता खरीद लेती । उसके लिए मुझे फिर मार्किट जाना पडा । देख लिया । भुवनेश्वर एकदम नया बसाया नगर हुआ है । प्राचीन अवशेष नगर के बाहर है । और मन्दिरो के क्षेत्र मे है । सडके चौडी-चौडी हैं । निर्माण का कार्य जारी है ।

दूसरे दिन ९ अक्तूबर १९९८ को हमे लौटना था । हमारा आरक्षण था। सुधाशु कुमार नायक यथासमय पहुँच गए । हमे रेलवे स्टेशन ले गए । गाडी कुछ विलम्ब से आनेवाली थी । घण्टा भर बैठकर बातें करते रहे । बहुत परिश्रमी है। हमे गाडी में बैठाकर, गाड़ी छूटने तक खडे रहे । हम लौट रहे थे । १० को सबेरे सिकंदराबाद पहुँच गए । वहाँ से उसी दिन सायकाल की ट्रेन से औरगाबाद लौट गए । ११ अक्तूबर को सबेरे हम अपने घर पर थे ।

□ □

भोपाल-सांची-उज्जैन १५-३-१९९९ से २२-३-१९९९

भोपाल से मेरा कोई विशेष सम्पर्क नही था । वहाँ के किसी साहित्यकार से मिलना भी नही हुआ । गोविद मिश्र को पहचानता था । उनसे पहली बार भेट दिल्ली मे ही हुई । प. काशीरामजी शर्मा के साथ वे भी काम करते थे और उनका कार्यालय हौज खास मे था । केन्द्रीय सस्थान का कार्यालय भी हौज खास मे था । गोविद मिश्र अपनी कार ले आते और पडित काशीरामजी शर्मा को साथ मे लेकर कार्यालय जाते । गोविद मिश्र से विशेष बातचीत नही हुई थी । किन्तु बाद में गोविद मिश्र इनकमटैक्स ऑफिस में बम्बई पहुँच गए । उन्होने पूना मे १९९० ई मे **वि. श. पारगांवकर की कहानियों का अनुवाद** पुस्तक का विमोचन किया । बाद मे औरगाबाद भी, विभाग मे आते रहे है । एक दिन सबेरे-सबेरे घर पर भी पहुँच गये । घर के सामने की रोड पर अशोक होटल है । उसीमे ठहरे थे । बातचीत में उन्मुक्त स्वभाव के है । मेरे साथ औरगाबाद मे सबेरे के

मार्निंग वाक के समय मे भी साथ मे थे । उनसे परिचय तो था किन्तु भोपाल का पता मेरे पास नहीं था । सम्पर्क नही हो सका । इस बीच **'आकलन'** के सम्पादक राजुरकर 'राज' से सम्पर्क हुआ । उन्होंने मेरी पुस्तक **'निपट निरंजन की बानी'** की समीक्षा 'आकलन' मे छापी । बाद मे 'अमृता प्रीतम की डायरी' की समीक्षा भी छापी । पत्र-व्यवहार उन्ही से किया । उन्होंने पत्रों के उत्तर दिये और फोन पर बात भी की । भोपाल मे वे मेरी व्यवस्था करेंगे, इससे आश्वस्त होने के बाद मैंने भोपाल जाने का निर्णय किया ।

इस समय तक सचखण्ड (नान्देड-अमृतसर) एक्स्प्रेस चलने लगी थी । भोपाल पहुँचने मे बारह घण्टे लगते है । दिन मे दोपहर मे गाडी औरंगाबाद मे मिलती है और रात में बारह बजे के बाद के मिनटो मे पहुँचती है । वही गाडी दूसरे दिन दोपहर मे नई दिल्ली पहुँचती है । औरगाबाद से भोपाल को बारह घण्टे लगते है और भोपाल से आगे नई दिल्ली को पुन बारह घण्टे लगते है । भोपाल औरंगाबाद और नई दिल्ली के ठीक बीच मे है ।

राजुरकर राज ने पत्र लिख दिया । होटल ट्विकल मे मेरी व्यवस्था कर दी थी । गाडी स्टेशन पर भेज दी थी । ड्राइवर को ठीक से समझा दिया था । 'परिचय' फोल्डर पर फोटो था । उसने देख लिया था । १५ मार्च को दोपहर मे प्रस्थान किया और अर्धरात्रि मे १ मार्च को भोपाल पहुँच गये । सोना सभव नही था। दादरा चढकर आगे बढ रहे थे, वहीं पर ड्राइवर ने रोक दिया । हमें गाडी पर ले गया । ट्विकल होटल पहुँचा दिया । राजूरकर राज स्वय आते किन्तु वे कुछ अस्वस्थ थे, इसीलिए नहीं आ सके । दूसरे दिन सबेरे गाडी फिर आ गई । हम लोग राजुरकर 'राज' के घर पर पहुँच गए । **'आकलन'** के कारण उनसे सम्पर्क होने पर अपना परिचय ५ अक्तूबर १९९३ ई के पत्र में दिया था । पत्र प्रस्तुत है —

सा. राजुरकर 'राज'
सम्पादक/प्रकाशक, आकलन

२/७, जूनियर एम.आय.जी
गीताजलि कॉम्प्लेक्स,
भोपाल-४६२२०३
दिनाक ५-१०-१९९३

आदरणीय श्री बोरा सा !

आपका खत मिला । आपने पीठ थपथपाई 'आकलन' के लिए, अच्छा लगा । उत्साह बढ जाता है मेरा इस तरह ।

आपने अच्छी-खासी पत्रिकाओ को बन्द होते देखे । लघु पत्रिकाओ के भविष्य पर चिन्ता व्यक्त की है, वाजिब है , परन्तु यहाँ मै यह बात कहना जरूरी समझता हूँ, कि वे बन्द होने वाली पत्रिकाएँ धन और प्रतिष्ठा के सन्दर्भ मे प्रतिबद्ध होती है, जबकि लघुपत्रिकाओ की प्रतिबद्धता रचनात्मक होती है । कोई भी लघुपत्रिका, जो व्यक्तिगत स्तर पर प्रकाशित हो रही है, बन्द नही हो सकती, जब तक पत्रिका प्रकाशक की साँस बन्द न हो जाय ।

हम पति-पत्नी नौकरीशुदा है । हमारे बजट मे जैसे तेल, शक्कर और बिटिया का खर्च होता है, वैसे ही एक मद 'आकलन' भी है । हमारी कोई संस्था नही है, न ही कोई ट्रस्ट है, जो हानि-लाभ का हिसाब हमसे माँगे । न सही अधिक पृष्ठों की, ओर चिकने कागज पर इसे निकाल सके, पर यह अँजुरी भर सामर्थ्य तो हम जुटा ही लेंगे ।

'आकलन' पुस्तको की समीक्षा का दावा नही करता, मात्र पुस्तकों की चर्चा का एक विनम्र प्रयास है ।

हम इसके लिए आपका भी सहयोग और मार्गदर्शन चाहते है ।

कृपया अपने शहर और आसपास के जिज्ञासु पाठको के पते हमें भेज दीजिए । (पाठक का साहित्यकार होना आवश्यक नही है ।)

कृपया नई पुस्तको पर दो-तीन पृष्ठ की टिप्पणी भेजिए ।

यदि समीक्षा न भेज सके, तो कम-मे-कम नई प्रकाशित पुस्तक का विवरण ही भेज दें, ताकि पाठको को नवीनतम पुस्तकों की जानकारी हम उपलब्ध करा सके ।

खत कुछ बडबोला हो गया, कृपया क्षमा करेगे. लेकिन यह सब आप जैसे लोगो से ही तो कहा जा सकता है ।

सहयोग और आशीर्वाद की आकांक्षा मे

आपका

राजुरकर 'राज'

हमारा होटल ट्विकल (Hotal Twinkle) ५०, निवमार्केट, भोपाल में था। होटल मे हमारा कमरा ऊपर की मजिल पर था । नीचे मचान रेस्टारट (Machan

Restaurant) था । हम सबेरे शाम दूध वही से मगा लेते थे और काफी भी वहीं पर पीते थे । यथासमय गाडी लेकर ड्राइवर पहुँच गया । वहाँ से हम सीधे राजुरकर 'गज' के निवास स्थान पर पहुँचे । उनका आवास ४६, एल.आई जी , नेहरूनगर, भोपाल-३ मे था । एक साथ कई काम करते थे । उनका अपना '**दुष्यन्त कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय**' था । आकलन का सपादन करते थे फिर **पडाव प्रकाशन** था । छोटी-छोटी पुस्तकें छापते थे । उस समय तक ही उनके प्रकाशनो की सूची लम्बी हो गई थी । अपने प्रकाशन की कुछ पुस्तके मुझे दी । भोपाल की साहित्यिक सस्थाओ से उनका परिचय था । भोपाल के आकाशवाणी मे काम करते हुए, वे यह सब काम भी करते थे । घर पर काम्प्यूटर था । प्रकाशन मे उसका उपयोग होता था । उनके आवास पर दो-तीन सज्जन मिले, जिनके सहयोग से वे काम करते थे । उनमे '**अक्षरा**' के सम्पादक विजयकुमार देव भी थे । राजुरकर गज ने कहा — 'दो दिन तक टैक्सी आपके साथ रहेगी । आप जहाँ चाहे जा सकते है ।' वे स्वय तो अपने-अपने काम पर जाएँगे । सायकाल में, सबेरे मिल सकते हैं । हमें उन्होने मुख्य-मुख्य स्थानो के नाम और पते क्रमश लिखकर दिये । टैक्सी ड्राइवर को भी समझा दिया । सब कुछ जानकारी लेकर हम वहाँ से निकल गये । अब तो हमारा मार्गदर्शक ड्राइवर ही था । भोपाल में अनेक साहित्यिक सस्थाएँ हैं । वे सब हमे देखनी थी । पहले कहाँ गये और बाद मे कहाँ-कहाँ किस-किस क्रम से गये और कौन-कौन से मार्ग से गए । यह सब स्मरण नही किन्तु जहाँ गए और जिनसे मिलना हुआ, उन सब का विवरण लिख रहा हूँ ।

माधवराव सप्रे संग्रहालय, पत्रकार कालोनी, कोलार रोड, भोपाल

गाडी हमारी सग्रहालय के बाहर खडी हो गई । सग्रहालय बहुत बडा है । पूरा भवन है । भीतर कई कक्ष है । हाल मे प्राचीन पत्रो के पुराने अंको की प्रदर्शनी है । विशेष विशेष अंक प्रदर्शित किए गए है । पुराने अक मिलते नही है । पत्रकारिता पर कोई काम करना चाहे तो उसके लिए सामग्री हस्तामलक है । माधवराव सप्रे पर उक्त सस्था ने पुस्तक प्रकाशित की है । पुस्तक मैने खरीद ली । सब कक्षो मे घूम नही सका किन्तु कुछ कक्ष घूमकर देखे है । पत्रो के नाम के साथ सारी सामग्री व्यवस्थित है और विशेष विशेष कक्षो मे रखी गई है । ग्रथालयो मे पुस्तके तो व्यवस्थित मिलती है किन्तु पत्र-पत्रिकाओ के पुराने अक व्यवस्थित रूप मे नहीं मिलते । और फिर एक स्थान पर सारी सामग्री को व्यवस्थित रूप मे सुलभ करना कठिन काम है । ऐसी व्यवस्था को देखकर सचमुच प्रसन्नता हुई ।

शोध-छात्रो को अध्ययन के लिए वहाँ सुविधाएँ है। भोपाल मे रहकर शोध-छात्र अपना काम कर सकते है।

मध्यप्रदेश शासन, साहित्य परिषद उक्त परिषद का भवन, मुल्लारमूजी सस्कृति भवन है। बाणगंगा चौराहे पर है। वहाँ पर श्री आग्नेय, श्री पूर्णचन्द्र रथ और हरि भटनागर से मिलने गया। भवन विशाल है। वहाँ से **साक्षात्कार** का प्रकाशन होता है। उक्त पत्रिका में मेरा एक लेख **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इन्दौर यात्रा**, अगस्त १९९३ के अंक मे प्रकाशित हो चुका था। मै साक्षात्कार का नियमित ग्राहक हो गया था। उस समय साक्षात्कार का सम्पादन श्री आग्नेय कर रहे थे। श्री हरि भटनागर सहायक सम्पादक थे। मेरी जिनसे बात हुई, वे आग्नेय थे। साक्षात्कार के सम्पादक थे। बात करने से पता चला कि वे हैदराबाद के विवेकवर्धिनी कालेज से परिचित थे और कृष्णवल्लभ दवे को पहचानते थे। मै विवेकवर्धिनी कालेज को छोडकर वेकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति चला गया था और मेरे स्थान पर श्री कृष्णवल्लभ दवे नियुक्त हो गए थे। वे हैदराबाद के प्रसिद्ध कवि राजा दुबे को भी जानते थे। मुझे उन्होंने परिषद के प्रकाशनो की सूची दी। मैने वाछित पुस्तके खरीद ली। साक्षात्कार का वार्षिक शुल्क दे दिया।

मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद : उक्त संस्था भी बाणगगा चौराहे पर थोड़ी सी दूरी पर सडक की दूसरी ओर है। वहाँ पर श्री कपिल तिवारी और श्री वसन्त निरगुणे से मिलने कहा था। दोपहर का इटरवल हो गया था। सब लोग अपनी जगह पर नही थे। वहाँ पर श्रीमती करुणा राज मिल गई। उनकी नौकरी वही कहीं पर थी। हम लोग भीतर गए। पूरा भवन घूम कर देखा। कक्षो मे रखी हुई सामग्री देखी। मच पर लोक कला का प्रदर्शन करते समय उस सामग्री का उपयोग होता हो। देखकर लगा कि लोककलाओ को जीवित रखने और समय-समय पर प्रदर्शित करने का काम यह संस्था करती है।

मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भी वही निकट होने पर भी हम नही जा सके। कहा गया कि इस समय वहाँ कोई नही है। इसीलिए वहाँ से हम सीधे **'हिन्दी भवन'**, श्यामला हिल्स् गये। मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मुखपत्र **'अक्षरा'** का सम्पादन वही से होता है। कैलाशचन्द्र पन्त वहाँ पर मिले। उस समय **'अक्षरा'** का सम्पादन गोविन्द मिश्र कर रहे थे। मालूम हुआ कि गोविंद मिश्र अभी आए नहीं किन्तु दस-पन्द्रह मिनट मे आ जाएंगे। उनका कक्ष बाहर

की ओर है। विजयकुमार देव सम्पादक भी वही पर काम करते हैं और जो राजुरकर 'राज' के घर पर सबेरे मिले थे। कैलाशचन्द्र से ही थोडी देर बात करता रहा। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रधान मंत्री अनन्तराम त्रिपाठी से वे परिचित थे। वहाँ पर मेरी **मानवता की आशा** अनूदित पुस्तक पडी हुई थी। कुछ कहा नही। इस बीच गोविंद मिश्र आ गए थे। मै उनसे मिलने चला गया। कक्ष मे बैठे हुए मिले। बात हुई। प्रसन्न मुद्रा थी। सेवानिवृत्त हो गए थे। और भोपाल मे बगला बना लिया। उनसे पुराना परिचय था। उनके कारण मेरी कुछ रचनाएँ **अक्षरा** मे प्रकाशित हुई है। उनसे पहले डॉ. प्रभाकर क्षोत्रिय **अक्षरा** मे रहे हैं। उसको उन्होने नया रूप दिया। अक्षरा पहले त्रैमासिक थी। इस समय वह द्वैमासिक हो गई। साहित्य अकादमी की पत्रिका समकालीन भारतीय साहित्य भी त्रैमासिक से द्वैमासिक हो गई है। उसका अनुकरण अन्य पत्रिकाओं ने भी किया। मुझसे कहा कुछ पुस्तको की समीक्षा लिखकर भेजो। सामने एक ओर रखी हुई अलमारी दिखलाई और कहा, वहाँ जाकर पुस्तके चयन कर लो। मैंने चार पुस्तकें चयन कर लीं। वे उन्होने मुझे दे दी। दो पुस्तकों की समीक्षाएँ बाद में उन्होंने छापी। नपी-तुली बात करते है। उनकी बातचीत मे सद्भावना का मैने अनुभव किया। सरकारी कामो को करते हुए समय निकाल कर लेखन किया है। उनसे पत्र-व्यवहार भी हुआ है। पत्र लिखने पर उत्तर मिल जाता था। उनके घर जाने का विचार था। पता ले लिया और ड्राइवर से कहा कि दूसरे दिन घर पर जाना है। ड्राइवर ने ठीक कहा। उसके बाद ड्राइवर हमे सीधे भारत भवन ले गया। दोपहर का समय था। इटरवल के बाद का समय था। टिकट लेना पडा। हम लोग भीतर गये। स्वागत कक्ष अलग गेट के पास बना हुआ है। भारत भवन का परिचय देनेवाला एक परिपत्र ८ पृष्ठों का दिया गया। इससे मालूम हुआ कि इसका उद्घाटन श्रीमती इंदिरा गांधी ने १३ फरवरी १९८२ ई. को किया था। उसके स्थापत्य के सम्बन्ध में लिखा है —

> "भारत भवन अत्यन्त मनोहारी परिदृश्य में स्थित है — एक हल्कासा ढलुआ पठार जो भोपाल की बडी झील और उसके पार फैले ऐतिहासिक नगर भोपाल को निहारता है। इस स्थापत्य की रचना विश्वविख्यात वास्तुशिल्पि चार्ल्स कोरियाने की है। श्री कोरिया का मानना है कि अपने रूप की परिकल्पना स्वत ही निहित थी। उन्होंने बडी झील की दिशा मे उतरते हुए उद्यानों की एक शृखला

की परिकल्पना की थी । आज भवन की ऊपरी सतह से प्रवेश करते है और उसके विभिन्न हिस्सो तक पहुँचने के लिए प्रागणो के बीच के विन्यास के बीच से गुजरते हुए उसके पाठिकानुमा मेरूदण्ड की दिशा मे पहुँचते हैं । भवन के सारे हिस्से अपने आप परिभाषित होते चलते हे । इसी के साथ वे अत्यन्त सहजता के साथ एक दूसरे से जुडे हुए है । श्री कोरिया की यह आकाक्षा रही है कि स्थापत्य का प्रभाव एकनीरस औपचारिक सग्रहालय का न होकर रमणीयता का हो, उसकी आकस्मिकता बराबर बनी रहे । . .''

(परिपत्र म उद्धृत)

भारत भवन के प्रभाग इस प्रकार बतलाए गए है —

- **रूपंकर** : आधुनिक और आदिवासी लोक कला केद तथा सग्रहालय ।
- **रंगमंडल** . एक पूर्णाकालिक रेपर्टरी ।
- **वागर्थ** भारतीय कविता केन्द्र और पुस्तकालय ।
- **अनहद** · शास्त्रीय और लोक संगीत का केद्र ।
- **आश्रम** · अतिथि कलाकारो के लिए आवास ।
- **निराला सृजनपीठ** अतिथि कलाकारों के साथ स्थानीय कलाकर्मियो की अन्तर्क्रिया का केन्द्र ।

परिपत्र मे इन प्रभागो के कार्य और गतिविधियों की जानकारी दी गई है। आलोचना त्रैमासिक '**पूर्वग्रह**' का प्रकाशन होता है । उसके प्रधान सम्पादक अशोक वाजपेयी है और सम्पादक मदन सोनी है । मैं भीतर गया । हम दोनो ने घूमकर भवन देखा । दिखलानेवाला कोई साथ मे नहीं था । जितनी क्षमता थी । उतनी दूर तक चलकर सब कुछ देखा । सामने झील देखी । मनोरम दृश्य है । कलाकारो का तीर्थस्थान है । साधना करने के लिए उत्तम स्थान है । कार्यलिय में गया । पूर्वग्रह — का वार्षिक शुल्क दिया । एक अंक मुझे उसी समय मिला । सौंदर्य बोध मे, चित्रकला मे मेरी आरम्भ से अभिरुचि रही । किन्तु उसके लिए मुझे समय ही नही मिला । शोध कार्य मे उलझा हुआ व्यक्ति कला की ओर कैसे उन्मुख हो ? भारत भवन को देखकर कलाओं के प्रति आकर्षण बढा तथा जिज्ञासा बलवती हुई । बैठने को जी चाह रहा था । बैठ नही सके । वहाँ से हम राजुरकर 'राज' के आवास पर पहुँच गए । दूसरे दिन की योजना बनानी थी । राजुरकर

राज मिल गये। दूसरे दिन श्री गोविंद मिश्र, डॉ. रमेशचन्द्र शाह से मिलना था। मध्यप्रदेश कला परिषद देखना था। भारत भवन के निकट ही पहाडी श्रृंखला मे विशाल उद्यान था, वह भी देखना था। वह देखने की योजना बनी। कला परिषद भी जाना था। योजनानुसार सवेरे हम जानेवाले थे। हमे बतला दिया गया कि टेक्सी कल तक के लिए है। तीसरे दिन हमे साँची जाना था। राजुरकर 'राज' ने हमे कैसे जाना ? समझा दिया।

दूसरे दिन हम टैक्सी से पहले गोविंद मिश्र के आवास पर गये। उनका आवास अरेरा कालोनी मे था। HY-९४, ई-७, अरेरा कालोनी, भोपाल ४६२०१६ — उनका पता है। बगला है। भीतर गये तो गोविंद मिश्र मिल गये। उनका व्यास सम्मान उन्हीं दिनों मे हुआ था। श्रीमती गोविंद मिश्र भी मिलीं। हम लोग बैठे रहे। किसी योजना पर काम कर रहे थे। 'अक्षरा' की सामग्री की चिन्ता रहती थी। अक्षरा को बाद में उन्होने छोड दिया। उस समय पत्र लिखा। उस दिन तो विशेष बात नहीं हुई। पंडित काशीराम शर्मा के साथ में वे रहे है। उनके कारण ही परिचय हुआ था। पंडितजी के सम्बन्ध मे कुछ बतलाया नही। उनसे, मैंने Bio-Data लिया। व्यास सम्मान की पुस्तिका मिली। वहॉ से हम लोग सीधे डॉ. रमेशचन्द्र शाह के आवास पर गये। मिल गये। उस समय वे निराला सृजन पीठ के निदेशक थे। प्रोफेसर्स कालोनी मे C-१६५/१, बगले में रहते थे। उनके साथ बातचीत हुई। उनकी एक पुस्तक की समीक्षा मैंने लिखी थी। पुस्तक का नाम **'सबद निरन्तर'** है। प्रकाशक बीकानेर का है। समीक्षा 'प्रकर' मे जनवरी १९८८ के अंक मे छपी थी। उस पुस्तक के नाते से मै उन्हें जानता था। वे अंग्रेजी विभाग मे कार्य करते रहे। उनके सृजनात्मक लेखन से मेरा परिचय नही है। उनसे बातचीत हुई। मैंने उन्हें कुछ अपनी प्रतिक्रियाओ से अवगत किया। उनके चिन्तन की मै सराहना करता हूँ। 'मलयज की डायरी' मे मलयज के साथ रमेशचन्द्र शाह के सम्बन्ध उजागर हुए हैं। उनसे मिलना और बातचीत करना, मेरे लिए लाभदायक रहा। बाद में उनके साथ पत्र-व्यवहार हुआ है और आज भी जारी है। इस समय उन्होंने निराला सृजन पीठ का निदेशक पद छोड़ दिया है। अब उनका नया पता है — M-४, निराला नगर, भदभदा रोड, भोपाल-४६२ ००३।

बाद मे हम उद्यान देखने गये। वह पहाडी पर है। ड्राइवर को भी गाडी ऊपर ले जानी पडी। प्रवेश द्वार के निकट के मैदान पर उसने गाड़ी रोक दी।

हम लाग भीतर गय । भीतर भी ऊपर चढना पडा हे । बीच-बीच मे अलग-अलग कक्ष है । छोटे-बडे है । उनमें प्रदर्शनी है । कलाओ के नमूने है । चित्र है । प्रत्येक कक्ष मे व्यक्ति बैठा हुआ है । वह सब समझाकर कहता है । मध्यप्रदेश की सस्कृति को समझानेवाले — ग्रामीण और आदिवासी परिदृश्य है । प्राकृतिक नमूने अधिक है, जो अपने आप मे सब कुछ कहते है । फिर भी समझाने के लिए लोग बैठे हुए है । लगता है, उद्यानो को प्राकृतिक स्वरूप मे रखना ठीक समझा गया है । एक कक्ष से दूसरे कक्ष की ओर जाते समय ऊपर चढना पडता है। कही उतरना भी पडता है । वह मैदानी भाग नही है । हम तो चढते-उतरते थक गये । प्यास लगी तो पानी पीने के लिए पुन ऊपर चढना पडा । ऊपर गये। बेंचो पर बैठकर पानी पिया । काफी पी । कुछ आराम किया। और ऊपर हम गए ही नहीं । धीरे धीरे उतरने लगे । लौटते समय फूलो के पौधों के कतारो के बीच से गुजरे । इससे थकान कुछ दूर हुई । वहाँ से हम लोग सीधे कला परिषद गए । कार्यालय खुला था । किन्तु कमलाप्रसाद वहाँ उपस्थित नही थे । हमे कहा गया कि खजुराहो के फेस्टिवल मे गए हैं । अभी लौटे नही है । पर्यटको एव विषय के जानकारो के लिए फेस्टिवल के नृत्यो का विवरण प्रस्तुत करनेवाली पुस्तिकाएँ वहाँ पर दी गई । मार्च की ६ और १२, १९९९ के बीच फेस्टिवल का आयोजन हुआ था । उससे पहले फरवरी १२ से २१, फरवरी १९९८ मे भी आयोजन हुआ था । दोनो की पुस्तिकाएँ दी गई । कलाकारो का सचित्र विवरण था । जो देख सके वह देख लिया । इसके बाद कहीं गए हो तो मुझे याद नही। राजुरकर 'राज' हमें सायकाल मे मिलनेवाले थे । ड्राइवर ने हमे ट्विकल होटल मे छोड दिया । उसी होटल के निकट मार्किट था । हम लोग मार्किट गए । बच्चो के लिए कुछ कपडे (सिले हुए कपडे) खरीदे । वही पर होटल मे गए । कुछ खा-पीकर लौटे । दूसरी दिशा मे फोन करने के लिए टेलीफोन बूथ खोजते-खोजते हम जिस दुकान पर पहुँचे वह उज्जैन की जानकारी रखता था । मुझे उज्जैन मे भगवतीलाल राजपुरोहित से मिलना था । टेलिफोन बुथ जिस दुकान पर था, वह दुकान श्री अरुणा शर्मा की थी । अरुणा शर्मा भगवतीलाल राजपुरोहित को जानता था । उसने आवास का पता दिया । कहा — 'दानीगेट के पास राजपुरोहित मेडीकल स्टोर है । उसी स्टोर पर भगवतीलाल के दोनो पुत्र बैठते है । कोई-न-कोई मिल जाएगा । उनके साथ घर पर चले जाना । उस स्टोर से लगी हुई गली में भीतर जाने पर घर मिलेगा ।' नाम तथा पता लिख लिया ।

दूसरे दिन सबेरे नौ बजे हमारी ट्रेन थी । उससे हम दोनों साँची गए । दिन में बारह बजे हम साँची पहुँच गए । सीधे बस अड्डे पर गए । वहाँ से ऑटो साँची की ओर आवागमन करते रहते हैं । जाने-आने का ऑटो करना पडता है। जानेवाले पैदल भी चले जाते है । हम लोग ऑटो में गए । साँची का स्तूप दूर से दिखलाई देता है । रेलवे स्टेशन आने से पहले ही ट्रेन में बैठे बैठे साँची के स्तूप को दूर से मैंने देखा है । एक्सप्रेस गाडियाँ ठहरती नहीं । देखते-देखते स्तूप ओझल हो जाता है । गाँव बडा नही है किन्तु पर्यटक लोग पहुँचते रहते हैं । इसीलिए स्टेशन भी है और बस अड्डा भी है । यात्रियो की भीड के कारण होटले भी है । बस अड्डे के पास प्रदर्शनी है । भीतर जाकर प्रदर्शनी देखी । बाद मे ऑटो से साँची गए । डेढ-दो किलोमीटर ही जाना है । चढाई है । इसीलिए ऑटो ही सुविधाजनक है । ऑटो थोडा घूमकर जाता है । हम पहुँच गए । वहाँ हमे न चाहने पर भी सीढियाँ चढनी पडीं । सब जगह ऑटो पहुँच नही सकता । साँची के स्तूप की गोलाई का विस्तार है । उसके शिल्प की अलग पहचान है। इसीलिए उसकी ख्याति है । सारनाथ में भी स्तूप है । और स्थानो पर स्तूप हैं। अजंता की गुफाओ मे भी स्तूप है किन्तु इतना विशाल स्तूप और कही देखने नही मिला। स्तूप के निकट जाने पर द्वार के समीप सीढियाँ है । सीढियो पर ऊपर चढकर पूरे स्तूप को चक्कर लगाकर देख सकते है । स्तूप के सामने नीचे मैदान है । पेड लगे हुए है । उनकी छाया में बैठ सकते है । स्तूप के द्वार की नक्काशी आज भी दर्शकों को आकृष्ट करती है । बौद्धकालीन अवशेष है जो अपने अतीत के वैभव को दर्शाती है । हम लोगो ने चक्कर लगाए और नीचे उतर गये । पेड की छाया मे बैठकर नीचे का दूर-दूर तक का दृश्य निहारते रहे । समूह के समूह चले आते हैं । घूमते-फिरते है और चले जाते है । आधा घण्टा बैठकर विराम करने के बाद हम नीचे आ गए । हमारा ऑटो प्रतीक्षा में था । हम लोग लौट गए। लौटते समय हमें तुरन्त बस मिल गई । दोपहर के तीन बज गए थे । तीन घण्टे मे, लगभग ६ बजे हम लोग ट्विकल होटल में पहुँच गए । दूसरे दिन योजनानुसार हमने होटल छोड़ दिया और सामान लेकर सीधे राजुरकर 'राज' के घर पर नेहरू नगर गए । वही पर भोजन किया । सामान उन्हीं के घर पर रखकर, एक दिन के लिए आवश्यक सामान ले लिया । सभवत उस दिन छुट्टी थी । दोनों पति-पत्नी घर पर ही थे । मराठी भाषी परिवार, मध्यप्रदेश में बसा हुआ है । ऐसे कई परिवार भोपाल मे हैं । मध्य-प्रदेश में जगह-जगह पर है । मराठी बोल लेते

है किन्तु व्यवहार मे खूब हिन्दी बोलते हैं। मराठी का व्यवहार घर तक ही सीमित है। नौकरी करते हुए ये साहित्यिक सेवाकार्य करते है और प्रकाशन भी करते है। साहित्यकारो की सहायता भी करते है।

हमे सायकाल मे रेलवे स्टेशन से नौ बजे **'उज्जैन'** के लिए ट्रेन मिल गई। रात मे बारह बजे के बाद में हम लोग उज्जैन पहुँच गये। बाहर के होटल के पते श्री अरुण शर्मा ने दिये थे। मैंने स्टेशन पर पूछ-ताछ की। रिटायरिंग रुम चाहिए था। वह टिकट के आधार पर मिलता था। थोडी प्रतीक्षा के बाद रात मे २ बजे हमें रुम न ३ मिल गया। चौबीस घण्टे के लिए मिला था। दूसरे दिन सबेरे पाँच बजे हमारी लौटनेवाली ट्रेन थी। यथासमय हमने तीन घण्टे के लिए अनुमति प्राप्त कर ली। कमरे मे पूरी व्यवस्था थी। रात मे सो गए। सबेरे तैयार हो गए। स्टेशन से बाहर आए। हमे उज्जैन नगर घूमकर देखना था। मालूम हुआ कि स्टेशन के पास ही बस अड्डा है। वहाँ से नौ बजे बस सिटी घूमाने के लिए जाती है। काउटर पर पहुँचकर दो टिकट ले लिए। यथासमय बस निकल गई। सडकें अच्छी नही है। उज्जैन — प्राचीन नगरी है। उसका प्राचीन रूप आज भी बना हुआ है। मध्यकालीन अवशेष अधिक है और आस पास मे प्राचीन अवशेष हैं। सब से पहले हमारी बस 'महाकाल' के मन्दिर के पास ठहरी। मन्दिर विशाल है। प्रागण उतना बडा नही है किन्तु भीतर से उसका विस्तार अधिक है। दर्शन के लिए पक्ति मे खडे रहकर जाना पडता है। नियमित मार्ग बना हुआ है। क्रम से हम लोग भीतर गए। दर्शन किया। कालाहस्ती का शिवजी का मन्दिर भी विशाल है किन्तु वह पूरा पत्थरो का है। दक्षिण का शिल्प उसमे है। कालाहस्ती मे मन्दिर के समीप स्वर्णमुखी नदी है किन्तु अब उसमें जल नहीं है। उज्जैन मे शिप्रा है। देखी नही। मन्दिर से बाहर आए। चित्त शान्त हुआ। कुछ देर बैठे रहे। बस मे पुन पहुँचना था। वहाँ से वह और कहाँ ले गया ? ठीक से याद नहीं किन्तु अब हम नगर से बाहर की सडक पर आ गए थे। बस हमे भर्तृहरि की गुफा की ओर ले गई। पाताल गुफा है। पर्यटक वहाँ पहुँचते है। बस सीढियों के पास तक पहुँचती है। वहीं ठहर जाती है। पाताल गुफा के लिए हमे नीचे उतरना पडता है। उन सीढियो को देखकर डर गया। नीचे जाने का साहस नही हुआ। यात्री तो दौड रहे थे। जैसे-तैसे साहस कर गुफा के द्वार तक पहुँच गए। भीतर नहीं गया। जानेवाले गए। भीतर के गुफा की कल्पना कर ली। ऊपर की ओर देखा और सोचा, साधना के लिए

व्यक्ति कहाँ-कहाँ पहुँचता है ? सोच-विचार के लिए सामग्री मिली। यात्रिया के साथ-साथ धीरे धीरे ऊपर लौट आए। और कुछ देखा हो तो स्मरण नही। बारह बजे तक हम उज्जैन स्टेशन पहुँच गए। स्टेशन से सीधे हम सिटी बस द्वारा दानीगेट गए। दानीगेट के पास राजपुरोहित मेडीकल स्टोर मिल गया। भगवतीलाल का पुत्र मिल गया। वह हमे घर पर ले गया। भगवतीलालजी मिल गए। कालिदास के साहित्य का खूब अध्ययन किया है। कालिदास पर उनकी पुस्तकें छपी है। महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिह के कारण मैं उनके नाम से परिचित हूँ। मिलने का अवसर उस दिन मिला। हम लोग जल्दी घुल मिल गये। श्रीमती भगवतीलाल ने हमारे भोजन की व्यवस्था कर दी। भगवतीलालजी मूल रूप मे सस्कृत के व्यक्ति है। वे उज्जैन की कालिदास अकादमी से जुडे हुए हैं। उन्होने स्वय कालिदास पर पुस्तक लिखी है। पुस्तक का नाम है — **कालिदास का वागर्थ**। कालिदास अकादमी, उज्जैन से उसका प्रकाशन १९९६ ई मे हुआ है। उस समय वे सांदीपनि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन मे हिन्दी विभाग के प्रोफेसर थे। भोज राजा पर विशेष कार्य किया है। उन्होने राजा भोज पर ही शोध प्रबन्ध लिखा है। उनसे बाते होती रही। पारिवारिक स्तर पर मिलना हुआ। हम लोग ऊपर गये। भोजन किया। इसीमे ढाई-तीन बज गए। हमे डॉ राममूर्ति त्रिपाठी के घर जाना था और डॉ शिवमगलसिंह 'सुमन' जी से भी मिलना था। उनका पता दिया। कैसे पहुँचना यह भी बतलाया। हम लोग सीधे सिटी बस से उज्जैन विश्वविद्यालय के परिसर मे पहुँच गये। वहाँ से पूछते-पूछते डॉ रामपूर्ति त्रिपाठी के घर पर गये। उनका अपना बंगला बन गया है। इस समय, स्टेट बैंक कालोनी २, देवास रोड मे रहते है। पहले विश्वविद्यालय आवास मे रहते थे। घर पर मिल गये। बात हुई। मैने कहा — 'आपका ग्रथालय देखना है।' भीतर ले गए। अपने टेबल के पास बैठाया। वही बैठकर बाते की। ग्रथालय मे बहुत-सी पुस्तकें थी। मे सब देख नही सका। उन्होने अपने आलेखो की अनुमुद्रित प्रतियाँ दी। लगभग पद्रह-बीस थीं। औरंगाबाद लौटने के बाद उन्हे जिल्द का रूप दिया। राममूर्ति त्रिपाठी की पुस्तक हो गई। पुरानी पीढी के आचार्य है। काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान है। आचार्य शुक्ल पर सगोष्ठी अमृतसर मे हुई थी। उसमे मै भी गया था। उस समय डॉ. विश्वभरनाथ उपाध्याय और राममूर्ति त्रिपाठी मे बहस हो गई थी। त्रिपाठीजी, उपाध्यायजी के प्रश्नों का उचित उत्तर दे रहे थे। ऐसे आचार्य बहुत कम रह गये हैं। मै तो केवल देखने और मिलने गया था। त्रिपाठीजी

औरगाबाद आए है । घर पर भी आए हैं । उनसे मिलकर हम लोग 'सुमन'जी से मिलने गये । उदयन मार्ग पर उनकी कोठी थी । पहुँच गये । कुछ पैदल चलना पडा । पहले श्रीमतीजी मिली । भीतर सूचना देने पर वे तैयार होकर ही आए। कही बाहर जानेवाले थे । ड्राइवर तैयार था । कुछ देरी से पहुँचता तो मिलते नहीं थे । उनसे पत्र-व्यवहार हुआ है । पत्रों के उत्तर मिले हैं । शुक्लजी पर लिखे सस्मरण को मैंने अपनी पुस्तक चिन्तामणि चिन्तक रामचद्र शुक्ल पुस्तक मे सम्मिलित किया है । मैंने उनसे Bio-data मागा । कहा — 'डाक से भेजूंगा ।' अभी मुझे निकलना है । खडे हो गए । फिर ड्राइवर को बुलवाया कहा — 'इन्हे गेट से बाहर बस अड्डे तक छोड आओ । हम लोग बस अड्डे पहुँच गए और वहाँ से सिटी बस द्वारा स्टेशन आ गए । स्टेशन पर रात मे ठहरना पडा । अनुमति मिल गई थी । सबेरे पाँच बजे हमें भोपाल की ट्रेन मिली । उससे हम सबेरे आठ बजे भोपाल पहुँच गए । एक दिन भोपाल में पुन ठहरना पडा । हमारी ट्रेन रात्रि मे बारह बजे के आसपास थी । कुछ ऊपर के मिनट थे । हम ने वह दिन सबेरे से दोपहर तक का समय राजुरकर 'राज' के घर पर गुजारा । वहाँ से सामान लेकर टिक्कल होटल पहुँच गये । सामान रखा । हमें ठहरना नहीं था । वहाँ से स्टेशन ही जाना था । चार-छ घण्टे सामान वहाँ पर रहा । होटलवाले ने अनुमति दे दी । सामान रखकर मार्केट में घूमते रहे । दूसरी सडको पर गये । कलाकृतियाँ देखीं । फैशन के नमूने देखे । रात्रि मे दस बजे हम वहाँ से अपना सामान लेकर स्टेशन निकल गए । स्टेशन पर यथासमय हमे ट्रेन मिल गई । रात्रि के बारह बजने के बाद तिथि बदल गई । दूसरा दिन हो गया । दोपहर में साढे बारह बजे हम औरगाबाद स्टेशन पर थे । घर पहुँच गये ।

□ □

बैंगलौर-त्रिवेन्द्रम् तथा कन्याकुमारी
(१३-४-१९९९ ई. से २४-४-१९९९)

कन्याकुमारी देखने की इच्छा रही । भोपाल जाने से पहले से योजना थी। उससे पहले भुवनेश्वर जाते समय जब डॉ भीमसेनजी निर्मल से मिला था ; तब मैंने त्रिवेन्द्रम् के सब पते लिख लिए थे । मेरा बैगलौर का काम भी अधूरा था। उसे पूर्ण करना था । त्रिवेन्द्रम् मे डॉ. विश्वनाथ अय्यर का पता मिल गया । उनको पत्र लिखा । उत्तर मिल गया । उसके बाद त्रिवेन्द्रम् विश्वविद्यालय में डॉ रवीन्द्रनाथन् को भी पत्र लिखा । उनका भी सकारात्मक उत्तर मिला । दोनो के फोन नम्बर भी मिल गये । बैंगलौर से ही सीधे त्रिवेन्द्रम् जानेवाली ट्रेन मिलती है । इस बार

मैन सिकंदराबाद की यात्रा नही की । कर्नाटक एक्स्प्रेस से सीधे बेंगलौर जाने का विचार किया । के. के से जाने का आरक्षण मिल गया । किन्तु लौटने का नही मिला । अत. बैंगलौर से परभणी होते हुए औरंगाबाद का आरक्षण मिला । जाने आने का आरक्षण करने के बाद हम लोग मनमाड गए । K K वहाँ यथासमय मिली । दूसरे दिन १४ अप्रैल १९९९ को हम लोग बैंगलौर पहुँच गए । बैंगलौर मे मैंने सुशीला को पत्र लिख दिया था । उन दोनो को भी यात्रा मे कन्याकुमारी चलना था । पहले तो तैयार थे । बाद में उन्होंने आरक्षण नही किया । इसीलिए त्रिवेन्द्रम् का हम दोनो का आरक्षण धर्मीचंद को करने के लिए कहा । दो दिन त्रिवेन्द्रम मे ठहरना था । और एक दिन कन्याकुमारी में । इसीलिए तीन दिन के अन्तराल से लौटने का आरक्षण बैंगलौर मे ही कर लिया । धर्मीचद टिकट लेकर आ गया । जाने का टिकट कन्फर्म नहीं था । बाद मे हो गया । पहली बार बैंगलौर से नीचे दक्षिण मे जा रहा था । इससे पहले कालिकट गया था । इसी तरह मैंगलौर भी गया था । किन्तु कोयम्बटूर से नीचे दक्षिण में गया ही नही था । पश्चिमी घाट के अन्तिम सिरे तक की यात्रा थी । बैंगलौर से त्रिवेन्द्रम् चौबीस घण्टे से कुछ ऊपर के घण्टों की यात्रा है । यात्रियों की भीड के कारण उस दिन ट्रेन मे एक डिब्बा अधिक जोडा गया था । इसीलिए हमारा टिकट कन्फर्म हो गया । बैंगलौर से हम लोग १५ अप्रैल १९९९ ई को सेबरे ९ बजे बैठे । दूसरे दिन सबेरा होने से कुछ पूर्व त्रिवेन्द्रम् पहुँच गये । सब कुछ नया था । स्टेशन पर टेलीफोन बूथ पर जाकर मैंने डॉ विश्वनाथ अय्यर को फोन किया । बोले — 'त्रिवेन्द्रम् होटल मे आपका कमरा बुक हो गया है । दूसरी बात उन्होंने यह बतलाई कि स्टेशन पर ऑटो का पुलिस बुथ है । वहीं पर ऑटो कर ले। वह ऑटो आपको त्रिवेन्द्रम होटल मे पहुँचा देगा । मैं वहीं आकर मिलता हूँ ।' तदनुसार हम लोग त्रिवेन्द्रम् होटल मे पहुँच गये । हमारा कमरा हमें मिल गया। त्रिवेन्द्रम् होटल के सामने जो बडी सडक है. उसकी दूसरी ओर केरल की विधानसभा और केरल सरकार के अन्य कार्यालय हैं । होटल मे बैठकर हम लोग तैयार हों इससे पूर्व ही डॉ विश्वनाथ अय्यर आ गए । आयु में मुझे से बडे है । पहले कोचीन मे थे । सेवानिवृत्त होने के बाद त्रिवेन्द्रम् में रहने लगे । उनके साथ बात हुई । प्रसन्न भाव से मिले । मुझे त्रिवेन्द्रम् के महत्त्वपूर्ण स्थल देखने थे । तदर्थ उन्होंने पर्यटकों के लिए बस मे आरक्षण मिलनेवाला स्थल का परिचय दिया । बस वही से निकलती है । हम लोग तो उसी दिन तैयार होकर पहले बस स्टैंड

गये । टिकट काउण्टर खोज लिया । दो टिकट हमें मिल गये । डॉ विश्वनाथ अय्यर से हमने विदा ली । उनसे मिलने उनके घर पर जाना था । वह दूसरे दिन हुआ । उन्होंने कहा मैं स्वयं आऊगा और घर पर ले चलूंगा ।

त्रिवेन्द्रम् मे उस दिन हमने क्या क्या देखा ? क्रमश बतलाना कठिन है । जहाँ तक मुझे याद है, वहाँ का विशाल मन्दिर 'पद्मनाभनजी' का मन्दिर याद है। उस मन्दिर के पास मे ही राजमहल है जो अब प्रदर्शनी में बदल गया है । मन्दिर भी विशाल है और राजमहल भी विशाल है । पद्मनाभनजी के मन्दिर में प्रवेश करने के लिए पुरुषों को पोषाख बदलनी पडती है । वस्त्र उतारना और दूसरे वस्त्र पहनना पड़ता है । यह सब तो मुझ से नहा हुआ । मैने बाहर से ही मन्दिर देख लिया । स्त्रियो को भीतर जाने की अनुमति थी । वह चली गई । मन्दिर के विशाल प्रवेश द्वार के समीप पत्नी की प्रतीक्षा में खडा रहा । उसे अब पूछता हूँ कि भीतर क्या देखा ? उसे ठीक से स्मरण नही । समूह का अंग बन कर गई और समूह का अंग बन कर लौटी । देख लेने और दर्शन करने का सुखद समाधान उसे मिल गया । उसके बाहर आ जाने पर हम लोग सामने की सडक पर दाहिनी ओर के राजमहल मे गये । राजमहल लम्बा ही लम्बा है । प्रवेश द्वार छोटा है । भीतर एक ओर खुला आगन है । दूसरी ओर दीर्घाएँ बनी हुई है । दीर्घाओं से गुजरने के बाद हम प्रवेश द्वार के समीप पहुँच गए । वस्तुत. वह राजमहल कलाकृतियो का प्रदर्शन स्थल हो गया है । कोई कक्ष खाली नहीं है । सालारजंग म्यूजियम की तरह कक्षों से गुजरने और बाहर आने का क्रम है । नीचे के कक्ष अलग है और ऊपर की मजिल के कक्ष अलग है । महल के सारे कक्ष ठीक हैं । उन कक्षो पर प्राचीनता की छाप है किन्तु उन्हे सुरक्षित रखा गया है । हमे घूमकर देखने मे लगभग एक घण्टा लगा । लोग तो एक कमरे से दूसरे कमरे मे भाग रहे थे । उन्हे यथासमय बस में पहुँचना था । हम भाग तो नहीं रहे थे । चलते हुए देख रहे थे । इच्छा होने पर भी रूक कर देखने का समय नही था । पूर्णाकृति पेंटिंग्स् के चित्र थे । दृश्यावलियाँ थी । जीवन के यथार्थ को दर्शानेवाले चित्र थे । उन चित्रो पर पुस्तकें देखने नही मिली । चित्र देख लेते हैं किन्तु उनकी समीक्षा करनेवाला कोई मिलता नही । चित्रो के साथ, चित्रो की समीक्षावाली पुस्तकें मिले तो चित्रों का सम्प्रेषण अधिक होगा। कलाओ के नमूनो से अभिभूत होकर हम यथासमय बाहर आए और बस में पहुँच गए ।

केरल मे — दक्षिण में कलाओं के केन्द्र है । त्रिवेन्द्रम् की प्रदर्शनियों मे इसके प्रमाण मिल जाते है । राजमहल की प्रदर्शनी तो अलग और व्यक्तिगत प्रतीत होती है किन्तु वहाँ की सरकार ने प्रदर्शनियो और वन्य प्राणियो के प्रदर्शनों (Zoos) की अलग व्यवस्था की है । विभाग का नाम है — 'Department of Museums and Zoos, Thiruvanathpuram - 33, Govt of Kerala' — वस्तुत प्रदर्शनियो का समूह जहाँ पर है, वह स्थान अलग है । उसके प्रागण और क्षेत्र का विस्तार बहुत है । वहाँ पर प्रदर्शनियो के सामने से चक्कर लगाने में व्यक्ति थक जाता है । भीतर जाकर देखने मे तो एक दिन काफी नहीं है । अलग-अलग विषयो की अलग-अलग प्रदर्शनियाँ है । राजा रवि वर्मा के चित्र — 'चित्र आर्ट गैलरी' मे लगे हुए है । वह आर्ट गैलरी हमने ध्यान से देखी । राजा रवि वर्मा के चित्रो का फोल्डर खरीद लिया । फोल्डर मे चयन किये हुए चित्र है । शकुन्तला के पूर्वराग का चित्र है । (मुख पृष्ठ पर) । अपनी सखियों के कधे पर हाथ रखे पीछे मुडकर दुष्यन्त को निहारती हुई शकुन्तला है । अन्तिम पृष्ठ पर हस दमयती का चित्र है । बीच के चित्रों मे राम का धनुष टकार (जनक के दरबार मे), आर्टिस्ट का स्टुडिओ, राजा रवि वर्मा, कुछ पेन्सिल स्केच के चित्र है । विराट के दरबार मे द्रौपदी का चित्र, रावण, सीता का हरण करते हुए — जटायु वध के बाद ज्युडिथ का तैल चित्र, — मोर, गली मे नाचती किशोरियाँ, घूमन्तू परिवार का चित्र, दूधवाली का चित्र, महारानी लक्ष्मीबाई का चित्र । स्वय राजा रवि वर्मा का तैल चित्र — कुछ और चित्र भी है । राजा रवि वर्मा (१८४८ ई - १९०६ ई) का सक्षिप्त परिचय है । उस चित्रकार का फोल्डर मैंने वहाँ खरीद लिया था। उसीको सामने रखकर यह सब लिखा है । वस्तुत. आर्ट गैलरी मे राजा रवि वर्मा के मूल चित्र अपने मूल आकार में प्रदर्शित है । उस आर्ट गैलरी मे समय अधिक गया। साथ के यात्री अलग-अलग प्रदर्शनियाँ घूम-घूम कर, दौड-दौड कर देख रहे थे। हम लोगों ने भी कुछ और कलाओं की गैलरियाँ देखीं । शिल्प देखा, मूर्तियाँ देखी, अलग-अलग आकारो में सजी हुई वस्तुएँ देखी । देखकर पेडो के नीचे प्रागण में बैठकर आराम किया । खाने-पीने के लिए पदार्थ उपलब्ध थे । पानी भी उपलब्ध था । उसके बाद बस हमे किसी अन्य स्थान पर ले गई होगी, इसका मुझे स्मरण नही । बस अड्डे पर बस ठहर गई । हम लोग अपने होटल में चले गए । बहुत थक गये थे । आराम किया । मुझे त्रिवेन्द्रम् की यूनिवर्सिटी देखनी थी । इसी तरह केरल-पाणिनि बिल्डिग देखनी थी । वही से IJDL (International

Journal of Dravidian Linguistics) के अंक छपते हे । हम चाहने पर भी किसी भी स्थान पर जा नही सके । डॉ विश्वनाथ अय्यर आ गए थे । वे हमे अपने घर पर ले गए । उनका घर दूर नही था । पैदल ही हमे ले गए । रास्ते में वे एक कोआपरेटिव मार्केट मे ले गए । सभी प्रकार के मसालो के पदार्थ मिलते है । काजू भी मिलते हैं । काली मीरची, शाजीग ओर अन्य अन्य पदार्थ है । वहाँ पर मोल भाव नही होता । सामान तुला हुआ और पैक किया हुआ रखा है । आप सामान उठा लीजिए । कांउटर पर सामान दिखाकर बिल बन जाएगा। बिल का भुगतान काउटर करने के बाद आप सामान लेकर जा सकते है । व्यवस्था ठीक है । सब कुछ विश्वास से काम होता है । उस दुकान से बाद में हम विश्वनाथजी अय्यर के घर पर गए । केरल का आयुर्वेद केन्द्र उनके घर के समीप ही है । वहाँ पर दूर-दूर से यात्री अपने उपचार के लिए आते रहते है । हम तो उनकी गली में मुड गए । वह ट्यूटर्स की लेन थी । लम्बी ही लम्बी गली थी । गली मे एक मोड़ पर उनका आवास था । हम लोग बैठे रहे । बात हुई । उनका लेखन सृजनात्मक स्वरूप का है । उन्होंने अपनी एक पुस्तक दी । निबन्ध थे । उनकी रचनाएँ पत्रिकाओं मे छपती रही हैं । हिन्दी के लिए समर्पित जीवन उन्होंने गुजारा है । कालिकट के भारतीय हिन्दी परिषद के अधिवेशन मे मिले थे । उस समय भी उन्होने अपनी एक पुस्तक मुझे दी थी । त्रिवेन्द्रम् मे वे एकमात्र मेरे परिचित व्यक्ति थे । उनको साथ लेकर घूमना-फिरना संभव नही था । वे मेरे लिए आदरणीय व्यक्ति थे । उनका घर अच्छा लगा । अय्यरजी की साधना भूमि देखी । दूसरा दिन यो ही बीत रहा था । एक दिन हमे कन्याकुमारी देखने जाना था । उसकी तैयारी आवश्यक थी । उस दिन सायंकाल मे डॉ. रवीन्द्रनाथ होटल में मिलने आए। उनके साथ एक और विभाग के सज्जन थे । उनसे बाते होती रहीं । नई पीढ़ी के लोग थे। उनके कार्य और उत्साह को देखकर प्रसन्नता हुई । दूसरे दिन मुझे कन्याकुमारी जाना था । और बाद मे तो लौटना था । १८ मार्च की रात्रि के एक्सप्रेस से हमें बैगलौर लौटना था ।

'IJDL' के सम्बन्ध मे कुछ लिखना चाहूँगा । इसके अक **'तिरुअनंतपुरम्'** से नियमित निकलते है । ये अंक वर्ष में दो बार निकलते हैं । जनवरी तथा जून मे । इसी तरह के **भाषा विज्ञान** के नियमित अंक हिन्दी मे नहीं निकलते । इन अंकों को देखकर लगता है कि हम अपनी भाषाओ का अध्ययन अपने लिए कम और विदेशियों के लिए अधिक करते है । हमारे देश की भाषाओं की जितनी

जानकारी अंग्रेजी भाषा मे उपलब्ध है, उतनी जानकारी हमारी अपनी भाषाओ मे उपलब्ध नही है । मै इन अकों को जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से पढता रहता हूँ । डॉ. एन के. निहलानी इंग्लिश विभाग मे काम करते रहे और मैं हिन्दी विभाग मे । दोनो साथ-साथ एक ही वर्ष मे सेवानिवृत्त हुए — १९९३ ई में । पहले मै हुआ और बाद मे वे हुए । हमारा आना-जाना आज भी पारिवारिक स्तर पर जारी है । निहलानी साहब केरल की उक्त सस्था के आजीवन सदस्य है । उनके पास IJDL के अंक नियमित आते रहते है । वे पढने के बाद मे मुझे दे देते है । इसीलिए खरीदता नही । जनवरी २००३ और जून २००३ के अंक मुझे मिल गए हैं । मै इन अंकों का उपयोग लेखन मे करता रहा हूँ । निहलानी साहब ध्वनि विज्ञान मे अभिरुचि रखते है । उच्चारण पर उनका ध्यान रहता है । इस सम्बन्ध में हमारी बहस भी होती रही है ।

मै चाहकर भी केरल की उस सस्था मे नहीं जा सका । IJDL के अंक देखता रहता हूँ ।

दूसरे दिन हम कन्याकुमारी गये । सबेरे-सबेरे बस अड्डे पर गए । मालूम हुआ कि केरल का बस अड्डा अलग है और तमिलनाडु का बस अड्डा अलग है । कन्याकुमारी तमिलनाडु मे है, इसीलिए हमे तमिलनाडू के बस अड्डे पर जाना पड़ा । बस हमें मिल गई । बस की यात्रा सुखद रही । ढाई-तीन घण्टे की यात्रा है । तिरुअनंतपुरम् से बाहर आने के बाद में भी हमें मालूम नही हुआ हम नगर से बाहर आ गए हैं । सडक के दोनों ओर बस्तियॉ बसी हुई है । सब कुछ हरा-भरा है । नारियल के ऊचे-ऊंचे पेड हैं । केरल के घर-आगन मे नारियल के पेड रहते हैं । तिरुअनतपुरम् राजधानी है किन्तु साफ-सुथरा गाँवो का नगर है । सब कुछ खुला-खुला । प्रकृति की सजावट से सजा हुआ । ऊंची-ऊंची इमारते नही है । विशेष-विशेष भवन कहीं ऊचे भले ही हो । राजमहल भी दुमजला था । दुमजले घर बहुत है । घर मे ऑगन हैं और खुली जगह है । जगह की कमी नही है । इस पर भी लगता है — आबादी अधिक होगी । बात यह है कि दो नगरों के बीच मे जगल नही दिखाई देता । कौनसा गॉव कहॉ खतम होता है और कहॉ दूसरे गॉव का आरम्भ होता है । तिरूअनतपुरम् मे कन्याकुमारी तक यही स्थिति है । बस जब रुकती है और बस अड्डा दिखलाई देता है, तब अनुभव होता है कि दूसरा नगर आ गया । पहाडी नही है । मैदानी इलाका ही अधिक है ।

हम लोग कन्याकुमारी पहुँच गये। हमे कही ठहरना नही था। बस अड्डे से कन्याकुमारी के अड्डे पर बस से ही पहुँच गये। वहाँ पर सब जगह पैदल ही घूमना था। कोई वाहन उपलब्ध नही। हमे तो सागर के किनारे पहुँच कर हिन्द महासागर को देखना था। बगाल की खाडी और अरब सागर का समाहार हिन्द महासागर मे हो जाता है। यात्रियों की भीड थी। सब के साथ हम भी सागर के तट पर पहुँच गये। दूर से विवेकानद की शिला दिखलाई दे रही थी। एक दीर्घाकार बृहत् चट्टान पर विवेकानद खडे हुए अपनी प्रसिद्ध मुद्रा मे दिखलाई देते है। उस चट्टान तक हमे नाव से जाना पडा। यात्रियो के साथ हम लोग भी नाव पर बैठ गए। बहुत अन्तर नहीं है। पन्द्रह-बीस मिनट मे हम लोग चट्टान के पास पहुँच गए। यात्रियो के साथ हम चट्टान पर चढने लगे। ऊचाई पर पहुँचना था। चट्टान पर वृत्ताकार मे मार्ग बना हुआ था। चट्टान को सजाया संवारा गया था। मिट्टी थी ही नहीं। हम लोग सहज गति से ऊपर पहुँच गये। ऊपर किनारे-किनारे रेलिग थी। वहाँ से सागर का सुन्दर दृश्य दिखलाई दे रहा था। ऊपर भवन के कक्ष थे। प्रदर्शनी थी। पुस्तके विक्रयार्थ रखी हुई थी। मैने **विवेकानंद-चरित्र** पुस्तक खरीदी। १८ अप्रैल १९९९ ई को हम विवेकानद-शिला पर थे। विवेकानद चरित्र पुस्तक श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार की लिखी हुई थी। उसका पन्द्रहवाँ सस्करण था। हमारे साथ सोलापुर का दिगम्बर जैन परिवार था। वह भी हमारे साथ घूम रहा था। शिला पर दुमजला इमारत थी। कक्ष थे। साधना करने के लिए या चिन्तन के लिए उपयुक्त स्थान था। घूम फिर थक गये तो वही रेलिग के पास सागर को निहारते हुए विराम करने लगे। नाव जहाँ पर ठहरती है, वह स्थान ऊपर जाने पर दिखलाई नही देता। विवेकानद-शिला के कारण पर्यटको की सख्या बढ गई है। कन्याकुमारी का रेलवे स्टेशन अलग है। हमारे लौटने का स्थल कन्याकुमारी था। स्टेशन देखने गए थे। स्टेशन पर कोई विशेष भीड नही थी। स्टेशन देखकर लौटने के बाद हम लोग कन्याकुमारी का मन्दिर देखने गये। मन्दिर काफी विशाल है। भीड थी। पक्ति मे खडे हो गए। दर्शन हो गए। लौटकर सामने की सडक पर घूमते रहे। यात्रियों की सामग्री वहाँ मिलती है। काजू मिलते है। भुने हुए काजू हैं। कुछ कम रेट पर मिलते है। ले लिए। किन्तु वे बहुत अच्छे नहीं है। घूम फिर कर हम लोग चार-पाँच बजे तक बस अड्डे पहुँच गए। त्रिवेन्द्रम् की बस मिल गई। त्रिवेन्द्रम् पहुँचते ही होटल का हिसाब कर हम लोग

रेलवे स्टेशन पहुँच गए। यथासमय ट्रेन मिल गई। दूसरे दिन सबेरे १९ अप्रेल को हम लोग बैंगलौर पहुँच गये।

डॉ ना. नागप्पा

त्रिवेन्द्रम् जाने से पूर्व धर्मीचंद मुझे डॉ. नागप्पाजी के पास लेकर गया था। १४ अप्रैल १९९९ को ही मै उनसे मिलने गया था। मै कन्नड भाषा के सम्बन्ध मे कुछ विशेष जानकारी चाहता था। उन्होंने कन्नड भाषा का विशेष अध्ययन किया है। उस विषय पर उन्होने जो कुछ लिखा वह सब बहुत पहले नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग १८ तथा १९ मे — १४० पृष्ठों में प्रकाशित है। उन्होंने उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित नही किया। उन्होने आश्वस्त किया कि त्रिवेन्द्रम्-कन्याकुमारी से लौट आओ तो पुन. मिलो। मैं सारी सामग्री की जीराक्स प्रति आपको दूँगा। लौटने के बाद जब पुन. उनके आवास पर गया तो मुझे सारी सामग्री (जीराक्स की हुई) मिल गई। पुस्तक रूप मे इसे छापने या छपवाने के प्रयत्न क्यों नही हुए ? यह सोचता रहा। डॉ. ना नागप्पाजी के ये लेख १९३७-१९३८ ई मे छपे है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समय मे लिखे गये हैं। इनमे उत्तर-दक्षिण की भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन है। दूसरे शब्दों मे आर्य परिवार तथा द्रविड परिवार की भाषाओं को एक दूसरे के सम्मुख रखते हुए तुलना की गई है। विशेष रूप से ध्वनि-विज्ञान के आधार पर भाषाओ को परखा है। ध्यान अवश्य कन्नड तथा हिन्दी पर रहा है किन्तु कन्नड के साथ द्रविड परिवार की अन्य भाषाओ के साथ भी तुलना की गई है। इसी तरह हिन्दी के साथ आर्य परिवार की अन्य भाषाओ की तुलना भी, प्रस्तुत है।

डॉ. नागप्पाजी सामान्य रूप से यह मानते रहे हैं कि आर्य परिवार की भाषाओ का विकास-क्रम इस प्रकार रहा है — संस्कृत > प्राकृत > अपभ्रश > देशी — भाषाएँ। इन देशी भाषाओ को आधुनिक भाषाएँ कहा गया है। हिन्दी आधुनिक भाषा है, उसी तर कन्नड भी आधुनिक भाषा है। आधुनिक भाषाओ में हिन्दी और कन्नड अलग-अलग परिवार की मानने पर भी दोनों मे बहुत साम्य है। इस साम्य की खोज ध्वनि विज्ञान के आधार पर (विशेष रूप से) उन्होंने की है। उनकी खोज महत्त्वपूर्ण है। प्राकृत भाषा और अपभ्रश भाषा के साथ कन्नड का सम्बन्ध बतलाया है। उन्होंने जो उदाहरण दिये हैं, वे इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि प्राकृत भाषा, संस्कृत की तुलना मे कन्नड तथा अन्य द्रविड भाषाओ से अधिक सम्बन्ध रखती है। यद्यपि प्राकृत भाषा के साथ दक्षिण की भाषाओं के सम्बन्धो

को पूरी तरह उजागर नही किया गया है तथापि अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे कई सकेत नागप्पाजी ने दिए है जिससे प्राकृत के साथ सम्बन्ध बतलाना सरल हो जाता है। प्राकृत के साथ किसी भी भारतीय भाषा का सम्बन्ध बतलाना, इसीलिए कठिन हो जाता है कि बीच मे मस्कृत आ जाती है । सस्कृत से मुक्त रहकर प्राकृत के साथ सम्बन्ध बतलाने के प्रयत्न होने चाहिए । यह मै इसीलिए कह रहा हू कि प्राकृत भाषा (उसके विविध रूप भी) के भौगोलिक भेद मिलते है । इस रूप मे सस्कृत भाषा के भौगोलिक रूप बतलाए नहीं जाते । यों प्राकृत सस्कृत की तुलना लोक-व्यवहार की भाषा अधिक रही है । प्राकृत के ग्रथों का अनुवाद सस्कृत में हुआ है । संस्कृत के ग्रथो का प्राकृतो मे अनुवाद प्रायः नही हुआ है । प्राकृत भाषा को सुरक्षित रखने का काम संस्कृत भाषा ने किया है । यह सब होने पर भी भौगोलिक दृष्टि से प्राकृत भाषा के महत्त्व को उजागर करना है और साथ ही आधुनिक भाषाओं के साथ उसका सम्बन्ध ज्ञापित करना है । इस दृष्टि से सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए इस काम को आगे बढाना है । भारतीय भाषाओं मे प्राकृत भाषा ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो सस्कृत के प्रभाव से मुक्त है । इसीलिए यह प्रश्न आज भी बना हुआ है कि सस्कृत से प्राकृत का उद्भव हुआ या प्राकृत से संस्कृत का निर्माण हुआ । इस प्रश्न का ठीक से उत्तर देने के लिए दोनो भाषाओ के भौगोलिक रूपों पर ध्यान देना चाहिए । जिस भाषा के भौगोलिक रूप अधिक मिलते हैं, उसे लोक-व्यवहार की भाषा मानना चाहिए । इस रूप मे प्राकृत भाषा संस्कृत की तुलना मे लोक-व्यवहार की भाषा अधिक रही है । इसीलिए प्राकृत को सस्कृतोद्भव कहना ठीक नही लगता । प. किशोरीदास वाजपेयीजी ने शब्दानुशासन मे प्राकृत के महत्त्व को समझा और चाहा कि हिन्दी का उद्भव सस्कृत से न मानकर प्राकृत से मानना चाहिए । इस रूप मे दक्षिण की भाषाओं पर भी (सस्कृत से मुक्त) विचार होना चाहिए और ऐसा करते समय प्राकृत भाषा को महत्त्व देना चाहिए। प्राकृत के मूल ग्रथ दक्षिण भारत में (कर्नाटक में) लिखे गये हैं । विशेष रूप से जैन-दर्शन के ग्रथ प्राकृत मे लिखे हुए मिलते हैं । श्री कुन्दकुन्ददेव (विक्रम सवत् की प्रथम शताब्दी में) ने समयसार की रचना मूल प्राकृत मे की है । श्रवणबेलगोल के १०५ नम्बर के शिलालेख मे श्री कुन्दकुन्ददेव का उल्लेख मिलता है । प्राकृत भाषा कर्नाटक में प्रचलित न होती तो पप कवि आदिपुराण (भरत-बाहुबलि का वृत्त) तथा पोन्न शान्तिपुराण (सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित्र) कैसे लिखते ? कन्नड के आरम्भ के महाकवि सस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओं से परिचित रहे है ।

दाक्षिणात्य प्राकृत का उल्लेख मिलता है किन्तु उस पर विस्तार से लिखी हुई विशेष मामग्री नही मिलती ।

मूर्द्धन्य ध्वनियो पर नागप्पाजी ने विस्तार मे लिखा है और सच तो यह है कि प्राकृत भाषा में मूर्द्धन्य ध्वनियाँ अधिक मिलती है । इस दृष्टि से स्वतंत्र रूप मे विचार करने की आवश्यकता है ।

चाहता हूँ कि नागप्पाजी का उक्त कार्य पुस्तक रूप में नई भूमिका के साथ प्रकाशित हो । उनकी पुस्तक पढने के बाद मे दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे (२००१ ई के) बैंगलौर में उनसे पुन मिलना हुआ । हिन्दी अकादमी दिल्ली की (ओर से) आयोजित सगोष्ठी में वे आये थे । उनसे मैंने निवेदन किया कि उक्त पुस्तक को शीघ्र छपवाएँ । विश्वास करता हूँ कि वे इस बात पर ध्यान देगे और उक्त पुस्तक शीघ्र ही प्रकाशित करवाने का प्रयत्न करेंगे ।

☐ ☐

☐ २० अप्रैल १९९९ ई. को डॉ नागप्पाजी से उनके निवास स्थान पर **द्रविड परिवार** पर बातचीत हुई । मैने कुछ प्रश्न पूछे । उन्होने उत्तर दिये ।

प्रश्न द्रविड परिवार को स्वतत्र परिवार मानने के सम्बन्ध में आपके क्या विचार है ?

उत्तर पाश्चात्य विद्वानो का निर्णय है कि भारतीय आर्य भाषाएँ और द्रविड भाषाएँ पृथक् पृथक् आकर (Source) से निकली है । कतिपय विद्वान् लोग भारत में ये मानते हैं कि द्रविड भाषाएँ एक प्रकार की प्राकृत है, भारतीय मूल की है ओर उनके भारतीय आर्य भाषाओं के मेल को देखते हुए ऐसा लगता है कि ये भाषाएँ सर्वथा भिन्न नही है । तिलक जैसे विद्वानो का यह कथन है कि मूलत आर्य लोग पामीर के आसपास के रहनेवाले थे । और उनका मोहनजोदड़ो की सभ्यता से काफी निकट का सम्बन्ध था । यह बात विचारणीय है । यदि मोहनजोदडो की सभ्यता भारत मे (अखण्ड भारत मे) द्रविड भाषा और द्रविड जनता की सभ्यता से अत्यन्त निकट सम्बन्ध मान लेने की बात आजकल चल रही है। गोया मोहनजोदड़ो की सभ्यता मे आर्य और द्रविड़ का सुकर मेल है। इसका ठीक ठीक आकलन करना आवश्यक है । इस तथ्य की उपेक्षा नही कर सकते ।

प्रश्न क्या दविड परिवार की भाषाए मोहनजोदडो मे आर्यो की भाषाआ से सम्पर्क मे रही है ?

उत्तर द्रविड भाषाएँ केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित नही थी । उनकी व्यापकता आजकल के मध्यप्रदेश, बिहार तक ही नही, अफगानिस्तान तक व्यापक थी । अफगानिस्तान मे आजकल ब्राहुई — द्रविड परिवार की भाषा — (वास्तव मे बलूचिस्तान, आज पाकिस्तान मे) मानी जाती है । इससे यह अनुमान होता है कि द्रविड भाषाओं के साथ साथ आर्यभाषाओ का पर्याप्त साहचर्य था और उनका परस्पर प्रभाव एकदम निश्चित और असदिग्ध है । खास करके आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ की कृदन्त क्रियाएँ — इस बात का प्रमाण है कि संस्कृत मे जटिल तत्र होते होते शिथिल पड गया और द्रविड भाषाओ से प्रभावित हो गया । क्योकि द्रविड भाषाओ मे समस्त क्रियाएँ कृदन्तमूलक है । प काशीराम शर्मा की पुस्तक मे जो बाते कही हैं, उनमे मे अधिकाश सत्य पर आधारित हैं । उन पर विचार किया जाय ।

प्रश्न द्रविड परिवार का सम्बन्ध प्राकृत से बतलाने की कृपा करे ।

उत्तर प्राकृत मे शब्द के मध्य मे समसयुक्त व्यजन का प्रयोग अधिक है। द्रविड भाषा मे यह नियम ही है कि शब्द के मध्य में कही भी अमम सयुक्त व्यजन आ ही नही सकता ।

प्राकृत मे मूर्द्धन्य ध्वनियो का संस्कृत की अपेक्षा अधिक व्यवहार देखने मे आता है जैमे स वर्तते > प्रा वट्टई । उसका अपभ्रश है वॉटे। बट्टे (कन्नड) / बाटे (भोजपुरी) / बाट (हिन्दी) ।

कुमारिल भट्ट जो वार्तिककार रहा है, दक्षिण का है । उसने छंद पर पुस्तक लिखी है । आठवी शताब्दी का है ? उसने द्रविड भाषाओ को प्राकृत का एक रूप कहा है ।

कुछ और कहा —

☐ चटर्जी की पुस्तक Origin of Bengali Language पढनी चाहिए।

☐ तमिल को प्राचीन भाषा कहना चाहिए ।

☐ कन्नड — प्राचीन कन्नड तमिल भाषा से अधिक मिलती जुलती है। होते होते स्थान भेद के कारण कन्नड भाषा कर्नाटक तक मे सीमित रह

गई परन्तु महाराष्ट्र और आन्ध्र मे भी — कई प्रदेशो में — कन्नड भाषा चलती है। केरल का कासरगोड कन्नड भाषा-भाषी प्रदेश है। इसी तरह तमिलनाडु मे ऊटी तक कन्नड भाषा व्यापक थी।

☐ मूल द्रविड भाषा से सबसे पहले तमिल पृथक हुई। तदुपरान्त कन्नड की बारी आई।

☐ सातवाहनो के समय मे प्राकृत भाषा का व्यवहार दक्षिण भारत मे प्राचुर्य था। जैनो की प्राकृत समूचे दक्षिण भारत में चली। कन्नड साहित्य का सर्वप्रथम काल जैन-युग कहलाता है। इस युग के कवियो ने धार्मिक ग्रथ प्राकृत भाषाओ में लिखे। लौकिक वाङ्मय मे कन्नड का उपयोग किया। स्वयभू की रामायण प्राकृत भाषा मे है। डॉ रामकुमार वर्मा इसे हिन्दी भाषा का सबसे प्राचीन रूप मानते है। स्वयभू रामायण में दोहा-चौपाई की शैली है। इसी शैली मे जायसी का पद्मावत और तुलसी ने मानस लिखा है। प्राकृत के कई छद — रड्डा — कन्नड मे प्रचलित है। प्राकृत का दोहा तथा — कन्नड का द्विपदी छद का परस्पर सम्बन्ध क्या है ? यह विचारणीय है।

डॉ नागप्पाजी कहते जा रहे थे। मैं लिखता जा रहा था। वे थक से गए थे। बीच मे ही उन्होंने नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित लेखो की चर्चा की। उससे क्रम टूट गया। समय अधिक हो चुका था। अत मै लौट गया। यो वे सहज रूप मे बहुत कुछ कहने की स्थिति मे थे।

☐ ☐

मिथिक सोसाइटी ग्रंथालय

बैगलौर में मिथिक सोसाइटी ग्रथालय, नृपतुग रोड पर है। १९९५ ई मे जब उक्त ग्रथालय में गया था तो एक दिन ही मिला था। बैठकर कुछ विशेष कार्य नही हुआ था। इस बार मेरे पास २० से २२ अप्रैल तीन दिवस थे। मेरा आरक्षण २२ अप्रैल का रात्रि की गाडी से था। अत तीन दिन मैने उक्त ग्रथालय मे गुजारे। कुछ पुस्तको का प्रकाशन उक्त सोसाइटी ने किया है। वे पुस्तकें मैने खरीद ली। विशेष रूप से राष्ट्रकूटो के इतिहास पर, चालुक्यो तथा कदम्बों के इतिहास पर पुस्तके मुझे वहाँ पर मिलीं। वहाँ पर एक पुस्तक ने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। वह पुस्तक है — '**ज्ञानेश्वरीकालीन मराठी भाषेवर कन्नडचा प्रभाव**'। लेखक का नाम है रगनाथ शामाचार्य लोकापुर। उसको

दो दिन तक वही बैठकर पढता रहा । बाद मे मैने उससे आवश्यक टिप्पणियॉ भी पृष्ठ सख्याओ सहित लिख लीं । उसका प्रकाशन स्वयं लेखक ने बेलगाव से किया है । १९९४ ई मे प्रथम सस्करण छपा है । बाद मे औरंगाबाद आने पर लेखक के पते पर पत्र लिखा । पुस्तक वी पी पी. से आ गई । कन्नड-मराठी के ऐतिहासिक स्वरूप को पहचानने में पुस्तक उपयोगी है । मिथिक सोसाइटी का काम पूर्ण होते ही हम लोग २२ अप्रैल की रात्रि की 'लिंक एक्सप्रेस' से दूसरे दिन २३ अप्रैल १९९९ ई को रात्रि मे नौ-साढे नौ बजे परभणी पहुँच गये । तुरन्त औरगाबाद की ट्रेन मिल गई । २४ अप्रैल को सबेरा होने से पूर्व (रात्रि मे २ बजे) हम लोग औरंगाबाद पहुँच गए । सबेरे २४ अप्रैल को हम अपने घर पर थे ।

□ □

10

वाराणसी-इलाहाबाद की यात्रा
(मार्च २००० ई.)

मार्च २००० ई. के प्रथम सप्ताह मे पत्नी के साथ वाराणसी गया था। परीक्षा के कार्य से गया था। गोदौलिया स्थित बेरीजी की धर्मशाला मे ठहरा था। उस समय श्री कृष्णचन्द्र बेरीजी थे। वे मेरी पुस्तक **'चिन्तामणि चिन्तक रामचन्द्र शुक्ल'** छाप रहे थे। बेरीजी के घर पर गया था। मिल गये। कहा — 'पुस्तक छप गई है। जिल्द होने में कुछ और समय लगेगा।' वृद्ध हो गये थे। अपनी अभिरुचि की पुस्तके छापते थे। मेरा उनसे कोई परिचय नही था। उनके नाम का सुझाव श्री विश्वनाथजी (राजपाल एण्ड सन्ज) ने दिया। कहा इतनी बड़ी पुस्तक हम नहीं छापेंगे। श्री कृष्णचन्द्रजी से सम्पर्क करो। पुस्तक छप जाएगी और सचमुच सम्पर्क करने से पुस्तक छप गई। उसी समय श्री विश्वनाथजी ने प्रस्ताव किया — 'हमे आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की जीवनी लिखकर दीजिए।

१०० पृष्ठों मे अधिक नहीं होनी चाहिए।' मैंने पुस्तक लिख कर दी और वह पुस्तक उन्होने छाप दी।

वाराणसी की यात्राएँ पहले भी कई बार हुई हैं। पत्नी के साथ मे भी तीन-चार बार गया हूँ। १९७८ ई मे डी लिट् की मौखिकी मे भागलपुर जाना था। उस समय डॉक्टर साहब सेवानिवृत्त नही हुए थे। BHU के कैम्पस में प्रोफेसर्स क्वार्टर मे रहते थे। मै उनके क्वार्टर मे ठहरा था। भागलपुर जाते समय पत्नी को और नम्मू को डॉक्टर साहब के घर पर ही छोडा था। भागलपुर से लौट आने पर पत्नी तथा नम्मू को वाराणमी घूम कर दिखलाया था। मार्किट भी गए थे। उस समय नमिता ग्यारह वर्ष की थी। सबेरे-सबेरे डॉक्टर साहब के साथ मे नम्मू को लेकर गगा-स्नान के लिए गए। लका से एक रास्ता गगाजी की ओर जाता है। यूनिवर्सिटी गेट से बाहर निकलते ही दाहिनी ओर का रास्ता गगाजी की ओर जाता है। डॉक्टर साहब हमे उसी रास्ते से ले गए। हमे स्नान करने के लिए गगा पार जाना था। गंगा पार सामने रामनगर का किला था। वाराणसी के राजासाहब का वह आवास था। इससे पूर्व मै रामनगर जाकर आया था किन्तु उस समय राजधाट से गया था। वाराणसी से रामनगर तक बस जाती है। उससे गया था। वहॉ की प्रदर्शनी देखी थी। वह दूर का रास्ता है। उस समय तो डाक्टर माहब हमे पैदल ही कच्चे पुल पर मे ले गए। दूसरे किनारे पर बहता पानी निर्मल—शुद्ध जल था। स्नान किया। उस समय नम्मू डर रही थी। डॉक्टर माहब ने उसे डुबकी दी। वह घबराई किन्तु बाद मे ठीक हो गई। नम्मू को गगाजी का वह दृश्य आज भी याद है।

१९७८ ई चाची थी। डॉक्टर साहब इतने व्यस्त रहते कि चाची को लेकर बाहर जाने के लिए समय नहीं रहता। सदैव यात्रा पर रहते। घर पर बहुत कम रहते। किन्तु जब भी रहते और मैं वहाँ पर रहता तो उनके साथ घूमता रहता था। वे मुझे लेकर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के आवास पर ब्रह्मनाल ले गए। डॉ शिवप्रसादसिह के आवास पर भी मेरे साथ आए। शिवप्रसादसिह तो उनके पडोस में गुरुधाम में ही रहते थे।

१९७८ ई मे ही मैंने डॉक्टर साहब से कहा—'मै चाची को लेकर रेलवे इजिन का कारखाना देखना चाहता हूँ। नमिता को दिखलाना है।' डॉक्टर साहब ने अनुमति दे दी। हम सब को डॉक्टर साहब ने कारखाने के समीप के गेट के पास छोड दिया और वे चले गए। हम भीतर गए। घूमकर कारखाना देखा।

नम्मू प्रसन्न थी । चाचा भी बहुत प्रसन्न हुई । घूम फिर कर वहाँ के कॅटीन मे गए । वहाँ पर मिठाई, नमकीन, चाय काफी — सब कुछ सस्ते दामों पर उपलब्ध थे । इच्छानुसार सबने खान-पान किया । कुछ आराम किया । लौटने मे कुछ समय हो गया । अंधेरा होने से पूर्व ही हम क्वार्टर पर पहुँच गए थे । हम लोग जब भागलपुर गए थे, उस समय नम्मू और पत्नी चाची के साथ किसी को साथ लेकर विश्वनाथजी के मन्दिर दर्शनार्थ गई थी । एक दिन बाजार घूमने मे गया। उसके बाद हम लौट गए थे ।

१९७८ ई मे इलाहाबाद नही गया था । मै तो दो तीन बार इलाहाबाद गया था । किन्तु पत्नी के साथ इलाहाबाद नहीं गया था । इसीलिए २००० ई के मार्च में इलाहाबाद जाने की इच्छा हुई । उस समय डॉक्टर साहब को साथ लेकर वाराणसी के जैनों के तीर्थ स्थल देखे । जैनो के चार तीर्थकरो के मन्दिर वाराणसी मे और उसके आसपास में है । भेलूपुरा में पार्श्वनाथजी का मन्दिर है । गगाजी के घाट पर सुपार्श्वनाथजी का मन्दिर हे । सारनाथ में श्रेयासनाथजी का है । वहाँ से निकट गगाजी के घाट पर एक और तीर्थंकर का क्षेत्र है । मै अकेला जाने के लिए तैयार नहीं था । किन्तु पत्नी के आग्रह को डॉक्टर साहब ने स्वीकार किया । इसीलिए मै तैयार हो गया । गोदौलिया से टैक्सी की और हम सब घूम आए । सारनाथ भी देखा । वहीं पर भोजन किया । सबेरे निकले थे । दो-ढाई बजे तक हम लौट आए । २००० ई मे चाची नहीं थी । डॉक्टर साहब घर पर अकेले रहते । बाहर जाते तो घर बन्द रहता । इसीलिए जब तक चाची थी तब तक तो उनके घर पर ही ठहरता था । बाद में दूसरी ओर ठहरने लगा था ।

मैंने वाराणसी मे जो जैन मन्दिर देखे, उनमे भेलूपुरा का मन्दिर विशाल है । वहाँ पर दिगम्बरो तथा श्वेताम्बरो के मन्दिर पास-पास में है । दिगम्बरों के मन्दिर का नवीकरण हो गया है । धर्मशाला भी बनी हुई है । प्रांगण भी विशाल है । उसका प्रवेश द्वार बना हुआ है । श्वेताम्बरों का मन्दिर का कार्य अपूर्ण है । कार्य जारी है । पुराने मन्दिर के अवशेष है । दादावाडी भी है । वहाँ पर भी सारी व्यवस्था है । मैं बहुत बार वाराणसी गया किन्तु मन्दिर में कभी नही गया । पत्नी के आग्रह से घूम फिर कर सब देखा । गोदौलिया से डॉक्टर साहब के घर पर — गुरुधाम — पहुँचना हो तो भेलूपुरा रास्ते मे हे । पार्श्वनाथजी के मन्दिर के बाहर रास्ते पर ही 'पद्मावती' का मन्दिर है । 'पद्मावती' उस

ागिन का नाम है, जिसका उद्धार स्वय पार्श्वनाथजी ने किया है । कथ कार है —

"पार्श्वकुमार एक बार महल से बाहर का निरीक्षण कर रहे थे । उन्होंने देखा कि नागरिको की अपार भीड एक ही दिशा मे जा रही है । अनुचर से पता लगा — उद्यान मे कमठ नामक एक घोर तपस्वी आये हुए हैं । पचाग्नि तपते हैं । लोग उन्हीके दर्शनार्थ जा रहे है । कुतुहलवश पार्श्वकुमार भी वहाँ गये । अग्नि ज्वाला आकाश को छू रही थी, बडे-बडे लक्कड़ जल रहे थे । पार्श्व ने अवधि ज्ञान से जलते हुए लकडो मे एक नाग दम्पत्ति को देखा। उन्होने तत्काल तपस्वी से कहा — धर्म तो अहिसा मे है, अहिसा विहीन धर्म कैसा? तुम जो पचाग्नि तप रहे हो इसमें तो एक नाग और नागिन जल रहे है । तपस्वी के प्रतिकार करने पर पार्श्व ने लक्कड को चिरवाया । उसमे से जलते हुए नाग-दम्पत्ति बाहर आकर तड़फड़ाने लगे । पार्श्व ने उन्हें नमस्कार महामंत्र सुनवाया तथा तपस्वी पर क्रोध नही करने की सलाह दी । उसी समय दोनों के प्राण छूट गये । मरकर वे नागकुमार देवो के इन्द्र व इन्द्राणी — **धरणेन्द्र** व **पद्मावती** के नाम से उत्पन्न हुए । तापस का प्रभाव घट गया। उसने क्रुद्ध होकर अनशन कर लिया । मरकर वह मेघमाली देवता बना ।"

(मुनि सुमेरमल की पुस्तक 'तीर्थंकर चरित्र' से पृ १६०-१६१)

कथा यही समाप्त नही होती । आगे लिखा है —

"कुछ समय बाद प्रभु कोशावन से विहार कर आगे तापसाश्रम मे पहुँचे तथा वहाँ पर वटवृक्ष के नीचे ध्यान मुद्रा में खडे हो गए। इधर कमठ तापस ने देव होने के बाद अवधि-दर्शन से भगवान पार्श्व को देखा । देखते ही पूर्व जन्म का वैर जाग पड़ा । भगवान को कष्ट देने के लिए वहाँ आ पहुँचा । पहले तो उसने शेर, चीता, व्याघ्र विषधर, आदि के रूप बनाकर भगवान को कष्ट दिये । किन्तु प्रभु मेरू की भाँति अडोल बने रहे । अपनी विफलता से देव और अधिक क्रुद्ध हो उठा । उसने मेघ की विकुर्णवा की । चारों ओर घनघोर घटाएँ छाने लगी । देखते-देखते मुसलधार पानी पडने लगा ।

बढता-बढता वह घुटने कमर छाती को पार करता हुआ नासाग्र तक पहुँच गया । फिर भी प्रभु अडोल थे । तभी धरणेन्द्र का आसन कम्पित हुआ । अवधि-ज्ञान से उसने भगवान को पानी मे खडा देखा । सेवा के लिए तत्काल दौड आया । वन्दन करके उसने प्रभु के पैरो के नीचे एक विशाल नालवाला पद्म (कमल) बनाया। स्वय ने सात फणो का सर्प बनकर भगवान के ऊपर छत्री कर दी । प्रभु के तो समभाव था । न कमठ पर रोष और न धरणेन्द्र पर अनुराग । कमठासुर देव फिर भी बारिश करता रहा । धरणेन्द्र ने फटकार कर कमठ से कहा — 'रे दुष्ट ! अब भी तू अपनी धृष्टता नही छोड़ता ? प्रभु तो समता मे लीन हैं और तू अधमता के गर्त मे गिरता ही जा रहा है ।' धरणेन्द्र की फटकार से कमठ भयभीत हुआ । अपनी माया समेट कर प्रभु से क्षमायाचना करता हुआ चला गया । उपसर्ग शांत होने पर धरणेन्द्र भी भगवान की स्तुति कर लौट आया ।"

(वही पुस्तक पृ १६३)

वाराणसी मे पार्श्वनाथजी के मन्दिर के पास गेट से बाहर भेलूपुरा की मुख्य सडक पर पद्मावती का मन्दिर है । वह पद्मावती वही है, जिसका उद्धार स्वयं पार्श्वनाथ ने किया है । पार्श्वनाथजी की माता का नाम वामादेवी था और पिता का नाम अश्वसेन था ।

भारत मे जैन मन्दिरों मे पार्श्वनाथजी के मन्दिर सब से अधिक है । नागदेवता के उद्धार की कथा पार्श्वनाथजी से जुड़ी हुई है । और भी कथाएँ हैं । 'पद्मावती' — को स्पष्ट करने के लिए मैंने वह कथा लिखी है ।

इस यात्रा से पूर्व मैंने डॉ जगदीश गुप्त को पत्र लिखा था । पत्र इस प्रकार है —

'रत्नदीप'
५, मनीषा नगर, केसरसिंहपुरा,
औरगाबाद (महाराष्ट्र) ४३१ ००५
दिनांक १४ जनवरी २०००

आदरणीय डॉक्टर जगदीश गुप्त

मै किसी कारणवश मार्च में वाराणसी जा रहा हूँ । वहाँ से लौटते समय इलाहाबाद आना चाहता हूँ । इलाहाबाद विशेष रूप

से — आपसे मिलने, आपके साथ दो-तीन दिन साहचर्य में गुजारने हेतु आ रहा हूँ । आपकी समस्त रचनाएँ, आपका संग्रहालय, ग्रंथालय — देखने की इच्छा है । लौटने के बाद कुछ लिखूँगा । इसीलिए मै दो-तीन दिन आपके निवास स्थान पर ही ठहरूँगा । विश्वास करता हूँ कि आपका सहयोग मिलेगा ।

इलाहाबाद मे आसपास के (चित्रकूट आदि) स्थलों को देखने के लिए टूरिस्ट बस होगी तो जाना चाहूँगा ।

लौटने का आरक्षण मैने इलाहाबाद से ले लिया है ।

७/८/९ — मार्च २००० को वाराणसी में रहूँगा १०/११/१२ — मार्च इलाहाबाद मे रहूँगा । १३ मार्च २००० को महानगरी से लौटने का आरक्षण है । विश्वास करता हूँ कि आप इलाहाबाद मे होगे । किसी कारण से आपकी व्यस्तता उन दिनो मे अन्यत्र हो तो लिखिएगा ।

आपका पत्र मिलने पर ही आऊँगा ।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि वाराणसी पहुँचने तक **चिन्तामणि चिन्तक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** — पुस्तक छप जाएगी । श्री कृष्णचन्द्र बेरीजी उसे छाप रहे हैं । यदि पुस्तक छप गई तो पुस्तक लेकर आऊँगा ।

आप स्वस्थ एवं सानन्द होगे ।

विनीत

राजमल

मार्च २००० ई. मे ही वाराणसी से लौटते समय इलाहाबाद जाने का निर्णय किया । मै तो तीन-चार बार पहले भी अपने काम से इलाहाबाद गया था किन्तु पत्नी के साथ कभी नही गया । पत्नी को इलाहाबाद दिखलाने की इच्छा थी। दूसरी बात, मैंने विचार कर लिया था कि वाराणसी की यह मेरी अन्तिम यात्रा होगी और इलाहाबाद भी पुन आना नही होगा । डॉक्टर साहब से भी कह दिया था कि अब वाराणसी आना सभव नही होगा । उनसे कहा कि इलाहाबाद जाऊँगा और वहाँ से सीधे औरगाबाद लौटूँगा । उन्होंने 'साहित्य सम्मेलन' के अतिथि भवन मे ठहरने के लिए कहा ।

२००० ई. मे डॉक्टर साहब ८० वर्ष के हो गए थे । घर पर एकदम अकेले रहते थे । तीनो पुत्रो मे से सब से छोटा संजीव घर पर ही ऊपर दूसरी मंजिल

पर रहता है। पहली मंजिल पर राजीव रहता था। किन्तु वह तो अब मध्यप्रदेश में किसी कालेज में प्राध्यापक है। उसकी पत्नी लखनऊ में काम करती है। ज्येष्ठ पुत्र अशोक BHU में हिन्दी विभाग में रीडर है। उसको लंका के पीछे की कालोनी में फ्लैट खरीद कर दिया है। डॉक्टर साहब की सेवा के लिए समय पर कोई उपस्थित नही रहता। वाराणसी में रहते हुए भी डॉक्टर साहब के घर पर ताला रहता है। बाहर से लौटते है, तब ताला खुलता है। वे अब भी सारा काम — अपना काम — स्वयं करते है। कहते है — 'मैं तो फकीर हो गया हूँ।' उन्होंने अपना सारा रुपया, अपने गॉव की स्कूल के लिए खर्च किया है। गॉव मे स्कूल खोल दी है। गॉव की सड़क को दुरस्त किया और उसे मुख्य बड़ी सड़क से जोड़ दिया है। थोड़े मे गुजारा करते है और अब भी जो कुछ मिलता है, उसमे से सजीव को देते रहते है। घर पर एकमात्र वही पुत्र है। फोन ऊपर सजीव के पास है। डॉक्टर साहब से बात करने का प्रयत्न करो तो फोन पर जल्दी मिलते नही। उनसे मैं अन्तिम बार २००० ई में मिला हूँ। २००२ तक उनके पत्र मिलते रहे। एक वर्ष हो गया — कोई समाचार नहीं मिला। और मैं उस समय लौटते समय जानता था कि अब मुझे पुनः वाराणसी आना नहीं है। इसीलिए सोचा कि इलाहाबाद होते हुए जाएँ क्योंकि इलाहाबाद पुनः आना सभव नहीं होगा।

इलाहाबाद मे हम लोग डॉक्टर साहब के निर्देशानुसार साहित्य सम्मेलन के अतिथि भवन मे ठहरे थे। वहाँ पर ठहरने के लिए हमारे पास दो दिन थे। ग्यारह और बारह मार्च २००० ई। तेरह मार्च २००० का हमारा महानगरी मे आरक्षण हो गया था। ग्यारह मार्च को हम लोग सायकाल मे डॉक्टर जगदीश गुप्त के आवास पर गये। इससे पूर्व भी जब-जब इलाहाबाद गया हूँ, उनसे मिला हूँ किन्तु इस बार का मिलना कुछ और ही था। उनके घर पर मेहमान थे। एक दिन पूर्व ही उनके पुत्र का विवाह हुआ था। मेहमान लौटे नही थे। ऐसी स्थिति मे भी, वे अकेले आराम कुर्सी पर बैठे हुए थे। मुझे देखते ही उठ खड़े हुए। गले से मिले। बैठाया। बात की। उनकी पत्नी व्यस्त थी। वही सब कुछ कर रही थी। उनके पुत्र भी काम कर रहे थे। जगदीश गुप्त अकेले बैठे हुए थे। थक गए थे। काम करने की स्थिति मे नही थे। उनका सहायक वहाँ आया। उसने घूम फिर कर हमें उनका पुस्तकालय दिखलाया। बात करते समय, लगता था कि उन्हें बहुत कुछ कहना है किन्तु कहने की स्थिति मे नहीं है।

अपनी कविता की नवप्रकाशित पुस्तक दी । १९६७ ई में उनकी **प्रागैतिहासिक चित्रकला** पुस्तक प्रकाशित हुई थी । मै उसकी फोटो कापी चाहता था । तदर्थ उनके सहायक को दो सौ रुपये दिए । भिजवाने कहा । मुझे तो लौटना था । उस दिन किसी के निधन की शोक सभा थी । उसमे उन्हे जाना था । जाने की स्थिति में नही थे । फिर भी तैयार हुए । हमने कहा, आपको हम 'साहित्य सम्मेलन' के निकट छोड देगे । गाडी पर उनके साथ लौटे रास्ते मे शोक सभा के स्थान पर ठहरे तो पता चला कि शोक सभा ५ बजे के स्थान पर ६ बजे होगी । मुरली मनोहर जोशी (केन्द्रीय मन्त्री) उस दिन वही पर थे । वे भी शोकसभा मे आनेवाले हैं । डॉ जगदीश गुप्त एक घण्टे तक प्रतीक्षा करने की स्थिति मे नही थे । वे लौटना चाहते थे । हमे साहित्य सम्मेलन के निकट छोडकर वे लौट गए ।

हमे अतिथि भवन मे जाते हुए श्री हरिमोहन मालवीय ने देख लिया । उस समय वे हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अध्यक्ष थे । 'हिन्दुस्तानी' के प्रधान सम्पादक भी थे । पहले जब मिला था, उस समय वे 'सम्मेलन पत्रिका' का सम्पादन करते थे । पहले सम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' थे । श्री हरिमोहन मालवीय मिले । बात हुई । उस दिन सवेरे हम हिन्दुस्तानी एकेडेमी गए थे । वहाँ पर देखा कि एकेडेमी बन्द है । इसीलिए एकेडेमी से लौटने से पूर्व हम लोगों ने वहाँ से निकट पं. जवाहरलाल नेहरू का निवास स्थान 'आनन्द भवन' देखा । प्रदर्शनी के लिए खुला था । दर्शनार्थियो को काउटर पर टिकट मिलता था । हमने दो टिकट लिए । नीचे और ऊपर भवन के दोनो स्थान देखे। हर कमरे से बाहर काँच लगे हुए हैं । उनके माध्यम से भीतर के कमरे को खुले रूप मे देखा जा सकता है । नीचे प मोतीलाल नेहरू रहते थे । उनके सभी कक्ष थे । ऊपर की ओर एक ओर प. जवाहरलाल नेहरू के कक्ष थे । और दूसरी ओर श्रीमती इदिरा गाधी के कक्ष थे । दोनों के ही ग्रंथालय अलग-अलग रूप मे है और वे सारी पुस्तके वैसी ही रखी हुई है । टेबल-कुरसी यथास्थान रखे हुए है । ऊपर ही एक ओर महात्मा गाधी का कक्ष है । जब भी महात्माजी इलाहाबाद आते वे उसी कक्ष मे ठहरते थ । बड बडे फोटाग्राफ्स लगे हुए थे। यह सब देखने में हमे एक घण्टे से अधिक लग गया । बाद मे वही पर कुछ देर आराम किया । आनन्द भवन का अहाता बहुत बडा है । गार्डन है, पेड है, हरियाली है । और सब की देखभाल करनेवाले लोग है । वह 'भवन' अब राष्ट्र को समर्पित है । कम्पाउण्ड की दीवार के निकट कमरे बने हुए है । उनमे प्रदर्शनी

है। फोटोग्राफ्स लगे हुए हैं। कार्यालय है और पुस्तक-प्रदर्शनी भी है। मैंने श्रीमती इंदिरा गांधी की एक पुस्तक 'मेरा बचपन' खरीदी। वहाँ से सीधे हम दारागंज गए। और दारागंज से लौटते-लौटते पाँच बज गये। श्री हरिमोहन मालवीय ने बतलाया कि कल सायकाल मे १२ मार्च २००० ई. को आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का भाषण 'साहित्य सम्मेलन' मे होगा। पुन मिलूँगा कहकर वे चले गए। दूसरे दिन हम लोग 'सगम' देखने गए। इससे पहले मैंने 'सगम' का दृश्य दारागंज से — दूर से देखा था। डॉ. जगदीश गुप्त अपने निवास स्थान से नागवासुकि के मन्दिर तक ले गए थे। लेटी हुई विशाल मूर्ति दिखलाई थी। बाद मे गगाजी के किनारे ले गए और दूर से संगम दिखलाया। सगम वहाँ से बहुत दूर था। अलग से देखने पर ही उसका स्वरूप हम लोग जान सकते है। हम लोग सगम गए। ठीक उस किनारे तक गए, जहाँ से लोग नावो मे बैठकर संगम-स्नान के लिए जाते है। किनारे-किनारे घूम कर गगाजी के दूसरे छोर की ओर देखा। विशाल पट है। दोनो नदियाँ जहाँ मिलती हैं, वही तो संगम स्थल है। बीच धारा तक पहुँच कर देखना और भी मनोहर रूप देखना होता। हम लोगों ने गगाजी के जल का स्पर्श किया। कोइ साथ मे होता तो हम नाव में बैठकर जाते और नहाकर लौटते भी। अकेले जाने की इच्छा नही हुई। दूर से हम देख रहे थे कि तीर्थयात्रियो की कतार लगी हुई है। नावो मे बैठकर लोग सगम-स्नान के लिए जा रहे है। जिनका सगम-स्नान हो गया है, वे लौटकर आ रहे है। हम लोग घूमते रहे। सामने से पीछे की ओर देखा तो इलाहाबाद का विशाल किला है। किले के निकट ही वाहक रुक जाते है। लौटकर हम लोग किला देखने भीतर गये। वह यात्रियों के लिए पूरी तरह खुला हुआ नहीं है। नदी के पाट से काफी ऊंचा है। भीतर खुला आगन है। एक ओर लोग किले के नीचे उतरते हुए — गुफा मे — हमने देखा। नीचे कोई मंदिर है। ऐसा समझ कर हम लोग गए। छत पर तो ऊपर खुला आगन है। नीचे पहुँचकर सब कुछ रहस्यमय लगा। समझाने और बतलानेवाला कोई नही था। भीड़ के साथ गए और निकल आए। रहस्यमयी मूर्तिया थीं। बाहर आने पर हमको लौटना ही था। किला देखने की अनुमति नहीं थी। सगम से लौटने के बाद हम कहीं नहीं गए। साहित्य-सम्मेलन के अतिथि भवन में ठहरे रहे। उसी दिन १२ मार्च २००० ई. को आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का व्याख्यान था। भारतीय पद्धति की बैठक थी। लोग यथासमय पहुँच गए। मंच पर बैठनेवालों मे आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री के साथ डॉ. सत्यप्रकाश

मत्र थ । उस समय वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष थे । आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री, हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल थे । व्याख्यान का मुख्य विषय **'कबीरदास के मूल स्वरूप पर पडे आवरण'** था। उक्त व्याख्यान के साथ साथ उन्हें एक पुस्तक का विमोचन करना था । **'नामवरसिंह के पत्र'** उस समय शाति प्रकाशन, ८४/४ पुराना नेहराना, इलाहाबाद ने प्रकाशित की थी । पुस्तक मे प्रकाशित ९४ पत्र श्री नारायण पाण्डेय के नाम लिखे गए है । ये पत्र १५-७-१९५५ (प्रथम पत्र) से ११-१-१९९७ ई. (अन्तिम पत्र) के बीच के है। लगभग ४२ वर्षो मे समय-समय पर लिखे गए पत्र हे । श्री नारायण पाण्डेय और पुस्तक के प्रकाशक मेरे पास मे बैठे हुए थे । उन्होने एक प्रति मुझे भेट स्वरूप दे दी । पुस्तक का विमोचन हुआ । बाद म व्याख्यान भी हुआ । आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री भारत के गिने चुने वक्ताओ मे है । धाराप्रवाह बोलते हे । बोलने मे सहजता रहती है । उस दिन का व्याख्यान शोध पूर्ण था । कबीरदास के मूल स्वरूप को समझाने और ठीक से समझने का उनका आग्रह था । इस मूल स्वरूप पर पडे हुए आवरणो को वे उजागर करते गए । आच्छादना को हटाते गए । आवरणो को हटाकर मूल स्वरूप को पहचानने के लिए कहा । कबीरदास पर जिन विद्वानो ने काम किया है, उनके अध्ययनो की कथा क्रमश. उन्होने सुनाई। सच तो यह हे कि उक्त विषय पर उन्होने शोध लेख पहले ही लिख लिया था। उक्त लेख को उन्होने याद कर लिया था । उनकी स्मरण शक्ति गजब की है । उनके कठ मे विद्या (सरस्वती) विराजमान हे । उन्होने आलेख पढा नही । वैसे ही सहज व्याख्यान दिया । घर लौटने पर मैने अप्रेल २००० ई मे, समकालीन भारतीय साहित्य अक ८८, मार्च-अप्रैल २००० का ताजा अक देखा । उस अंक में पहला लेख वही प्रकाशित है । पूरा पढ डाला । लगा कि पूरा लेख यथावत (बिना भूले) उन्होने सुनाया है । उसके बाद अल्पाहार के लिए हम सब लोग दूसरे कक्ष मे गए । उस भीड में आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री निकट आकर हम दोनो को मिले। बात करने के लिए समय नही था । मैने ही सहज मे कहा — 'शिमला आने की इच्छा हे । वहा पर आकर मिलूगा ।' शास्त्रीजी ने कहा — 'जरूर आओ ।' बाद मे उसी कक्ष मे डा रामकमलराय मिले । श्री हरिमोहन मालवीय भी मिले दक्षिण के दो विद्वानो से उन्होने भेंट करवाई । उनके नाम है — श्री बालसुब्रह्मण्यम (चेन्नई) और दूसरे अमृतवल्लु शेषकुमार (नेल्लूर के) । उनका सम्बन्ध आकाशवाणी से रहा है । श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय भी मिले । वे आकाशवाणी इलाहाबाद मे

दूरदशन मे (१९८९-१९९२ ई तक) काम करते रहे है । श्री हरिमोहन मालवीय ने दक्षिण के दोनो विद्वानो के साथ मुझे भी सम्मिलित कर लिया । स्वय वे और मै — इस तरह चारो के सवाद का कार्यक्रम आकाशवाणी, इलाहाबाद मे आयोजित किया । उक्त कार्यक्रम १३ मार्च २००० ई को सबेरे दस बजे रखा गया । यह सारी बातचीत अल्पाहार के कक्ष मे हुई । उस दिन रविवार था । दूसरे दिन दोपहर को महानगरी से १३ मार्च २००० हम लौटना था । यह मैने श्री हरिमोहन मालवीय को बतला दिया था । उन्होने आश्वस्त किया कि आपको ठीक समय पर स्टेशन पहुँचा दिया जाएगा ।

उसी समय आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री को एक और जगह जाना था । श्री हरिमोहन मालवीय ने हमारे जाने का प्रबन्ध कर दिया । उसमें कुछ विलम्ब था । तब तक एक दूसरे कार्यक्रम मे गए । उक्त कार्यक्रम श्रीधर मिश्र द्वारा आयोजित था । उत्तर प्रदेश के विधानसभा के अध्यक्ष के काव्यसग्रह 'आयुपख' से सम्बन्धित था । हाल भरा हुआ था । हम लोग पीछे बैठे थे । यथासमय हम निकल गये । आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री के दूसरे कार्यक्रम में पहुँच गये । वहाँ पर जगदीश गुप्त पहुँच गए थे । उनसे फिर बात हुई । मच से आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री ने अपने व्याख्यान मे जगदीश गुप्त की कविता सुनाई । उन्हे बहुत-सी कविताएँ याद रहती है । लौटते समय मैंने जगदीश गुप्त से कहा कि — आपके साथ बात पूरी नही हुई तो बोले — 'बात कभी पूरी नहीं होती । शेष कुछ रहने दो ।' हम लोग लौट गये ।

दूसरे दिन हमें लौटना था । समय पर गाडी आ गई । हम लोग लौटने की सारी तैयारी करने के बाद ठीक दस बजे आकाशवाणी पहुँच गए । हमारे सहयोगी दक्षिण भारत के विद्वान् पहुँचे नही थे । मै परेशान था । साढे ग्यारह बजे पहुँचे । उसके बाद श्री हरिमोहन मालवीय ने आकाशवाणी की व्यवस्था बतलाई । सयोजन उन्होने किया । चारों का सवाद हुआ । रिकार्डिग हुई । आवश्यक कागजात पर सब कुछ लिखवाया गया । हस्ताक्षर हुए । इसमें लगभग एक बज गया । गाडी पर पहुँचना था । श्री हरिमोहन मालवीय ने हमे गाडी दी । साहित्य सम्मेलन, पहुँचकर उसी गाडी मे हमने सामान रखा । ठीक समय पर स्टेशन पर पहुँच गए । महानगरी हमे मिल गई । हमारी यह इलाहाबाद की अन्तिम यात्रा थी । पूरे तीन दिन व्यस्त रहे । ट्रेन मे बैठकर मैने 'नामवरसिंह के पत्र' — पुस्तक पढना शुरू किया । जबलपुर तक पहुँचते-पहुँचते मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ली ।

□ □

दिल्ली तथा शिमला : पारिवारिक यात्रा (मई २००० ई.)

वाराणसी-इलाहाबाद से लौटने के बाद मैने आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का उल्लेख घर मे किया। विशेष रूप से अनिल के सम्मुख किया। अनिल शिमला की यात्रा के लिए तैयार हो गया। यह यात्रा मई २००० ई मे करनी थी। घर मे चर्चा मार्च २००० ई से शुरू हो गई। मै स्वय पारिवारिक यात्रा के पक्ष में था। नमिता और कँवरसाहब भी तैयार हो गए। अनिल तथा उसकी बहू भी तैयार हुए। नमिता के दोनों बच्चे चीकू (चिराग) और मितू (मिहिका) तथा अनिल के दोनों बच्चे — दिशा और दिव्या — सभी तैयार हो गए। हम दोनो तो पहले से तैयार थे। ऐसी पारिवारिक यात्रा की योजना इससे पूर्व बनी नही। १७ मई २००० के टिकट हमें लेने थे। १७ मई २००० ई. का हम सब लोगो का आरक्षण हो गया। योजना के अनुसार १८ मई २००० ई. को हम लोग दोपहर मे दिल्ली पहुँचनेवाले थे और तुरन्त उसी दिन रात्रि में कालका मेल से कालका जानेवाले थे। कालका से आगे शिमला की ट्रेन अलग थी। इस तरह १९ मई को दोपहर में शिमला पहुँचनेवाले थे। तदनुसार मैंने शिमला को पत्र भी लिख दिया था।

आरक्षण हो जाने के बाद केन्द्रीय हिन्दी सस्थान, आगरा से डॉ महावीरसरन जैन का पत्र मिला कि १९ मई २००० को सबेरे ग्यारह बजे राष्ट्रपति भवन मे उपस्थित रहना है। राहुल साकृत्यायन पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। तदनुसार दिल्ली तक का आरक्षण हमारा ठीक था किन्तु दिल्ली से कालकाजी तक का आरक्षण कैंसल कर १९ मई की रात्रि का नया आरक्षण करना था। तदनुसार आरक्षण की तिथियाँ बदली गईं। अनिल ने शिमला फोन किया और हमारे लिए २ कमरों की व्यवस्था करवा ली। मुझे फोन से बात करने की विशेष आदत नही किन्तु लडके तो फटाफट फोन करते है और अपना कार्य कर लेते है। वस्तुत हम दोनों मात्र जाते तो व्यवस्था में कठिनाई होती। अनिल साथ में था इसीलिए मैं निश्चिन्त था। २०, २१, तथा २२ मई — तीन दिन शिमला मे ठहरना था। २४ को सबेरे दिल्ली पहुँचना था। पुन दिल्ली मे २४ तथा २५ को रहना था। २६ मई २००० ई. की सचखण्ड से हमे औरगाबाद लौटना था। कँवरसाहब हमारे साथ दिल्ली तक रहनेवाले थे। २६ को सबेरे वे लोग जयपुर होते हुए उदयपुर (अपने गॉव) जानेवाले थे।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार :

सचखण्ड द्वारा नई दिल्ली स्टेशन पर हम सब लोग १८ मई को दोपहर मे

पहुचे । हमारे साथ सामान भी बहुत था । प्लेटफार्म पर सामान उतार कर रखा। वहाँ पर केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के लोग पहुँच गए थे । खोज रहे थे । हमे मिले और बाद मे उन्होंने हमारी व्यवस्था कर दी । उनके द्वारा अतिथि भवन तक पहुँचाने की व्यवस्था थी । कुतुबमीनार के मुख्य मार्ग पर हमारा अतिथि भवन था । हमे तीन कक्ष मिल गए ।

उक्त अतिथि भवन मे मेरी तरह पुरस्कार प्राप्त करनेवाले और विद्वान् और उनके परिजन ठहरे हुए थे । वस्तुत इस पुरस्कार की घोषणा १९९८ ई. मे हो गई थी और नियमानुसार पुरस्कार वितरण १९९९ ई मे होनेवाला था । उस समय सरकार बदल गई थी । चुनाव हुए । वही सरकार चुन कर आई । मुरली मनोहर जोशी का मंत्री पद वही रहा । उनके मत्रालय द्वारा पुरस्कार दिया जा रहा था। पुन बदली हुई तिथि मे हम लोग पहुँचे थे । इस समय १९९८ ई तथा १९९९ ई. दोनो वर्षो के सदस्य थे ।

मेरे साथ पुरस्कार प्राप्त करनेवालो मे जिनको मै जानता था, उनमे डॉ नागेन्द्रनाथ उपाध्याय (वाराणसी) थे । पुरस्कार लेने उनकी पत्नी आई थी । अतिथि भवन मे भेंट हुई । डॉ विजयेन्द्र स्नातक को भी पुरस्कार मिलने वाला था । स्नातकजी उस समय नहीं थे । उनके परिवार का कोई सदस्य पुरस्कार लेने आया था । डॉ. रामविलास शर्मा का नाम भी था । आ नहीं सकते थे । और वैसे वे पुरस्कार के विशेष अभिलाषी कभी नही रहे । उन्होंने अपने पुरस्कार दान मे दे दिए । प्रसिद्ध कहानीकार और संचेतना के सम्पादक डॉ. महीपसिंह राष्ट्रपति भवन में मिले। वाल्टेर के डॉ. आदेश्वरराव थे । सूची लम्बी है । विशेष अतिथियों के रूप में प्रो. कल्याणमलजी लोढा (कोलकाता), डॉ ना. नागप्पा (बैंगलौर), डॉ. कमलकिशोर गोयनका और अनेक थे । दक्षिण भारत के विद्वान् भी थे । मै तो नये सदस्यो से परिचय प्राप्त करने मे व्यस्त था। अनिल, कँवरसाहब और बच्चे सब कुतुबमीनार देखने गये । हम दोनो नही गए। बच्चे सभी प्रसन्न थे । उनके लिए सब कुछ नया था ।

दूसरे दिन हमें राष्ट्रपति भवन ले जाने के लिए बस की व्यवस्था की गई थी । हमें एक घण्टा पहले पहुँचना था । नौ बजे तक तैयार होना था । सब लोग तैयार हुए । यथासमय हम लोग राष्ट्रपति भवन पहुँचे । वहाँ पर स्वागत कक्ष मे गए । बच्चो को भीतर ले जाने की अनमुति नहीं थी । चीकू, मिहिका, दिशा, दिव्या — चारो के साथ किसी एक को बाहर (स्वागत कक्ष मे) ठहरना आवश्यक था । फिर बाद मे एक और महिला जो मध्यप्रदेश से आई थी । वह अपने बच्चे

के साथ स्वागत कक्ष मे ठहर गई । उस महिला ने कहा कि बच्चे बडे-बडे है — आप जाइए — मै इन्हे देख लूँगी । इस तरह बच्चों को स्वागत कक्ष मे छोडकर हम लोग भीतर गए । वहाँ पर बैठने की व्यवस्था अलग थी । इसमे पहले एक बार राष्ट्रपति भवन गया था । डॉ नगेन्द्र का षष्टिपूर्ति समारोह था । उसमे उन्हे अभिनन्दन ग्रथ दिया गया था । १९७५ ई की बात है । प काशीरामजी शर्मा ने अपना निमत्रण पत्र मुझे दिया था । इसीलिए जाना हुआ था । उस समय डॉ नगेन्द्र का सम्मान किया गया था और अभिनदन-ग्रथ उन्हे दिया गया था । इस बार हम लोगो की संख्या अधिक थी । पुरस्कार प्राप्त करनेवालो को अलग से और क्रम से बैठाया गया । प्रत्येक आसन पर नाम की चिट लगी थी । हमे अपने स्थान बतलाए गए । हमे वही पर बैठना था । दर्शको को, अतिथियो को सामने बैठाया गया था । उनकी सख्या अधिक थी । हमारे बैठते ही, मच पर पुरस्कार लेने पहुँचने और पुन आसन ग्रहण करने की व्यवस्था व्यावहारिक रूप मे दिखलाई गई । मच पर राष्ट्रपति के साथ, मानव ससाधन मंत्री मुरली मनोहर जोशी विराजमान थे । और अधिकारी-गण थे, जो व्यवस्था मे लगे हुए थे । यथासमय नाम पुकारे गए । हम लोग यथासमय पहुँचते और नियमानुसार पुन अपना स्थान ग्रहण करते थे । डॉ. महीपसिह से वही पर बैठे-बैठे बात हुई । अनिल ने फोटोग्राफर से सम्पर्क कर लिया था । वह राष्ट्रपति भवन का विशेष फोटोग्राफर था । कनाट-प्लेस मे उसका स्टुडिओ था । फोटोग्राफर ने यथासमय (पुरस्कार प्राप्त करते समय का) फोटो ले लिया था । कार्यक्रम के बाद मे भी और फोटोग्राफ्स लेने के लिए अनिल ने उसे रोक लिया था । कार्यक्रम के होते ही हम लोग दूसरे कक्ष में पहुँचे । वहाँ पर नाश्ता और चाय-काफी की व्यवस्था थी । प्रो कल्याणमलजी लोढा से वहीं पर बातचीत हुई । और लोग भी मिले ।

इस यात्रा में हम लोग घूमने-फिरने और स्वतंत्र रूप से कही पर ठहरने की स्थिति मे नही थे । साथ मे परिवार था, बच्चे थे । सब के साथ में रहना था। और फिर उसी दिन रात मे कालका मेल पकडनी थी । बच्चे प्रतीक्षा मे थे । हम लोग स्वागत-कक्ष मे पहुँचे । बच्चे पहले ही बाहर आ गए थे । अतिथि भवन मे पहुँचाने के लिए बस की व्यवस्था थी । हमें लौटना नहीं था । सबके साथ दिल्ली घूमना था । हम लोग अतिथि भवन नही गए । राष्ट्रपति भवन से बाहर आते ही खुले मैदान मे फोटोग्राफर पहले पहुँच गया था । उसने हमारे पारिवारिक फोटो लिए । उसका पता, फोन न. सब अनिल ले लिख लिया था ।

बाद मे हम लोग पैदल ही आगे बढ रहे थे। डॉ. महावीरसरन जैन हमारे पीछे वाहन मे आ रहे थे। हमे रोका और पूछा — 'लोकसभा जाना है। वहाँ से फिर आगे जाएंगे। जैन साहब ने हम सब को वाहन मे लोकसभा तक पहुँचा दिया। इतनी दूर तक पैदल चलना, वास्तव मे कठिन ही था। लोकसभा दिखलाने की इच्छा हुई। हमे स्वागत-कक्ष दिखलाया गया। मै अकेला पहले भीतर गया और अधिकारी से मिलने गया। मैंने अपना परिचय दिया। उसने पुरस्कार के कागजात देखे तो सबको भीतर बुलवा लिया और बैठने के लिए कहा। हम सब लोग बैठ गये। लोकसभा का कैंटीन वहीं पर था। हम लोग बारी-बारी मे गए और भोजन करके लौटते गए। बच्चो का भोजन हो गया। इतने मे अधिकारी ने हमे बुलाया और कहा — 'इनके साथ जाइए। यह आपको सब बतलाएंगे। हमे गाइड मिल गया। हम सब उसके साथ भीतर गए। पहले लोकसभा, फिर राज्यसभा और दोनो को एकत्रित बैठाने के बडे बडे हाल देखे। दर्शक दीर्घाओ मे ले जाकर हमे सब कुछ ऊपर से दिखलाया। उस समय घूमने-फिरने मे ही मै थक गया था। जब बच्चे दौड-दौडकर देख रहे थे तो मुझे चलना ही था। हम लोग जैसे-तैसे पैदल ही जतर-मतर तक गये। वहाँ पर हम दोनो तो आराम से बैठ गए। अनिल, कॅवरसाहब और परिवार के लोग जतर-मतर देखते रहे। बाद मे दोनों ही हमको एक जगह बैठाकर फोटोग्राफर से मिलकर आए। उसे फोटुओ का निर्देश दिया। तब तक फोटुएँ तैयार हो गई थीं। एक फोटो को इनलार्ज करने का आदेश दिया। उसके बाद और कहीं न जाकर सीधे अतिथि भवन पहुँचे। रात मे दिल्ली स्टेशन पहुँचना था।

शिमला की यात्रा

हमारे पास सामान बहुत था। हम लोग कुल दस सदस्य थे। हम लोग छ और चार बच्चे। भागदौड करनेवाले अनिल और कॅवरसाहब थे। वाहन की व्यवस्था होने के बाद हम सब लोग सीधे दिल्ली स्टेशन पहुँचे। कालका-मेल रात्रि मे हावडा से आनेवाली थी। उसीमे आरक्षण था। हमे कालकाजी (अन्तिम स्टेशन) पहुँचना था। वहाँ पूरी गाडी खाली हो जाती है। यथासमय हम लोग गाडी मे बैठ गये। सबेरे-सबेरे कालकाजी पहुँचे। हमारे लिए शिमला की गाडी खडी थी। सामान उतारते-उतारते एक बैग (वह नम्मू की थी) गाड़ी मे रह गई। हम लोग दूसरी गाडी मे बैठने के बाद सामान की पुन गिनती की। तब ध्यान मे आया कि बैग नही है। अनिल और कॅवरसाहब दौडकर गए। गाडी मे देखा तो वहाँ से बैग गायब थी। स्टेशन मास्टर को सूचित किया। घोषित करवाया। बाद

मे बेग यथावत् मिल गई । हमारी गाडी छूटने से पाँच मिनट पहले बेग मिली थी । कालकाजी से शिमला जानेवाली गाडी छोटी थी । पहाडी पर चढ़नेवाली गाडी थी । धीमे धीमे चलनेवाली थी । उसमे बैठना अपने आप मे सुखद है । पहाडी घाटियो से गाडी गुजरती है । चढाई है । सुहावने और रमणीय दृश्य दिखलाई देते है । उसमे बैठकर देखना अपने आप मे सुखप्रद है । सब लोग दृश्य देखने मे मग्न हो गए । बच्चे बहुत प्रसन्न थे । देखते-देखते शिमला आ गया ।

शिमला हमे नया-नया लगा । लोग भिन्न थे । वातावरण भिन्न था । रास्ते सकरे थे । पहाडी पर ऊपर-नीचे गाँव था । बगले दूर-दूर बने हुए थे । वाहन उपलब्ध नही । पैदल चलने की आदत नहीं और चलकर कितनी दूर जा सकते है ? स्टेशन पर कुलियो ने हमारा सामान बाहर रखा । कुलियो को चढाई चढ़ने की आदत है । सामान पीठ पर बाँध लेते है । सिर पर लेकर न चलते है, न चढते है । सामान स्टेशन से बाहर रख दिया गया । अनिल ने फोन कर दिया था । हमारे आगमन की सूचना राज्यपाल आचार्य विष्णुकान्त शास्त्रीजी के कार्यालय मे पहुँच गई । राजभवन से तुरन्त गाडी आ गई । हम लोग वहाँ मे अतिथि भवन गए । अतिथि भवन, राजभवन के पीछे था । पहाड़ी पर सडक थी । सडक से नीचे उतरना था । अतिथि भवन में अनिल, कँवरसाहब तथा मुझे अलग-अलग कक्ष मिल गए । हम सब थके हुए थे । आराम किया । बीस मई २००० ई को दोपहर में पहुँचे थे । तीन दिन ठहरना था । २३ मार्च को लौटना था । अतिथि भवन में कैंटीन था । वहाँ पर खाने-पीने की सारी व्यवस्था थी । हमें कोई कष्ट नहीं था । वह अतिथि भवन ही हमें प्रकृति की गोद मे बसा हुआ लगा । थका हुआ आदमी जाए तो कहाँ जाए ? अतिथि भवन मे ठहरना ही अच्छा लगता था । कैंटीन मे चले जाओ तो चारो ओर ऊचे-ऊचे पेड दिखलाई देते है । खिडकियो से सुन्दर दृश्य दिखलाई देते हैं । हम लोग तो कालकाजी से जैसे ही छोटी ट्रेन मे बैठ गए थे, उस समय से प्रकृति की गोद मे थे । शिमला का जीवन पहाडी जीवन है । सबके पास कार और अन्य वाहन होते नही और पैदल चलना बहुत ही कठिन होता है । पैदल चलने का तात्पर्य या तो नीचे उतरना या ऊपर चढना । नगर की संरचना कुछ ऐसी ही है । अनिल, कँवरसाहब, बच्चे, नम्मू सब प्रसन्न थे और अपनी अपनी योजना के अनुसार तैयार हो रहे थे । मौसम ठण्डा था । बीच-बीच में वर्षा भी हो रही थी । हमारी तो कमरे से बाहर निकलने की योजना नही थी । फोन करके शास्त्रीजी से मिलने के लिए समय पूछा । बतलाया कि दूसरे दिन इक्कीस मई को समय नही है । २२ मई को सायंकाल मे चार बजे

मिलेंगे । २१ मई को पूरा दिन खाली था । दोनों ही टैक्सी की व्यवस्था में जुट गए । दिन-भर के लिए चाहिए थी । टैक्सी के बिना शिमला घूम कर देखना असंभव था । यों भी शिमला टूरिस्टों का — सैलानियों का — नगर है । हम जिस मौसम में पहुँचे थे उस समय बर्फ नहीं थी ।

अनिल और कैवरसाहब ने मिलकर २१ मई २००० को सवेरे टैक्सी की व्यवस्था कर दी । सवेरे सवेरे निकलना है और सायंकाल तक घूमना-फिरना है और सभी रमणीय स्थल देखना है । लड़के ही २० मई को व्यवस्था में लगे रहे। और व्यवस्था कर दी । हम लोग तो अपने कक्ष में बैठे रहे । बाहर निकल कर चारों ओर घूम कर देखा । यथासमय कैंटीन में पहुँचे खाया-पिया और पुन कमरों में पहुँच गए ।

अनिल तथा कैवरसाहब दोनों ने मिलकर शिमला के आसपास के सुन्दर स्थानों को देखने के लिए टूरिस्ट कार्यालय से सम्पर्क कर लिया । आवश्यक मार्गदर्शन से सम्बन्ध रखनेवाला फोल्डर ले लिया और नक्शा भी प्राप्त कर लिया । टैक्सी की व्यवस्था की । २१ तारीख को हमें सवेरे निकलना था । यथासमय टैक्सी में हम लोग बैठ गए । ड्राइवर के आस अगली सीटों पर अनिल और कैवरसाहब थे और हम लोग पीछे बैठ थे । पहले हम नलदेहरा (Naldehra) और उसके पास के स्थल देखने गए । नलदेहरा २०४४ मीटर की ऊंचाई पर है । शिमला से यह स्थान २२ किलोमीटर है । सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र है । देश में गोल्फ खेलनेवाला ९ छेदों का सबसे बड़ा मैदान यहीं पर है । खिलाड़ियों को पसन्द आनेवाला स्थल है । राजा-महाराजाओं के खेलने का स्थान है । लॉर्ड कर्जन इस को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ था । उसने अपनी बेटी Alexendra अलेक्झेण्ड्रा का दूसरा नाम Naldehra नलदेहरा रखा । इस नामकरण के पीछे नल देवता है। नल ने स्वयं यहाँ डेरा डाला था — ठहरा था — इसीलिए वह स्थान नलदेहरा कहलाता है । नाग देवता का मन्दिर भी वहाँ पर है । शिमला से पूर्व की ओर हम लोग चले । कुछ दूर पूर्व में चलने के बाद ढाली Dhali के पास उत्तर की ओर मुड़ गए । नलदेहरा उत्तर पूर्व में है । घना जंगल है । शिमला के उत्तर पूर्व की वादी में (घाटी में) यह स्थान है । शिमला नलदेहरा से ऊंचा है । वह २२०५ मीटर ऊंचा है ।

नलदेहरा के आसपास के स्थल भी देखने योग्य है । उनमें माशोबरा का घना जंगल विशेष प्रसिद्ध है । माशोबरा की विशेषता यह है कि ऊंचे-ऊंचे आकाश को छूनेवाले पेड़ पास-पास में घने जंगल सदृश्य है । दूसरी बात यह कि इन

पेड़ो के बीच मे घूमना-फिरना-दौडना सहजगति से हो सकता है । फिल्मो की शूटिंग यहाँ पर होती है । विशेष रूप से प्रेमगीत इस घने जगल मे गाए गए है। नायक-नायिका का मिलन स्थल है । हम लोग नलदेहरा से लौटकर माशोबरा के घने जंगल के पास ठहर गये । वहाँ पर घोडे मिल जाते है । आपको बैठाकर घने जगल मे ले जाते है । मै स्वयं भी घोडे पर बैठकर एक चक्कर — पास पास मे ही — लगा आया । मेरे साथ चीकू (चिराग — नम्मू का लडका) बैठा था । और सब लोग तो घोडो पर बैठकर दूर दूर तक गये और घने जगल के दृश्य देख आए । तब तक हम लोग प्रवेश द्वार के पास के स्थलो पर बैठे रहे । कुछ घूमते भी रहे । हम दोनो ठहर गये थे । मिहिका (नम्मू की लडकी) हमारे साथ मे थी । पेडो के बीच में घूमना अच्छा लगता है । जमीन पर घास या झाडी नहीं है और पेड ऊचे-ऊचे है । यही विशेष आकर्षण है । स्थान ऊचा-नीचा है। इसीलिए पहाडी पर चढना-उतरना पडता है । उसमें घोडे सहायक होते हैं । घोडेवाला घोडे की लगाम हाथ मे लिए चलता रहता है । हमें आगे और भी स्थल देखने थे । विशेष रूप से छैल (CHAIL) का पुराना राजभवन देखना था। इसीलिए हम लोग जल्दी-जल्दी पुन टैक्सी में बैठ गए । छैल शिमला से ४५ किलोमीटर की दूरी पर है । वहाँ से पुन ढाली की ओर आए और पूर्व की ओर कुफ्री की ओर आगे बढे । कुफ्री स्थान उस क्षेत्र का सब से ऊचा है । वह २५०१ मीटर ऊचा है । शिमला से भी ऊची जगह है । ढाली से ही चढाई शुरू हो जाती है । कुफ्री हमे देखना था किन्तु निर्णय हुआ कि लौटते समय इसी मार्ग से आना है । इसीलिए हम लोग आगे छैल के राजभवन की ओर गये । कुफ्री से हमे दक्षिण की ओर लगभग पौने तीन सौ मीटर नीचे उतरना था । पहाडी का सकरा रास्ता था । सैलानियों की गाडियाँ आते-जाते दिखलाई दे रही थी । कहते है पटियाला नरेश ने ग्रीष्म ऋतु मे ठहरने के लिए इस स्थान का चयन कर अपना राजभवन बनवाया । उक्त राजभवन अब होटल मे परिणत हो गया है। हम लोग उस होटल मे गए । वहाँ पर सब सुविधा थी । उस होटल के बाहरी प्रागण की हरियाली पर बैठकर सब ने भोजन किया । दोपहर हो गई थी । भूख भी लगी थी । बच्चे दौड रहे थे । उनको एक स्थान पर एकत्रित रूप मे बैठाना कठिन था । महिलाओं के साथ होने पर खाने-पीने की चिन्ता नही रहती । उस क्षेत्र में रहना अपने आप मे सुखप्रद है । यात्रा की थकान थी किन्तु सब के चित्त प्रसन्न थे ।

लौटते समय हमे कुफ्री देखना था । उसी मे समय अधिक लगनेवाला था। चढाई चढते हुए लौटना था । कुछ-समय अधिक लगा । लगभग ३० किलोमीटर तक की चढाई चढने के बाद हम लोग कुफ्री पहुँचे । इसमे सायकाल के चार बज गए । कुफ्री से पुन शिमला १६ किलोमीटर लौटना था । कुफ्री मे हम सबने नीचे उतर कर View Point — दृश्य देखने का स्थल पहुँच कर देखा । वहाँ से शिमला की घाटियाँ दूर-दूर तक फैली हुई दिखलाई देती हैं । ऊचे स्थल भी दूर से दिखलाई देते है । पहाड पेडो से लदे हुए हैं । प्रकृति का विशद और व्यापक भडार है । बैठकर निहारो तो तृप्ति मिलती है । ऑखे थक जाए ऐसा वह दृश्य है । मै तो तृप्त हो गया । बच्चे दौड रहे थे । देखने जानेवालों का ताता लगा हुआ था । बहुत से वाहन खडे थे । सैलानी घोडो पर और कुछ लोग याक पर बैठकर जा रहे थे । हम दोनो तो टेक्सी मे जाकर बैठ गए । बाकी सब लोग सैलानियों की तरह घोडो पर और याक पर बैठकर चले गए ।

हम लोगो को दो-घण्टे प्रतीक्षा करते हो गए । अधेरा होने लगा था । सात बजे के आसपास सब लोग आए । थक गए थे किन्तु उत्साह मे कोई कमी नही थी । गेस्ट हाउस पहुँचते-पहुँचते आठ बज गए । उसके बाद कहीं नही गए । दूसरे दिन हमे शास्त्रीजी से मिलने राजभवन जाना था ।

सबेरे-सबेरे दूसरे दिन अनिल और कॅवरसाहब गेस्ट हाउस के निकट की पहाडी पर पैदल चढकर गए । लौटने पर बतलाया कि ऊपर हनुमानजी का मन्दिर है। पहाडी पर चढना था, इसीलिए चड्डी पहन ली ऊपर से ही टी शर्ट पहन लिया। अनिल और कॅवरसाहब दोनो के पास कैमरे थे । जहॉ जाते, वहॉ के फोटोग्राफ्स् ले लेते थे । पहाडी पर जिस मन्दिर में गये थे, उसका फोटो मैंने देखा है । मन्दिर के प्रवेश द्वार पर ऊपर हनुमान लिखा हुआ है । उसके नीचे **'जाखू मन्दिर'** लिखा हुआ है । जाखू स्थान सूचक नाम है । वह स्थानीय नाम है । शिमला का राजमहल सब से ऊंचा स्थान है और जाखू-मन्दिर उससे भी ऊंचाई पर है । शिमला का वह शिखर स्थान है । अनिल को मन्दिर मे जो सूचनाएँ मिली, उसके आधार पर वह कह रहा था कि हनुमानजी सजीवनी लाने के लिए निकले थे तो उस ऊचे स्थल पर विश्राम करने के लिए ठहरे थे । उनके साथी तो वहीं पर विश्राम करते रहें । किन्तु हनुमानजी ठहरे नही । सजीवनी की खोज में आगे बढ गये। हनुमानजी ने उस स्थान पर विश्राम किया था, इसीलिए इस मन्दिर का विशेष महत्त्व माना जाता है ।

चार बजे हम लोग सपरिवार राजमहल गये । पैदल ही जाना था । हम लोग राजमहल के पास में ही ठहरे हुए थे । राजमहल बहुत प्यारा था । हम लोग ठीक समय पर पहुँचे थे । शास्त्रीजी मिल गये । हम सब उनकी बैठक मे गए । कुशल-मगल की बात हुई । मैं शास्त्रीजी से मिलकर बहुत बाते करना चाहता था । कागज पर घर पर ही प्रश्नावली लिख भी ली थी । साथ मे भी ले जाना था । किन्तु परिवार के सदस्यों के बीच और स्वय शास्त्रीजी की व्यस्तता को देखते हुए कुछ पूछते नही बना । वे हमे तो पहले राजमहल के भीतर के कक्ष दिखलाने लगे । बच्चो का ध्यान देखने की ओर अधिक था, बात करने की ओर कम था । हमे वह स्थल दिखलाया गया जहाँ पर बैठकर श्रीमती इदिरा गाधी और पाकिस्तान के प्रधानमत्री भुट्टो के साथ बात हुई थी और उसे शिमला-समझोता कहा गया था । दोनो के हस्ताक्षर करने का स्थान था । नये मत्रियो को शपथ दिलानेवाला बडा हाल देखा । सब देखने के बाद हम बैठक में आ गए । यथा स्थान बैठ गये । अनिल ने और कॅवरसाहब ने अपने-अपने कैमरों से फोटोग्राफ्स् लिए । समूह मे एकत्रित सारे परिवार के सदस्यों के साथ शास्त्रीजी का फोटो भी लिया । मैं तो सब देखता रहा । परिवार के सदस्यो के साथ, बच्चो के साथ भी, उन्होने बात की । नाश्ता करते-करते ही सदस्यो के साथ बात होती रही । मैंने कहा परिचय पत्र छपा हो तो उसकी एक प्रति मुझे चाहिए । जीवन-वृत्त से सम्बन्धित पुस्तिका मगवाई । मई १९९९ ई. मे (एक वर्ष पूर्व ही) प्रकाशित कविता सग्रह की नई पुस्तक **जीवन-पथ चलते चलते** मगवाई । उस पर हस्ताक्षर किया और पुस्तक दी । उनके पास बैठकर बात करने की इच्छा होने पर भी, उठना पडा । बच्चे स्वयं देखने, घूमने और दौडने के लिए उत्साहित थे । उनको रोकना कठिन था । आध घण्टे से कुछ अधिक हो गया था । हम लोग बाहर आए । प्रसन्नता से उन्होंने हम सब को बिदा किया । बाहर आते ही बच्चे तो गार्डन मे दौडे । उनके पीछे रहकर उन्हें रोकना पडा । बाहर तो वातावरण बहुत रम्य था । कुफ्री से घाटी का जो दृश्य देखते रहे, वही दृश्य यहाँ से भी गार्डन के पास के कठड़े पर खडे हो जाओ तो दिखलाई देता है ।

बाहर आने के बाद सब लोग पैदल चलने लगे । शिमला का मार्किट देखना था । राजमहल तो ऊची जगह पर था । मार्किट के लिए **माल रोड़** जाना था । पैदल ही ढलान की सडक पर चलने लगे । रास्ते मे मुख्य मत्री का भवन था । सरकारी अधिकारियों के बंगले थे । उन्हें देखते-देखते माल रोड़ के सिरे की ओर

पहुँच थे। हम लोग माल रोड पहुँच गए थे। माल रोड घूम फिर कर देखना था। मैं तो नीचे उतरने में ही थक गया।

शिमला की रौनक माल रोड में देखी जाती है और देखना हो तो पैदल चलना आवश्यक था। कुछ देर ठहर हम लोग माल रोड पर चलने लगे। सडक की दोनों ओर खुली जगह पर आगन्तुकों के लिए बेंच रखे हुए थे। बैठने के लिए थे। रूक रूक कर जा सकते है। हम लोग आराम करते-करते ही जा रहे थे। बच्चे सब खुश थे और दौड रहे थे। उनको साथ लेकर चलना था। मार्किट जगमगा रहा था। रात हो गई थी। भीड बढ रही थी। कुछ दूर जाने पर हमने देखा कि पीछे से एक समूह तेजी से पैदल चला आ रहा था। उस समूह मे आगे-आगे श्री लालकृष्ण अडवानी और आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री पैदल चल रहे थे। उस दिन श्री अडवानीजी वहाँ पर होने के कारण शास्त्रीजी बहुत व्यस्त थे। उस व्यस्तता मे भी शास्त्रीजी ने हमे समय दिया था। समूह आगे निकल गया। हम लोग तब तक मार्किट के मध्य भाग तक म्युनिसिपालिटी के मुख्य भवन तक पहुँच गए थे। हम दोनो तो उस भवन के सामने के बेंचो पर जाकर बैठ गये। हमे तो कुछ खरीदना नहीं था। हमे बैठाकर अनिल तथा कॅंवरसाहब सब लोगो को साथ लेकर मार्किट मे घूमने लगे। किसी अच्छी होटल की तलाश मे भी थे। हम लोग बैठे बैठे माल रोड के जगमगाते दृश्य का अवलोकन कर रहे थे। दूर तक होटल की तलाश कर अनिल और कॅंवरसाहब आए। हमे चलने कहा। उक्त होटल बाजार के दूसरे सिरे पर था। फिर चले। होटल मे दक्षिण भारतीय सामग्री उपलब्ध थी। आखिर वह शिमला की होटल थी। जो मिला, खा-पीकर, आराम करते हुए पुन बाहर आये। समय काफी हो गया था। अब तो लौटना था और पैदल ही चलना था। कुछ खा लेने के कारण चलने मे कुछ सुविधा हो गई। लौटते समय बैठने की आवश्यकता नहीं हुई। बाजार के एक सिरे से दुकानो को निहारते हुए चल रहे थे। सम्मू और बहू दोनो ने कुछ मार्किटिंग की होगी। चलते-चलते मैने वाकिंग स्टिक खरीदी। बीस रुपये मे ली। आज भी उस स्टिक का उपयोग करता हूँ। आकाश हमारे साथ (मेरा पोता) नहीं आया था। उसके लिए शिमला की टोपी खरीदी। माल रोड के अन्तिम सिरे तक, जहाँ से निकले थे वहाँ तक पहुँच गए। पैदल चलने मे थक गए थे। वाहन की खोज में थे। अनिल ने गेस्ट हाउस को फोन कर दिया था। वहाँ से हमारे लिए गाडी आ गई थी। चढाई पर पैदल चलना कठिन ही था। कहा गया कि यही माल रोड जाडे के दिनो मे बन्द रहता है। सडक पर बर्फ

बिछी रहती है। हम तो मई महीने में वहाँ पर थे। गाडी में बैठकर हम लोग अतिथि भवन में पहुँच गए।

दूसरे ही दिन हमें लौटना था। फिर नेरो गेज से यात्रा करते हुए कालका पहुँचना था। कालका पर हमारी गाडी सायंकाल में थी। बब्बू तथा पत्नी ने मिलकर कैंटीन के रसोई घर से आवश्यक सामग्री लेकर पूडियाँ बना लीं और खाने के लिए साथ में ले ली। बहू ने भी सहायता की। हम कुल बच्चों सहित दस सदस्य थे। स्टेशन पर पहुँचाने के लिए गाडी मिल गई। यथासमय छोटी ट्रेन में हम लोग बैठ गए। मौसम सुहावना था। पहाडी यात्रा सुखद थी। पर्वतों की श्रृंखलाओं के बीच से हम गुजर रहे थे। घाटियों के ऊपर से जा रहे थे। बीच-बीच में जो गाँव दिखलाई देते वे पहाडी ढलानों पर थे। हिमाचल प्रदेश की वादियों और पर्वत श्रेणियों को देखकर हिमालय की कल्पना की जा सकती है। मैदान कहीं पर दिखलाई नहीं दिया। कालका पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। स्टेशन पर बैठकर हम सब ने भोजन किया। सभी भूखे थे। पूडियों का स्वाद मिला। कालका-हावडा मेल खडी थी। आरक्षण के अनुसार हम लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। रात में नींद भी खूब आई। सबेरे दिल्ली स्टेशन पर पहुँच गए। २४ मई २००० को सबेरे हम पुन: दिल्ली में थे। दिल्ली में हम सब लोग गोल घर के पास जैन भवन में पहुँच गए। श्री हस्तीमलजी मुणोत सामायिक में बैठे हुए मिले। बहू उन्हें जानती थी। मिलकर आई। उन्होंने बैठे-बैठे ही व्यवस्था कर दी। हम सब को तीन कमरे मिल गये। जैन भवन — भगतसिंह मार्ग पर है, नई दिल्ली स्टेशन से निकट है। कनाट प्लेस तो पास में ही है। वहाँ पर साइकिल रिक्शा चलता है। साइकिल रिक्शे पर बैठकर नई दिल्ली स्टेशन पहुँचा जा सकता है। बच्चों को दिल्ली देखनी थी और साध्वियों के दर्शन हेतु जाना था। वे सब पुरानी दिल्ली में हैं। तैयार होने के बाद मद्रास होटल में पहुँचकर सब ने नाश्ता किया। काफी पी। उसके बाद हम सब बस में बैठकर घण्टा घर गए। कोल्हापुर हाउस वहाँ से निकट है। गली में स्थानक में गए। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गए। केसरकँवरजी महाराज साहब मिल गए। वृद्ध हो गई थीं। उनकी सेवा में छोटी साध्वियाँ थीं। दिल्ली में उनकी शिष्य मण्डली का विस्तार है। मेरी मौसेरी बडी बहन की बेटी ने उन्हीं से बेंगलौर में दीक्षा ली है। नाम है — **कृपाश्रीजी**। हमें कृपाश्रीजी से भी मिलना था। हम दोनों तो जब जब आते तब तब दर्शन हेतु जाते ही रहते थे। पत्नी साथ में रहतीं इसीलिए स्थानक

मे ठहरते भी थे । मै जब तक अकेले दिल्ली आता था, तब तक चाँदनी चौक मे ठहरता था । सन १९८९ ई तक मैंने अकेले यात्रा की है । जब से हार्ट अटैक का पहला झटका १९८९ ई मे लगा, उस समय से मैने अकेले यात्रा करना बन्द कर दिया । इस समय तो परिवार के और सदस्य भी साथ मे थे । उस दिन केसरकँवरजी ने हमे पहचान लिया । साथ के सदस्यो का परिचय दिया । बहू को वे पहले से (सिकन्दराबाद मे) जानती थी । स्मृति लौट आई । बात की । उनके द्वारा मगलीक सुनकर हम सब लौट गए । वहाँ से करौल बाग के निकट अजमलखाँ पार्क है । उसके सामने प्रेम भवन जैन स्थानक है । उस स्थानक मे गए । कृपाश्रीजी वहाँ नही थी । मालूम हुआ कि वे जमना पार के स्थानक मे है । साध्वी मजुश्रीजी मिल गई । पूना से उन्होंने पी-एच.डी की उपाधि प्राप्त की थी। उनसे पहले भी अशोक विहार के स्थानक मे मिला था। उस समय केशरकँवरजी, कृपाश्रीजी और सब एकत्रित थे । मंजुश्रीजी ने कहा कि अपना सामान लेकर यही पर आ जाइए । यह कठिन था । उन्होंने कहा — दूसरे दिन सबेरे पहुँच जाए तो प्रधानजी से कहकर गाडी की व्यवस्था करवा देगे । जमना पार चले जाइएगा । हमने दूसरे दिन सबेरे पहुँचना स्वीकार कर लिया । बाद मे उस दिन तो सब करोल बाग मार्किटिंग के लिए चले गए । हम तो स्थानक मे बैठे रहे । सब के लौट आने पर पुन जैन भवन लौट आए । अनिल और कँवरसाहब ने कनाट प्लेस पर फोटोग्राफर से सम्पर्क किया और फोटो ले आए । हम तो कही गए नही । दूसरे दिन सबेरे यथासमय हम अजमलखाँ पार्क के सामने के प्रेम भवन पहुँच गए । सब ने चौके में नाश्ता किया । दूध लिया । गाडी की प्रतीक्षा मे थे । गाडी आ गई । बडी गाडी थी । हम सब लोग मजुश्रीजी से मगलीक लेकर जमना पार गए । ड्राइवर हमे ठीक जगह ले गया । साध्वी कृपाश्रीजी, साध्वी निधीश्रीजी दोनो के दर्शन हुए । उनके साथ मे साध्वी विमलाश्रीजी और साध्वी ऊर्मिलाश्रीजी भी थी । सब के दर्शन हुए । चर्चा हुई । साध्वी कृपाश्रीजी और साध्वी निधीश्रीजी पुस्तके लिखती है । कुछ पुस्तकें उनकी छपी है । वे अपनी पाण्डुलिपियाँ मुझे दिखलाती रही है । दो-तीन पुस्तकों की प्रस्तावनाएँ मैंने लिखी भी है । चर्चा मे वे अपनी योजनाएँ और कार्य की प्रगति से अवगत करती । दोनो ही **'कृपा-निधि'** के नाम से पुस्तके छपवाती रही है । हम चाहकर भी उस दिन बहुत देर तक बैठ नही सके । मगलीक लेकर हम लोग लौट गए ।

परिवार के सदस्यो को दिल्ली देखना था । लौटते समय ड्राइवर से कह दिया कि हमे लाल किले के पास मे छोड दे । बच्चो को लाल किला देखना था ।

ड्राइवर ने हमें लाल किले के पास छोड़ दिया। लाल किला भीतर से घूमकर देखने में दो-ढाई घण्टे लग गए। हम लोग तो एक जगह मैदान में बैठ गए। बच्चे सब घूमते रहे। अनिल और कँवरसाहब ने अपने-अपने कैमरों से फोटोग्राफ्स लिए। हमारे पास घूमने फिरने के लिए वही दिन शेष था। दूसरे दिन हमें लौटना था। लाल किले से निकलने के बाद चाँदनी चौक गये। सामने ही था। भूख लग गई थी। भोजन करना था। होटल की खोज में पैदल ही चलते गए। अनिल ने होटल खोज ली। सब ने भोजन किया। उसके बाद फिर हम जैन भवन लौट गए। हमें तो आराम करना था। हम लोग बाद में कहीं नहीं गए। उस यात्रा में सब के साथ रहना आवश्यक था। मैं अकेला कहीं जा भी नहीं सकता था। दरियागंज नहीं गया। जब दिल्ली जाता था — डॉ. रामविलास शर्मा से मिलने के लिए उनके घर पर जाता रहता था। पं. काशीराम शर्मा ने दिल्ली छोड़ दी थी। वे चूरू में रहने लगे थे। मालूम हुआ कि डॉ. रामविलास शर्मा उस समय बीमार हैं। पुरस्कार लेने आए नहीं थे। उनका नया फोन नम्बर मालूम हो गया था। मैंने दूसरे दिन सवेरे फोन किया। उनके पुत्र ने बतलाया कि लेटे हुए हैं। बात नहीं करते। देखकर जाना चाहो तो आ सकते हो। मैंने बच्चों से कहा कि विकासपुरी जाकर आता हूँ। गाड़ी हमारी दोपहर में एक बजे थी। मैं सवेरे-सवेरे विकासपुरी चला गया। डॉ. रामविलास शर्मा को देखा। लेटे हुए देखा। उस दिन मालूम हुआ कि तीन पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र नहीं रहे। डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. विजयमोहन शर्मा (छोटे पुत्र) के साथ में रहते हैं। दूसरा पुत्र भी वहीं पर था। मैंने श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया और लौट आया। ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे तक लौट गया। उस समय तक कँवरसाहब, नमिता और उनके दोनों बच्चे चीकू और मिहिका दिल्ली सराय चले गये थे। उनको उदयपुर जाना था। वे चले गए। अनिल पहुँचाने के लिए गया था। हमारी गाड़ी — सचखण्ड एक्स्प्रेस नई दिल्ली स्टेशन से छूटती है। मेरी अनुपस्थिति में अन्य सदस्यों ने मार्किटिंग की थी। कुछ चीजें खरीद ली थीं। यथासमय हमने जैन भवन का हिसाब कर दिया और नई दिल्ली स्टेशन पर पहुँच गए। दूसरे दिन दोपहर में हम लोग औरंगाबाद में थे। मेरी यह पहली और अन्तिम पारिवारिक यात्रा थी। लौटने के कुछ दिन बाद मालूम हुआ — दूरदर्शन पर समाचार सुना कि डॉ. रामविलास शर्मा का निधन हो गया है।

☐ ☐

11

डॉ. वसंत चक्रवर्ती
(१६ दिसम्बर १९३१ — १० अक्तूबर २००३)

आज (१० अक्तूबर २००३ ई. को) सबेरे सबेरे मेरे सहपाठी विद्वान् बन्धु और मित्र डॉ. भीमसेनजी निर्मल का हैदराबाद से फोन द्वारा समाचार मिला कि डॉ. चक्रवर्ती का सबेरे चार बजे निधन हो गया है। यशोदा अस्पताल मे थे। बीस-इक्कीस दिन के बाद डॉक्टर ने जवाब दे दिया। इसीलिए घर ले जाने के लिए कहा। कुछ दिन घर पर रहे और आज अचानक चले गये। मैने फोन पर उनके पुत्र से बात की थी। मालूम हुआ कि घर पर है। बात करने की स्थिति मे नही है। उन्हे फोन दिया गया था। एक वाक्य काँपती आवाज से बोले — 'मैं ठीक हूँ...' और चुप हो गए। ब्रजेन्द्र दूसरे नम्बर का पुत्र तो पास में ही सेवा मे था। भीमसेनजी से मालूम हुआ कि ज्येष्ठ पुत्र विश्वेन्द्र दुबई से आ गया। छोटे पुत्र नहीं आए। अमरीका से आएंगे। सब कुछ जानकर दुःख हुआ।

चक्रवर्ती मेरा एम.ए. का सहपाठी और कवि मित्र है। दो वर्ष हम साथ-साथ रहे है। बोलारम मे उसका मूल निवास स्थान है। ननिहाल जमशेदपुर (बिहार) मे १६ दिसम्बर १९३१ ई. को जन्म हुआ। हिन्दी भाषा शैशवावस्था में सुनने मिली। नाना-नानी हिन्दी बोलते थे। वही व्यवहार की भाषा थी। चार भाइयों मे चक्रवर्ती ज्येष्ठ थे। भाइयो के नाम मोहन, राजकुमार और कृष्णा है। बोलारम के कैटोनमेंट मे पिता का मकान है। माता-पिता तथा चारो भाई वही रहते थे। पिताजी अंग्रेजी के विद्वान् थे। चक्रवर्ती का अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अच्छा था। बिहार से आकर पुन सिकन्दराबाद मे बस जाने के कारण एम.ए. उस्मानिया से करना आवश्यक हो गया। मेरा परिचय १९५६ ई. जुलाई, मे हुआ। उस समय उसका विवाह नही हुआ था। उसे कविता लिखने और काव्य-वाचन का अभ्यास था। विशेष रूप से जयशकर प्रसाद कवि से बहुत प्रभावित था। प्रसाद उसके आदर्श कवि थे। उसी पर उसने पी-एच.डी. की उपाधि १९६५ ई. मे प्राप्त की। विषय का शीर्षक था — **'प्रसाद की दार्शनिक चेतना'**। १९५६ ई. मे ही देखता रहा कि चक्रवर्ती कविताएँ लिखता रहा है। हैदराबाद-सिकन्दराबाद के कवियों मे उसका अच्छा परिचय हो गया है। बी.ए. नागपुर विश्वविद्यालय से किया और एम.ए. उस्मानिया विश्वविद्यालय मे। प्रसाद से इतना प्रभावित था कि **'आँसू'** की तरह **'पीड़ा'** काव्य की रचना की। पीडा की कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है —

आँसू की अञ्जलि भर कर
इस सूने सजल पहर मे
दुलरायी मैंने पीडा
अलसित वेदना कुहर मे

○ ○ ○

विस्मृति के अवशेषों में
साधना सहज मधुमय हो,
पीडा के मृदु हाथों मे
यह जीवन मगलमय हो।

'पीडा' की रचना विवाह से पहले हुई है। उस समय **'पीड़ा'** के अनुभूत क्षणो मे मैंने उसे देखा है। १९५७ ई. मे वह लिखता रहा है। मै उस समय सिकदराबाद में **जैन ग्रंथालय** का लायब्रेरियन था। चक्रवती के कारण मैंने

ग्रथालय की ओर से कवि सम्मेलन का आयोजन किया। बहुत से कवि एकत्रित हुए। उनमे नागेश, चकोर आदि कवि भी थे। चक्रवर्ती भी थे। कुछ समय तक मित्र के प्रभाव के कारण मैने भी कविताएँ लिखी। कालेज की पत्रिकाओ मे छपी।

पीड़ा का प्रकाशन विवाह के बाद मे हुआ। मै उस समय विवेकवर्धिनी कालेज मे काम करता था और चक्रवर्ती उस समय बगल के कालेज में प्राध्यापक हो गए। ६ फरवरी १९५९ ई. को मिले तो नवप्रकाशित पुस्तक दी। कवि का आत्मकथन है — 'इसकी पीठिका मे मेरे अबोध शैशव का व्यथित इतिहास है।' विशेष बात यह है कि चक्रवर्ती तब से अन्त तक कवि रहा। उसकी छायावादी शैली मे बाद मे रहस्यवाद भी आ गया। वेदो का अध्ययन किया। आदिम मानव को पहचानने का प्रयत्न किया। प्रसाद की जिज्ञासाओ से प्रेरणा प्राप्त कर दार्शनिक स्तर पर चिन्तन करने लगा। चक्रवर्ती के निवास स्थान पर वेदो का पूरा सेट (सटीक) मैंने उसके टेबल के समीप देखा है। मेरी इच्छा भी हुई कि वेद पढ़ूँ। पढ नहीं पाया। चक्रवर्ती ने वैदिक वाङ्मय का — उपनिषदों का, ब्राह्मण-ग्रथो का अध्ययन किया है। वह तो सुनाने के लिए सदैव तत्पर रहा। मै सुन नही पाया। उसने अपनी रचनाएँ मुझे दी है। डाक मे भेजी हैं। कविताओं की छोटी-छोटी पुस्तके है किन्तु 'विराट' की ओर सकेत करनेवाली और जिज्ञासाओं से युक्त है। उनका मूल्यांकन आलेखों के रूप मे हुआ भी हो तो मैंने उनका अध्ययन नही किया। ऐसे काव्य सकलनो का, जो अपने आप मे पूर्ण है, उनके नाम मात्र लिख रहा हूँ — शृगनाद (दीपावली १९६३ ई) / अपूर्व (२८-११-१९८७ ई) / जिजीविषा (जनवरी १९८९ ई) और अनादि गाथा (जनवरी १९९० ई)। ये सभी काव्य वैदिक वाङ्मय से प्रेरित है। इनमें **अनादि गाथा** को महाकाव्य कहा है।

जयशकर प्रसाद के नाटको से भी चक्रवर्ती प्रभावित थे। चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त की तरह — चक्रवर्ती ने **पुलकेशिन** नाटक लिखा। ऐतिहासिक नाटक है। इसका प्रकाशन साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड, इलाहाबाद से १९७१ ई में हुआ। बाद मे १९७७ ई. में दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ। यह ऐतिहासिक नाटक है। उसे पाठ्यक्रम मे जगह मिली है। प्रसाद के नाटको की तरह उसमें 'गीत' भी है।

चक्रवर्ती की बहुचर्चित पुस्तक **'बंधी महावट से नौका थी'** है। इसमे उक्त चर्चित विषय के अतिरिक्त अन्य निबन्ध भी है। वस्तुत प्रूफ की भूल के

कारण 'बंधी महावट से नौका थी' पंक्ति चल गई थी । मूल पंक्ति है — 'कँपी महावट में नौका थी ।' — चक्रवर्ती ने अर्थ को स्पष्ट किया । इस पर विद्वानों मे चर्चा हुई । पत्रिकाओ मे ये चर्चाएँ प्रकाशित हुई है । उनका समाहार करते हुए चक्रवर्ती ने आलोचना की पुस्तक प्रकाशित की । इसका प्रकाशन १९९८ ई में हुआ । अगले ही वर्ष १९९९ ई मे आलोक समीक्षा की स्वतंत्र पुस्तक छपी। ये कवियो की रचनाओ की समीक्षा प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक है ।

डॉ वसंत चक्रवर्ती की कविता की पुस्तक अनादि गाथा की समीक्षा प्रकर, अप्रैल १९९२ ई में प्रकाशित हुई । उसे पढ़कर चक्रवर्ती ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मुझे पत्र लिखा । वह पत्र मैंने सीधे प्रकर को भेज दिया । चक्रवर्ती की प्रतिक्रिया से विद्यासागरजी प्रसन्न हुए । अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने मुझे १८ मई १९९२ ई. के पत्र मे लिखा —

> "डॉ चक्रवर्ती की टिप्पणी मिली, वह वस्तुत बहुत सार्थक टिप्पणी है । अनादि गाथा की समीक्षा की दृष्टि से समीक्षक का वैदिक साहित्य और वैदिक काव्य-पद्धति से परिचित होना आवश्यक है। जो हिन्दी समीक्षक वैदिक आख्यानो से अंग्रेजी माध्यम से परिचित है वे आख्यानों के मूल से परिचित नहीं हैं । हमारे समीक्षकों की ऐसी धारणा भी प्रतीत नहीं होती कि वेद काव्य भी हैं, बल्कि प्राथमिक रूप से काव्य है । जो स्थिति है, उससे आप भी परिचित है । डॉ चक्रवर्ती की टिप्पणी मत-अभिमत में प्रकाशित हो ही जाएगी ।"

यह तो मैंने एक उदाहरण दिया है । प्रकर मे मत-अभिमत के अन्तर्गत प्रतिक्रियाएँ छपी हैं । इसके बाद मे विद्यासागरजी चक्रवर्ती से भी लिखवाने लगे । चक्रवर्ती ने अपना नाम बदल दिया और खुलकर समीक्षा लिखने लगे थे । इस सम्बन्ध में ३१ जनवरी १९९४ का चक्रवर्ती का पत्र कलकत्ता से मिला था ।

हैदराबाद

३१-१-९४

परम प्रिय बन्धुवर,

आपका पत्र यथासमय हस्तगत । दिगन्त शास्त्री का जन्म तीन वर्ष पूर्व आलोचना की सपन्दित जटिलता और निस्संकोच, निर्द्वन्द्व आत्मीयता के बीच हुआ । 'दक्षिण समाचार' के श्री मुनीन्द्रजी

ने डा. इन्द्र वशिष्ठ जी की सन्ध्या अपने आँगन और डा. अहिल्या मिश्रा की कैक्टस पर गुलाब नामक कृतियाँ समीक्षार्थ भिजवाई थीं । दोनों महिलाओं से साथ परिचित ही नहीं, बड़ा आत्मीय निकटता वर्षों से रही । अतः दोनों के अवलोकन के उपरान्त देखा; एक तो उत्कृष्ट कृति है और दूसरी व्याकरण, वर्तनी और काव्य दोषों से भरी हुई निकृष्ट कृति है । उस समय मैं अपने साथ दोनों कृतियाँ लेकर कलकत्ता चला गया था, ज्येष्ठ पुत्र विश्वेन्द्र के पास । वहीं उन कृतियों की समीक्षा लिखी । आलोचना के असन्दिग्ध और निर्विवाद सत्य को, कहीं आत्मीयता अतिक्रमण न कर दे, सोचकर अपने नाम को चुप करा देना उचित समझा । उस समय बड़े अनिश्चय और अन्तर्विरोध की स्थिति में था, किन्तु देखा, अज्ञातनामा समीक्षक की आलोचना अप्रतिहत ही नहीं, सही अर्थ में विश्वसनीयता भी अर्जित करती है । अतएव कलकत्ता के पते से दिगन्त शास्त्री ने, किसी भी कृति को अपदस्थ या धूलधूसरित करने के लिए नहीं, केवल प्रतिकार या प्रतीकों को प्रस्तुत करने के लिए अभिशप्त नहीं वरन् आलोचना के प्रजातांत्रिक अस्तित्व कृतित्व के समानाधिकार के औचित्य को सिद्ध करने लिए जन्म लिया और चक्रवर्ती भूमिगत हो गया । हाँ, मौलिक साहित्य भी सृजनात्मक और उसके उदात्त लक्ष्यों के सम्प्रेषण से पथभ्रष्ट नहीं हुआ है यह चक्रवर्ती । जीवन से जूझता यह जीवट, शब्द-सौन्दर्य की जीवनधारा में रचनात्मक बहुलता लेकर अप्रत्याशित गति से प्रवहमान है । दिगन्त शास्त्री आलोचना के क्षेत्र का निर्मम तानाशाह है, चक्रवर्ती सौन्दर्य सृष्टि और जीवन-सृष्टि का कवि ।

आचार्यजी की 'सूर की सौन्दर्य चेतना' की समीक्षा में डा. राजमल बोरा श्रद्धावनत दिखाई देते हैं । यद्यपि विवेचन सुन्दर सार्थक है । वाङ्मीमांसा के अन्तर्गत 'नामों का भाषा विज्ञान' की समीक्षा बड़ी सुन्दर और तर्कमयी थी । उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल प्रज्ञा-पुरुष की व्याख्यान-माला भी तो अद्भुत है ।

बड़ा तो कलकत्ते में *TISCO* में । मझला काम्पूटर के सॉफ्टवेअर कार्य में था पर स्कैम की वजह से बैंकों से कार्य अब मिल नहीं

रहा है । अन्य व्यापारो मे हाथ पैर चल रहा है । कोई निश्चित व्यवसाय पर उतरा नही । छुटके ने बी.टेक (इलक्ट्रानिक्स मे) कर लिया । एम बी ए की परीक्षाएँ दे रहा है, और सुराणाजी की एक फैक्टरी मे सुपरवायजिंग इजीनिअर की तरह कार्यरत है । यहाँ सब कुशल है ।

आशा है कि भाभी, बच्चे-बहुओ के साथ सानन्द होगे । शुभकामनाएँ ।

अभिन्न

चक्रवर्ती

पुनश्च २७-१२-९३ को दिल्ली गया था । यात्रा से २९-१२-९३ को लौट आया । यू पी एस सी ने बुलाया था । गत ६ वर्षो से उससे जुडा हूँ । लिखा कि मै सन ८७ से, जब से दुर्घटनाग्रस्त हुआ, रेल यात्रा करता नही । उन्होने हवाई यात्रा की अनुमति दे दी । २७-१२-९३ श्री शकरदयालसिह जी के नये आवास मे जन्मदिन का भोज था । अनेक साहित्यकारो से भेट हुई । पोलैड के राजदूत से भी मिला । अच्छी हिन्दी बोलते है । वहाँ बडी ठढ थी प्राय ८ डिग्री । हाड-तक कॉप रहे थे ।

आपका पेन्शन तया हो गया या नहीं ।

शेष कुशल ।

चक्रवर्ती

चक्रवर्ती का सम्बन्ध मेरी तरह डॉ. बैजनाथ चतुर्वेदीजी से था। हिन्दी अकादमी (आन्ध्र प्रदेश) के वे अध्यक्ष थे और **संकल्य** का सम्पादन करते थे। उन्होने अपनी आत्मकथा **'किसान पुत्र की आत्मकथा'** सकल्य में धारावाहिक रूप में प्रकाशित की । बाद मे उसका प्रकाशन स्वतत्र रूप में हुआ । उसके प्रकाशन का काम डॉ. चक्रवर्ती देख रहे थे । **'संकल्य'** के प्रकाशन मे डॉ चक्रवर्ती सहयोग दे रहे थे । चतुर्वेदजी भाषा प्रेमी थे । उन्होने अगिका और बज्जिका भाषा से सम्बन्धित आलेख और कविताएँ 'संकल्य' मे प्रकाशित की हैं। दोनो भाषाओ पर स्वतत्र पुस्तके हिन्दी अकादमी की ओर से प्रकाशित की है। बिहार के लेखक विशेष रूप से संकल्य के लेखक हो गए थे। चतुर्वेदीजी के अन्तिम दिनो के समाचार मुझे चक्रवर्ती से मिल जाते थे । चक्रवर्ती ने बाद मे 'सकल्य' का काम करने लगे । सम्पादक

हो गए। चतुर्वेदीजी के काम को आगे बढ़ाया। चतुर्वेदीजी के निजी ग्रथालय के सुरक्षा की व्यवस्था की। गोरखनाथ तिवारी भी यह काम करते थे। 'सकल्य' के अक नियमित निकलते रहे। चक्रवर्ती ने सकल्य का स्वरूप बदल दिया। उन्होंने उसे समीक्षा की पत्रिका बनाने का प्रयास किया। मुझसे भी कुछ लिखवाया। यो सब कुछ ठीक चल रहा था। जब जब हैदराबाद गया, चक्रवर्ती से मिलने घर पर गया था। व्यस्त दिनचर्या। टेबल पर समीक्षा के लिए नई आई हुई पुस्तके थी। पत्र-व्यवहार नियमित जारी था। और अचानक यह सुनने मे आया कि बीमार है। अस्पताल मे है और १० अक्तूबर को चले गए। पूरी बात नही हुई।

हैदराबाद मे मेरे दो ही मित्र है। और उनमे से तो चक्रवर्ती तो मेरा एम ए का नियमित सहपाठी था। दूसरे मित्र डॉ. भीमसेन निर्मल थे। निर्मलजी के पत्र तो मिलते ही रहते थे। यदा-कदा फोन से बाते हो जाती थी। हैदराबाद के समाचार भी मिल जाते थे। चक्रवर्ती को मिलने घर पर ही जाना पडता था। उससे भी फोन से बात होती रहती थी। २००० ई. के बाद मे इन तीन वर्षो मे सिकदराबाद अधिक जाने लगा। चक्रवर्ती के घर पर चला जाता। चक्रवर्ती ने अपने कैमरे से फोटुएँ लीं। मेरे साथ अपने ही हाल मे बैठ गए। हम दोनो की फोटुएँ ली। बाद मे डाक से फोटुए भेजी। उनमें से एक फोटो इस पुस्तक मे दे रहा हूँ। चक्रवर्ती ने सकल्य के अको को नया रूप दिया। मुझसे लिखवाकर डॉ रामसिह तोमर तथा डॉ नामवरसिह पर लिखी टिप्पणियाँ छापीं। अब तो सब स्मृति के गर्भ में है। चक्रवर्ती ने अपनी निजी प्रकाशित पुस्तके अपने पास व्यवस्थित नही रखी। मित्रगण सब उठाकर ले गए। पीडा की प्रति भी नही। अन्य पुस्तकों की स्थिति भी यही है। शोध प्रबन्ध तथा पुलकेशिन नाटक को छोडकर सभी कविताओ की पुस्तके स्वय छापी। वे ही उसके पास नहीं रही। गोरखनाथ तिवारी (हिन्दी अकादमी, हैदराबाद का सचिव) ने सभी पुस्तको की प्रतियाँ भेजने के लिए लिखा। मेरे पास भेजी हुई सभी पुस्तके थी। इसीलिए जब हैदराबाद पुन गया (२५ नवम्बर २००३ को) तो पहले डॉ. भीमसेनजी निर्मल से मिलने गया। वही पर गोरखनाथ तिवारी मिल गया। मैने बतलाया कि उपलब्ध पुस्तको की फोटो प्रतियाँ ले आया हूँ। और वे सब श्रीमती भारती चक्रवर्ती को दूँगा। उसके बाद हम चक्रवर्ती के घर पर उसी दिन गए। श्रीमती चक्रवती मिल गई। श्रीमती चक्रवर्ती की माताजी थी। एक पुत्र था। दूसरे दोनों तो चले गये थे। चक्रवर्ती के छोटे भाई आनन्द ने पत्र लिखा था। उनसे मिलना नही हुआ।

मैने सभी पुस्तको की फोटो प्रतिया श्रीमतीजी को दे दी। कहा — इन्हे छपवाओ तो अच्छा रहेगा।'

डॉ. भीमसेन निर्मल (३० नवम्बर १९२९   ३० दिसम्बर २००३)

२६ नवम्बर २००३ ई. को हम दोनों चक्रवर्ती के घर जाने से पूर्व निर्मलजी के घर पर गए थे। फोन पर कहा कि पहले यहाँ आओ फिर चक्रवर्ती के घर पर जाना। तदनुसार हम दोनो पहले निर्मलजी के घर पर गए। श्रीमती बी एम कात्यायनी (भीमसेनजी की पत्नी) ने हम दोनो के भोजन की व्यवस्था कर दी थी। उस दिन छुट्टी होने के कारण उनकी बेटी वाणी घर पर ही थी। माता-पिता की सेवा बेटी ही कर रही थी। एक लडका देहरादून मे और दूसरा अमरीका मे। बडी बेटी और उसकी लडकियाँ भी अमरीका मे थी। घर पर दोनो अकेले रहते थे। उनकी अपनी स्वय की लिखी और छपी हुई पुस्तके एकत्रित रूप मे एक जगह रखी हुई नहीं थी। जब-जब मिलता और दोहराता तो एक बार मुझे ऊपरवाले कमरे मे ले गए। अलमारी दिखलाई। उसमे एक स्थान पर पुस्तके रखने लगे। बहुत कहने पर उन्होने परिचय पुस्तिका छपवाई। पुस्तको के नाम लिखे। उनका शोध-प्रबन्ध उनके पास नही था। उनसे कहने से मैने अपनी प्रति उन्हे भिजवाई। बहुत वर्षो से Out of Print थी। मैने कहा था कि उसे ठीक कर दो। दूसरा नया सस्करण छपवाओ। यह काम वे कर नहीं पाए।

उसी दिन २६ नवम्बर २००३ ई को ही भोजन हुआ। बाते हुई। मैने कहा — 'मै चाहता हूँ कि हम दोनों का साथ साथ फोटो लिया जाय। आप चाहे तो स्टुडिओ चलेगे या फोटोग्राफर को बुलवा लो। क्या पता हम दोनो फिर मिल न सके।' उस दिन वे बहुत थके हुए लग रहे थे। मैने विशेष ध्यान नहीं दिया। उठकर बेटी के घर गए। उनके घर से बेटी का घर लगा हुआ था। बेटी वाणी को पुकारा। वह तुरन्त दौडी आई। कहा — 'मै फोटोग्राफर को तुरन्त बुलाती हूँ।' फोटोग्राफर आ गया। उसने हम दोनो की फोटुएँ ली। उस दिन पत्नी सामान्य साड़ी पहनकर आई थी। चक्रवर्ती के घर पर श्रीमती भारती चक्रवर्ती से मिलने जाना था। इसीलिए जब हम चारो की फोटो लेने का प्रस्ताव आया तो वाणी ने भीतर से नई साडी लाकर दी। पत्नी ने पहनी फिर हम चारो की दो फोटुएँ ली गई। और हम दोनो की तीन फोटुएँ ली गई। स्वय उन दोनों ने अपनी फोटो अलग से ली। दो-तीन घण्टे हमारे वहाँ बीत गए। पहले गोरखनाथ तिवारी ने आधा घटा ले लिया था। उसके जाने के बाद भोजन हुआ और बाद

मे फोटुए लने का कार्यक्रम हुआ। उसक बाद हम चक्रवर्ती क घर चल गए। उन्हे फोन कर दिया था कि हम आ रहे है।

लौट आने के बाद मैंने उन्हे पत्र लिखा था। उसमे मैंने लिखा था कि अपना **'आत्मवृत्त'** लिखकर भेजिए। उनका १८ दिसम्बर का अन्तिम पत्र मिला। पत्र यथावत् आगे प्रस्तुत है —

प्रो. भीमसेन निर्मल
आचार्य एव प्राक्तन अध्यक्ष
एमिरिटस प्रोफेसर

सौगधिका,
१-४-४०५/७/१, गांधीनगर,
हैदराबाद - ५०० ०८०

दिनाक १८-१२-२००३

प्रिय बन्धुवर, नमस्कार

आपका ११-१२ का पत्र। समाचार विदित हुए। अभी डाक्टर साहब ने २२-१२ को नए Lens देने को कहा है। तब तक लिखना-पढना मना है। फिर भी एकाध घटे तक दाई आँख से समाचार-पत्र के मोटे-मोटे अक्षर पढ ले रहा हूँ।

आत्मवृत्त के बारे में इस मास के अन्त तक कुछ लिख भेजूँगा।

फोटो अच्छे आए हैं। चार अपने पास रखकर, चार आपके लिए भेज रहा हूँ। प्राप्ति की सूचना दें। बाकी समाचार बाद मे,

आशा है, स्वस्थ एव सानन्द है। भाभीजी को नमस्कार और बच्चो को आशीर्वाद।

शेष कुशल।

आपका
भीमसेन निर्मल

अन्तिम पत्र

निधन ३० दिसम्बर २००३, दोपहर मे ३ बजे।

ऑखो की तकलीफ जारी थी। फिर भी पत्र लिखा। फोटुएँ भेजी। फोटुएँ अच्छी आई। २५ दिसम्बर को मैंने उन्हे पत्र भेजा प्राप्ति सूचना दी। वह उन्हें मिला होगा। पढा भी हो। मालूम नही। इसके बाद का वृत्त मुझे ठीक से मालूम नही। डॉ वसता का सबेरे सबेरे फोन आया कि हैदराबाद मे जीजाजी

का समाचार मिला कि डॉ निर्मलजी नही रहे। ३० दिसम्बर २००३ को उनका निधन हुआ है। फोन से समाचार ३१ दिसम्बर को मिला। मुझे विश्वास नही हुआ। मैने हैदराबाद मे श्रुतिकान्त भारती (मिलिन्द प्रकाशन) को फोन किया। श्रुतिकान्त को भी पूरी जानकारी नही थी। बतलाया कि अभी दाह क्रिया हुई नही है। छोटा तथा बेटी अमरीका मे आए नही है। वाणी ने भी फोन किया तब सारे समाचार मालूम हुए। २९ दिसम्बर २००३ के लिबर्टी स्थित रेमेडी अस्पताल मे उनकी बाईपास सर्जरी हुई। उसके दूसरे दिन ३० दिसम्बर को भीमसेनजी चले गये। उनका शव अस्पताल मे ही रखा गया है। उनका दाह सम्स्कार ४ दिन बाद ३ जनवरी २००४ को हुआ। घटनाएँ कैसे घटती है ? कुछ समझना मुश्किल है।

२६ नवम्बर २००३ के दिन उन्होने अपनी नवप्रकाशित पुस्तक **'रामायण एक नया आलोक'** मुझे दी थी। तेलुगु से अनूदित है। मूल लेखक स्व सुरवरम् प्रताप रेड्डी है। पुस्तक में वाल्मीकि रामायण की ऐतिहासिक एव भौगोलिक मीमासा है। उसमे राजनीति भी है। वानरो और राक्षसो के जन्म की कथा है। रामायण ओर इलियड की तुलना है और अन्य रामायणों से पक्षपात रहित और प्रामाणिक रूप से चर्चा भी की गई है। मै पढकर कुछ लिखूँ ? इससे पहले वे चले गए। मुनीन्द्रजी ने दक्षिण समाचार के ७ जनवरी २००४ के अंक मे उनके सम्बन्ध मे लिखा —

> **भीमसेन निर्मल भी चले गए**
>
> तेलुगु और हिन्दी मे पारगत होने के कारण उन्होंने दोनो मे परस्पर अनुवाद का कार्य आरभ किया और देश-भर मे अनुवादक की ख्याति अर्जित की और उन्होंने कई लोगो को अनुवाद के क्षेत्र मे प्रेरित किया। भाषा की शुद्धता के प्रति वे विशेष सतर्क रहते थे और अपने सहयोगियो तथा छात्रो का इस दिशा में मार्गदर्शन करते रहते थे। देश-भर मे एक सफल अनुवादक के रूप मे उनकी ख्याति थी और इस रूप मे वे कई बार सम्मानित और पुरस्कृत भी किये जा चुके थे। विशेष उल्लेखनीय है कि डॉ सी नारायण रेड्डी को जिस पुस्तक पर भारतीय ज्ञानपीठ का अखिल भारतीय प्रतिष्ठाप्राप्त पुरस्कार मिला था उसका अनुवाद तेलुगु से हिन्दी में डॉ भीमसेन निर्मल ने ही किया था।

विद्वान् होने के साथ-साथ वे मिलनसार वृत्ति के थे । सब के साथ वे शिष्ट और सम्मानपूर्ण व्यवहार करते थे ।

भारत सरकार के केंद्रीय हिन्दी सस्थान मे उन्हे सम्मानपूर्ण सदस्यता सौपी गयी थी, उसके अनुरूप उन्होंने अपना दायित्व निभाया ।

हैदराबाद मे एक सस्था है आचार्य आनद ऋषि साहित्य निधि। इसकी स्थापना और सचालन मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस सस्था की ओर से प्रतिवर्ष दक्षिण .

भीमसेन निर्मल का महयोग हिन्दी प्रचार सभाओ और संस्थाओ को मिलता रहता था । वे हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी मासिक का सपादन भी करते रहे । दक्षिण भारत हिन्दी प्रतिष्ठान के वे न्यासी थे और उसकी पत्रिका 'अग्रतार' का वे पाँच साल तक सपादन करते रहे ।

तेलुगु से हिन्दी मे किये गये उनके अनुवादो मे विशेष उल्लेखनीय है पोतन्ना की कृति का अनुवाद, जो तेलुगु साहित्य मे विशेष स्थान रखता है ।

'दक्षिण समाचार' के प्रकाशन के आरभ से ही उनका सहयोग और समर्थन इस पत्र को मिलता रहा । ''

यों मेरे दोनो सहपाठी मित्र और बड़े भाई एक-एक कर चले गए । अक्तूबर २००३ में चक्रवर्ती गए और दिसम्बर २००३ मे निर्मलजी चले गए ।

□ □

कोठारी निवास, बेगमपेट (२७ नवम्बर २००३)

कल सबेरे (२७ नवम्बर २००३) ७ बजे मिलिन्द प्रकाशन के मालिक श्री श्रुतिकान्त भारती के निवास पर गया । श्रुतिकान्त इस समय बहुत व्यस्त रहा है, इसीलिए उसे मिलने सबेरे-सबेरे पहुँचना पडा । मिल गया । **रामविलास शर्मा : व्यक्ति और कार्य** पुस्तक छपने के लिए तैयार थी । मुझे डमी कापी दिखलाई। दूसरी पुस्तक **पृथ्वीराजरासो का पहला भाग** के फाइनल प्रूफ्स् दिए । शेष पुस्तकें भी शीघ्र छपेगी ।

श्रुतिकान्त के पास अकेले जाना सभव नही लगा । सतोष मेरे साथ मे था। लौटकर आने पर मै नामपल्ली के भवन के नीचे ही खडा हो गया । आठ बज

गए थे। पत्नी नीचे आई। सतोष वहीं घर पर रह गया। हम लोग नामपल्ली से सीधे सिकदराबाद गए। ललित बाफणा के घर मिलने गये। बीजापुर से मुन्नी (निर्मला) आई हुई थी। बातचीत मे, बचपन के सस्मरण दोहराने मे समय कैसे बीत गया, पता ही नही चला। नाश्ता हो गया। बाद मे भोजन भी हो गया। ललित ने कहा — 'ठहरिये, मै साथ मे चलता हूॅ। मै हाईटेक सिटी दिखलाना चाहता हूॅ।' हम दोनो के साथ निर्मला भी थी। ललित भी बैठ गया। हम चारो हैदराबाद की हाईटेक सिटी का राउण्ड लगाने निकले। बेगमपेट से जाना पडता हैं। ललित का निवास स्थान पी जी रोड (जेम्स स्ट्रीट के नजदीक) पर है। सीधे बेगम पेट की ओर गये। रास्ते में हवाई अड्डा हे। आगे चलते समय मेरी इच्छा **कोठारी निवास** देखने की हुई। ललित से कहा तो उसने कोठारी निवास के पास गाडी रोक दी। हम लोग बाहर से ही कोठारी निवास देख रहे थे। गेट के पास गाडी खडी थी। भीतर से कृष्णा चौकीदार आया और कहने लगा। भीतर आइए। अपना भवन देखिए। मैं उस भवन में १९५१-१९५२ ई वर्षो में इंटरमीडिएट करते समय रहता था। उस वर्ष के चौकीदार ने मुझे पहचान लिया। इसीलिए वह हमे भीतर ले गया। महिला विद्यालय वहॉ पर १९७१ ई से चल रहा है। प्रिसिपल मैडम आई। हमे भीतर ले गई। कहा — 'घूमकर देखिए।' उस भवन का एक-एक कमरा मुझे मालूम था। मेरे फूफाजी श्री मोतीलालजी कोठारी का भवन था। उनकी मृत्यु उसी भवन में नवम्बर १९५६ ई. में हुई थी। हम लोग पहले जिस हाल मे गये, वह फूफासाहब के बडे रूम से लगी बैठक थी। वहॉ अब कालेज का मीटिग हाल है। लम्बा-ही-लम्बा टेबल है और चारो ओर कुरसियॉ है। उस कमरे से लगा कमरा फूफासाहब का बेड रूम था। वह अब प्रिसिपल का कक्ष है। इन कमरों मे मै बहुत कम आता था। फूफासाहब जब बाहर चले जाते तो बाईसाहब के साथ इन कमरो मे आता था। हाल से लगे हुए दो कमरे थे जिसमें अलमारियो में बाईसाहब का अपना निजी सामान रहता था। फूफासाहब का जब निधन हुआ तो उनका शव उसी हाल मे रखा हुआ था। आठ दिन पहले ही दीपावली के समय उन्हे मिलने आया था। उनके निधन के बाद क्या हुआ ? यह सब बाईसाहब को और भाइयो को मालूम। आज तो वहॉ महिलाओ का कालेज है। स्वीमिग-पुल बन्द कर दिया गया है। मुझ में इतनी ताकत नही थी कि पूरा भवन घूम कर देखू। फूफासाहब के कमरे से बाहर निकलते ही मैने खुला आगन देखा। रोशन भाईसाहब का कक्ष देखा।

बाईसाहब की बैठक वहीं लगी रहती थी। नीचे फूफासाहब के तीन-चार कमरो सदृश रोशन भाईसाहब के कमरे थे। फूफासाहब के कमरो के सदृश ऊपर की मंजिल पर श्री मदनलालजी भाईसाहब के कमरे थे। और उनके सामने मनोहरलालजी भाईसाहब के कमरे थे। चारों भाइयो मे तीनो भाई उस भवन में रहते थे। सबसे बडे भाई श्री फकीरचंदजी भाईसाहब इन्दौर मे थे। भवन के प्रवेशद्वार पर चौबीसो घण्टे चौकीदार बैठता था। भवन मे पूरे १२० कमरे थे। भवन के अंडर-ग्राऊंड के कमरे थे। सब ज्यो के त्यो है। किसी कमरे को गिराया नही गया। किन्तु मरम्मत की आवश्यकता है। मरम्मत में दस-बीस लाख रुपये लग सकते है।

वहाँ पर प्रिंसिपल की ओर से रजिस्टर दिया गया और कुछ संस्मरण लिखने कहा। वहाँ पर क्या लिख सकता था ? घर आकर आज सबेरे २८ नवम्बर को लिख रहा हूँ। उस भवन के साथ कालेज दिवस के कई प्रसग जुडे हुए है। उसी भवन के स्वीमिंग-पुल मे मैंने तैरना सीखा है। बडे भाईसाहब ने ऊपर से मुझे ढकेल दिया। नीचे गया फिर अपने आप ऊपर आ गया। तैरना आ गया था किन्तु आत्मविश्वास की कमी थी। बगला छोडने के बाद बोइनपल्ली के कुँए मे तैरता था। बाद मे तैरने का अवसर ही नही मिला। बाईसाहब को तैरने का शौक था। उसके लिए पहले उन्होंने बुलेटिन बिल्डिग के कम्पाउण्ड में भी स्वीमिंग पुल बनवाया।

फूफासाहब के मित्र रघुनाथमलजी थे। उनकी बिल्डिंग अबिड रोड पर थी। उनकी स्वय की बैंक थी। फूफासाहब हैदराबाद के फिल्म असोसिएशन के प्रेसिडेंट थे। हैदराबाद मे नाटक मंडली थी फिर मूक सिनेमा और बाद में फिल्में सब थी। किसी समय ग्यारह टाकीज उनके अपने थे। मुबई की फिल्म इंडस्ट्री से उनका सम्बन्ध था। वी. शांताराम का उनके निवास पर आना-जाना था। हैदराबाद मे प्रथम इंग्लिश दैनिक का — हैदराबाद बुलेटिन का — आरंभ करनेवाले थे। सम्पादकीय लिखते थे। वे बहुत व्यस्त रहते थे। निजाम के दरबार में जाना-आना था। उनके उस भवन को हैदराबाद के सबसे अच्छे भवन के रूप में ख्याति प्राप्त थी। इलेस्ट्रेटेड वीकली के मध्य के दो पृष्ठों पर उस भवन की तस्वीर छपी थी।

उसी भवन को बदले हुए रूप मे पुन देखने का अवसर मिला।

□ □

12

यात्राएँ और सामग्री संकलन

औरगाबाद में रहते हुए मैने यात्राएँ बहुत की है। १९८९ ई तक पारिवारिक स्तर की यात्राएँ अलग होती थी। उनमे पत्नी और बच्चे साथ मे रहते थे किन्तु शोध कार्य से सम्बन्धित, संगोष्ठियों से सम्बन्धित और परीक्षाओ से सम्बन्धित यात्राएँ अकेले ही होती थी। १९८९ ई. के बाद मे अकेले यात्रा करना सभव नही रहा। पत्नी को साथ में रखना आवश्यक हो गया। साथ मे रहने के कारण यात्रा करने मे सुविधा हुई। यात्रा के बाद में जब घर पर लौटना होता तो घर बहुत अच्छा लगता। घर मे जो सुख-सुविधा उपलब्ध रहती है, वह बाहर उपलब्ध नहीं रहती। यात्रा से लौटता तो चिट्ठियो का ढेर मिलता। एक सप्ताह उत्तर देने में चला जाता। जहॉ भी जाता, वहॉ से पुस्तके ले आता। उनमे से कुछ पढता भी था। आवश्यक पुस्तके खरीदने की आदत हो गई। पुस्तक जो देखने मे आए, उसे उसी समय खरीद न ले तो पुन वह पुस्तक देखने मिल ही जाएगी, यह कहना कठिन है। मिल जाए तो उत्तम भाग्य। यो मेरे पास सामग्री एकत्रित होती गई है। आरम्भ

मे — हैदराबाद तथा तिरुपति में — ज्ञान विज्ञान की — दर्शनशास्त्र तथा सौदर्यशास्त्र से सम्बन्धित पुस्तके खरीदता था । बाद मे हिन्दी वीरकाव्यों से सम्बन्धित पुस्तके खरीदता रहा । महाराजकुमार रघुबीरसिह के कारण इतिहास की पुस्तके खरीदी और अब भाषा विज्ञान से सम्बन्धित कोई भी अच्छी पुस्तक खरीदता हूँ ।

दिल्ली या वाराणसी से लौटते समय ट्रेन मे ही पुस्तके पढ़ लेने की आदत हो गई । ट्रेन मे मैंने बहुत-सी पुस्तके पढ़ी हैं । यात्रा मे सदैव पुस्तक रखता रहा हूँ । यात्राओ में पुस्तके अधिक साथ में नही रहती । एक दो गम्भीर पुस्तके ही साथ मे रखता था । विशेष अध्ययन की पुस्तके घर पर ही पढता रहा हूँ। विषय से ध्यान बँट न जाए, इसीलिए कथा साहित्य से बचता रहा हूँ । न चाहने पर भी कुछ सामयिक और बहुचर्चित कथा साहित्य की पुस्तकें पढ ली है । ऐसी जो भी पुस्तके पढी, उनकी टिप्पणियाँ मैंने तुरन्त लिख ली है । मुझे मालूम है कि इस पुस्तक को दूसरी बार पढने का अवसर मिलनेवाला नही है। पी-एच.डी का प्रबन्ध प्रस्तुत करने के बाद (जुलाई १९६४ ई. के बाद) का वर्ष मैंने कथा साहित्य को दिया । ग्रथालय से लाकर खूब उपन्यास पढे । सभी उपन्यास लौटा देने पडे । घर पर अपना उपन्यास रखना मैंने आवश्यक नहीं समझा । इसीलिए मैंने उपन्यास पढना होते ही, दूसरा उपन्यास पढने से पूर्व उसकी टिप्पणियाँ लिखने लगा । वे टिप्पणियाँ मेरे पास आज भी मौजूद है । सभी टिप्पणियो का उपयोग नही हुआ है । १९७२ ई. में मैंने — '**हिन्दी उपन्यास · प्रयोग के चरण**' पुस्तक प्रकाशित की । वह टिप्पणियाँ के आधार पर लिखी गई है ।

लेखन के लिए सामग्री सकलन बहुत आवश्यक है । यात्राओं मे सगोष्ठियो मे, साहित्यिक गतिविधियो का बोध होता है । बहुचर्चित पुस्तकें खरीदता रहा हूँ ।

□ □

अन्य भाषाओं की पुस्तकें

मेरे पास आज जो पुस्तकें एकत्रित है, उनमे सब से अधिक हिन्दी की है। उसके बाद मराठी की है । अग्रेजी की है । कुछ गुजराती की हैं । बी.ए मे मैंने पाठ्य-पुस्तक के रूप मे अग्रेजी की पुस्तक 'बर्ट्रेड रसेल के चयन किए हुए निबन्धों' की थी । उस समय रसेल थे । रसेल के कारण मेरा ध्यान अग्रेजी की ओर गया । ग्रथालयों से पहले मै अग्रेजी की पुस्तके लाता और पढ़ता था । मेरी अंग्रेजी भाषा ठीक नहीं थी । इसीलिए अग्रेजी भाषा को ठीक करना आवश्यक

था अंग्रेजी साहित्य की कुछ पुस्तके ग्रथालयो से लाकर ही पढ़ी है अंग्रेजी का भय उस समय दूर हो जाता जब मै पुस्तक पूरी पढ लेता। यद्यपि मैंने कुछ लेखको की पुस्तके समझने मे कठिनाई होती तथापि उन पुस्तको को कुछ पृष्ठ तो मै जिज्ञासावश पढ़ रहा हूँ। अंग्रेजी की पुस्तके पहले खरीदता नही था किन्तु बाद मे खरीदने लगा। शुक्लजी के कारण आई ए रिचर्डस् की पुस्तकें खरीदी। रसेल की हिन्दी मे अनुदित पुस्तके खरीदी। उन पुस्तको के सस्करण बाद में निकले ही नहीं। अशोक महेश्वरी से मैंन कहा भी था और लिखा भी किन्तु उन्होने ध्यान नहीं दिया।

अंग्रेजी की पुस्तके मैने समय की आवश्यकता के कारण पढी है। आज भी भारत की जानकारी देनेवाली जितनी पुस्तके अंग्रेजी में उपलब्ध है और निरन्तर लिखी जा रही है। उतनी दूसरी भाषा में — (भारतीय भाषाओ में भी) नही है। अंग्रेजी भाषा की पुस्तको मे विदेशियों का दृष्टिकोण आ ही जाता है। उनसे मुक्ति सहज नही है। सतर्क रहने की आवश्यकता है।

□ □

डॉ. सुरेन्द्र बारलिंगे

डॉ सुरेन्द्र बारलिगे के घर पर रहते हुए मैंने विट्गन्स्टाइन की पुस्तक 'फीलासाफीकल इन्वेस्टीगेशन' पुस्तक देखी। वह पुस्तक सदैव उनके साथ रहती। जब वे घर पर रहते, उस समय उनसे पुस्तक लेकर पढ लेता था। उक्त पुस्तक खरीदने की इच्छा हुई। मुझे मिली नही। औरगाबाद आने के बाद मे पुन डॉ. बारलिंगे से मिलना हुआ और अन्त तक जारी रहा। मैंने पुस्तक प्राप्त करने का प्रयत्न किया। बाद मे मालूम हुआ कि दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के प्रोफेसर डॉ अशोक बोहरा ने उक्त पुस्तक का अनुवाद किया है। पुस्तक मैंने दिल्ली मे ही खरीद ली। बाद मे अशोक बोहरा से पत्र-व्यवहार किया। उन्होंने दूसरी पुस्तक का भी अनुवाद किया था। वह भेज दी। दिल्ली गया तो उनसे मिलने विभाग में गया था और बाद मे घर पर भी गया। बाद में मैंने उनकी तीसरी अनूदित पुस्तक प्राप्त कर ली। विट्गस्टाइन रसेल के शिष्य थे और बाद मे रसेल उन्हे खूब मानने लगे थे। रसेल ने अपने शिष्य की विद्वत्ता को समझा। बहुत बडी बात है। **भाषा-चिन्तन** में आज भी मुझे उमसे बडा लेखक पढने नहीं मिला है। डॉ. बारलिगे के साथ बात करने मे उक्त लेखक की छवि का मैंने अनुभव किया है। मैने उनकी पुस्तक

(Confessions & Commitments' अंग्रेजी पुस्तक) का अनुवाद हिन्दी मे किया है। अनुवाद, मैने उन्हे पढकर सुनाया है। वह अनूदित पुस्तक उनके देहावसान के बाद मे प्रकाशित हुई है। पुणे विश्वविद्यालय ने उसे प्रकाशित किया है।

□ □

डॉ. अमूर

मै चाहकर भी — दर्शन मे अभिरुचि रखने पर भी, उस विषय पर ध्यान नही दे सका। मराठवाडा विश्वविद्यालय मे डॉ. अमूर (कर्नाटक के) अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष थे। वे मुझे बहुत चाहते थे। उन्होंने अपने विभाग के सेमिनारो मे मुझे आमत्रित किया और कुछ लिखवा भी लिया। मैंने 'रसेल' पर आलेख लिखा और पढकर सुनाया। सेवानिवृत्त होने के बाद अमूर साहब धारवाड चले गए। वहाँ के अंग्रेजी विभाग मे मेरा नाम दिया और मुझे सगोष्ठी मे बुलवाया। उस समय प्रेमचंद पर मैंने अपना आलेख अंग्रेजी मे प्रस्तुत किया। कुछ कारणवश ही मैंने अंग्रेजी मे लेखन कार्य किया है। पढने और समझने की कठिनाई दूर हो गई। तिरुपति मे तो यूनिवर्सिटी में अन्य विभागों के प्राध्यापकों के साथ सवाद अंग्रेजी मे ही होता। मेरी अंग्रेजी को लोग बुरा नही मानते। मुझे बहुत-सी चिट्ठियॉ अंग्रेजी मे मिली है।

जब मै भारतीय इतिहास और भारतीय भाषाओ के इतिहास पर पुस्तके खोजने लगा तो पुस्तके अंग्रेजी मे ही मिली और वे मैंने विषय की आवश्यकता से खरीदी। भारतीय भाषाओ पर हिन्दी मे पुस्तके आज भी नहीं मिलती। साहित्य अकादमी ने भारतीय भाषाओं के इतिहास पर, साहित्य के इतिहास पर तो पुस्तकें छापी है, वे प्राय अंग्रेजी में है। दक्षिण की भाषाओ पर स्वतत्र पुस्तके हिन्दी मे कम है। यो विषय बोध के लिए अंग्रेजी मे पुस्तकें पढना आवश्यक ही नहीं, आज तो अनिवार्य भी है। आज भी विश्वविद्यालयों मे विज्ञान के विषय तो अंग्रेजी मे ही पढाए जाते है। इसी तरह अन्य विषय — जैसे — इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि का माध्यम भी अंग्रेजी भाषा है। यहाँ तक कि हमारे अपने देश की भाषाओ को पढाने का माध्यम अंग्रेजी भाषा है। संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन अंग्रेजी माध्यम से होता है। भारतीय भाषाओ को माध्यम रूप में अपनाने की प्रक्रिया आरंभिक स्तर पर है।

□ □

भारतीय भाषाएँ

भारतीय भाषाओं को समझाने के लिए, भारतीय प्रदेशों की यात्राएँ आवश्यक हैं। इसीलिए मैंने यात्राओं के समय, अलग-अलग प्रदेशों की भाषाओं पर ध्यान दिया है। भारतीय भाषाओं पर जो पुस्तकें मिली है, उन्हें खरीदता रहा हूँ। ऐसी पुस्तकें अँग्रेजी भाषा में ही अधिक मिली है। कुछ विदेशी विद्वानों की पुस्तकें हिन्दी में अनूदित रूप मे मिलने लगी हैं। किन्तु आज भी सभी भाषाओं का ऐतिहासिक परिचय देनेवाली पुस्तकें हिन्दी में नही है। **ऐतिहासिक भाषाविज्ञान** पर हमारे देश के विद्वानों ने जो काम किया, वह आज भी उपेक्षित है। इस दृष्टि से डॉ. रामविलास शर्मा ने जो काम किया, उसे अभी भी स्वीकृति नही मिली है। उन्हें भाषा विज्ञान का विद्वान् माना ही नहीं गया। उनके बृहत् कार्य की अभी तक पहचान नही हुई है। **संस्कृत भाषा के इतिहास** पर अंग्रेजी मे जितनी पुस्तकें मिल जाएगी, वह हिन्दी मे नही है। **संस्कृत साहित्य के इतिहास** पर कीथ की पुस्तक (अंग्रेजी मे) का जितना नाम है, उतना किसी भारतीय विद्वान् का नही है। **प्राकृत भाषा** पर अच्छी पुस्तकें मिलती नहीं है। **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान** पर काम करनेवालों ने **प्राकृत भाषा** की पूर्णत उपेक्षा की है। प्राकृत भाषा पर आज भी विदेशी विद्वान् 'पिशेल' (जर्मन विद्वान्) का नाम ख्यात है। स्वयं डॉ. रामविलास शर्मा ने प्राकृत भाषा पर ध्यान नही दिया है। वैदिक संस्कृत और लौकिक सस्कृत के अन्तराल को समझानेवाली पुस्तकें आज भी नही मिलती। इस दृष्टि से डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा ने काम किया है। उन्होंने अंग्रेजी में पुस्तक लिखीं — '*Critical Studies in the Phonetic Observation of Indian Grammarians*' है। उसका हिन्दी अनुवाद हो गया है। 'प्राचीन भारतीय वैयकारणो के ध्वन्यात्मक विचारों का विवेचनात्मक अध्ययन।' पुस्तक का यही नाम है। ऐसी पुस्तकें बहुत कम है।

□ □

विश्वविद्यालय

मै १९५४ ई. से १९९३ ई. तक लगभग ३९ वर्ष तक विश्वविद्यालय मे काम करता रहा हूँ। १९५४ से १९५८ ई. तक तो छात्र था। १९५८-१९५९ का वर्ष कालेज मे काम करता रहा। १९५९ ई. में पुनः वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय मे (१९६८ ई. तक) रहा। १९६८ ई. से सेवानिवृत्त होने तक पुन मराठवाडा विश्वविद्यालय मे ही रहा और बाद मे भी २००० ई. तक मेरा जाना आना जारी रहा है। इस नाते से मुझे पढने-लिखने का वातावरण मिला है। मुझे जिस किसी

भी विषय की जानकारी की आवश्यकता हुई, मै उक्त विषय के अधिकारी के पास पहुँच जाता था । उनके घर पर भी जाता । दूसरे विषयों मे जो काम होता, उन्हे देखने का अवसर मिलता । ग्रथालय सुलभ रहता । मैंने विश्वविद्यालय के ग्रथालय मे घण्टो गुजारे हैं । एक रेक के पास खडे हो जाता तो उसे देखने मे, वह दिन गुजर जाता । मराठवाडा विश्वविद्यालय का ग्रथालय बहुत उत्तम है । आरम्भ मे गोरे साहब ग्रथपाल थे । उनसे सदैव मिलता । जब भी ग्रथालय मे जाता तो उनके कक्ष मे पहुँचता और यदि वे मिल जाते तो उनके पास बैठ जाता । उनके साथ चाय पीता । वे विशिष्ट चाय पीते थे । उनके कक्ष से लगा एक छोटा कमरा था । उनकी चाय वही बनती । डीकाशन की चाय बनती । वे स्वयं पीते और फिर मुझे भी मिल जाती । बातचीत करने में उनके पास सूचनाओं का भण्डार था। विश्वकोश की तरह बोलते थे । कौनसी पुस्तका कहाँ रखी है ? उन्हें मालूम था। कहने के साथ पुस्तक तुरन्त मगवाकर दिखा देते थे । मेरे देखने मे ऐसे ग्रथपाल बहुत कम रहे हैं ।

□ □

Central Institute of English and Foreign Languages

मुझे हैदराबाद मे ही किसी ने उक्त इस्टीट्यूट के ग्रथपाल श्री. सी. एस रामय्या का पता दिया था । ग्रथपाल के कार्य से सेवानिवृत्त होकर वे शातिनगर मे रहने लगे थे । द्रविड परिवार में हुए कार्य की पुस्तकों की सूची उन्होंने संदर्भ-ग्रथ के रूप मे तैयार की थी । उक्त संदर्भ ग्रंथ के वाल्यूम छप गए थे । जनजातीय भाषाओं के ग्रथों पर छपी हुई पुस्तको का सदर्भ ग्रथ उन्होंने तैयार किया था । उनके घर गया । उन्होंने अपना कार्य मुझे दिखलाया । द्रविड़ परिवार पर बहुत कार्य हुआ है । इस देश मे और विदेशों मे भी हुआ है । तिरुपति का मेरा छात्र डॉ बी रामकृष्ण रेड्डी आज कुप्पम् (जिला चितूर) मे द्रविड विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रार है । श्री सी. एस रामय्या ने मुझे उक्त इस्टीट्यूट के नये ग्रंथपाल के नाम पत्र दिया और मेरी सहायता करने के लिए कहा । तदनुसार मैं उक्त इस्टीट्यूट मे पहुँचा और पुस्तको की खोज की । कुछ पुस्तके मिली । पुस्तके सभी इग्लिश मे थी । उनमे मैंने Kamil V Zvelebit की पुस्तक Dravidian Linguistics An Introduction देखीं । मैने उक्त पुस्तक के साथ-साथ कुछ अन्य पुस्तको के आवश्यक आलेखो की जीराक्स प्रतियाँ तैयार की और घर ले आया । श्री सी एस रामय्या जैसे और भी ग्रथपाल है जो उपलब्ध ग्रंथों को आधार मानकर सदर्भ ग्रथ तैयार करते है, जिनसे विद्वानो का कार्य और सरल हो जाता है । दक्षिण

की भाषाओ पर विदेशों में बहुत काम हुआ है किन्तु वह मब काम अंग्रेजी मे ह । हमारे अपने देश की भाषाओ म नही है । हिन्दी म इम प्रकार का काम करनेवाली सस्था 'केन्द्रीय हिन्दी मस्थान' है जिसका केन्द्रीय कार्यालय आगरा मे है और उसकी शाखाएँ दिल्ली, हैदराबाद, मैसूर, गुवाहाटी आदि स्थानो पर हे । धारवाड विश्वविद्यालय मे **'कन्नड़ भाषा'** का स्वतत्र भवन है। त्रिवेन्द्रम् और अन्नामलाई मे भी ऐसे केन्द्र है । पूना मे भी डेक्कन कालेज मे भाषा विज्ञान का अलग विभाग हे । भाषाओ पर देशभर मे अब तो कई सस्थान है और खूब काम हो रहा हे। यू.जी.सी. का प्राजेक्ट पूरा कर मैने मई-जून १९९९ ई मे यू जी सी को प्रस्तुत कर दिया । उसके बाद अब केवल भाषा विज्ञान की पुस्तके पढ रहा हूँ । जहाँ भी जाने का अवसर मिला । वहाँ अब इसी विषय की पुस्तकें देखता रहता हूँ। दक्षिण भारत की भाषाओ पर स्वतत्र काम करने की इच्छा है किन्तु **द्रविड परिवार** पर कुछ लिखो तो प्रकाशक प्रोत्साहन नही देते । इस पर भी मेरा कार्य जारी है । मेरी इसी वर्ष (२००४ ई) प्रकाशित पुस्तक मे मैंने कामिल वी ज्वेलेबिल के आधार पर द्रविड परिवार की भाषाओ का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है । इस पुस्तक से पूर्व मैंने 'भारत की भाषाएँ' पुस्तक लिखी थी । (१९९५ ई मे प्रकाशित) — उसमे मैने द्रविड परिवार का वर्गीकरण प्रधान रूप से भद्रराज कृष्णमूर्ति के आधार पर लिखा था । हैदराबाद की उक्त यात्रा मे (अक्तूबर १९९९ ई) मै हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय के Linguistic Department मे गया था। उस समय वहाँ पर वेंकटरमणराव हिन्दी विभाग में प्रोफेसर एव डीन थे । तिरुपति मे वे मेरे छात्र ही थे। उनके साथ मै भाषा विज्ञान के विभाग मे गया। डॉ उदयनारायणसिंह विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष थे । उनसे बात हुई । विभाग के अन्य सदस्यो से परिचय हुआ । उनसे मिलकर कुछ पुस्तको के नाम लिख लिए । उदयनारायणसिंह ने भद्रराज कृष्णमूर्ति के निबन्धो का सकलन सम्पादित किया है — Language Education & Society पुस्तक का नाम है । इसी तरह 'सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या' पर भी पुस्तक सम्पादित की है । वे अब हैदराबाद छोडकर मैसूर चले गये है। CIIL के निदेशक हो गए हैं ।

मैंने अनुभव किया कि कार्य विशाल है । मैंने पूर्वोत्तर के प्रदेशो की यात्रा नही की । इसी तरह कश्मीर की उत्तराचल की तथा पजाब-हरियाणा की यात्राएँ योजनानुसार नही की । इस पर भी इन प्रदेशो की भाषाओ और उनके साहित्यिक स्वरूप की पहचान करानेवाली पुस्तके खरीदी है । यो सामग्री एकत्रित हो गई है। इस सारी सामग्री का उपयोग कर पाऊँगा या नहीं ? मै नही जानता ।

□ □

मुनि जिनविजयजी

मुनिजी से मिलने चित्तोड से चन्देरिया गया था। १९७२ या १९७३ ई मे गया। चन्देरिया रेलवे स्टेशन भी है। मै तो बस से चला गया। पूछते-पूछते उनके आवास पर पहुँचा। मिल गये। आजीवन काम करनेवालो मे थे। प्राकृत भाषा के विद्वान् थे। कई पुस्तको का सम्पादन किया है। पोथियाँ पढने मे माहिर थे। विद्या उनके कठ मे थी। उन्होने जोधपुर मे प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की स्थापना की। उसकी शाखाएँ जयपुर और उदयपुर में हैं। डॉ राधाकृष्णन् से उनका परिचय था। के एम मुशी से सम्पर्क था। मुबई, अहमदाबाद तथा कलकत्ता में रहकर काम किया और अन्तिम दिनो मे चन्देरिया मे रहते थे। मै जब मिला, उस समय ८० वर्ष के ऊपर ही होगे। वाणी मे बल था। लिखना-पढना बन्द कर दिया। एक लडकी उनकी सेवा मे थी। उनसे बात की तो बतलाया कि वे अब चिट्ठियो का उत्तर नही देते। सब काम छोड दिया है। उन्होने उस समय मुझे दो पुस्तकें दी। एक उनकी आत्मकथा थी और दूसरी उनको मिली चिट्ठियो का सकलन था। उन्होने कहा — 'चिट्ठी मत लिखना।' शेष जीवन सुख से एक गॉव मे व्यतीत कर रहे थे। उनके आत्मबल को देखकर मैं चकित रह गया।

□ □

महाराजकुमार रघुबीरसिंह

महाराजकुमार रघुबीरसिह को भी अन्तिम दिनो मे मैंने देखा है। उनकी उपस्थिति मे 'लदूना' में जो सगोष्ठी हुई। उसमे उन्हें हाथ पकड कर लाना पड़ता था। चलना नही होता था। पहले की तरह बोलना बन्द कर दिया था। हास्य मुद्रा वही थी। देखकर तृप्त हो जाते थे। मनोहरसिह राणावत उनकी सेवा मे था। अन्तिम बार उनसे मिलने अप्रैल १९८९ ई. मे गया था। उस समय मैंने उनके पत्रो का संकलन सम्पादित कर दिया था। प्रकाशक को पुस्तक छापने के लिए देनी थी। श्री सियाशरण खण्डेलवाल प्रकाशक था। औरंगाबाद घर पर आया। विभाग मे मिला और पुस्तक मागी। पुस्तक पहले ही टंकित कर रखी थी। मै २१ या २२ अप्रैल १९८९ को उनसे पाण्डुलिपि के साथ मिला। पुस्तक उन्होंने हाथ में ली। देखी। पाण्डुलिपि पलट कर देखी। मौन रूप मे ही स्वीकृति दी। विशेष बात नही हुई। सीतामऊ से मै जयपुर गया। ट्रेन में बैठकर मैंने पुस्तक की 'विज्ञप्ति' २३ अप्रैल १९८९ ई. को लिखी। २४ अप्रैल को प्रकाशक से मिलने गया। हवा महल के सामने की चौपड के पास के दूसरे मार्ग पर 'शरण बुक डेपो' दुकान पर मिलने गया। पुस्तक छापना स्वीकार कर लिया। पुस्तक

उसने तुरन्त छाप दी । औरगाबाद आया ओर पुस्तक की प्रति घर पर देकर गया। मै उन दिनो बीमार था । घर पर ही आराम कर रहा था । १९९० ई मे पुस्तक छप गई थी । महाराजकुमार को भी उसने पुस्तक दे दी थी । उनके पास गया ओर उनसे 'औरगजेब' (जदुनाथ सरकार की out of print पुस्तक) पुस्तक छापने की अनुमति ले ली । हिन्दी अनुवाद महाराजकुमार ने किया था । मै जब जयपुर मे उससे मिला था तो उसने 'औरंगजेब' — पुस्तक का नया सस्करण छाप दिया था । कोई प्रकाशक इतनी तेजी से पुस्तके छापता है, यह मैने देखा नही था। मुझे इसी बात का सतोष है कि उसने पुस्तक छाप दी ओर उसे महाराजकुमार ने देख लिया । फरवरी १९९१ ई मे सगोष्ठी का आयोजन था किन्तु उसी मास १३ फरवरी १९९१ ई को उनका निधन हो गया । बाद में उन पर जो ग्रथ सम्पादित हुआ, वह ग्रथ भी श्री सियाशरण खण्डेलवाल ने छापा । उसके सम्पादक मण्डल का मै सदस्य था । ग्रथ १९९३ ई मे छपा । विमोचन के अवसर पर सीतामऊ गया था ।

महाराजकुमार रघुबीरसिह की कार्य पद्धति पर उनके पास रहते हुए, मैंने बहुत ध्यान दिया है । उनमे से मैंने भी उक्त पद्धतियो को अपनाने का प्रयत्न किया है । पत्र-लेखन और पत्रो की सुरक्षा उनसे ही सीखी है । जावक क्रमाक ओर तिथियो का क्रम १९८९ ई. के बाद मे नियमित लिखने लगा । सदर्भो को जोडना। अलग-अलग फाइले बनाना । सामग्री को क्रम मे रखना । पुस्तक अपनी होने पर — खरीदने के बाद ही — पढना । ग्रथालय की पुस्तकें पढने मे लाभ नही है। उनका उपयोग दूसरी बार, तीसरी बार पढने के बाद मे ही संभव है । पुस्तक पर कुछ लिखना हो तो उसे पढने के साथ तुरन्त लिख लेना ही ठीक रहता है। इतिहास का उपयोग क्यो होता है ? इतिहास का अर्थ मात्र राजनीतिक इतिहास न मानकर उसके व्यापक स्वरूप को समझना और उस पर उसी पद्धति से कार्य करना, काल-क्रम की पहचानना; उनके अलगाव को जानना, वर्गीकरण करना , ऐतिहासिक काल के अनुसार तथ्यो को पहचानना.. आदि आदि बहुत-सी बाते है, जो अनजान में और करते-करते सहज सीख गया हूँ ।

□ □

भालचन्द्र तेलंग

आज मै जो कुछ हूँ, इसका कारण मेरे गुरुजन है । औरगाबाद मे डॉ. भालचन्द्र तेलग थे । उनके पास नियमित जाता था । जो कुछ लिखता, उन्हें सुनाता था। वे काव्यशास्त्र और भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ थे । पद्माकर कवि के वशज थे । अन्तिम

दिनो म उनकी आँखे चली गई। क्या करे ? पत्र आते थे। मै उनके पास उस अवस्था मे भी उनके घर जाता। चिठ्ठियॉ पढकर सुनाता। वे जो कहते, तद्नुसार उनके पत्रो के उत्तर लिख देता। बहुत खुश होते। नया मकान बन गया था। उन्हे अपने घर पर ले आया और फिर छोड आया। अन्तिम दिनो मे 'दक्खिनी भाषा' पर काम किया। उन्हे कोई प्रकाशक नही मिला। पद्माकर अनुसन्धान शाला' खोली। उसीके अतर्गत स्वय पुस्तके प्रकाशित की 'अनूप प्रकास' (मान कवि कृत) की पाण्डुलिपि उनके पास थी। आधी ही थी। लदन की संस्था से पत्र-व्यवहार कर उस कृति की शेष पाण्डुलिपि मगवाई। फोटो कापी आ गई। किन्तु जब आखें चली गई तो क्या करते ? उन्होने उक्त प्रतियॉ मुझे दे दी। मेने उक्त कार्य पूर्ण किया और वाराणसी के सजय प्रकाशन से १९९९ ई मे उसे छपवा दिया।

तेलग साहब तो स्थानीय रूप मे उपलब्ध थे। जब चाहता, उनके पास चला जाता था। भारतीय हिन्दी परिषद के औरगाबाद अधिवेशन से पूर्व मार्च १९८४ ई मे उनका निधन हो गया। समाचार, टाइम्स ऑफ इडिया में छपा था। विभाग में डॉ राजूरकर साहब के कक्ष मे बैठा था। उस समय डॉ प्रेमस्वरूप गुप्त भी बैठे हुए थे। उनके हाथ मे 'टाइम्स ऑफ इडिया' की प्रति थी। उन्होने उक्त समाचार सुनाया। फरवरी मे एक मास पूर्व ही उनसे मिला था। मैं ग्रथालय से विभाग की ओर लौट रहा था। डॉ तेलंग बैक का काम पूर्ण कर बाहर आकर ऑटो मे बैठ गये थे। मैने ऑटो रोककर बात की। अधिक बोले नहीं। 'मै जा रहा हूँ।' — इतना कहा। चुप हो गए। सब हो गया है — इतना कहते-कहते रह गये थे। बंगला बेच दिया था। स्वय अपनी ओर से सब कुछ पूर्ण कर चले गए। श्रीमती सुशीलादेवी (उनकी पत्नी) साथ में थी। और बस, वे एक मास के भीतर चले गए। ७८ वर्ष की आयु मे गए।

□ □

महाराजकुमार रघुबीरसिंह और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

मेरे लेखन पर उक्त दोनों लेखको का प्रभाव है। आचार्य शुक्ल को जानने-पहचानने की दृष्टि से उनकी जीवनी मैंने लिखी है। उसका क्रम बैठाने में बहुत समय गया। उक्त जीवनी मैंने तीन बार — अपने को ठीक करते हुए — लिखी है। इच्छानुसार सकलित सामग्री का उपयोग नहीं हो सका। यह सारा काम महाराजकुमार के निधन के बाद का है। जब तक महाराजकुमार थे — मेरे लिए वही आदर्श थे। महाराजकुमार का पत्र मिलता और मै फिर उनके बतलाए कार्य

में जुट जाता। मुझे उन्होंने भटकने से और अन्य कार्य करने से रोका है। पत्रों में फटकार लगाई है। व्यावहारिक परामर्श दिया है। सांत्वना दी है और काम करने में अग्रसर रहने के लिए कहा है। जब भी उनसे मिलता मुझे उनकी दीप्ति मिलती। कार्य में आत्मविश्वास बढ़ता। मैं चाहकर भी उनके सृजनात्मक गुणों को व्यक्त नहीं कर सका हूँ। इतिहासकार तो वे थे ही। किन्तु **'इतिहास-लेखन'** में उनका गद्य पढ़ जाओ तो उसमें सृजनात्मकता मिल जाएगी। ठीक उसी तरह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को पढ़ जाओ और विशेष रूप से **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** पढ़ जाओ तो उसमें इतिहासकार के गुण प्रच्छन्न रूप में मिल जाएंगे। शुक्लजी के इतिहास ज्ञान पर मैंने कुछ नहीं लिखा है। उनके फुटकल लेखन में इतिहास ज्ञान अधिक है किन्तु उनका **हिन्दी साहित्य का इतिहास** भी प्रधान रूप से भारत के राजनीतिक इतिहास से अधिक जुड़ा है। वे काल-क्रम का और तथ्यों का ध्यान अधिक रखते हैं। एक इतिहासकार के रूप में साहित्य के तथ्यों को परखते हैं। और फिर उनका गहन ज्ञान है, जिसका वे उपयोग वे करते ही हैं।

महाराजकुमार के लेखन में सृजनात्मक गुण हैं। इसीलिए उन्होंने काव्यों में इतिहास को पहचाना है। उनके लेखन का विषय इतिहास ही रहता है किन्तु वे ऐतिहासिक चरित्रों को सृजनात्मक आधार देते हुए परखते और पहचानते हैं। उनका ऐतिहासिक पर्यालोचन इसीलिए सृजनात्मक हो जाता है। **'शेष स्मृतियाँ'** उनके गद्य लेखन की उत्तम पुस्तक है जिसके आरम्भ के पृष्ठ शुक्लजी ने लिखे हैं। शुक्लजी सृजनात्मक गुणों को उजागर करते हैं। आचार्य शुक्ल का वह अन्तिम निबन्ध है। चिन्तामणि भाग १ — के अन्त में छपा है। शीर्षक है — **'रसात्मक बोध के विविध रूप'**। आज कोई उस निबन्ध को पढ़ जाए तो इस बात की कोई कल्पना नहीं कर सकता कि उक्त निबन्ध का मूल आधार **'शेष स्मृतियाँ'** है। उसी निबन्ध से 'शेष स्मृतियाँ' के सारे उदाहरण हटा दिए गए हैं। महाराजकुमार का नाम भी उसमें नहीं है। निबन्ध को शास्त्रीय रूप दे दिया गया है। शुक्लजी ने अपने लेखन को बहुत सँवारा है। उमंग में आकर लिखे गए निबन्धों को उन्होंने सँवार कर शास्त्रीय रूप में पुनः पुनः लिखा है। और देखिए यह सब वे पेंसिल से और लेटे लेटे लिखते थे। पेंसिल से लिखते और सीधे प्रेस को दे देते। कई बार प्रेस में उनकी सामग्री खो गई और उन्हें दूसरी बार लिखना पड़ा है। उनकी कविताओं का संकलन जो इलाहाबाद को छापने के लिए दिया गया था, खो गया था। पुनः उसका संकलन हो नहीं सका। बहुत-सा लेखन गायब हो गया है। यह सब मुझे उनके पुत्र केशवचन्द्र शुक्ल ने बतलाया है। मुझे

यहाँ पर इतना ही कहना है कि शुक्लजी का शास्त्रीय लेखन व्यवहार पर आधारित है और अनुभूत है । सृजन मे उन्होने शास्त्र की खोज की है ।

ठीक इसके विपरीत महाराजकुमार काव्यों मे ऐतिहासिक सदर्भ खोज लेते है । जहाँ नकारना हैं, वहाँ वे साफ नकार देते है । मुझे तो कई बार फटकार लगाई है । काव्य के प्रयोजन में निहित ऐतिहासिक सत्य को पहचान लेते है । ऐतिहासिक काल-क्रम (तिथियो को क्रम से पहचानने का क्रम) को अच्छी तरह पहचान लेते हैं । वे शास्त्र मे उलझते नही । उनकी साहित्यिक अभिरुचि ने उन्हे सृजनात्मक लेखक का बल दिया है । महाराजकुमार को इतिहासकार के रूप मे तो पहचाना गया है । किन्तु उनके साहित्यिक कार्य की पहचान अभी भी नही हुई है ।

□ □

डॉ. रामविलास शर्मा

डॉ. रामविलास शर्मा से मेरा सम्पर्क १९६९ ई हुआ किन्तु १९८० ई तक मेरा ध्यान उनकी ओर अधिक नहीं गया । निराला की साहित्य साधना भाग १ — ने मेरा ध्यान उनकी ओर पुन खीचा । पढने के बाद तुरन्त उन्हे पत्र लिखा था । उत्तर मिला । यह १९७४ ई की बात है । बाद के दोनो भाग मैंने खरीद लिए किन्तु उस तल्लीनता से पढना नहीं हुआ । इस बात को वे भी जानते थे । डॉ. रामविलास शर्मा के कार्य का फलक व्यापक है । उनकी विशेषताओ को जानने मे मुझे काफी समय लगा । उनके साथ रहकर उनसे विशेष चर्चा करने का समय जैसा चाहता था, वैसा नहीं मिला ।

उनसे मिलकर उनकी पुस्तके और उनके विषयों पर चर्चा उनके अन्तिम वर्षो मे हुई । १९९५ ई. के बाद मे हुई । १९९५ ई. से २००० ई. के पाँच छ वर्षो मे ही उनके पास जाता रहा हूँ । महाराजकुमार का निधन १९९१ ई. मे हो गया था । पं काशीराम शर्मा के साथ पूरी तरह से काम करने लगा था । उन्हीं दिनो मे डॉ. रामविलास शर्मा भाषा विज्ञान पर काम करने लगे थे । और उस विषय पर बात करने के लिए तैयार थे । वस्तुत सेवानिवृत्त होने के बाद वे के एम मुशी विद्यापीठ में नियुक्त हो गए थे । वहाँ के ग्रंथालय का पूरा उपयोग कर उन्होंने **'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी'** के तीन भाग क्रमश १९७९ ई १९८० और १९८१ ई. मे प्रकाशित करवाए । १९८० ई मे वे दिल्ली पहुँच गए थे । दिल्ली मे अन्तिम दिनो मे वे जिन महत्त्वपूर्ण विषयों वे काम कर रहे

थ , उन विषयो पर मेरा ध्यान भी गया । मैंने वीरकाव्यों पर काम करना बंद कर दिया था । मात्र अधूरे कामो को पूर्ण करने मे लगा था । '**भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी**' के तीनो भाग छपने के तुरन्त बाद मे क्रमश खरीद लिए थे । पढने मे समय लगा । उन पर शीघ्र ही कोई प्रतिक्रिया भी व्यक्त नही की ।

पृथ्वीराजरासो — पर काम करते समय मैंने उन्हें पत्र लिखे थे तो कुछ कहने से इनकार कर दिया । साफ लिखा दिया कि उनका ध्यान दूसरी ओर है । उनकी इस आदत के कारण उनका बहुत काम हुआ है । वे अपना ध्यान बॉटते नही । जिस विषय पर काम करते हैं, उसी विषय पर चिन्तन जारी रहता है और उसी विषय की सामग्री की खोज मे रहते है । लेखन पूर्ण हो जाने के बाद दूसरे विषय पर ध्यान देते हैं । **अपनी धरती अपने लोग** (आत्मकथा) के तीनों भाग १९९८ ई. में पूरी तरह लिख दिए गए थे । १९९६ ई मे किताब घर से उनका प्रकाशन हो गया था । मैंने वे तीनो भाग भी मंगवा कर पढ़ लिए । पढने के बाद अपनी प्रतिक्रिया लिखकर भेजता था । उनका आग्रह रहा कि पुस्तके धीरे धीरे पढो । मेरे पढने से वे खुश थे । बाद मे उन्होंने अपनी पुस्तक भी मुझे दी । उनकी पुस्तकें पढने के बाद जब मै उनसे बात करता या उनसे बात करने के बाद जब उनकी पुस्तकें पढता तो मैंने अनुभव किया कि उनमे एकरूपता है । जैसा वे सोचते विचारते हैं, वैसा ही वे लिखते है और जैसा वे लिखते है, वैसे ही वे बोलते है । उनके निर्णय बहुत साफ और स्पष्ट रहते है । बिना आधार और बिना जानकारी के वे न तो बोलते है और न ही वे लिखते है ।

मेरी उनसे अन्तिम भेट १२ नवम्बर १९९९ ई को हुई । उसके बाद मिलना नही हुआ । ३ दिसम्बर १९९९ ई. को मैंने उन्हे पत्र लिखा । १२ दिसम्बर १९९९ ई का उनका पत्र मिला । वही उनका अन्तिम पत्र है । अन्तिम दिनों में उन्होंने **ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा** पुस्तक के सम्पादन की अनुमति मागी थी । वह उन्होने मुझे दे दी और अशोक महेश्वरी ने (राजकमल प्रकाशन ने) उस सम्पादित पुस्तक को प्रकाशित किया । पुस्तक की पाण्डुलिपि मै उन्हे दिखाना चाहता था । किन्तु तब वे देखने की स्थिति मे नहीं थे । विजयमोहन शर्मा (उनके पुत्र) औरंगाबाद मे घर पर आए थे । उनके साथ जो बातचीत हुई, उससे उनको समझने मे मुझे काफी सहायता मिली । मैं जब-जब उनके घर पर गया, वे अकेले ही मिले । सब लोग काम पर चले जाते थे । एक बार केदारनाथ

अग्रवाल उनके साथी और प्रसिद्ध कवि उनके साथ मिले। वे उनके पास रहते थे। परिवार के किसी व्यक्ति से सम्पर्क हुआ ही नहीं।

पश्चिम एशिया और ऋग्वेद उनकी पुस्तक बहुत चर्चित हुई। दिल्ली पहुँचने के बाद उसी पुस्तक ने उन्हें अधिक ख्यात किया। उसके सम्बन्ध मे मतभेद भी रहा। वर्तमान को छोडकर वे प्राचीन की ओर मुड़ गये। उनका इस दृष्टि से परिवर्तन लोगो को जल्दी समझ में नहीं आया। मैंने भी जिज्ञासावश उक्त पुस्तक पढी। वेदो की ओर मेरा ध्यान गया। इसी तरह बाद में उन्होंने दो बृहत् ग्रथ लिखे — भारतीय सस्कृति और हिन्दी प्रदेश भाग-१ (६९९ पृष्ठ), भाग २ (७८८ पृष्ठ)। इन पुस्तकों का ठीक से मूल्याकन नहीं हुआ है। हालाकि ये दोनो ही ग्रंथ उन्हे लोकमान्य तिलक की श्रेणी मे रखते हैं। इन दोनो भागो के आधार पर उनके मनीषा रूप की पहचान अभी हुई नहीं है। मैं जब उनसे मिला था तो वे मनीषियों की तरह बात करते हुए प्रतीत होते थे। 'हिन्दी प्रदेश' — का चिंतन और हिन्दी की जातीयता के चिन्तन पर प्रतिक्रियाएँ बहुत हुई है। पत्र-पत्रिकाओ में वे सब प्रकाशित भी हुई हैं। उनका अतीतोन्मुख होना बहुतों को ठीक नहीं लगा। उनमे डॉ. नामवरसिंह भी हैं। किसी पुस्तक को तथा विचारधारा को समझने मे समय लगता ही है। काल स्वयं उसका मूल्याकन यथासमय करेगा।

अंतिम दिनो मे डॉ. रामविलास शर्मा तुलसीदास अधिक पढने लगे थे। तुलसीदास के सौदर्य बोध से अधिक प्रभावित थे। उनके निधन के एक वर्ष बाद मे दिल्ली की साहित्य अकादमी से '**भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास** — ग्रथ का प्रकाशन हुआ है। उक्त ग्रथ के प्रारम्भ मे पृ. ७ से २३ तक ग्रथ की प्रस्तुति डॉ. रणजीत साहा की लिखी हुई हैं। पडोसी होने के नाते साहाजी का सम्पर्क बना हुआ था। ग्रथ कैसे तैयार हुआ इस बात का कच्चा चिट्ठा उक्त प्रस्तुति में है। ग्रंथ उनसे लिखवा लिया गया है। साहा साहब लिखते हैं।

> "अपनी कुछ अन्तिम मुलाकातों मे जब वे मृत्यु शय्या पर पड़े थे अपने हाथों में मेरा हाथ लेकर काफी रुक-रुककर और धीमे-धीमे जो कुछ कहते, उनमे तुलसीदास को केन्द्र में रखकर एक बडी पुस्तक तैयार करने की चाह उन्होंने जताई थी। इन दिनों परिवार के लोग सबेरे डा. साहब के कहने पर मानस के उनके इच्छित प्रसगो को पढ़कर सुनाते थे। सभवत इसीलिए उन्होंने मुझ से कहा था, मुझे तुलसीदास पर एक किताब अलग से लिखनी है। उन्होने बताया था — मै उन्हें कभी कभी राम से भी बडा

पाता हूँ । या चौपाइयो का अस्फुट उल्लेख करने लगते थे — जो मेरी पकड से बाहर थे । वे यह समझ रहे थे कि सामनेवाला शायद उनकी बात ठीक से सुन नही पा रहा है । ठीक से समझ नही पा रहा है — इसीलिए वे मुस्करा भर देते थे । उनकी वह आत्मीय और धीरे धीरे विरल होती जाती मुस्कान, उनकी बेबसी और लाचारगी की ऐसी कहानी थी, जो मुझे अदर तक चीर जाती थी — जिन्हे तब झेल पाना और इतने दिनो बाद फिर से महसूस करना भी बहुत यातनादायक है ।''

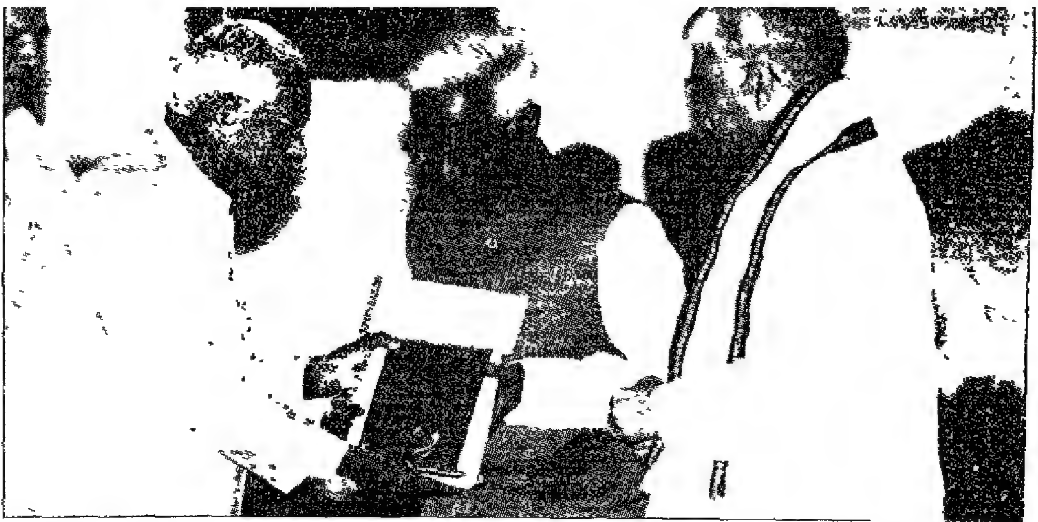
(भारतीय सौदर्यबोध और तुलसीदास, पृ २०
प्रथम सस्करण २००१ ई)

तुलसीदास को स्मरण करते हुए डॉ रामविलास शर्मा चले गये । तुलसीदास पर लिखने की चाह उनके मन मे रह गई । तुलसीदास के सौदर्यबोध पर वे मुग्ध थे । अवधी के लोकगीतों को बहुत पसद करते थे । टी वी पर लोकगीतो की धुन सुनते थे । अवधी के साथ साथ अन्य बोलियों के गीतों को भी उसी प्यार से सुनते थे । रामलला नहछू, पार्वती मगल, जानकी मगल के सौदर्य बोध पर वे मुग्ध थे । बोली के माध्यम से सगीत सुनते और मुग्ध हो जाते थे । इन सब का विश्लेषण उन्होने किया है । निरन्तर वैचारिक लेखन करनेवाला सहृदय भी होता है, इस बात की पहचान भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास पुस्तक से होती है। तदर्थ मै डॉ रणजीत साहा की सराहना करता हूँ ।

मेरे गुरुजनो मे एक-एक कर सब चले गये । डॉ भालचन्द्र तेलग गये । महाराजकुमार डॉ रघुबीरसिह गए । विद्यासागर विद्यालकार गए । और बाद मे डॉ रामविलास शर्मा भी गए । मेरे दोनो सहपाठी मित्र और अग्रज बन्धु डॉ भीमसेनजी निर्मल और डॉ. चक्रवर्ती भी चले गए । पं काशीराम शर्मा है। उनसे पत्र-व्यवहार जारी है । वे भी अस्सी वर्ष के हो गए हैं । कुछ ऊपर होगे। जो लोग हैं, उन्हें अब पहले की तरह मिलना सभव नहीं । शारीरिक विवशताएँ है ।

भारतीय भाषाओ के ऐतिहासिक एव भौगोलिक स्वरूप पर लिखने की योजना है । सामग्री सकलित है । शरीर ने साथ दिया तो उक्त कार्य पूर्ण करूँगा ।

☐ ☐



महामहिम राष्ट्रपति के. आर. नारायणन, राजमल बोरा और मानव संसाधन मंत्री श्री मुरली मनोहर जोशी
(१९ मई २००० ई०)



बैठे हुए . लेखक अपनी धर्मपत्नी आशा के साथ □ पीछे खडे हुए · सुनिल एवं आशा □ सगीता एव अनिल



ा, आकाश के साथ सुनिल (पुत्र)
(२००३ ई०)

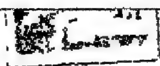


देशा तथा दिव्या के साथ अनिल (पुत्र)
(मार्च २००४ ई०)



ग, कँवर साहब महेश जैन, नमिता (पुत्री) और मिहिका
(फरवरी २००४ ई०)

लेखक अपने छोटे भाई के साथ

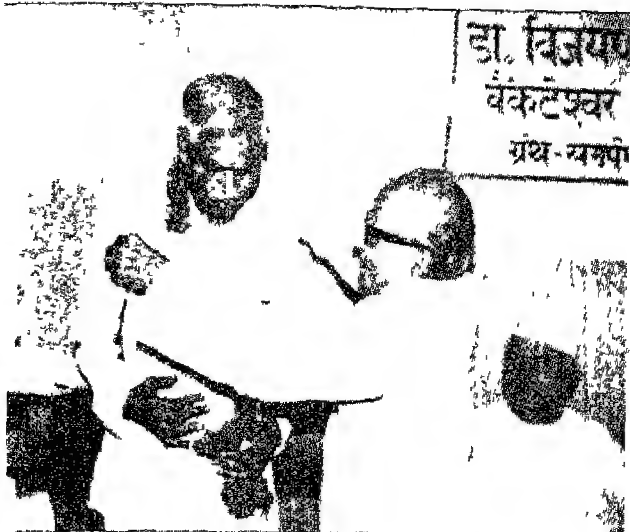






लेखक एवं आशा □ शांता एवं तेजमल
तेजमल के निवास स्थान पर, लातूर में।
(नवम्बर २००० ई०)

वेजयपालसिह अभिनदन ग्रथ समारोह १९८३ ई



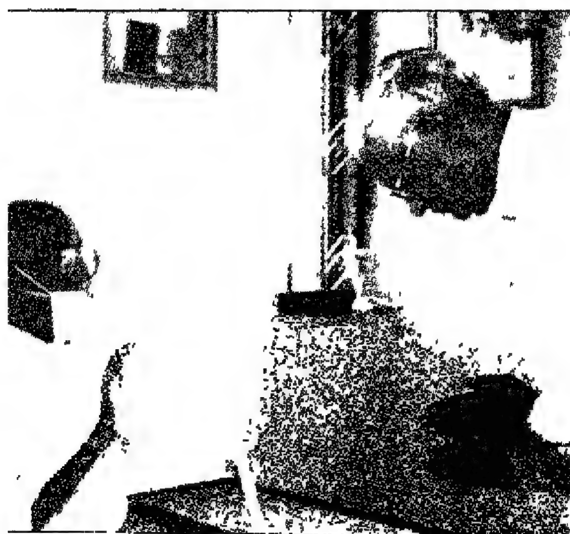
विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. विजयपालसिंह (हार पहनते हुए)
(हार पहनाते हुए) तथा समारोह के अध्यक्ष प्रो. नूरूल हसन
ट्यूशन क्लब, नई दिल्ली, १५ सितम्बर १९८३ ई०)



महाराजकुमार डॉ. रघुबीरसिंह (सीतामऊ) के साथ
ाक के निवास स्थान पर. ३ अप्रैल १९८० ई०)



लेखक पं. काशीराम शर्मा के साथ
औरंगाबाद में लेखक के आवास पर, अगस्त १९९१ ई०



मुनि मिश्रीलालजी लेखक को, लेखक के आवास पर
मगलीक सुनाते हुए
(५ नवम्बर १९९२ ई०)



लेखक के साथ डॉ. जगदीश गुप्त
ंगाबाद में लेखक के निवास स्थान पर १९८७ ई०



ाखक महामहिम राज्यपाल हिमाचल प्रदेश आचार्य
विष्णुकान्त शास्त्री के साथ
ाभवन, शिमला. हिमाचल प्रदेश २२ मई २००० ई०



लेखक : प्रोफेसर भीमसेनजी निर्मल के साथ
हैदराबाद मे, निर्मलजी के निवास स्थान पर
(२६ नवम्बर २००३ ई०)



लेखक प्रोफेसर एवं कवि वसंत चक्रवर्ती के साथ
हैदराबाद में चक्रवर्ती के निवास स्थान पर
(२००२ ई०)

जीवनयात्रा के पडाव — आत्मकथा भाग १ की प्रतिक्रिया में प्राप्त कुछ पत्र

चूरू

दिनाक २०-०५-२००३

मान्यवर,

आप की आत्मकथा का प्रथम खण्ड १३-५ को मिल गया था। पर उस समय मै दिल्ली की यात्रा के लिए निकल रहा था। अत पढ न सका। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की बैठक मे गया था। वहा आदरणीय बन्धु ब्रजकिशोरजी से भी मिलना हुआ। वे नेशनल बुक ट्रस्ट के चेअरमैन है। उन्होने आश्वासन दिया है कि वे बुक ट्रस्ट की ओर से तोल्काप्पियम् का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवा देंगे। जोधपुर महाराजा का पुस्तक प्रकाश केन्द्र रतनरासो को प्रकाशित करने के लिए तैयार हो गया है। दोनो पुस्तके शीघ्र ही प्रकाशनार्थ भिजवा दूँगा।

१६-५ को दिल्ली से लौटकर आपकी पुस्तक पढ ली है। माता-पिता के अभाव मे आपको कैसा बिकट जीवन यापन करना पडा और आप के जीवन ने कैसे आप को सफल बनाया, पढकर आप के प्रति श्रद्धा से मन भर गया है। भगवान् आपको दीर्घ आयु प्रदान करे ताकि आप साहित्य भंडार को समृद्धतर कर सके यही मेरी कामना है। आलेख प्रकाशन से प्रकाश्य आप की पुस्तक की प्रतीक्षा मे हूँ।

भवदीय

काशीराम शर्मा

० ०

९-६-२००३

प्रिय डॉ साहब,

अभी 'जीवनयात्रा के पडाव १' प्राप्त हुई। इसमे जो कथा-रजकता और हृदयावर्जकता है उसके कारण इसे मै भी घंटो पढने बैठ गया, मेरी पत्नी भी। औरगाबाद तक जीवनयात्रा आ

गई, अब चौथे तथा आगे के पडावो की प्रतीक्षा है । इस पुस्तक में भी पत्र-सामग्री, तिरुपति के हिन्दी विभाग का हाल आदि ने जो विषय, वैविध्य बना दिया है । वह इसे और भी संग्रहणीय बनाता है । आश्चर्य यह जानकर हुआ कि प्रारंभ से अब तक की घटनाएँ आपने कैसे सजो कर रखी थी ।

आपकी लेखनी निरन्तर सक्रिय है यह परम हर्ष का विषय है । आप हम लोगों को निरन्तर स्मरण करते रहते है यह भी हमारा सौभाग्य है । घर में सब को नमस्कार ।

स्नेहाधीन

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

C/८, पृथ्वीराज रोड, जयपुर-३०२००१

० ०

फोन . २७१५६७२१ बी-१५१, महाराणा प्रताप एन्कलेव

पीतमपुरा दिल्ली-३४

७-५-२००३

प्रिय बन्धु,

आशा करता हूँ आप स्वस्थ और प्रसन्न है । आपकी आत्मकथा भाग-१ मिली । छपाई तो बहुत सुदर है । जैसे ही अवकाश मिलेगा मै इसे अवश्य पढूँगा । इस तरफ तो मै बहुत व्यस्त हूँ और स्वास्थ्य के कारण थोडा त्रस्त भी । इसीलिए विशेष कुछ नही कर पा रहा हूँ । आशा करता हूँ आप सपरिवार सानन्द है ।

शेष शुभ ।

भवदीय

विष्णु प्रभाकर

० ०

बी-१५१, महाराणा प्रताप एन्कलेव

पीतमपुरा दिल्ली-३४

१४-७-२००३

प्रिय भाई,

आपका १ जुलाई का पत्र मिला । बहुत खुशी की बात है कि आप अपनी जीवनी का दूसरा भाग लिख रहे है । सुझाव क्या

रहे । इस तटस्थ भाव मे जो कुछ अनुभव किया है लिखिए और ऐसे लिखिये कि इस युग का चित्र भी हो जाए । किसी की निन्दा प्रशंसा के चक्रव्यूह मे न फँसे पर सत्य लिखने मे भी मत चूकिये ।

बाकी और सब तो आप जानते ही है । अभी-अभी दिवगत डा. श्री भीष्म साहनी की आत्मकथा आई है । उसे पढ सके तो पढ लीजिए । युग का चित्रण अवश्य आ जाना चाहिये और अपने अन्तरंग मन का भी ।

आरोग्य संवाद का नया अंक आपको पसंद आया, अच्छा लगा । आप उनको पत्र लिख ही रहे है ।

मेरा स्वास्थ्य जरा परेशान करने लगा है । जीवन के ९२वे वर्ष मे छः-सात घंटे रोज मेहनत करनी पडती है ।

और सब ठीक चल रहा है । आपके पुराने शिष्य तो आपसे मिलते ही रहते होंगे । वहाँ सबको, मेरा विशेष कर अपनी पत्नी को नमस्कार कहिए ।

शेष कुशल ।

भवदीय
विष्णु प्रभाकर

○ ○

रंगनाथ तिवारी

'दयाल' जयवतीनगर
अंबाजोगाई - ४३१ ५१७
दि २० मई २००३

आदरणीय डॉक्टर गजमलजी

सप्रेम नमस्कार,

जीवनयात्रा के पडाव की प्रति प्राप्त हुई । आभारी हूँ । 'आत्मकथा को पूर्ण सत्य न मानें' आपने अपनी बात में कहा है । पर पढने पर नहीं लगता कि आपने कुछ असत्य भी लिखा है । आपकी शैली मॅलिस टोवर्डसनन वाली है । मुखपृष्ठ से मलपृष्ठ सुन्दर बना है । मुखपृष्ठ पर श्री मुकुन्दराज से तिरुपती का पथ होता तो ?

उसमे गतिमानता के साथ एक प्रसन्नता भी है । बाईसाब को आधी तनखा देने का मन न होते हुए भी देते रहते है और बात को कटु होने से बचा लेते है । रामनाथन के जीवन की उदासी और निराशा को सहजभाव से लेकर बढ जाते है ! तिरुपति का बिछोह सवेदना को आलोडित करता है । पर औरगाबाद मे भी तो व्यकट राह देख रहा है ।

'अपनी बात' से लगता है आत्मकथा २ भी तैयार हो गयी है । शीघ्र ही हो जायेगी ।

अबाजोगाई के सदर बाजार के मकान की टीन पर खडे आपकी प्रसन्न मुद्रा — दर्शनीय है ।

एक अच्छी आत्मकथा के लिए आपका अभिनन्दन तथा आत्मकथा-२ जहाँ शायद अधिक मुखर होने की सम्भावना और आवश्यकता है उसके लिए अग्रिम शुभकामनाएँ ।

आपका

रंगनाथ तिवारी

० ०

फोन २६२८१५९ सुरसगत, ४७, राघवेन्द्र नगर

सोलापुर - ४१३ ००१

दि ११ जून २००३

प्रिय डाक्टर राजमलजी,

सस्नेह नमस्कार,

आप की आत्मकथा का पहला भाग, 'जीवनयात्रा के पड़ाव' पढकर बहुत प्रसन्नता हुई । प्राप्ति सूचना मे विलंब के लिए क्षमा कीजिए । पाते ही पढता. गया । विशेषत अम्बाजोगाई के दिनो की कथा पढ़ने मे आत्मीयता प्रतीत होने से उस भूगोल को दुबारा अनुभव का आनद आया । वह भूगोल अब प्राय नामशेष हो रहा है । हैदराबाद और तिरुपति के प्रसग भी किसी रचना को सार्थक व सफल बनाने में सहयोग देते होंगे । तटस्थ ब्योरे, आत्मीय अनुभव, शैलीगत संयम और सादगी तथा सबसे बडी बात किसी बात को न छिपाने की पारदर्शी ईमानदारी ने आपकी आत्मकथा विशिष्ट बन गयी है । इसका श्रेय निसन्देह आपकी सहधर्मचारिणी को जाता

है तथा आपके परिवार का भी। मुझे लगता है कि आपने अत्यधिक संक्षेप से काम किया है। कुछ अधिक खुलकर विस्तार से चिन्तन मनन और टिप्पणियो से विस्तार पाया जा सकता था। जो है सो तो है ही। आपके व परिवार के सुख स्वास्थ्य समृद्धि के लिए आभारिक।

शुभकामनाओं के साथ।

आपका

निशिकान्त ठकार

० ०

फोन २७१८६४४६ १९४, महाराणा प्रताप एन्कलेव

दिल्ली-११००३४

१२-५-२००३

भाई बोराजी,

आपकी जीवनी 'जीवनयात्रा के पडाव' का प्रथम खण्ड मिला। अभी जहाँ-वहाँ के उलटकर ही देख पाया हूँ।

आपने अपने वृत्त के साथ जो इतिहास और भौगोलिक सन्दर्भ जोड कर रखा है। उसीसे इसमें जान आ गई है।

भगवानसिह

० ०

१२६०, नया रामनगर,

उरई-२८५००१

२०-८-२००३

भाई बोराजी,

अनेक स्मृतियो मे डूबता-उतरता आज आप की आत्मकथा का पहला खण्ड समाप्त कर दिया। मैंने भी तुकोबा की पक्तियाँ पढ़कर विश्राम किया। हालाकि तुकोबा के अभग मे समायी सुगध तो मै नही ले सका पर आपके पूरे आत्मवृत्त मे व्याप्त आपके चरित्र की सुगध से आप्लावित होता रहा। आपके परिवार का दानी शीलवान पावन चरित्र, आपका कष्ट, आपकी ताईजी का चरित्र,

आपकी लगन, शिक्षा के लिए किये गये प्रयत्न, शोध कार्य के लिए अनवरत प्रयास । फिर लगातार लेखन, अध्ययन, मनन मे संलग्न रहना, अपने मन के ज्ञान की भी दीप्ति से भरना और उसे बाहर लुटाते रहना । आपने कभी-भी कुंठाओ को नही । आपकी दृष्टि विधायात्मक रही । आप सदा विनयी बने रहे । पुस्तक पर एक मास से लगा रहा । आज खतम हुई तो समापन सा लगा । अब विस्तृत पत्र लिखूँगा । तब उसमें समीक्षा होगी, अपनी प्रतिक्रिया, कुछ सुझाव ।

आपका

रामशंकर द्विवेदी

० ०

फोन (नि) २७५३१५०१

बुलटॉप होजरी एण्ड
किड्डीस वियर
१-६-७७/१ जनरल बाजार
सिकंदराबाद - ५०० ००३
२९-७-२००३

आदरणीय भाईसाहब,

श्री राजमलजी बोरा को जैन मदनलाल मरलेचा का सप्रेम नमस्कार ।

आप द्वारा प्रेषित आत्मकथा प्राप्त हुई । एक ही बैठक मे पुस्तक को पढा ।

भाव और बुद्धि का संतुलन ही एक अच्छी रचना कहो या आत्मकथा के सृजन का हेतु बनता है ।

अति बौद्धिकता व्यक्ति को पत्थरो का बुत बना देती है । और अति भावुकता पागल के प्रलाप से कम नहीं होती । व्यक्तित्व परस्पर विरोधी तन्तुओ से मिलकर ही बनता है । विरुद्धो का सामंजस्य ही तो सौन्दर्य है । भाईसाहब आपकी आत्मकथा मे भी इसी सौन्दर्य की लचक है । व्यापक संदर्भो को समेटे आत्मकथा एक बैठक में पाठक आद्योपान्त पढ लेता है । सरसता और निरंतरता इसकी विशेषता है ।

घर म यथायोग्य सभी को प्रणाम, नमस्कार, आर्शीष व प्यार ।

आपका शुभचिन्तक
जैन मदनलाल मरलेचा

० ०

१/११७९८, पचशील गार्डन, नवीन शाहदरा
दिल्ली-११००३२
५-७-२००३

आदरणीय परमश्रेष्ठ बोराजी,

सादर सस्नेह नमस्ते । आपकी आत्मकथा 'जीवनयात्रा के पडाव' आद्योपात पढ़ गया हूं । आत्मिक आनंद प्राप्त हुआ । ऐसा प्रतीत हुआ, मानो आपसे साक्षात् मिलना हुआ है । आपके परिवार के कर्णधार आपके परमपूज्य दादाजी श्रीयुत मोहनलालजी बोरा को मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि । उनका चरित्र अत्याधिक प्रेरणादायक और अनुकरणीय है । अपने पूज्य पिताजी श्रीयुत रतनलालजी बोरा औरा दादाजी दोनो की पावन स्मृतियों को अपनी कृति आपने समर्पित की है, इसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं । इन्ही के आशीर्वाद से आप इस गुरु-गभीर कृति के प्रणेता बन सके है ।

आपकी 'अपनी बात' बडी सहजता से लिखी गई है । 'पत्नी के डडे' का उल्लेख पढकर होठो पर मुस्कान खिल उठी । उन जेसी विदुषी पूज्य देवी को मेरा सादर अभिवादन — उन्हींकी प्रेरणा से आप इतनी बढिया पठनीय अनुपम कृति लिख सके ।

आपने यह बहुत ही ठीक लिखा है कि 'स्मृतियाँ मनुष्य को सुख देती है ।', 'अतीत हमारी धरोहर है ।', 'मानवीय गुण-दोष सब मे होते है ।', 'मनुष्य तो गलतियो का पुतला है ।', 'सफलता और असफलता भी हमारे मानने मे हैं ।', 'जो अपना समझते है, वे ही तो डाँटते है ।', 'साथ मनुष्य के गई बुराई, रह गई उसकी भलाई ।' 'सत्य का साक्षात्कार बडा भयानक होता है और भय तो मृत्यु है ।'



दो सौ वर्ष का आपके परिवार का इतिहास उपलब्ध है - यह वास्तव मे सतोष और गौरव का विषय है । उसके आधार पर आपने पूर्वजो के सम्बन्ध मे बडी दिलचस्प जानकारी प्राप्त हुई तथा बोरा परिवार की वश-तालिकाएँ भी देखने को मिली । आपके इन सभी पूर्वजो को मेरी हार्दिक श्रद्धाजलि ।

आपने अपनी इस आत्मकथा मे तिरुपति के हिन्दी विभाग' के सम्बन्ध मे 'परिशिष्ट' मे महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है ।

आपकी इस आत्मकथा को पढने मे मेरा जो समय लगा है — वास्तव मे वह सार्थक हुआ है । पढने के लिए आपने इसकी एक प्रति 'भेट-स्वरूप' भेजने का जो अनुग्रह किया है, उसके लिए नितात आभारी हूँ ।

कभी आप सपत्नीक दिल्ली आने का भी कार्यक्रम बनाइए।

योग्य सेवा लिखिएगा ।

अनंत शुभकामनाओ के साथ ।

शुभेच्छु आपका
ईश्वरचन्द्र खण्डेलवाल

□ □